प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी

(नवीनतम वैज्ञानिक पद्धति से लिखी गई संस्कृत-व्याकरण,
अनुवाद और निबन्ध की पुस्तक)

लेखक—

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य,

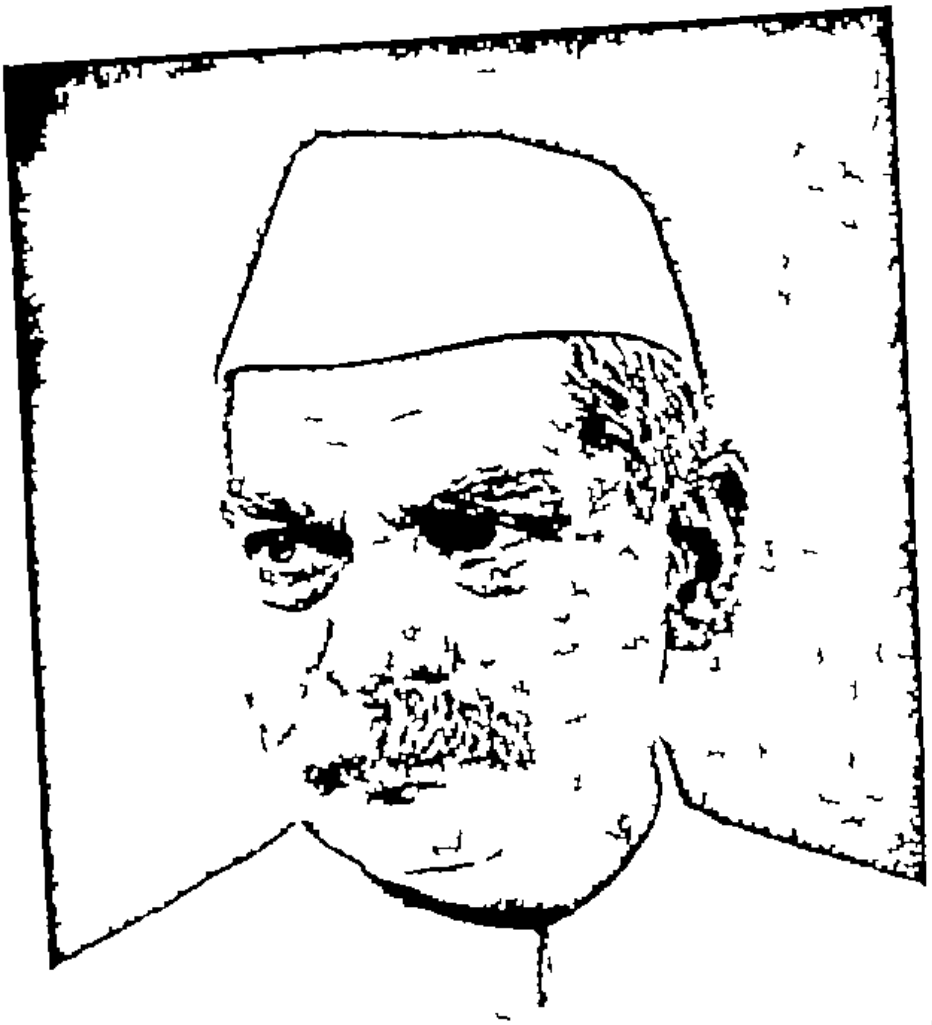
एम ए (संस्कृत, हिन्दी) एम. ओ एल , डी फिल् (प्रयाग), पी ई एस.,
विद्यावारिधि, साहित्यरत्न व्याकरणाचार्य,
अध्यक्ष संस्कृत विभाग,
गवर्नमेंट कालेज, नैनीताल।

प्रणेता—'अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन'
(उ प्र सरकार द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत पुस्तक), रचनानुवादकौमुदी आदि



गोरखपुर

मूल्य—सात रुपए पचास नये पैसे
प्रथम संस्करण ११ प्रति
सन् १९६१ ई
प्रकाशक—विश्वविद्यालय प्रकाशन, नखास चौक, गोरखपुर
मुद्रक—ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बाराणसी (बनारस) ५६७१-१७



राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

समर्पण

संस्कृत भाषा के परम भक्त, विद्वन्मूर्धन्य
भारतराष्ट्र-भाष्य परम संमाननीय,
राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी
की सेवा में
सादर सविनय समर्पित।

कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

विषय-सूची

विवरण

अभ्यास	शब्द	धातु	कारकादि	समासतद्धि	शब्दवर्ग	पृष्ठ
१	राम	भू, इस्	प्र० द्वितीया	अद् (पर)	—	२
२	गृह	पठ्, रक्ष्	,	लोट् ,,	—	४
३	रमा	गम्, वद्	तृतीया	अद् ,,	—	६
४	हरि भूपति	चर् हस्	,,	विधिलिङ् ,,	—	८
५	गुरु	सद् पा	चतुर्थी	लृट् ,,	—	१०
६	९ सर्वनाम पुं	सेव्, पूज्	,,	अद् (आ०)	—	१२
७	,, ,, नपुं	दृश्, ईक्ष्	पंचमी	लोट् ,,	—	१४
८	,, ,, स्त्री	मन्त्र्, रम्	,,	अद् ,,	—	१६
९	इदम्	क्रम्, स्था	षष्ठी	विधिलिङ् ,,	—	१८
१०	अदस्	मुद्, खाद्	,,	लट् ,,	—	२०
११	युष्मद्	पच्, पच्, नम्	सप्तमी	—	—	२२
१२	अस्मद्	तृ स्तु, जि	,	—	—	२४
१३	एक	आ	स्वर परे	जिद्	देववर्ग	२६
१४	द्वि	हस्, वस्	, ,,	,,	विद्याऽध्ययनवर्ग	२८
१५	त्रि	स्पश्	व्यंजन ,,	मुद्	लेखनसामग्री	३
१६	चतुर्	याच्	,, ,,	,	विद्याऽध्ययन	११
१७	संख्या ५ १	वद्	विसर्ग ,,	मुद्	व्योमवर्ग	१४
१८	,, ११ १	नी	,, ,,	आ जिद्, मुद्	संबन्धिवर्ग	१६
१९	सखि	हृ	—	अव्ययीभाव	क्रीडासनवर्ग	१८
२०	पति	भू	—	तत्पुरुष	ब्राह्मणवर्ग	४
२१	सुधी स्वम्	हृ (पर)	—	कर्म, द्विगु	क्षत्रियवर्ग	४१
२२	कर्तृ	कृ (आ)	—	बहुव्रीहि	आयुधवर्ग	४४
२३	पितृ, नृ	अद्, घास्	—	,,	सैन्यवर्ग	४६
२४	गो	अत्	—	द्वन्द्व	वैश्यवर्ग	४८
२५	आम्ब्, ढरम्ब्	हू	—	एकशेष अनेक	व्यापारवर्ग	५०
२६	पयोमुच् वणिज्	पा, पा	—	समासान्त प्र०	अन्नवर्ग	५२
२७	भूमृत्	युज् लिह्	—	स्त्रीप्रत्यय	मांसवर्ग	५४
२८	भगवत्, श्रीमत्	कृ स्मर्	पञ्चम	कर्तृवाच्य	मिश्रान्नवर्ग	५६
२९	महत्, भवत्	हन्, स्तु	—	आत्मनेपद	पानादिवर्ग	५८
१	पठत् भावत्	इ जिद्	आत्मनेपद	परस्मैपद	पात्रवर्ग	१

अभ्यास	शब्द	धातु	कारकादि	प्रत्यय	शब्दवर्ग	पृष्ठ
११	सुप्	आस्	—	कर्म-भाववाच्य	शूद्रवर्ग	६२
१२	आत्मन् राजन्	श्री, अधिष्ठ	—	,, ,,	क्षत्रियवर्ग	६४
१३	श्वन्, पुंवन्	हु, श्री	—	क्विप्	,,	६६
१४	दृषद्, मघवन्	दा, ही	—	,,	शाकादिवर्ग	६८
१५	करिन्, पथिन्	भू, मा	—	सन्	,,	७०
१६	तादृश्, चन्द्रमस्	दा	—	मत् नामधातु	कृषिवर्ग	७२
१७	विद्वस्, पुंस्	वा	—	क्त	विशेषणवर्ग	७४
१८	मेधस्, अन्यादृश्	दिव्, रात्	—	,,	,,	७६
१९	मति	मथ्, भ्रम्	—	क्तवतु	रोदनवर्ग	७८
४०	नदी, अक्षी	भ्रम्, सिच्	द्वितीया	अत्	वनवर्ग	८
४१	श्री, भी	सो, धी	,,	शानच्	वृक्षवर्ग	८२
४२	धेनु, वधू	कुप्, पद्	तृतीया	तुमुन्	पुष्पवर्ग	८४
४३	स्वसृ, मातृ	पुष्, वन्	,,	क्त्वा	फलवर्ग	८६
४४	नौ, वाच्	आप्, शक्	चतुर्थी	स्यप्, यमुल्	,,	८८
४५	सक्, सरित्	चि, आप्	,,	तव्य, अनीय	पशुवर्ग	९०
४६	सक्थि, अप्	सु	पंचमी	अत्, यत्, ण्यप्	पक्षिवर्ग	९२
४७	गिर्, पुर्	इष्, प्रच्छ्	,,	घञ्	वारिवर्ग	९४
४८	दिश्, उपानह्	क्विप्, स्तृघ्	षष्ठी	तृच्, अच्, अप्	शरीरवर्ग	९६
४९	वारि, दधि	कृ, गृ	,,	स्नुट्, स्नुक्, ट	,,	९८
५	अस्थि, अस्थि	क्विप्, भू	सप्तमी	क लक् विनि	वस्त्रादिवर्ग	१००
५१	मधु, कर्तृ	तृच् मुच्	,,	क्विन्, अच्, क्विप्	आभूषणवर्ग	१०२
५२	जगत्	क्विप्, मिद्	—	इष्णु, अच् आदि	प्रसाधनवर्ग	१०४
५३	मामन्, धर्मन्	क्विप्, मंस्	तद्धित	अपत्यार्थक	पुरवर्ग	१०६
५४	ब्रह्मन्, अहन्	वप्, सृज्	,,	चातुरर्थिक	,,	१०८
५५	इविष्, भगुष्	पुष्, वन्	,,	दीपिक	गृहवर्ग	११०
५६	पयस्, मनस्	हा	,,	मत्वर्थक	अव्ययवर्ग	११२
५७	पाद्, दत्त	वन्, मन्थ्	,,	विभक्त्यर्थ	क्रियावर्ग	११४
५८	गोपा, विश्वपा	क्री, ग्रह्	,,	भावार्थक	धातुवर्ग	११६
५९	कवि	पुर्, क्विप्	,,	तृतीयार्थक	नाट्यवर्ग	११८
६	उरु	वप्, भष्	,,	विविध तद्धित	रोगवर्ग	१२०

परिशिष्ट

व्याकरण

पृष्ठ

(१) शब्दरूप-संग्रह १२३-१४

१ राम २ पाद ३ गोपा, ४ हरि, ५ अग्नि, ६ पति ७ भूपति, ८ सुधी ९ गुरु, १० स्वयम् ११ कर्तृ, १२ पितृ, १३ नृ, १४ गो, १५ प्लवोमुच्, १६ प्राञ्च्, १७ उदञ्च्, १८ वणिज्, १९ भूमत्, २० भगवत्, २१ धीमत्, २२ महत्, २३ भवत्, २४ पठत्, २५ याचत्, २६ क्षुध्, २७ आत्मन्, २८ राजन् २९ अन्, ३० पुंस्, ३१ दृशदन्, ३२ मघवन्, ३३ करिन् ३४ पक्षिन्, ३५ वाहस् ३६ विद्वस्, ३७ पुंस् ३८ चन्द्रमस् ३९ मेधस्, ४० अनड्वह्, ४१ रमा, ४२ मति, ४३ नदी, ४४ लक्ष्मी ४५ स्त्री ४६ भी, ४७ धेनु, ४८ वधू, ४९ स्वसृ, ५० मातृ, ५१ नौ, ५२ वाच्, ५३ स्रज्, ५४ अरित्, ५५ अग्निच् ५६ अप्, ५७ गिर्, ५८ पुर्, ५९ दिश् ६० उपानह् ६१ गृह ६२ वारि, ६३ दधि, ६४ अक्षि, ६५ अक्षि, ६६ मधु, ६७ कर्तृ, ६८ जगत्, ६९ नामन्, ७० धर्मन्, ७१ ब्रह्मन्, ७२ अहन्, ७३ हविष्, ७४ धनुष्, ७५ पयस्, ७६ मनस्, ७७ सर्व ७८ विश्व, ७९ पूर्व ८० अन्य, ८१ तत्, ८२ यत्, ८३ एतत् ८४ किम्, ८५ युष्मद्, ८६ अस्मद्, ८७ इदम्, ८८ अदस्, ८९ एक, ९० द्वि, ९१ त्रि, ९२ चतुर्, ९३ पञ्चन्, ९४ षष्, ९५ सप्तन्, ९६ अष्टन्, ९७ नवन्, ९८ दशन्, ९९ कति, १०० उभ।

(२) संख्यायें १४१-१४२

गिनती—१ से १० तक।

संख्यायें—दस से महार्णव तक।

(३) धातुरूप-संग्रह (दसों लकारों के रूप) १४३-१८०

(१) भ्वादिगण—१ भू, २ इष्, ३ पठ् ४ दृश् ५ वद्, ६ गम्, ७ हन्, ८ पच् ९ सेवा, १० अस्, ११ अद् १२ पच् १३ नम्, १४ स्मृ, १५ जि, १६ श्रु, १७ क्रुध्, १८ क्षुभ्, १९ लभ्, २० शेव्, २१ कम्, २२ कृप्, २३ मुद्, २४ वद्, २५ हस्, २६ ईक्ष्, २७ मी, २८ हृ, २९ याच्, ३० वह्।

(२) भ्वादिगण—११ भद्, १२ भष्, १३ इ, १४ एध्, १५ स्कन्, १६ स्कुद्, १७ स्खिद्, १८ स्पृश्, १९ हन्, ४० या, ४१ वा, ४२ ह्राद्, ४३ क्षिप्, ४४ ह्वाद्, ४५ श्री, ४६ अधि+इ, ४७ द्रु।

(३) जुहोत्यादिगण—४८ हु ४९ भी, ५० हा, ५१ ह्री ५२ भृ, ५३ मा, ५४ दा, ५५ धा।

(४) दिवादिगण—५६ दिव्, ५७ मृष्, ५८ नश्, ५९ भ्रम्, ६० क्रम्, ६१ क्षिप्, ६२ सो, ६३ षो, ६४ ष्ठिव्, ६५ पद्, ६६ युध्, ६७ जन्।

(५) स्वादिगण—६८ आप्, ६९ शक्, ७० चि, ७१ सह् ७२ सु।

(६) तुदादिगण—७३ इष्, ७४ प्रच्छ्, ७५ क्षिप्, ७६ तृह्, ७७ कृ ७८ गृ, ७९ क्षिप्, ८० मृ, ८१ मुच्, ८२ मुच्।

(७) रुधादिगण—८३ छिद्, ८४ भिद्, ८५ क्षिप्, ८६ मन्थ् ८७ यज्, ८८ भुज्, ८९ युज्।

(८) तनादिगण—९० तन् ९१ कृ।

(९) क्र्यादिगण—९२ वप्, ९३ मन्थ्, ९४ क्री, ९५ ग्रह्, ९६ ज्या।

(१०) चुरादिगण—९७ चुर्, ९८ क्षिप्, ९९ कथ् १०० मन्त्।

(४) धातुरूपकोष २२१-२५४

अकारादिक्रम से ४६५ धातुओं के दसों लकारों में रूप।

(१) अकर्मक धातुएँ। (२) अनिट् धातुओं का संग्रह।

(५) प्रत्यय-विचार २५५-२६८

निम्नलिखित प्रत्ययों के सभी उपयोगी रूपों का संग्रह :—

१ क, २ क्वसु, ३ शतृ, ४ शानच्, ५ तुमुन्, ६ तव्यत्, ७ तुच्, ८ क्त्वा, ९ ल्यप् १० क्त्वा, ११ अनीयर्, १२ घञ्, १३ युच्, १४ क्तिन्, १५ क्त।

(६) सन्धि-विचार २६९-२७८

७५ उपयोगी सन्धि-नियमों का उदाहरण विवेचन।

(७) पत्रादि-लेखन प्रकार २७९-२८३

(८) निबन्ध माला (२ निबन्ध) २८४ ३२४

१ वेदानां महत्त्वम् ।
२ वेदाङ्गानि, तेषां वेदार्थबोधोपयोगिताः ।
३ सर्वोपनिषदो गावो दुग्धं गीतामृतं महत् ।
४ भासनाटकचक्रम् ।
५ कालिदासस्य समस्तमभिज्ञानशाकुन्तलम् ।
६ उपमा कालिदासस्य ।
७ भारवेरर्थगौरवम् ।
८ दण्डिनः पदलालित्यम् ।
९ माघे सन्ति त्रयो गुणा ।
१० वाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् ।
११ काव्यं मदमूर्तिरेव तनुते ।
१२ नैषधं विद्वदौषधम् ।
१३ भारतीया संस्कृतिः ।
१४ संस्कृतस्य रक्षार्थं प्रसारार्थं चोपायाः ।
१५ कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा ।
१६ नाऽम्भसे वैदिकता न निषीदति पौरुषे ।
१७ सहसा विदधीत न क्रियाम् ।
१८. स्खलितं न हि रिरंसोरलं, चपमास्कन्दति मरमनां जन ।
१९ आशा बलवती राजन्, शस्त्रो जेष्यति पाण्डवान् ।
२ स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च ।

(९) अनुवादार्थ-गद्य-संग्रह (२ पृष्ठ) ३२५-३४४

(१०) सुभाषित मुक्तावली ३४५ ३७६

प्रमुख १७ शीर्षक :—१ भारतप्रशंसा २ अध्यात्म ३ अर्थ, ४ काम, ५ जगत्-स्वरूप, ६ चातुर्वर्ण्य, ७ जीवन ८ आरोग्य, ९ राजधर्मादि, १० आचार ११ विद्या १२ विचारात्मक, १३ मनोभाव, १४ व्यवहार, १५ पुरुष-स्त्री-स्वभावादि १६ कवि काव्य १७ विविध।

(११) पारिभाषिक-शब्दकोश ३७७-३८६

व्याकरण के अनुपयोगी ११० पारिभाषिक शब्दों का विवरण।

(१२) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष ३८७-४१४

(१३) विषयानुक्रमणिका ४१५ ४१६

भूमिका

डा० कपिलदेव द्विवेदी ने प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी का निर्माण करके उस काम की पूर्ति की है जो रचनानुवादकौमुदी से आरम्भ हुआ था। मैं स्वयं संस्कृत व्याकरण और साहित्य का इतना ज्ञान नहीं रखता कि पुस्तक के गुण-दोषों की यथार्थ समीक्षा कर सकूँ। परन्तु उसका स्वरूप ऐसा है जिससे मुझको यह प्रतीत होता है कि यह उन लोगों को निश्चय ही उपयोगी प्रतीत होगी जिनके लिए उसकी रचना हुई है। मैं संस्कृत ग्रंथों को पढ़ता रहता हूँ। कभी-कभी संस्कृत में कुछ लिखने का भी प्रयास करता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि इस पुस्तक से मेरे जैसे व्यक्ति को सहायता मिलेगी और कई सही सूत्रों से ज्ञान हो जायेगा। यों तो संस्कृत के प्रामाणिक व्याकरणों का स्थान दूसरी पुस्तकें नहीं ले सकतीं, फिर भी जिन लोगों को किन्हीं कारणों से उनके अध्ययन का अवसर नहीं मिला है उनके लिए प्रौढ रचनानुवादकौमुदी जैसी पुस्तकें वस्तुतः बहुमूल्य हैं।

नैनीताल,
जुलाई ७, १९६०।

सम्पूर्णानन्द

आत्म निवेदन

(१) पुस्तक-लेखन का उद्देश्य—यह पुस्तक कतिपय विशेष उद्देश्यों को लक्ष्य में रखकर लिखी गई है। उनमें से विशेष उल्लेखनीय ये हैं:—(क) संस्कृत के प्रौढ विद्यार्थियों को प्रौढ संस्कृत सिखाना। (ख) अति सरल और सुबोध ढंग से अनुवाद और निबन्ध सिखाना। (ग) ६ मास में प्रौढ संस्कृत लिखने और बोलने का अभ्यास कराना। (घ) अनुवाद के द्वारा सम्पूर्ण व्याकरण सिखाना। (ङ) संस्कृत के मुहावरों का वाक्य-रचना के द्वारा प्रयोग सिखाना। (च) प्रौढ संस्कृत-रचना के लिए उपयोगी समस्त व्याकरण का अभ्यास कराना। (छ) इस पुस्तक के प्रथम दो भाग प्रारम्भिक छात्रों के लिए हैं, यह प्रौढ विद्यार्थियों के लिए है। अतः यह उपयुक्त है कि इस पुस्तक का अभ्यास करने से पूर्व छात्र 'रचनानुवादकौमुदी' का अवश्य अभ्यास कर लें।

(२) पुस्तक की शैली—यह पुस्तक कतिपय नवीनतम विशेषताओं के साथ प्रस्तुत की गई है। (क) इंग्लिश्, जर्मन, फ्रेंच और रूसी आदि भाषाओं में अपनाई गई वैज्ञानिक पद्धति इस पुस्तक में अपनाई गई है। (ख) प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द तथा कुछ व्याकरण के नियम दिए गए हैं। (ग) शब्दकोश और व्याकरण से सम्बद्ध सभी मुहावरे प्रत्येक अभ्यास में सिखाए गए हैं।

(३) अभ्यास—इस पुस्तक में ६ अभ्यास हैं। प्रत्येक अभ्यास दो पृष्ठों में है। बाईं ओर शब्दकोष और व्याकरण है, दाईं ओर संस्कृत में अनुवादार्थ गद्य तथा संकेत हैं।

(४) शब्दकोष—(क) प्रत्येक अभ्यास में २५ नये शब्द हैं। शब्दकोष में ४८ वर्ग भी दिए गए हैं। प्रयत्न किया गया है कि सभी उपयोगी शब्दों का संग्रह हो। अमरकोष के प्रायः सभी उपयोगी शब्द विभिन्न वर्गों में दिए गए हैं। यह भी ध्यान रखा गया है कि प्रौढ रचना को ध्यान में रखते हुए उत्तर संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त शब्दों को विशेष रूप से अपनाया जाए। प्रत्येक वर्ग में उस वर्ग से सम्बद्ध सभी उपयोगी शब्द दिए गए हैं। (ख) यह भी प्रयत्न किया गया है कि आधुनिक प्रचलित शब्दों और भावों के लिए भी उपयोगी संस्कृत शब्द दिए जाएँ। इसके लिए दो बातें सुलक्षतया ध्यान में रखी गई हैं—१. जिन भावों के लिए प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में कोई शब्द मिल सकता है, वहाँ उन संस्कृत-शब्दों को अपनाया गया है। जो प्राचीन संस्कृत शब्द नवीन अर्थों का बोध करा सकते हैं, उनका नवीन अर्थों में प्रयोग किया गया है। २. जिन शब्दों के लिए संस्कृत में प्राचीन शब्द नहीं हैं, उनके लिए नए शब्द बनाए गए हैं। कहीं पर ध्वन्यनुकरण के आधार पर और कहीं पर भावानुकरण के आधार पर। जैसे—मिष्टान्नवर्ग और पानादिवर्ग में सभी मिठाइयों, नमकीन, चाय, टोस्ट और पेस्ट्री आदि के लिए शब्द हैं। नवशब्द-निर्माण वाले स्थलों पर अपने विवेक के अनुसार काम किया गया है। ऐसे स्थलों पर मतभेद सम्भव है। जो विद्वान् नवीन भावों के लिए अधिक

उपयुक्त शब्दों का सुझाव देंगे, उनके सुझावों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। (ग) शब्दकोष को चार भागों में विभक्त किया गया है। इसके लिए इन संकेतों को स्मरण कर लें। शब्दकोष में (क) का अर्थ है संज्ञा या सर्वनाम शब्द। (ख) का अर्थ है धातु या क्रिया शब्द। (ग) = अव्यय। (घ) = विशेषण। (क) भाग में दिए अधिकांश शब्द राम, रमा या गृह के तुल्य चलते हैं। शब्दों के स्वरूप से इस बात का बोध हो जाता है। जहाँ पर सन्देह हो वहाँ पर पुस्तक के अन्त में दिए हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष से सहायता लें। वहाँ पर लिंग-निर्देश विशेष रूप से किया गया है। (ख) भाग में दी गई धातुओं के गण और पद के विषय में जहाँ पर सन्देह हो वहाँ पर धातुरूप-कोष में दिए हुए धातु के विवरण से सन्देह का निराकरण करें। (ग) भाग में दिए हुए शब्द अव्यय हैं, इनके रूप नहीं चलते हैं। (घ) भाग में दिए शब्द विशेषण हैं, इनके लिंग आदि विशेष्य के तुल्य होंगे। विशेषण-शब्द तीनों लिंगों में आते हैं। (च) शब्दकोष में यह भी ध्यान रखा गया है कि जिस शब्द या धातु का प्रयोग उस अभ्यास में सिखाया गया है उस प्रकार के अन्य शब्दों या धातुओं का भी अभ्यास उसी पाठ में कराया जाए। इसके लिए दो प्रकार अपनाए गए हैं। १ उस प्रकार के शब्द या धातुएँ शब्दकोष में दी गई हैं। २. उस प्रकार के शब्दों या धातुओं का प्रयोग उसी पाठ के 'संस्कृत बनाओ' वाले अंश में सिखाया गया है। कोष में ऐसे शब्दों का संकेत कर दिया गया है। (छ) शब्दकोष के विषय में इन संकेतों का उपयोग किया गया है। १ 'वत्' अर्थात् इसके तुल्य रूप चलेंगे। जैसे—रामवत्, राम के तुल्य रूप चलेंगे। भवतिवत्, भू धातु के तुल्य रूप चलेंगे। २.—डैश वहाँ से लेकर यहाँ तक के शब्द या धातु। ४ >अर्थात् 'का रूप बनता है'। भू> भवति अर्थात् भू का भवति रूप बनता है। (ज) शब्दकोष में शब्द विविध वर्गों के अनुसार रखे गए हैं। प्रयत्न किया गया है कि उस वर्ग से सम्बद्ध शब्द उसी अभ्यास में दिए जाएँ। अतः प्रत्येक वर्गों से सम्बद्ध शब्दों को उसी अभ्यास में देखें। प्रत्येक अभ्यास के शब्दकोष में (क) (ख) आदि के बाद निर्देश कर दिया गया है कि (क) या (ख) आदि में कितने शब्द दिए गए हैं। (झ) प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द हैं। प्रत्येक अभ्यास के प्रारम्भ में निर्देश किया गया है कि अबतक कितने शब्द पढ़ चुके हैं। १० अभ्यासों में १५ शब्दों का अभ्यास कराया गया है। अर्थात् इतने ही नए शब्दों और मुहावरों का प्रयोग 'संकेत' में सिखाया गया है। इस प्रकार अर्थात् १ हजार शब्दों का ज्ञान विद्यार्थी को हो जाता है। शब्दकोष के शब्दों का वर्गीकरण इस प्रकार से है —

(क) अर्थात् संज्ञा या सर्वनाम शब्द	११३५
(ख) अर्थात् धातु या क्रिया शब्द	२१५
(ग) अर्थात् अव्यय शब्द	६०
(घ) अर्थात् विशेषण शब्द	८१
पठित एवं अभ्यस्त शब्दों का योग	१५०० (शब्दकोश)

(५) व्याकरण—(क) प्रत्येक अभ्यास में कुछ शब्दों और धातुओं का प्रयोग सिखाया गया है। अतः आवश्यक है कि उन शब्दों और धातुओं को प्रत्येक अभ्यास में अवश्य स्मरण कर लें। (ख) सम्पूर्ण संस्कृत व्याकरण को केवल १ नियमों में समाप्त किया गया है। इन १ ० नियमों को विषयों के अनुसार ६ अभ्यासों में बाँटा गया है। प्रत्येक अभ्यासमें कुछ नियमों का अभ्यास कराया गया है। इन नियमों को ठीक स्मरण कर लें। इनको ठीक स्मरण कर लेने पर ही संस्कृत में अनुवाद शुद्ध एवं सरलता से हो सकेगा। (ग) नियमों के साथ पाणिनि के प्रामाणिक सूत्र भी कोष्ठ में दिए गए हैं। (घ) यह भी प्रयत्न किया गया है कि छिटने, काले, आप्टे आदि विद्वानों के द्वारा निर्दिष्ट नियम या विवरण भी न छूटने पावें। ऐसे नियमों या विवरणों के साथ पाणिनि के नियमों का भी संकेत कर दिया गया है। (ङ) इस पुस्तक में यह भी प्रयत्न किया गया है कि संस्कृत व्याकरण के सभी उपयोगी एवं प्रचलित नियमों का संग्रह हो। जो नियम अप्रचलित एवं विशेष उपयोगी नहीं हैं, वे छोड़ दिए गए हैं।

(६) अनुवाद—(क) शब्दकोष में दिए शब्दों और व्याकरण के नियमों से सम्बद्ध वाक्य अनुवादार्थ दिए गए हैं। (ख) प्रत्येक पाठ में जिन शब्दों और धातुओं का अभ्यास कराया गया है उनसे सम्बद्ध वाक्य तथा उनसे सम्बद्ध मुहावरे भी उसी अभ्यास में दिए गए हैं। (ग) कठिन वाक्य और मुहावरेवाले वाक्य काले टाइप में छपे हैं। उनकी संस्कृत नीचे 'संकेत' वाले अंश में दी गई है। वहाँ देखें। कुछ विशेष मुहावरे सिखाने के लिए कतिपय सरल वाक्य भी काले टाइप में दिए गए हैं। उन सभी मुहावरों को सावधानी से स्मरण कर लें। (घ) व्याकरण के नियमों के जो उदाहरण संस्कृत में दिए हैं, उनका हिन्दी-रूप अनुवादार्थ दिया गया है। ऐसे वाक्यों की संस्कृत नियमों के उदाहरणों में देखें। इनकी संस्कृत 'संकेत' में नहीं दी है। (ङ) प्रत्येक अभ्यास में प्रयुक्त शब्दों और धातुओं के तुरन्त बाद जिन शब्दों और धातुओं के रूप चलते हैं, उनका भी उसी पाठ में अभ्यास कराया गया है। कोष्ठ में ऐसे शब्द या धातुएँ दी गई हैं।

(७) संकेत—(क) 'संस्कृत बनाओ' वाले अंश में जितना अंश काले टाइप में छपा है, उसकी संस्कृत 'संकेत' में उसी क्रम और उन्हीं वाक्य-संख्याओं के साथ दी गई है। (ख) संस्कृत में प्रचलित मुहावरे इस अंश में विशेष रूप से दिए गए हैं। (ग) कठिन शब्दों की संस्कृत, सूक्तियों, व्याकरण के विशिष्ट प्रयोग तथा अन्य उपयोगी संकेत इस अंश में दिए गए हैं।

(८) परिशिष्ट—पुस्तक के अन्त में अत्यन्त उपयोगी ११ परिशिष्ट दिए गए हैं। इनका विशेष विवरण विषय-सूची तथा विषयानुक्रमणिका में देखें। यहाँ पर कुछ विशेष उल्लेखनीय बातों का ही निर्देश किया गया है।

(९) शब्दरूप-संग्रह—संस्कृत में विशेष प्रचलित सभी शब्दों के रूप इस परिशिष्ट में दिए गए हैं। पुंलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग के शब्द प्रत्येक लिंग में अन्त्याक्षर के क्रम से दिए गए हैं। अन्य शब्दों के रूप लिंग तथा अन्त्याक्षर को देखकर इन शब्दों के तुल्य चलावें।

(१०) संख्याएँ—१ से १ ० तक की संस्कृत में गिनती तथा महासंख्या तक के शब्द इस परिशिष्ट में दिए गए हैं।

(११) धातुरूप-संग्रह—संस्कृत में अधिक प्रयुक्त १ धातुओं के दसों लकारों के रूप इस परिशिष्ट में दिए गए हैं। अन्य धातुओं के रूप गण तथा पद को देखकर इनके तुल्य चलावें।

(१२) धातुरूप-कोष—इस परिशिष्ट में संस्कृत में विशेष रूप से प्रयुक्त ४९५ धातुओं के दसों लकारों के प्रारम्भिक रूप दिए गए हैं। साथ में उनके अर्थ, गण और पद का भी निर्देश है। सभी धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

(१३) प्रत्यय-विचार—१५ विशेष कृत्-प्रत्ययों से बनने वाले सभी विशेष रूप इस परिशिष्ट में अकारादि-क्रम से दिए गए हैं।

(१४) सन्धि विचार—इस परिशिष्ट में प्रयोग में आने वाले सभी सन्धि नियम ७५ नियमों में दिए गए हैं।

(१५) पत्रादि-लेखन-प्रकार—इस परिशिष्ट में संस्कृत में पत्र लिखना, प्रार्थना-पत्र देना निमन्त्रण देना, परिपत्र-सूचना और पुरस्कार-वितरण आदि का प्रकार बताया गया है।

(१६) निबन्ध माला—इसमें उदाहरण के रूप में २ अत्युपयोगी विषयों पर संस्कृत में निबन्ध दिए गए हैं। इसमें प्रयत्न किया गया है कि भाषा न अतिकठिन हो और न अति सरल। भाषा में प्रौढ़ता के साथ ही प्रवाह और मुहावरे आदि भी हों। ग्रामीण और साहित्यिक विषयों पर उदाहरणों की संख्या अधिक दी गई है। इसका कारण यह है कि छात्र स्वयोग्यतानुसार उन उदाहरणों की व्याख्या आदि करें। अतः इन निबन्धों के आधार पर संस्कृत में अन्य निबन्ध स्वयं लिखने का अभ्यास करें।

(१७) अनुवादार्थ गद्य-संग्रह—इस परिशिष्ट में ४ सन्दर्भ अनुवादार्थ दिए गए हैं। इनमें से अधिकांश प्रौढ़ संस्कृत-ग्रन्थों से लिए गए हैं और उनका हिन्दी रूपान्तर अनुवादार्थ दिया गया है। 'संकेत' में मुहावरे आदि भी मूल रूप में दिए गए हैं। ऐसे सन्दर्भ भी अनुवादार्थ दिए गए हैं, जिनके अभ्यास से संस्कृत साहित्य और नाट्यशास्त्र आदि का ज्ञान हो।

(१८) सुभाषित-मुक्तावली—इसमें १४६७ सुभाषित १७ प्रमुख शीर्षकों तथा ८८ उपशीर्षकों में दिए गए हैं। सुभाषित अकारादि-क्रम से दिए गए हैं। यथा सम्भव उनके मूल आकर-ग्रन्थों का भी संकेत किया गया है। ये सुभाषित निबन्ध, व्याख्यान आदि के लिए अत्युपयोगी हैं।

(१९) पारिभाषिक शब्दकोश—इसमें ११५ व्याकरण के पारिभाषिक शब्द अकारादि-क्रम से पूर्ण विवरण के साथ दिए गए हैं। साथ में पाणिनि के सूत्रादि भी देए गए हैं। व्याकरण ठीक समझने के लिए इनका ज्ञान अनिवार्य है।

(२०) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष—इस पुस्तक में प्रयुक्त सभी शब्दों का इसमें संग्रह किया गया है। अकारादि-क्रम से हिन्दी-शब्द दिए गए हैं। इनके आगे उनकी संस्कृत दी गई है। शब्दों के आगे लिंग-निर्देश आदि भी किया है।

(२१) विषयानुक्रमणिका—पुस्तक के वर्णित सभी विषयों का इस परिशिष्ट में अकारादि-क्रम से उल्लेख है। प्रत्येक विषय के आगे पृष्ठ-संख्या के द्वारा निर्देश किया गया है कि यह विषय अमुक पृष्ठ पर मिलेगा।

(२२) मुद्रण—मुद्रण में ह्रस्व और दीर्घ ऋ में यह अन्तर रक्खा गया है। इसे स्मरण रक्खें। ऋ = ह्रस्व ऋ। ॠ = दीर्घ ॠ।

पुस्तक की विशेषताएँ

(१) इंग्लिश्, जर्मन फ्रेंच और रूसी भाषाओं में अपनाई गई नवीनतम वैज्ञानिक पद्धति इस पुस्तक में अपनाई गई है।

(२) प्रौढ़ संस्कृत-ज्ञान के लिए उपयुक्त समस्त व्याकरण अनुवाद और प्रौढ़ वाक्य-रचना के द्वारा अति सरल और सुबोध रूप में समझाया गया है।

(३) केवल ६० अभ्यासों में १ नियमों के द्वारा समस्त आवश्यक व्याकरण समाप्त किया गया है। नियमों के साथ पाणिनि के सूत्र भी दिए गए हैं।

(४) ४८ वर्गों और १२ विविध शब्द-संग्रहों के द्वारा सभी उपयोगी और आवश्यक शब्दों का संग्रह किया गया है। प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द हैं। १५ उपयोगी शब्दों और धातुओं का प्रयोग सिखाया गया है।

(५) लगभग एक सहस्र संस्कृत की लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग अनुवाद के द्वारा सिखाया गया है।

(६) परिशिष्ट में लगभग १५ सुभाषितों की 'सुभाषित-सुधावली' विभिन्न ८८ विषयों पर अकारादि-क्रम से दी गई है।

(७) संस्कृत साहित्य के उच्च कोटि के ग्रन्थों से अनुवादार्थ वाक्यों का संचयन किया गया है। इनके लिए उपयुक्त संकेत भी दिए गए हैं।

(८) सभी प्रचलित शब्दों के रूपों का संग्रह किया गया है।

(९) १० विशेष प्रचलित धातुओं के दसों लकारों के रूपों का संकलन 'धातुरूप-संग्रह' में किया गया है। 'धातुरूप-कोष' में अत्युपयोगी ४९५ धातुओं के दसों लकारों के प्रारम्भिक रूप दिए गए हैं। साथ में उनके अर्थ, गण और पद का भी निर्देश है। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

(१) सभी उपयोगी व्याकरण का संग्रह किया गया है। जैसे—सन्धि विचार, कारक-विचार, समास विचार, क्रिया विचार, इकारान्त-प्रकरण-विचार, व्यञ्जन-प्रकरण-विचार, स्त्री-प्रकरण-विचार आदि।

(११) व्याकरण-ज्ञान के लिए अनिवार्य १६५ शब्दों का एक 'पारिभाषिक शब्दकोष' अकारादि-क्रम से परिशिष्ट में दिया गया है।

(१२) अत्युपयोगी २ विषयों पर प्रौढ संस्कृत में निबन्ध दिए गए हैं।

(१३) प्रत्येक अभ्यास में व्याकरण के कुछ विशेष नियमों का अभ्यास कराया गया है और अनुवाद्यार्थ अत्युपयोगी वाक्य दिए गए हैं।

(१४) परिशिष्ट के अन्त में वृहत् हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष भी दिया गया है।

(१५) पुस्तक के अन्त में विस्तृत विषयानुक्रमणिका भी दी गई है।

कृतज्ञता-प्रकाशन

सर्वप्रथम परम सम्माननीय राष्ट्रपति डा राजेन्द्रप्रसादजी का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने पुस्तक की मूलप्रति को देखने तथा पुस्तक को समर्पण करने की स्वीकृति प्रदान करके असीम अनुकम्पा की है। माननीय श्री डा सम्पूर्णानन्दजी, मुख्य-मन्त्री, उत्तर प्रदेश ने पुस्तक की भूमिका लिखकर जो मुझे गौरवान्वित किया है, तदर्थ उनका हार्दिक कृतज्ञ हूँ। निम्नलिखित सज्जनों ने पुस्तक-लेखन में कतिपय अत्यन्त उपयोगी परामर्श और सुझाव दिए हैं। तदर्थ इनका कृतज्ञ हूँ। सर्वश्री डा ब कि बलदेव (नैनीताल), प शेषोमप्रसाद व्याकरणाचार्य (गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर), स्व० अमृतानन्द सरस्वती (एमगढ़, नैनीताल), डा हरिदत्त शास्त्री तर्कतीर्थ (कानपुर)। श्रीमती शान्तिदेवी त्रिवेदी और मेरे विद्यार्थी हरगोविन्द जोशी ने सामग्री-संकलन और मुद्रण-शोधन में विशेष सहयोग दिया है। तदर्थ उन्हें धन्यवाद है। कि भारवी, भारतेन्दु और भर्तृहरि ने कार्य को निर्विघ्न समाप्त होने में पर्याप्त बल उत्पन्न किया है, तदर्थ उन्हें आशीर्वाद है। प्रकाशक श्री पुरुषोत्तमदास मोदी और मुद्रक श्री ओमप्रकाश कपूर ने पुस्तक को सुन्दर, रोचक और शीघ्र छापने में जो तत्परता दिखाई है, तदर्थ उन्हें विशेष धन्यवाद है।

अन्त में विद्वज्जन से निवेदन है कि वे पुस्तक के विषय में जो भी संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन आदि का विचार भेजेंगे, वह बहुत कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार किया जायगा।

गवर्नमेण्ट कालेज, नैनीताल
ता० १-६-५ ई

कपिलदेव त्रिवेदी

आवश्यक-निर्देश

१ 'संस्कृत' शब्द का अर्थ है—शुद्ध, परिमार्जित, परिष्कृत। अतः संस्कृत भाषा का अर्थ है—शुद्ध एवं परिमार्जित भाषा।

२ निम्नलिखित १४ माहेश्वर सूत्र हैं। इनमें पूरी वर्णमाला इस प्रकार दी हुई है—क्रमशः स्वर अन्तस्थ, वर्ग के पंचम, चतुर्थ तृतीय, द्वितीय प्रथम वर्ण, ऊष्म।

१ अइउण्। २ ऋऌक्। ३. एओङ्। ४ ऐऔच्। ५ हयवरट्। ६ लण्। ७ ञमङणनम्। ८ झभञ्। ९. घढधष्। १० जबगडदश्। ११ खफछठथचटतव्। १२ कपय। १३ शषसर्। १४ हल्।

३ पाणिनि के सूत्रों में प्रत्याहारों का प्रयोग है। प्रत्याहार का अर्थ है संक्षेप में कहना। उपर्युक्त सूत्रों से प्रत्याहार बनाने के लिए ये नियम हैं—(क) प्रत्याहार बनाने के लिए पहला अक्षर इस में कहीं से लें और दूसरा अक्षर सूत्रोंके अन्तिम अक्षरों में हूँढें। (ख) सूत्रों के अन्तिम अक्षर (ण्, क् आदि) प्रत्याहार में नहीं गिने जाते हैं। ये प्रत्याहार बनाने के साधन हैं। जैसे—अच् प्रत्याहार—प्रथम अ से लेकर इच् के च् तक। इच्—इ उ ऋ ऌ। अच्—अ से औ तक पूरे स्वर। हल्—सारे व्यञ्जन।

४ संस्कृत में ३ वचन होते हैं—एकवचन (एक) द्विवचन (द्वि) बहुवचन (बहु)। तीन पुरुष होते हैं—प्रथम या अन्य पुरुष (प्र पु), मध्यम पुरुष (म पु), उत्तम पुरुष (उ पु)। संबोधन को लेकर आठ कारक (विभक्तियाँ) होते हैं। इनके नाम और चिह्न ये हैं :—

विभक्ति	कारक	चिह्न	विभक्ति	कारक	चिह्न
(१) प्रथमा (प्र)	कर्ता	– ने	(५) पंचमी (पं)	अपादान	से
(२) द्वितीया (द्वि)	कर्म	को	(६) षष्ठी (ष)	सम्बन्ध	का के की
(३) तृतीया (तृ)	करण	से, द्वारा	(७) सप्तमी (स)	अधिकरण	में पर
(४) चतुर्थी (च)	सम्प्रदान	के लिए	(८) संबोधन (सं)	संबोधन है, अरे हो	

५. संस्कृत में क्रिया के १ आकार (प्रक्रियाएँ) होते हैं। इनके नाम तथा अर्थ ये हैं—(१) वर्तमान (वर्तमान काल), (२) लोट् (आज्ञा अर्थ) (३) लङ् (भूतकाल), (४) विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अर्थ), (५) लृट् (भविष्यत् काल) (६) लिट् (परोक्ष भूत), (७) लुट् (अनद्यतन भविष्यत्), (८) आशीर्लिङ् (आशीर्वाद), (९) लुङ् (सामान्य भूत) (१०) लृङ् (हेतु हेतुमद् भविष्यत्)।

६ धातुओं के रूप तीन प्रकार के चलते हैं अतः धातुएँ तीन प्रकार की हैं—परस्मैपदी (प, ति वः अन्ति)। आत्मनेपदी (आ, ते एते अन्ते)। उभयपदी (उ दोनों प्रकार के रूप)।

७ संस्कृत में १ गण (धातुओं के विभाग) होते हैं। प्रत्येक धातु किसी एक गण में आती है। इनके लिए कोष्ठगत संकेत हैं। भ्वादिगण (१), अदादि (२) जुहोत्यादि (३), दिवादि (४) स्वादि (५) तुदादि (६) रुधादि (७) तनादि (८) क्रयादि (९), चुरादि (१०)।

८ शब्दकोश में इन संकेतों का प्रयोग किया गया है। इन्हें स्मरण रखें। (क) = संज्ञा या सर्वनाम शब्द। (ख) = धातु या क्रिया-शब्द। (ग) = अव्यय या क्रिया विशेषण। (घ) = विशेषण शब्द।

शब्दकोष-२५] अभ्यास १ (व्याकरण)

(क) रामः (राम), पाटोरावः (उत्थान-पतन), सदाचारः (सदाचारी) दुराचारः (दुराचारी) वैधेयः (मूर्ख) बुभुक्षितः (भूखा), भक्तः (पकवान)। (ख)। (ख) भू (होना), अनुभू (अनुभव करना), प्रभू (१ निकलना, २ समर्थ होना, ३ अधिकार होना, ४ बराबर होना, ५ समाना) पराभू (हराना), परिभू (तिरस्कृत करना), अभिभू (हराना, दबाना), सम्भू (उत्पन्न होना) उद्भू (पैदा होना), आविर्भू (प्रकट होना), तिरोभू (छिप जाना) प्रादुर्भू (जन्म लेना), अर्ह् (योग्य होना), परिहस् (हँसी करना) प्रलप् (बकवाद करना)। (१४)। (ग) परमार्थतः (सच, ठीक), नाम (निश्चयसे)। (२)। (घ) मधुरम् (मीठा), तीव्रम् (तेज)। (२)

व्याकरण (राम, कृष्ण, प्रथमा, द्वितीया)

१ राम शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्दरूप संख्या १)

२ भू धातु तथा हस् धातु के रूप स्मरण करो। (देखो धातुरूप सं १, २)

३ भू धातु के उपसर्ग लगाने से हुए विशेष अर्थों को स्मरण करो और उनका प्रयोग करो।

नियम १—कर्तृवाच्य में कर्ता (व्यक्तिनाम, वस्तुनाम आदि) में प्रथमा होती है और कर्मवाच्य में कर्म में प्रथमा होती है। जैसे—रामः पठति। बालो भाषते। रामेण पाठः पठ्यते।

नियम २—किसी को सम्बोधन करने में सम्बोधन विभक्ति होती है। जैसे—हे राम, हे कृष्ण।

नियम ३—(कर्तुरीप्सिततमं कर्म) कर्ता जिसको (व्यक्ति वस्तु या क्रिया को) विशेष रूप से चाहता है, उसे कर्म कहते हैं।

नियम ४—(कर्मणि द्वितीया) कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—स पुस्तकं पठति। स रामं पश्यति। ते प्रश्नं पृच्छन्ति।

नियम ५—(अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि) अभितः, परितः, समया, निकषा, हा और प्रति के साथ द्वितीया होती है। जैसे—नृपम् अभितः परितः वा। ग्रामं समया निकषा वा (गाँव के समीप)। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्।

नियम ६—(उभयसर्वतसोः कार्या) उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः, अध्यधि के साथ द्वितीया होती है। जैसे—कृष्णमुभयतो गोपाः। नृपं सर्वतो जनाः। धिक् नास्तिकम्।

नियम ७—गति (चलना, हिलना जाना) अर्थ की धातुओं के साथ द्वितीया होती है। तात्पर्य का आलंकारिक प्रयोग होगा तो भी द्वितीया होगी। जैसे—ग्रहं गच्छति। वनं विचरति। सृष्टिं यजी। मम स्मृतिं पाठः। उपाध्यायं आगम। निद्रां गतो।

नियम ८—अकर्मक धातुएँ उपसर्ग पहले लगने से प्रायः अर्थानुसार सकर्मक हो जाती हैं, उनके साथ द्वितीया होगी। जैसे—हर्षमनुभवति। स एकम् अभिभवति। स शत्रुं परिभवति पराभवति वा। वृक्षमारोहति। दिवमुत्पतति। स्वामिनमिच्छमनुवर्तते।

नियम ९—स्मृ धातु के साथ साधारण स्मरण में द्वितीया होती है। रोषपूर्वक स्मरण में षष्ठी होती है। जैसे—स पाठं स्मरति (पाठ याद करता है)। पापं स्मृत्वा स्मरति।

अभ्यास १

१ संस्कृत बनाओ—(क) (राम, शब्द) १ राम मीठे स्वर से पढ़ता है। २ देखता तेरा चरित्र लिख रहे हैं। ३ होनहार होकर ही रहती है। ४ जीवन में उत्थान और पतन सबके ही होते हैं। ५ वह तिल का ताड़ बनाता है। ६ उसे पुरस्कार मिलना चाहिए। ७ वह सदाचारी है, अतः उसका सर्वत्र सम्मान होना चाहिए। ८ वह दुराचारी है, अतः आदर के योग्य नहीं है। ९ दुष्ट व्यक्ति दूसरों के सरसों के बराबर भी छोटे दोषों को देखता है और अपने बड़े दोषों को देखता हुआ भी नहीं देखता है। १ मैं तुमसे हँसी नहीं कर रहा हूँ ठीक कह रहा हूँ। ११ मनुष्य का भाग्य रथ-चक्र के सदृश कभी नीचे आता है और कभी ऊपर। १२ वह मूर्ख बकवाद करता है। (ख) (भू धातु) १ क्रोध से मोह होता है (भू)। २ भाग्य से ही धन मिलता है और नष्ट होता है। ३ ऐसा कैसे हो सकता है? ४ चाहे जो हो मैं यह काम अवश्य करूँगा। ५ उस बालक का क्या हाल हुआ? ६ यदि तुम्हें सन्देह हो तो पिताजी से पूछना। ७ मूर्ख, यदि महार करेगा तो जीवित नहीं बचेगा। ८. वह अब आपके पैर धोने का काम देगा। ९. जो विद्या पढ़ता है, वह हर्ष का अनुभव करता है। १ सज्जन सुख का अनुभव करता है। ११ कृषक अपने ऊपर तीक्ष्ण गर्मी को सहन करता है। १२ तुम अपने किए हुए पुण्य कर्मों का फल भोग रहे हो (अनुभू)। ११ क्रोध से द्वेष होता है (प्रभू)। १४ गंगा हिमालय से निकलती है (प्रभू)। १५ भाग्य बलवान् है। १६ आप के अतिरिक्त और कौन जान सकता है। (ग) (द्वितीया) १ उसने प्रश्न पूछा। २ नदी के दोनों ओर खेत (क्षेत्राणि) हैं। ३ नगर के चारों ओर वन है। ४ नगर के पास ही एक सुन्दर उपवन है। ५ भूखे को कुछ अच्छा नहीं लगता है। ६ संसार के ऊपर, अन्दर और नीचे ईश्वर है। ७ सिंह वन में घूमता है (विचर्)। ८ यह बात मेरी समझ में आई। ९. वह पेड़ पर चढ़ता है। १ छात्र पाठ याद कर रहा है। ११ उसका नाम राम रक्खा गया। १२. उसे नींद आ गई।

संकेत—(क) १ मधुरम्। २. स्वचरित्रम्। ३ अविलम्बात् हानयोऽपि भवन्ति सर्वत्र। ४ पतनोत्थानाः। ५. तिलं तालं करोति। ६. पुरस्कारमर्हति। ७. सम्मानमर्हति। ८. अनादरं चार्हति। ९. अन्यः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति। आत्मनो बिल्वमात्राण्यपि पश्यन्नपि न पश्यति। १ चाहं परिहसामि परमार्थतः। ११ नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण। १२ अकथनेव वदिसि। (ख) २. मात्सर्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति विनश्यन्ति। ३ कथमेवं भवेत्तात। ४ करिष्यामि तत्त्वत्तु। ५. चित्रमवत्। ६. यदि ते संशयो भवेत्। ७ प्रहरिष्यति—न भविष्यति। ८. हरं ते चारित्रं भविष्यति। ९. हर्षमनुभवति। ११ अनुभवन्ति हि मूर्खा फलमशुभानामकृत्यानाम्। १५ प्रभवति चित्रम्। १६. क्रोधस्तो हानयोऽपि बन्धु प्रभवन्ति।

शब्दकोष-२५ + २५८५] अभ्यास २ (व्याकरण)

(क) पञ्चम् (पर) नियोगः (निर्धारित कार्य), शिक्षापद्धः (शिक्षा), अर्थप्रतिपत्तिः (अर्थज्ञान) (४)। (ख) अनुज्ञा (करना), अधिक्स् (रहना), उपक्स् (उपवास करना, रहना), दण्ड (दण्ड देना), अवचि (चुनना), मुष् (चुराना) (६)। (ग) तावत् (तो अब), मुहूर्तम् (थोड़ी देर), जोषम् (चुप), अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (बिना, बारे में), किं नु (क्या), अनु (बाद में, पटिया, किनारे), उप (समीप, पटिया), अति (बढ़कर), अभि (समीप), दिवा (दिन में), नक्तम् (रात में) (१२)। (घ) वाचंयमः (मौन), अजाल्पम् (अनर्थ), सकुसुमाहरणम् (फूल के बिस्तर से युक्त) (३)।

व्याकरण (पद, शब्द, द्वितीया)

१ पञ्च शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्दरूप संख्या ६१)

२ पद् तथा एध् धातु के रूप स्मरण करो। (देखो धातु १, ४)

नियम १०—(अन्तरान्तरेणयुक्ते) अन्तरा और अन्तरेण के साथ द्वितीया होती है। बिना के साथ भी द्वितीया होती है। गंगां यमुनां चान्तरा प्रयागः। ज्ञानमन्तरेण न मुक्तिः। मत्तस्तमन्तरेण (आपके बारे में) कीदृशोऽस्या अनुरागः। अर्थं बिना न सिद्धिः।

नियम ११—(अधिशीङ्स्थासां कर्म) अधिशी, अधिस्था और अध्यास् धातु के साथ आधार में द्वितीया होती है। जैसे—आसनमधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा।

नियम १२—(अभिनिविशश्च) अभिनिविश् धातु के साथ आधार में द्वितीया होती है। जैसे—अभिनिविशते सन्मार्गम् (सन्मार्ग पर चलता है)। परन्तु पापेऽभिनिवेशः भी होता है।

नियम १३—(उपान्वध्याङ्वसः) उप अनु अधि और आ उपसर्ग के साथ वस् धातु होगी तो उसके आधार में द्वितीया होगी, किन्तु उपवास करना अर्थ में सप्तमी होगी। जैसे—हरिः वैकुण्ठम् उपवसति अनुवसति अधिवसति (रहता है)। वने उपवसति (उपवास करता है)।

नियम १४—(कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे) समय और मार्ग की दूरीवाची शब्दों में द्वितीया होती है जब काम निरन्तर हुआ हो। मासं पठति। क्रोशं गच्छति। क्रोशं कुटिला नदी।

नियम १५—इन उपसर्गों के साथ इन अर्थों में द्वितीया होती है—अनु (बाद में, पटिया, किनारे) उप (समीप, पटिया), अति (बढ़कर), अभि (समीप)। जैसे—जनमनु प्रावर्षत्। अनु हरिं सुराः। नदीमनु सेना। उप हरिं सुराः। अति देवान् कृष्णः। मक्षे हरिमभि वर्तते।

नियम १६—(दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुष्कृषां यो गौः सम्पद्यते सा कर्मसंज्ञा) ये धातुएँ द्विकर्मक हैं। इन अर्थोंवाली अन्य धातुएँ भी द्विकर्मक हैं। इनके साथ दो कर्म होते हैं—दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ् वि ना शास् जि, मथ्, मुष्, नी, हृ, कृष्, वह्। जैसे—गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। तण्डुलान् ओदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। अजमवक्षन्ति गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति पलाशानि। माणवकं धर्मं मूके शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। मुद्गं शतानिमि मन्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। अजां ग्रामं नयति, हरति कर्षति वहति वा।

अभ्यास २

संस्कृत बनाओ—(क) (गृह, कोर्) १ जरा रुकिये। २ अरे यह बात बन्द कीजिये। ३ चुप रहो। ४ उस मूर्ख को बकवाद करने दो, तुम स्वयं तो मौन रहो। ५ अपना काम करो। ६ अपने काम पर जाओ। ७ आगे कहिये, वहाँ क्या अनर्थ हो गया। ८ भला या बुरा चाहे जो हो मैं अपने वचन का पालन करूँगा। (ख) (भू) १ मैं कठिन परिश्रम के बिना (बिना, अन्तरेण) सफलता नहीं प्राप्त कर सकता हूँ। २ आपका लोगों पर अधिकार है। ३ यदि अपने आपको सँभाल सकी तो यहाँ से जाऊँगी। ४ यह पहचान उस पहचान से जुड़ सकता है। ५ वह अति प्रसन्नता से फूला नहीं समाया। ६ आँखें या कोयें यह आपका अधिकार है। ७ राजा शत्रु को हराता है (पराभू)। ८ भरत सिंह-शावक को तिरस्कृत कर रहा है (परिभू)। ९ कौन तुझे दबा सकता है (अभिभू)। १ अप जैसे बिरले ही संसार में जन्म लेते हैं (सम्भू)। ११ दरिद्रता से दुःख उत्पन्न होते हैं (उद्भू)। १२ रात्रि में चन्द्रमा निकलता है (आविर्भू)। १३ सुख में सुख उत्पन्न होते हैं (प्रादुर्भू) और दुःख में दुःख। १४ दिन में तारे छिप जाते हैं (तिरोभू) और रात में निकलते हैं (प्रादुर्भू)। १५ यह विचार मेरे मन में आया (प्रादुर्भू)। (ग) (द्वितीया) १ घृतयुक्त भोजन अमृत है प्रिय का मिलन अमृत है, राजसम्मान अमृत है, जाड़े में आग अमृत है। २ द्युलोक और पृथ्वी के बीच में अन्तरिक्ष है। ३ परिश्रम के बिना सुख नहीं है। ४ कर्म जाने बिना प्रकृति की शोभनता नहीं होती। ५ मैं आज विकल्प नहीं गया आचार्य मेरे बारे में क्या सोचेंगे यह चिन्ता मुझे व्याकुल कर रही है। ६ शकुन्तला फूलों के बिस्तरवाली शिला पर बैठी है। ७ राम दुर्गम वन में रहे। ८ बालक पर्यङ्क पर बैठा है (अध्यास्)। ९ राम सन्मार्ग पर चलता है (अभिनिविश्)। १ उसकी पाप में प्रवृत्ति है। ११ राम पंचवटी में बहुत दिन रहे (अधिवस्)। १२ गांधीजी ने अपने आश्रम में २१ दिन का उपवास किया। १३ वह बारह वर्ष गुरुकुल में पढ़ा। १४ वह प्रातः कोसभर घूमने जाता है। १५ पढ़ के बाद वर्षा हुई। १६ सब कवि कालिदास से बढ़िया हैं। १७ गंगा के किनारे हरिद्वार है। १८ सब राजा राम से बढ़िया हैं। १९ कपिल सब मुनियों से अमर हैं। २ राम के पास मक्का है। २१ वह गाय का घृत बुहता है। २२ वह राजा से धन माँगता है। २३ वह चावलों से भात पकाये। २४ राजा ने अपराधी पर सौ रुपया जुर्माना किया। २५ वह बकरी को बाड़े में बन्द करता है।

संकेत :—(क) १. त्वरस्व तावत्। २ मुहूर्तं तत्रभवान्। ३ आस्स्व। ५ अनुष्ठिष्यामी निजोक्तम्। ६ स्वनियोगमनुतिष्ठ कुरु। ७. ततः परं कथय। ८. सुखं वाप्नुयं वा। (ख) १ साध्यं कर्तुं न शक्नोमि। २ प्रभवति भवान् आज्ञायाम्। ३ वशात्मनः प्रभविष्यामि। ४ प्रभवति मही महीप। ५. गुरुः प्रहर्षः प्रभवो भात्मनि। ६. प्रभवति भवान् रुदने मोहे च। ९ प्रभवत्या विरता एव। ११ दरिद्रभवत्। (ग) १. मधुरं क्षीरभोजनवत् घि[illegible] मामन्तरेण, मां वापदे। ७. अध्यास्व। ८ पर्यङ्के। ११ अभ्युवास। १२ उपावस त्रयाणि। १५. अनु। १६. अनु। १७. गंगायाम्। १८ वर। १९. अति सुवीर्। २

शब्दकोष–५ + २५ = ७५] अभ्यास ३ (व्याकरण)

(क) शिक्षा (चोटी), संचिका (कापी), लेखनी (होल्डर), कौमुदी (चाँदनी), प्राघुणिका (अतिथि), आतिथेयः (अतिथि-सत्कारकर्ता), कूर्चम् (दाढ़ी)। (ख) (क) गम् (आना, पाना, प्राप्त होना), आगम् (आना), अनुगम् (पीछे आना), अवगम् (जानना), अधिगम् (प्राप्त करना, जानना), अभ्युपगम् (स्वीकार करना), अभ्यागम् (आना) प्रत्यागम् (लौटकर आना), निगम् (निकलना), संगम् (मिलना) उद्गम् (निकलना उगना), अपगम् (नष्ट होना), उपगम् (पास आना) परागम् (लौटना), प्रत्युद्गम् (स्वागतार्थ आना), समधिगम् (पाना, जानना), ताडि (मारना)। (१७)। (घ) असंस्तुतम् (अपरिचित)। (१)

व्याकरण (रमा, मति, नदी, कर्, तृतीया)

१ रमा, मति, नदी के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४१, ४२, ४१)

२. भू तथा अन्य तत्सम धातुओं के लट् के रूप स्मरण करो।

३ गम् और कर् धातु के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५, ६)

नियम १७—(साधकतमं करणम्) क्रिया की सिद्धि में सहायक को करण कहते हैं।

नियम १८—(कर्तृकरणयोस्तृतीया) करण में तृतीया होती है और कर्मवाच्य या भाववाच्य में कर्ता में। तृतीया मुख्यतः दो अर्थों को बताती है—(१) कर्ता (२) साधन। जैसे—कमण्डलुना जीवति, दण्डेन पचति, बाणेन हन्ति। रामेण गुरुं गम्यते, रामेण पाठः पठितः।

नियम १९—(प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्) प्रकृति आदि शब्दों में तृतीया होती है। ये शब्द साधारणतया क्रिया-विशेषण या क्रिया-विशेषण-वाक्यांश होते हैं। जैसे—प्रकृत्या साधुः। सुखेन जीवति। दुःखेन जीवति। नाम्ना रामोऽयम्। गोत्रेण काश्यपः। सम्प्रतीति।

नियम २०—(अपवर्गे तृतीया) समय और मार्ग की पूर्णताबोधी शब्दों में तृतीया होती है, यदि कार्य की पूर्णता बताई जाए तो। मासेन ग्रन्थोऽधीतः। क्रोशेन पाठोऽधीतः। दशभिर्दिनैरहमेनं ज्ञास्यामि।

नियम २१—(सहयुक्तेऽप्रधाने) सह, साकम्, सार्धम् समय के साथ तृतीया होती है, साथ अर्थ हो तो। पिता सह साकं सार्धं वा पुत्रेण गच्छति। मृगा मृगैः संगममनुव्रजन्ति।

नियम २२—(येनाङ्गविकारः) शरीर के जिस अंग में विकार से विकृत दिखाई पड़े, उसमें तृतीया होती है। नेत्रेण काणः। पादेन खञ्जः। कर्णेन बधिरः। शिरसा खल्वाटः।

नियम २३—(इत्थंभूतलक्षणे) जिस चिह्न से किसी व्यक्ति या वस्तु का बोध होता है, उसमें तृतीया होती है। जटाभिस्तापसः। कूर्चेन पचनः। शिखया द्विजः।

नियम २४—(हेतौ) कारण बोधक शब्दों में तृतीया होती है। अध्ययनेन वसति। पुष्पेण हसो हसिः। अन्नेन धर्मः क्रिया वा भवति। विद्यया यशो जायते।

नियम २५—कर्, हृ, स्तृ में अ या आ युक्त धातु से पहले ही लगेगा, उपसर्ग से पूर्व नहीं। अतः उपसर्गयुक्त धातुओं में कर् आदि में धातु से पहले अ या आ लगाकर उपसर्ग मिलायें। (सन्धिकार्य भी करें)। जैसे—अनुगम्> अनुअगच्छत्, उद्गम्>उदगच्छत्।

शब्दकोष-६७५ + २५ = ७००] अभ्यास २८ (व्याकरण)

(क) मिष्ठान्नम् (मिठाई), कान्दविक (हलवाई), मोदकः (लड्डू), पूपः (पूआ), अपूप (मालपूआ) कुल्फी (कलेजी), अमृती (इमरती) डैमी (बर्फी), पिण्टः (पेठा), कोष्माण्डम् (पेठे की मिठाई), गुल्मपूपिका (गुलगुलाभुन), रसगोल्लः (रसगुल्ला), शर्करापाकः (शक्करपारा), मधुमक्षः (बालूशाही) संघाय (गुझिया), सन्तानिका (मलाई), कूर्चिका (खड़ी), फलाकन्द (फलाकन्द), पर्पटी (पपड़ी), घृतपूरः (घेवर), मधुशीर्ष (खाजा), मिश्राक (मुरब्बा), नाताधः (नताश), मोहनभोगः (मोहनभोग), गजकः (गजक)। (२५)

व्याकरण (भगवत्, धीमत् शब्द रूप् स्वप् धातु, कर्तृवाच्य, पञ्चम)

१ भगवत् और धीमत् के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द २ २१)

२ रूप् और स्वप् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु १४ १५)

नियम ११५—(कर्तृवाच्य) कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, कर्ता के अनुसार ही क्रिया का लिंग, वचन विभक्ति या पुरुष होगा। कर्ता एक होगा तो क्रिया एक द्वि होगा तो द्वि बहु होगा तो बहु०। बालकः पुस्तकानि पठितवान्, बालिकाः पठितवत्यः। कर्तृवाच्य में इन बातों का ध्यान रखते —(१) यदि 'च' लगाकर कर्ता अनेक हों तो तदनुसार क्रिया द्वि० या बहु० होगी। रामः कृष्णश्च गच्छतः। नियम १८७ भी देखें। (२) यदि 'वा' लगा हो और प्रत्येक एक हो तो क्रिया एक०, यदि अन्तिम बहु हो तो क्रिया बहु। रामः कृष्णो वा पठतु। (३) कर्ता और कर्म के विशेषणों में कर्ता और कर्म के लिंग, वचनादि लगेंगे। रूपवती सीता। (४) कभी 'च' लगाने पर क्रिया अन्तिम कर्ता के अनुसार होती है। उदेयः कमलं च वर्धते। (५) विंशतिः, शतम् सहस्रम् आदि निश्चित लिंग और वचन हैं, इनमें अन्तर नहीं होगा। शतं बालाः, सहस्रं क्रियाः, विंशतिः कन्याः।

नियम ११६—(सापेक्ष सर्वनाम) यत् और तत् सापेक्ष सर्वनाम हैं (जो 'वह')। जो यत् का लिंग विभक्ति, वचन होगा वही तत् का होगा। बुद्धिमत्स्य सखे तत्त्व।

नियम ११७—यदि प्रथम और द्वितीय वाक्य में लिंग भेद होगा तो तत् शब्द का लिंग प्रायः द्वितीय वाक्यवत् होगा। यौवनं हि पत्, सा प्रकृतिर्जडस्य।

नियम ११८—'यत्' शब्द 'कि' अर्थ में भी आता है, तब वह नपुं० एक ही रहेगा। यह सत्य है कि —सत्यमेतद् यत् सम्यक् सम्पदमनुधावतीति।

नियम ११९—(पदक्रम) संस्कृत-वाक्यों में शब्दों के क्रम का कोई विशेष महत्व नहीं है। कर्ता कर्म क्रिया आगे पीछे भी रख सकते हैं। स पुस्तकं पठति, पुस्तकं पठति स आदि। परन्तु साधारणतया नियम यह है कि :—(१) पहले कर्ता फिर कर्म बाद में क्रिया। कर्ता और कर्म के विशेषण कर्ता और कर्म से पहले रखे जायेंगे। (२) सम्बोधन सबसे पहले रखा जाता है। (३) कर्मप्रवचनीय अनु प्रति आदि कर्म के बाद आते हैं। (४) खलु, कच्चित्, किल आदि सम्बद्ध शब्द के बाद में आते हैं। (५) च वा तु हि, चेत् वाक्य में नहीं आते। (६) प्रश्नवाचक अपि, किम्, कथम्, किमुत आदि तथा विस्मयादिबोधक अव्यय हा, हन्त आदि प्रारम्भ में आते हैं।

अभ्यास २८

संस्कृत बनाओ—(क) (भगवत्, धीमत्) १ भगवान् कपिल सकुशल तो है। २ भगवन्! मैं परवीन हूँ। ३ सिद्धि-सम्पन्न महात्माओं की कुशलता अपने हाथ में होती है। ४ विद्वानों के लिए कोई भी चीज अज्ञात नहीं होती। ५ गुणवान् को कन्या देनी चाहिए, यह माता-पिता का मुख्य विचार होता है। ६ सूर्य (भानुमत्) जिस दिशा में उदय होता है, वही पूर्व दिशा होती है। सूर्य दिशा के अधीन होकर उदय नहीं होता। ७ पहाड़ (भानुमत्) की चोटी पर अग्नि दिखाई दे रही है। (ख) (वत्, स्वत्) १ मैं निरुपकार हूँ कहा किसके सामने रोऊँ। २ सीता के वियोग में राम की दयनीय स्थिति को देखकर पत्थर भी रो पड़ते हैं और वज्र का भी हृदय फट जाता है। ३ यशोमती बैंचक से गिर कर खूब जोर से बहुत देर रोई। ४ हर स्त्रिया के पैर पकड़कर चीख-चीखकर बहुत देर रोया। ५ सभी अपने साथियों पर विश्वास करते हैं (विश्वस्)। ६ मुझे इस अँगूठी का विश्वास नहीं है। ७ हृदय धैर्य एवं वर्य एव। (ग) (कर्तृवाच्य) १ जिसके पास पैसा होता है उसके मित्र हो जाते हैं उसके ही बन्धु हो जाते हैं। २ जिसके पास बुद्धि है, उसके पास बल है। ३ जो कि शीतलता है वह जल का स्वभाव है। ४ जो कि दूसरे के गुणों की असहिष्णुता है वह दुर्जनों का स्वभाव है। ५ जो जिसके योग्य हो विद्वान् उसे उससे मिलाए। ६ यह कहावत सत्य है कि सम्पत्ति के पीछे सम्पत्ति चलती है और विपत्ति के पीछे विपत्ति। ७ सौ बालक सौ किसों और एक हजार लोग इस उत्सव में है। (घ) (मिश्रवर्ग) होली का पवित्र पर्व है। सभी ओर आनन्द और उत्साह का संचार है। घरों में स्त्रियाँ लड्डू, पूए, मालपूए, रसगुल्ले, गुझिया शक्करपारे आदि मिठाइयाँ बना रही हैं। दुकानदार अपनी दुकानों पर लड्डू, पेड़ा, जलेबी, इमरती, बर्फी, पेठे की मिठाई, गुलाबजामुन रसगुल्ला चमचम बालूशाही खाजा कलाकन्द, खेवर, मोहनभोग, सोहनभोग गुझिया बताशे और पपड़ी बेच रहे हैं। लोग अपने लिए और अपने मित्रों के लिए खरीद रहे हैं। मित्रों के घर मिठाइयाँ बैना के रूप में भेजते हैं।

संकेत—(क) १ अपि कुशली। २ परवशोऽस्मि अहम्। ३ स्वाधीनकुशलाः सिद्धिसम्पन्नाः। ४ न खलु धीमतां किञ्चिदविदितं नाम। ५ गुणवते कन्या प्रदेयेत्येतदेव तावत् पितरौ प्रथमं कांक्षतः। ६ उदयति दिशि यत्र भानुमान् सैव पूर्वा। न हि तत्रिवर्तते दिक्पतयोऽधिपतिः। ७ शिखरे दिव्यं दहयते। (ख) १ कस्य पुरतो रोदिमि। २ अपि पाषाणा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्। ३ यशस्वती मुहुः प्रस्खल्य भूतलादुच्चैः भृशमिरं भारीरौत्। ४ पादौ अधिकृत्य भृशमाक्रन्दत् चिरं करोद। ५ सर्वे स्वजनेषु विश्वसिति। ६ मय्यंगुलीयकस्य विश्वासिमि। ७ समाश्वसिहि। (ग) १ धनवान्नीतस्य मित्राणि, धनवान्नीतस्य बान्धवाः। २ परगुणासहिष्णुत्वं खलु न दुर्जनानां स्वभावः। ३ सर्वेषां सुजनानां कीर्तिः सुखदायिनी भवेत्। ४ सर्वेषां जनानां हो खलु संसारः सन्तापबहुलत्वात् विषं विवरम्। ५ इदं बालकाः, इदं त्रिंशत् सहस्रं लोकाः। (घ) एकत्रिंशे, चमत्कृत विद्वांसो भोक्ष्यन्ति, बालकाश्चरन्ति भोक्ष्यन्ति।

शब्दकोश–७ ० + २५ = ०१५] अभ्यास २१ (व्याकरण)

(क) चायम् (चाय, टी), अल्पानम् (अलपान), चायपानम् (चायपानी), चायपात्रम् (टी पाट), कफ्नी (कॉफी), कन्दु (केतली), सम्पूप (डबलरोटी), भृष्टा पूपः (टोस्ट), पिष्टान्नम् (पेस्ट्री), पिष्टक (बिस्कुट), गुस्पाः (टॉफी मीठी गोली), सपीतिः (टी पार्टी), सन्धिः (सहभोज) सहभोजः (लंच या डिनर पार्टी)। लवणान्नम् (नमकीन), अवदंशः (चाट), समोसः (समोसा), दाल्मुद्गः (दालमोठ) सूपकः (नमकीन सेव), पक्वबटिका (पकौड़ी), दधिवटकः (दही-बड़ा), फलाहु (फलाहु, आलू की टिकिया) कूल्पी (कुल्फी), पुलाकः (पुलाव, तहरी), भक्षणम् (१ मसाला २ मसालेदार पदार्थ)। (१५)

व्याकरण (महत् भवत् शब्द; इन, स्नु धातु, आत्मनेपद)

१ महत् और भवत् के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० १२,२३)

२ इन् और स्नु धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु १८ १९)

नियम १७०—(निर्विणः) नि + विष् आत्मनेपदी होती है। निविशते।

नियम १७१—(परिव्यवेभ्य क्रियः) परि + क्री वि + क्री अव + क्री आत्मनेपदी होती हैं। परिक्रीणीते विक्रीणीते अवक्रीणीते।

नियम १७२—(विपराभ्यां जे) वि + जि, परा + जि आत्मनेपदी होती हैं। विजयते पराजयते।

नियम १७३—(आङो दोऽनास्यविहरणे) आ + दा आत्मनेपदी होती है, मुँह खोलना अर्थ न हो तो। विद्यामाददते। परन्तु मुखं व्यादत्ते (खोलता है)।

नियम १७४—(क) (शिक्षेर्विद्यायाम्) विद्या अर्थ में शिक्ष् धातु आत्मनेपदी है। कर्तृरि शिक्षते। (ख) (हरतेर्गतावाप्तौस्ये) गति के अनुकरण में हृ धातु आत्मनेपदी है। पैतृकम् अपहरते मातृष्वसा। (ग) (विहरेर्वृत्तौविक्रियायां कुशलकरणेषु) वृत्ति जीविका और आत्मस्थान बनाने में कृ धातु आत्मनेपदी है। अप + कृ = अपस्कृ हो जाता है। अपस्किरते वृषो हृष्टः (भूमि खोदता है), कुरुते भक्षार्थी स्वा आत्मवार्थी। (घ) (आङि नुप्रच्छयोः) आ + नु, आ + प्रच्छ् आत्मनेपदी होती हैं। आनुते। आपृच्छते (विवाह लेता है)।

नियम १७५—(क) (समवप्रविभ्यः स्थः) सम् + स्था अव + स्था, प्र + स्था वि + स्था आत्मनेपदी होती हैं। तिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते, विशिष्ठते। (ख) (आङः प्रतिज्ञायाम्) आ + स्था प्रतिज्ञा अर्थ में। शस्त्रं नित्यमातिष्ठते। (ग) (उदोऽनूर्ध्वकर्मणि) उत् + स्था आत्मने उठना अर्थ न हो तो। मुखमुत्तिष्ठते (बल करता है)। परन्तु व्यजनादुत्तिष्ठति, ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति (गाँव से सौ ८० मनुष्य निकलता है)। (घ) (उपाद् देवपूजा) उप + स्था आत्मनेपदी होती है, देवपूजा संगति करना मित्र बनाना मार्ग अर्थ में। आदित्यमुपतिष्ठते (पूजता है)। गंगा यमुनामुपतिष्ठते (मिलती है)। कृष्णमुपतिष्ठते (मित्र बनाता है)। पन्था प्रयागमुपतिष्ठते (रास्ता प्रयाग को जाता है)।

नियम १७६—(समो गम्यृच्छिभ्याम्) अकर्मक सम् + गम् आत्मनेपदी है। संगच्छते। (अभिनिविशश्च) अकर्मक सम् + भ सम् + इन् आत्मनेपदी हैं। संयुज्यते। संयुक्ते

अभ्यास २१

संस्कृत बनाओ—(क) (महत् भवत्) १ यह बड़ा वीर है। २ यहाँ बड़ा अँधेरा है। ३ मैंने एक बड़े शेर और बन्दर को देखा। ४ यहाँ सम्पत्ति का बड़ा ढेर है। ५ बड़े सवेरे बहेलियों के हल्ले से जगा दिया गया हूँ। ६ बड़ा आदमी बड़े घर ही अपना पराक्रम दिखाता है। ७ बड़ों की बात बड़ी है। ८ इस विषय में आपका क्या विचार है। ९ आप ही रघुवंशियों की कुल-स्थिति को जानते हैं। १० आपके मित्र के बारे में कुछ पूछता हूँ। ११ आप आगे चलिए, मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। १२ आप से ही इस विषय का ऐश्चित्य-अनौचित्य पूछता हूँ। १३ आपके बारे में उसका प्रेम कैसा है। १४ आपकी यह प्रार्थना शिरोधार्य है। (ख) (हन् स्तु) १ राजा शत्रु को मारता है। २ शत्रुओं को मारो। ३ राम ने रावण को मारा। ४ हे निषाद, तेरा कभी भला नहीं होगा तूने क्रौंच के जोड़े में से एक को मारा है। ५ देवदत्त राम की स्तुति करता है। ६ राम ने ईश्वर की स्तुति की। ७ रविशंकर अन्यायों को प्रस्तुत करता है (प्र + स्तु)। ८ मैं यह प्रस्ताव रखता हूँ कि अन्त-अंत का प्रधान राम हो। (ग) (आत्मनेपद) १ हलवाई मिठाई और नमकीन बेचता है (विक्री)। २ वह शत्रुओं को पराजित करता है (पराजि)। ३ आपकी विजय हो (विजि)। ४ यदि चींटी की मोच पैर में घुस जाती है (विविष्)) तो चिलना बन्द हो जाता है। ५ वह विद्या ग्रहण करता है (आदा)। ६ वह मुँह खोलता है (व्यादा)। ७ वह गुरु की शिक्षा पाता है (शिष्)। ८ घोड़े पिता की चाल का अनुकरण करते हैं, गौएँ माँ की (अनुहृ)। ९ बैल प्रसन्न होकर जमीन खोदता है (अपकृ)। १ तुम अपने मित्र से विदाई लो (आप्रच्छ्)। ११ कृष्ण ने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया (प्रस्था)। (घ) (पानादिवर्ग) १ आजकल चाय का बहुत रिवाज है। अंग्रेजी ढंग से चाय पीने वाले केटली में पानी उबालकर, टी पाट में चाय डालकर, उस पर उबला हुआ पानी डाल देते हैं और पाँच मिनट बाद उसे छान लेते हैं। कुछ लोग काफी भी पीते हैं। उसके साथ वे डबल रोटी, मक्खन, टोस्ट, पेस्ट्री और बिस्कुट भी लेते हैं। सवेरे और टी पार्टी में मिठाइयों के साथ समोसा, पकौड़ी, सेव, दालमोठ भी चलते हैं। २ आजकल विद्यार्थियों को चाट, दही-बड़ा, पकौड़ी, कुल्फी और मसालेदार चीजें अधिक अच्छी लगती हैं।

संकेत—(क) १ महान्। २. महामन्धकारः। ३ महान्तम् व्याघ्रम्। ४ महान् द्रव्य राशिः। ५. महति अस्फुटे आकुलिकलोकालोकेन प्रतिगोलिगोलिप्रेरिम। ६. महान् महत्त्वेन करोति विक्रमम्। ७. अपूर्वं महतां वृत्तम्। ८ अथवा कथं भवान् मन्यते। ९ रघूणां वासन्ति। १ विक्रमस्य विभवि। ११ भवन्तु पुरो भवान्, अहमनुपदमागत एव। १२. भवन्तमेव गुरुकावयं इत्यादि। १३ भवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्य हरिरामः। (ख) २. जहि। ३ अवधीत्। ४ मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। एकमवधीः। ५. रामं स्तौति। ६. अस्तावीत्। ७ अस्तौषीत् प्रस्तावान् प्रस्तौति। ८. अहम् प्रस्तौमि भवेत्। (ग) १ विक्रीणीते। २ पराजयते ३ विजयतां भवान्। ४ विविशुषे यदि पूर्णिमा पदे सुमति वासन्ति विजयी भवान्। ५ आदत्ते गुरुचरणात्। ११ हरिर्देहिरत्यवसत प्रस्थे। (घ) १ इदानीम् आङ्ग्लपद्धत्या चायपात्रं चायपत्तिं चायपत्रं चायपत्तिं वा पूरयन्ति। २. मधुरमाचमन्ति तेषां मनांसि।

शब्दकोष–७२५ + २५ = ७५०] अभ्यास ३० (व्याकरण)

(क) कण्डः (डोंटा), खाडिका (खाडी), कंसः (गिलास) काचकंसः (काँच का गिलास), काचभरी (भार), कटोरम् (कटोरा), कटोरः (कटोरी), घटः (घड़ा), उदंचनम् (बाल्टी) पारिभिः (कुम्हार), द्रोणिः (टब), खाडी (पतीली) स्थेदनी (कड़ाही), कडोयम् (तवा), पिठरचनम् (तवाँ, कड़ैया आदि पकाने की), इसली (अँगीठी), उद्धानम् (स्टोव), पिधाना (ढक्कन), चमसः (चमचा), दर्वी (चमचा, कड़छुल), चषकः (प्याला, कप), डगलः (प्लेट, तश्तरी), छुरा (छोटा-चेन) इस्त्री (बिजलघरी), सन्दंशः (चीमटा)। (२५)

व्याकरण (पठ्, वाक् शब्द) इ, विद् धातु, आत्मने परस्मैपद)

१ पठ् और वाक् के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द २४, २५)

२ इ और विद् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ११४१)

नियम १७७—(स्वस्वामाहारः) आ + हृ आत्मने० है, वस्तु को आहार करना अर्थ में। वस्त्रमाहरते।

नियम १७८—(उपपराभ्याम्) उप+क्रम्, परा + क्रम् आत्मने है। उपक्रमते, पराक्रमते। (प्रेषाम्यां समर्थाभ्याम्) प्र + क्रम्, उप + क्रम् प्रारम्भ अर्थ में। प्रक्रमते।

नियम १७९—(अपहृवे ज्ञः) मुकरना अर्थ में ज्ञा आत्मने है। पक्षम् अपजानीते (वह पक्ष को मुकरता है)। (सम्प्रतिभ्याम्०) सम् + ज्ञा प्रति + ज्ञा स्मरण अर्थ न हो तो आत्मने। संजानीते, प्रतिजानीते।

नियम १८०—(उदश्चरः०) उत् + चर् आत्मने है सकर्मक हो तो। भक्षमुच्चरते। (समस्तृतीया) सम् + चर् तृतीया के साथ हो तो आत्मने। रथेन संचरते।

नियम १८१—(शरीरावयवाच्च) विकास, प्रभूत सुसम्पूर्ण और विरुद्ध में आत्मनेपदी होती हैं। विकसति, प्रभूषते सुसम्पूर्णं विरुद्धयते।

नियम १८२—(प्रेषाभ्यां भुजेः०) प्र + भुज् उप + भुज् आत्मने० हैं। प्रभुङ्क्ते, उपभुङ्क्ते।

नियम १८३—(भुजोऽनवने) भुज् धातु खाने तथा उपभोग अर्थ में आत्मने पदी है और रक्षा अर्थ में परस्मैपदी है। ओदनं भुङ्क्ते। परन्तु गृहं बुभुजि।

(परस्मैपद)

नियम १८४—(अनुप्रयुभ्यां कृञः) अनु + कृ, प्र + कृ परस्मैपदी है। अनुकरोति, प्रकरोति।

नियम १८५—(अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः) अभिक्षिप् परस्मैपदी है। अभिक्षिपति।

नियम १८६—(प्राद्वहः) प्र + वह् परस्मैपदी होती है। प्रवहति।

नियम १८७—(व्याङ्परिभ्यो रमः) वि + रम् परस्मैपदी है। विरमति।

नियम १८८—(कुषपुनष्पचनेदः०) कुष्, पुष्, नष्, वच्, इ, प्र हृ, धु धातुएँ विच् प्रत्यय करने पर परस्मैपदी होती हैं। बीधयति पक्षम्। बोधयति बलम्। त्रायति पुत्रम्। त्रपयति पुत्रम्। अध्यापयति वेदम्। द्रावयति। स्रावयति।

नियम १८९—(नियमपकल्पनार्थेभ्यः) नियमना और बढ़ाना अर्थ की धातुएँ परस्मैपदी हैं। आघयति, साधयति। पक्षपति, कम्पयति।

अभ्यास ३०

संस्कृत बनाओ—(क) (पठ् यावत्) १ पढ़ते हुए को पाप नहीं लगता। २ मैं जब पढ़ रहा था तब वह आया। ३ गाँव को जाता हुआ तिनके को देखा है। ४ कर्मवीर मनुष्य उत्तम फल पाता है। ५ सूर्य की ओर आँख से देखा जाता हुआ कभी नहीं सकता। ६ जितने छात्र परीक्षा में बैठे सभी उत्तीर्ण हो गए। ७ वे युद्ध में जितने थे उनसे वह राजा उतने ही रूपों में दिखाई पड़ा। ८ जितना मिला उतना सब खा लिया। (ख) (इ विद्) १ मूर्ख सुख को पाता है। २ हरि कृपा से मनुष्य कल्याण को प्राप्त होता है। ३ चन्द्रमा को चाँदनी फिर मिल जाती है। ४ वे भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुँचे। ५ पहले फूल आता है फिर फल आता है। ६ सूर्य आज ही उदय होता है और आज ही अस्त होता है। ७ मुझे शिव का अवतार समझो (अव+इ)। ८ नीच यहाँ से हट (अप+इ)। ९ तेरे हृदय से प्रत्या क्लान का दुःख दूर हो (अप+इ)। १ उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है (उप+इ)। ११ जो स्पर्धा करता हुआ सामने आवे (अभि+इ), उसे नष्ट कर दो। १२ वह सत्य नहीं जो छल से युक्त हो। ११ वह गुरु के पीछे जाता है (अनु+इ)। १४ वह मुझ पर विश्वास करता है (प्रति+इ)। १५ जो किसके गुण को नहीं जानता (विद्) वह उसकी सदा निन्दा करता है। १६ जो आत्मा को हल्का समझता है, वह उसे नहीं जानता। १७ मुझे ऋषियों के तुल्य समझो। १८ इस जीवन में आत्मा को जान लिया तो भला है नहीं तो बड़ा नाश होगा। (ग) (परस्मैपद) १ राजा पृथ्वी का पालन करता है। २ वह भात खाता है। ३ पाप से डरो। ४ गंगा और यमुना बहती हैं (प्रवह्)। ५ विद्या सुख को वह करती है और सुख उत्पन्न करती है। (घ) (पात्रवर्ग) खाना-पीना जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। भूख और प्यास के निवारणार्थ बर्तनों की आवश्यकता होती है। पानी पीने और रखने के लिए घड़ा, कलश गागर, गगरी सुराही, झार, कमण्डलु, लोटा काँच का गिलास, गिलास, इन पात्रों की आवश्यकता होती है। पानी मिट्टी कंडाल और टब में रखा जाता है। खाना बनाने और खाने के लिए थाली कटोरा कटोरी, पतीली कड़ाही कड़ाह, तवा, तई, तश्ला, चमचा चमचा, चीमटा इनकी आवश्यकता होती है। खाना अंगीठी और स्टोव दोनों पर बनाया जा सकता है। खाने-पेन आटादि बनाने के लिए, प्लेट खाना रखने के लिए, कप चाय पीने के लिए होते हैं।

संकेत—(क) १ पठतो नास्ति पातकम्। २ मयि पठति आयाति। ३ तृणं तृणाति। ४ नरः हि नयु विन्दति। ५ सहस्र सूर्यस्य मेवार्णं वो न तत्सहते नरः। ६ यावन्तः, सर्वे तावन्तः। ७ ते तु यावन्त बभाषे, तावांश्च दृश्ते स हैः। ८ यावत्यन्नं तावत् भुक्तम्। (ख) १ निर्वृणिर्हि ह्यवेति। २ हरिरेवात् हिनवेति। ३ चन्द्रिमं पुनरेति शर्वरी। ४ ऋषुर्भरद्वाजमुपे निवेदत्। ५ उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलम्। ६ उदेति सविता व्याप्तव्याम् एवास्तमेति च। ७ अवेहि मां शिवमवतारमूर्तेः। ८ अपेहि पापे। ९ हरेवात् मानवेऽभ्यर्चनमन्वपेतु ते। १ उपेयुषिनं पुरुषर्षिसत्तमं श्रीः। ११ स्पर्धामानोऽभ्येहि तं जहि। १२ सत्यं न तदस्यच्छलमन्वुपैति। ११ गुरुमन्वेति। १४ स मयि प्रत्येति। १५ न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षम्। १६ न सर्वं वेत्ति इत्यात्। १७ ऋषिभिः मादृशैरिवास्तुत्यम्। १८ इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। (ग) १ शृणोति। २ जुहोति। ३ निरम। ४ अवहत्। ५ नाशयति, जनयति।

(घ) पात्राणामे अञ्जनालोदन्वतो (अञ्जनात्रा+उदन्वत्) पात्रात्राम् कलशः, गर्गरः, सुराः, झारः, कमण्डलुः, स्थालीवेव, कटोरः।

शब्दकोष-७५० + २५ = ७७५] अभ्यास ३१ (व्याकरण)

(क) अन्तेवासः (शिष्य) चर्मकारः (चमार), तमाचकः (भंगी), शाकुनिकः (बहेलिया) अश्वारोहः (सवारिया), मायाकारः (बाजीगर), शौण्डिकः (सुरा-विक्रेता) कर्मकरः (नौकर), भारवाहः (कुली), मालाकारः (माली), कुलालः (कुम्हार), लेखकः (पुताईवाला), प्रेष्यः (चपरासी), वैतनिकः (वेतन पर नियुक्त नौकर), तस्करः (चोर), पाटच्चरः (डाकू) ग्रन्थिभेदकः (गिरहकट), मृगयुः (शिकारी), मृगया (शिकार), वागुरा (जाल) मार्जनी (झाड़) चर्मप्रसेविका (मशक जो चमड़े की हो), उपानत् (जूता, बूट) पादुका (चप्पल) अनुपदीना (गम बूट)। (२५)

व्याकरण (क्रुध्, आप कर्म-भाव-भाव्य)

१ क्रुध् शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द २१)

२ आप् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४४)

नियम १९०—संस्कृत में ३ वाच्य होते हैं :—१ कर्तृवाच्य २ कर्मवाच्य, ३ भाववाच्य। सकर्मक धातुओं के रूप कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में चलते हैं। अकर्मक धातुओं के रूप कर्तृवाच्य और भाववाच्य में चलते हैं। अकर्मक की साधारण पहचान है कि जहां किम् (क्या किसको) का प्रश्न न उठे। १ कर्तृ वाच्य में कर्ता मुख्य होता है, क्रिया कर्ता के अनुसार चलती है। कर्ता में प्रथमा कर्म में द्वितीया, क्रिया कर्ता के अनुसार होती। २ कर्मवाच्य में कर्म मुख्य होता है। कर्म के अनुसार ही क्रिया का पुरुष, वचन, लिंग होगा। कर्मवाच्य में कर्ता में तृ, कर्म में प्र०, क्रिया कर्म के अनुसार। ३ भाववाच्य में कर्ता में तृ कर्म नहीं, क्रिया में प्रथम पु एक।

नियम १९१—(सार्वधातुके यक्) कर्मवाच्य और भाववाच्य में सार्वधातुक प्रकारों (अर्थात् शप्, श्यन्, श्लु विधिलिङ्) में धातु के अन्त में य लगेगा। धातु का रूप आत्मनेपद में ही चलेगा, धातु चाहे किसी पद की हो। आगे प्रकारों में य नहीं लगेगा। धातु के रूप य लगाकर क्रुध् (धातु० सं ११) के तुल्य चलेंगे। क्षुद् में इण्वत् या स्वरे लगेगा। जैसे—गम्>गम्यते, गम्यताम् अगम्यत गम्येत, गंसिष्यते।

नियम १९२—(क) जिद् में णिच् करके आत्मनेपदी के तुल्य रूप होंगे। जैसे—गम्>जमि, भू>बभूवे, नी>निन्ये, जिद्>घिण्ये। सेट् जिद् के तुल्य रूप चलेंगे। जिन धातुओं के अन्त में 'आम्' लगता है, उनमें आम् लगाकर इ, भू, अस् के रूप आत्मनेपद में चलेंगे। जैसे—कथयांचक्रे, कथयांचभूवे, कथयांचक्रिरे। (ख) लुट, लृट् आशीर्लिङ् और लङ् में भी सेट् (धातु १) के तुल्य रूप चलेंगे। सेट् में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। जैसे—जनिता, जनितास्वे, जनिषीष्ट, अजनिष्यत।

नियम १९३—लुङ् प्र० पु० एक में धातु के अन्त में इ लगेगा। बाद में च का लोप होगा। 'इ' से पूर्व धातु के अन्तिम इ, उ ऋ को वृद्धि होगी, उपधा में अ होगा तो उसे आ और उपधा के इ उ ऋ को गुण होगा। जैसे—अकारि, अजायि, अचायि अचोदि। लुङ् में धातु के बाद प्रत्यय इस प्रकार होंगे। लृट् में इ लगेगा अनिट् में इ नहीं लगेगा। प्र० पु —इ, इषाताम्, इषत। म० पु —इथाः, इषाथाम्, इध्वम्। उ पु०—इषि इष्वहि इष्महि।

अभ्यास ३१

संस्कृत बनाओ—(क) (क्षुध् धातु) १ विद्वानों की संगति से मूर्ख भी प्रवीण हो जाते हैं। २ विद्वानों के साथ श्रद्धापूर्वक व्यवहार कर (क्षुध्)। ३ विद्वानों के साथ ही उठे, बैठे, बात और विवाद करे। (ख) (आस धातु) १ आपको जहाँ अच्छा लगे, वहाँ बैठिए। २ आप इस आसन पर बैठिए। ३ जहाँ देखता रहते हैं। ४ उसने स्वागतवचन से अतिथि का अभिनन्दन करके अपने आसन पर बैठने के लिए उसे निमन्त्रित किया। ५ बैठे हुए का भाग्य भी बैठा रहता है और खड़े हुए का भाग्य खड़ा हो जाता है। ६ राजा सिंहासन पर बैठा (अध्यास्त)। ७ उस ईश्वर की दोनों शिव नाम से उपासना करते हैं (उपासते)। ८ दोनों सखियों के द्वारा शकुन्तला की सेवा की जा रही है (अन्वास्यते)। (ग) (कर्मवाच्य) १ कल्याण के विषय में किसकी दृष्टि होती है। २ क्या तुम्हारी आज्ञा दासी जा सकती है? ३ मेरी ओर से सारथि से कहना। ४ यह शकुन्तला पतिगृह को जा रही है सब स्वीकृति दें। ५ जाने के समय में देर हो रही है। ६ शिष्यों में बिना शिक्षा के भी पढ़ाना देखा जाता है। ७ तुम्हारी प्रार्थना के योग्य ही कोई नहीं दीखता है। ८ तेजस्वियों की आयु नहीं देखी जाती है। ९ धर्मवृद्धों में आयु नहीं देखी जाती। १० रक्त किसी को नहीं दूँढ़ता वह स्वयं ढूँढा जाता है। ११ गेरुए वस्त्र पहनने की स्वीकृति से मुझे अनुगृहीत कीजिए। १२. पुराने कर्मचारी को क्रोध उकसा सकता है। १३ किसकी आशा किया जा सकता है। १४ दुर्भाग्य ने ऐसा सर्वनाश किया कि विश्व की आशा तो दूर रही जीवन की आशा भी सन्दिग्ध दिखाई देती थी। १५ मेरे द्वारा तुम्हारा मुखकमल देखा गया। (घ) (शूद्रवर्ग) शूद्र समाज के योग्य सेवक होते हुए भी अपनी कुछ न्यूनताओं के कारण समाज की दृष्टि में नीच गिने जाते हैं। उनमें से बहुतेरे बहुत अच्छा काम करते हैं। जैसे—धोबी शूद्रा सीने की सूई से सूती चप्पलें आदि को सीता है और उनकी मरम्मत करता है मेमी लाख से मकानों और आँगनों को साफ करता है गड़रिया बकरियों को पालता है, कुर्मी भार ढोते हैं माझी फूटी से नावपूँ बनाता है, कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाता है, पुताईवाला कलई से मकानों को पोतता है चमड़ेसी जूतों को यथास्थान पहुँचाता है। कुछ बुरा काम करते हैं अतः ये निन्दनीय हैं। जैसे—बहेलिया जाल डालकर पक्षियों को मारता है, सुरविक्रेता शराब पीता है, चोर चोरी करता है डाकू दीवार में सेंध मारता है, गिरहकट जेब काटता है, शिकारी शिकार खेलता हुआ निरपराध जीवों की हत्या करता है।

संकेत—(क) १. मानीभ्यनुपधावति। २. मुह्य। (ख) १ वीक्षते। २. पदमासन मास्यताम्। ३. आसते। ४ अभ्यासनमलिनन्य स्वेनाऽऽसेन आत्मनिति निमन्त्रयांचक्रार। ५. आस्ते यथ आसीनस्य कर्म सिद्धति तिष्ठतः। (ग) १. कैवलि केन दृश्यते। २ निरूप्यत। ३. मदवचनमनुश्रूयतां सारथिः। ४ उपैतुमुक्तवचनः। ५. परिक्षीयते समयश्चेति। ६. शीलाभिजिज्ञासा गुरुषु संदृश्यते। ७. न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते। ८. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते। ९. धर्मवृद्धेषु। १ न रक्तमन्विष्यति मृग्यते हि तत्। ११ कषायमहणानुरूपा मनुगृह्यतामयं जनः। १२ पुराणस्य सेवकस्य क्रोध उत्पादयितुं शक्यः। १३ कस्य उत्पाद्यते। १४ दैवेनैतेन जगतो दूरे तावदास्थाम्। १५. अदर्शि। (घ) मल्लयते वस्त्रादि, सीव्यति, संदधाति वा, अजिरादि, मार्ष्टि मार्ष्टि वा, वहन्ति, क्षारं वासयति, सुधयति लिम्पति, आपयति दुष्कर्मणि सुरादि, पिबति नपि वर्णयति मद्यं विक्रयति विक्रीणीते इति।

शब्दकोश—७७५ + २५ = ८ ०] अभ्यास ६२ (व्याकरण)

(क) कारु (शिल्पी), नापितः (नाई), रजकः (धोबी), निर्वेशकः (हाउसक्लीनर) रजकः (रंगरेज), श्रेणिः (सिल्क-संघ), कुलिकः (सिल्क-संघ का अध्यक्ष), तन्तुवायः (बुनकर), सौचिकः (दर्जी), चित्रकारः (चित्रकार, पेण्टर), लोहकारः (लुहार), स्वर्णकारः (सुनार), शौल्विकः (ताँबे के बर्तन बनानेवाला), स्तपः (बढ़ई), स्थपतिः (राज), सीमन्तकूर्चम् (सीमेंट), इष्टका (ईंट), सूचिः (सिलाई), यन्त्रम् (मशीन), उपदाणचित्रम् (कार्टून), वर्तिका (ब्रुश), कर्तरी (कैंची), दात्री (दरांती), अवोपनः (हथौड़ी), फलकम् (आरी)। (१५)

व्याकरण (आत्मन् राजन् धी, अधि + इ कर्म-भाव-वाच्य)

१ आत्मन् और राजन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द १७ २८)

२ धी और अधि + इ धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ४५, ४६)

नियम १९४—धातु से कर्मवाच्य या भाववाच्य बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लें। सार्वधातुक टकारों (लट्, लोट् लट्, विधिलिङ्) में ही ये नियम लगते हैं। (क) धातु के अन्त में 'य' लगेगा। आत्मनेपद ही होगा। धातु को गुण नहीं होगा। धातु मूलरूप में रहेगी। गच्छ् पिब्, क्षिप् आदि नहीं होंगे। साधारणतया धातु में अन्तर नहीं होता। जैसे—भूयते, पठ्यते, क्रियते, गम्यते। (ख) (दुग्धस्थ गापा) आकारान्त धातुओं में इनके ही आ को ई होगा। दा, धा मा, स्मा, पा (पीना) हा (छोड़ना), ख्या। अन्यत्र आ ही रहेगा। जैसे—दीयते, धीयते, मीयते, स्मीयते पीयते, हीयते, ख्यायते। (ग) (अकृत्सार्वधातुकयोः) धातुओं के अन्त में इ को इ, उ का ऊ हो जाएगा। जि> जीयते चि> चीयते, हु>हूयते। किन्तु जि को संप्रसारण होने से जूयते होगा और धी का ध्मायते रूप होगा। (घ) (रिङ्शयग्लिङ्क्षु) ह्रस्व का अन्तवाली धातुओं के अ के स्थान पर रि हो जाएगा। जैसे—कृ, ह, पृ मृ, मृ के क्रमशः क्रियते, हियते, प्रियते, म्रियते, म्रियते। किन्तु ख धातु को और संयुक्ताक्षर आदिवाली ऋकारान्त धातु को गुण होता है। (गुणोऽर्ति)। जैसे—वृ>वर्त्यते। स्मृ> स्मर्यते। (ङ) (अत इदाताोः, उवोऽपपूर्वस्य) वर्ष ऋ अन्तवाली धातुओं के ऋ को ईर् होगा। यदि पवर्ग पहले होगा तो उर् होगा। जैसे—कृ> कीर्यते, गृ> गीर्यते, तृ> तीर्यते, धृ> धीर्यते। पृ> पूर्यते। (च) (वचिस्वपि यजिादीनाम्) वच् स्वप्, यज्, वप्, वह् वद् वस् प्रच्छ् आदि धातुओं को संप्रसारण होता है, अर्थात् व् को उ, य् को इ, र् को ऋ। (यू) वच्> उच्यते, स्वप्>सुप्यते, यज्>इज्यते, वप्> उप्यते, वह्> उह्यते, वद्>उद्यते वस्>उष्यते, प्रच्छ्> पृच्छ्यते। (छ) (अनिदितां) धातु के बीच के न् का प्रायः लोप हो जाता है। नम्>म्यते, कन्>क्यते, ग्रंथ्> ग्रथ्यते, क्रंथ्> क्रथ्यते। इनमें न् रहेगा—कन्यते, चिन्त्यते, निन्द्यते। (ज) इन धातुओं के स्थान पर ये हो जाते हैं—भू>भव्, जन्> भू जन्> जी। उच्यते, भूयते, जीयते। (झ) मन्, तन् क्षन् क्षण् के दो रूप होते हैं न् को आ विकल्प से होगा। जैसे—मन्यते मन्यते। (ञ) चुरादि० और णिच् प्रत्ययवाली धातुओं के इ (अय) का लोप हो जायगा। चोरयते, कथ्यते, मारयते।

अभ्यास ३२

संस्कृत बनाओ—(क) (आत्मन्, राजन्) १ अपने आपको प्रकट करने का यह मौका है। २ तुम अपनी तरह ही सबको समझते हो। ३ यदि अपने आपको संभाल सका तो, यहाँ से जाऊँगा। ४ यहाँ बाह्य और अन्तःकरण के साथ मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो रही है। ५ यह तो तुम्हारी अपनी इच्छा है। ६ यह तो अपने स्वभाव पर आ गया है। ७ अपने यहाँ आने का कष्ट क्यों उठाया? ८ अति हर्ष उसके मन में नहीं समाया। ९ अपने में झूठे महत्त्व का आरोप करके राजा लोग देवताओं को प्रणाम नहीं करते हैं। १० शिष्टों को भी अपने ऊपर पूरा भरोसा नहीं होता। ११ जैसा राजा वैसी प्रजा। १२ मैं राजा को कुछ नहीं समझता। १३ राज-रहित देश में शान्ति नहीं होती। १४ राजा को जनहित की भी चिन्ता करनी चाहिए। १५ राजा को चाहिए कि आपत्ति-ग्रस्तों का दुःख दूर करे। (ख) (श्री अधि+इ) १ वह हाथ का तकिया लगाकर सोई। २ इधर मोर सो रहे हैं। ३ क्यों निश्शंक सो रहे हो। ४ उसने वेदों को पढ़ा। (ग) (कर्मभाव्य) १ चित्र में जो कुछ ठीक नहीं है, उसे ठीक कर रहा हूँ। २ पुरुष तभी तक है, तब तक वह नाम से हीन नहीं होता। ३ सोने की आग में ही स्वच्छता और लालिमा दीखती है। ४ विकार के कारण के विद्यमान होने पर भी जिनके चित्त विकृत नहीं होते वे धीर हैं। ५ पर उपदेश कुशल बहुतेरे। ६ क्यों गोलमाल बात करते हो। ७ गुणों से ही सर्वत्र स्थान बनाया जाता है। ८ इससे हमारा कुछ नहीं बिगड़ता। ९ यह बात समाप्त करो। १० आगे की बात समझ ली। ११ विपत्ति में भी उसका धैर्य नष्ट नहीं होता। १२ यह देवदत्त नाम से पुकारा जाता है। १३ बेकार कहाँ जा रहे हो? १४ और कोई रास्ता नहीं दीखता है। (घ) (शिल्पिवर्ग) शिल्पि-संघ शिल्पियों का संगठन करता है। उनको उचित कार्यों में नियुक्त करता है। धोबी कपड़ों को धोता है। डाईरबीनर कपड़ों को मशीन से धोता है और उन पर छापा करता है। बुनकर सूत से कपड़ों को बुनता है। दर्जी टेलरशाप से कपड़ों पर निशान लगाता है और कैंची से काटकर उन्हें सिलाई की मशीन से सीता है। चित्रकार ब्रुश से चित्र को रंगता है और कार्टून बनाता है। बढ़ई आरी से लकड़ी चीरता है रसूते से उसे छीलता है और हथौड़ी से कीलों को ठोकता है। राज सीमेंट से ईंटों को जोड़कर मकान बनाता है।

संकेत—(क) १ अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्। २ आत्मनो इतरानुपलक्षेण वदसि। ३ यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। ४ बाह्यान्तःकरणाभ्यां ममान्तरात्मा प्रसीदति। ५ एष तवात्मवशो मनोरथः। ६ गृह एवात्मनः प्रहसितम्। ७. किमिति भवताऽऽत्मना अत्रागमनक्लेशस्य कष्टमनुभूयते। ८. मुखं प्रहर्षं प्रथमं नात्मनि। ९ आत्मन्यारोपितानीत्यामिमानाः। १ आत्मन्यात्मानं शेषे। ११ यथा राजा। १२. राजेति वा अवज्ञा मम। १३ अराजके जनपदे। १४ अनादिष्टमपि किन्नामिवत्। १५. आरक्षत्व जनत्वादिरेव राज्ञा चिन्तनीयम्। (ख) १ अक्षेत्र सा बहुभर्तृका भविष्यति। ४ अत्रैव। (ग) १ किमर्थं तत्रस्थोऽयं। २ भावस्यानाश्रय हीयते। ३ हेम्नः संलक्ष्यते अग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा। ४ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते धैर्यान्न धीराः। ५ मुखमुपलिख्यते परम्। ६ किमिति अमरत्वम् अनुमन्यीथाः। ७. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते। ८. न वा स्थिरं विदधे। ९. संप्रतिपन्नमिदं कथं। १ परत्रादरगम्यते। ११ न हीयते। १२ आहूयते। १३ अनिर्दिष्टनामधेयं पण्यते। १४ मार्गस्यान्यस्यमालोक्यते। (घ) धावति धावनेन वैनेयिकः, अवस्करोति, सूत्रैः वयति सौचिकवणिजः चित्रयति चित्रिकः, रञ्जयति, छिनत्ति, हन्ति औजात् ईष्टे इति संयोज्य।

शब्दकोश-८० + २५ = ८२५] अभ्यास ३३ (व्याकरण)

(क) क्षुरम् (उस्तरा), क्षुरकम् (श्लेड), उपक्षुरम् (सिरी रेजर), कर्तनी (बाल काटने की मशीन), शस्त्रमात्र (धार धरनेवाला), शैलकारः (शैली), रसपाकम् (कौलू), भिक्षः (भिक्ष) आसन् (मोढ़ा आसन), दृषत् (शैली), आधिपः (धर्मा), यान्त्रिकः (मिस्त्री, मैकेनिक) सूत्रम् (धागा), सूचिका (सुई), चर्मकारः (चाम्बिर), वेतनम् (वेतन) भारम् (भार), चर्मकारः (चर्मकार), मञ्चः (चौकी), नौका (नौका), शिल्पशाला (फैक्टरी)। (११)। (घ) कृ (करना) आसन्+कृ (मोढ़ा करना), मञ्चा+कृ (चौकी करना), नौका+कृ (नौका बनाना)। (४)।

व्याकरण (अन्, युवन् हु भी, णिच् प्रत्यय)

१ अन् और युवन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २९, १)

२. हु और भी धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ४८ ४९)

नियम १९५—(हेतुमति च) प्रेरणार्थक धातु उसे कहते हैं, जहाँ कर्ता स्वयं काम न करके दूसरे से काम कराता है। जैसे—पढ़ना>पढ़ाना लिखना>लिखाना, जाना>भेजना, करना>कराना। प्रेरणार्थक धातु में मूल धातु के अन्त में णिच् (अर्थात् अय) जोड़ा जाता है। धातु के रूप दोनों पदों में चुर् धातु के तुल्य (देखो धातु ९७) चलेंगे। धातु के अन्तिम ह्रस्व और दीर्घ इ, उ ऊ को वृद्धि (अर्थात् क्रमशः ऐ, औ, आर्) हो जाता है, साथ में अर्थादि वृद्धि भी। उपधा (अर्थात् अन्तिम अक्षर से पूर्व अक्षर) में अ का आ तथा इ, उ, ऋ को क्रमशः ए, ओ अर् गुण हो जाता है। जैसे—कृ>कारयति नी>नाययति भू>भावयति, पठ्> पाठयति, लिख्> लेखयति। गम् का गमयति।

नियम १९६—प्रेरणार्थक धातुओं के साथ मूल धातु के कर्ता में तृतीया होती है और कर्म में पूर्ववत् द्वितीया ही रहती है। क्रिया कर्ता के अनुसार होती है। जैसे—शिक्षकः छात्रं लिखति>गुरुः शिष्येण छात्रं लेखयति। नृपः भृत्येन कार्यं कारयति।

*नियम १९७—(गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ०) इन अर्थोंवाली धातुओं के प्रेरणार्थक रूप के साथ मूल धातु के कर्ता में तृतीया न होकर द्वितीया होती है।—जाना आनना, समझना ज्ञाना (ज्ञा ज्ञाप् मप् को छोड़कर), पढ़ना, अकर्मक धातुएँ, बोलना, देखना (दृश्), सुनना (श्रु), प्रवेश् (प्रविश्), चढ़ना (आरुह्), गिरना (पत्), प्राप्त (प्राप्), पीना, खेलना (क्रीड्), (नी और वह् को छोड़कर)। जैसे—बालः पादं गच्छति> बालं पादं गमयति। शिल्पः वेदम् अवगच्छति> शिल्पं वेदम् अवगमयति। पुत्रः अन्नं मुङ्क्ते>माता पुत्रमन्नं भोजयति। शिष्यः छात्रं पठति>गुरुः शिष्यं छात्रं पाठयति। पृथ्वी सविते आसते>पृथ्वी सवितारमासयते। (क) (भोजनेऽर्थे) नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन। (ख) (नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः) वाहयति रथं वाहान् वृक्षः। (ग) (आदिग्रासार्थे) आदयति खादयति वा बालं पदानि। (घ) (मध्येऽपि गुरौ न) मध्यापयन्तं पदानि। (ङ)(अन्यतिमथ्नीनाम्०) अस्यति भावयति वा धर्मं पुत्रं देवव्रतः। (च)(हवेश्च) दर्शयति हरिं भक्तान्। (छ) (अन्यार्थेऽपि) शब्दापयति देवव्रतम्।

अभ्यास ६३

संस्कृत बनाओ :—(क) (श्वन्, युवन्) १ कुत्ते को यदि राजा बना दिया जाता है तो क्या वह पूजा नहीं जाएगा है। २ पण्डित कुत्ते और चाण्डाल को समान मानते हैं। ३ काच मणि और कांचन को एक आगे में पिरो रही हो, हे बाले, यह उचित नहीं है। उसने कहा—सर्वविद् पाणिनि ने तो एक सूत्र में कुत्ता युवक और इन्द्र तीनों को डाला है। ४ विद्वानों ने सेवा को अहर्निश माना है। ५ युवक मुखस्कन्द होते हैं। ६ अति सुन्दर रमणी जिस प्रकार युवकों के मन को हरण करती है उस प्रकार कुमारों के नहीं। ७ यौवन के प्रारम्भ में प्राय: युवकों की दृष्टि कलुषित हो जाती है। (ख) (हु, भी धातु) १ यहाँ पर अग्नि में हवन करो। २ उसने मन्त्रपूत शरीर को भी अग्नि में हवन कर दिया। ३ हे बालक, तू प्रभु से क्यों डरता है वह मधुमक्षि को भी नहीं छोड़ता। ४ मत डरो। ५ क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन वेदों का उद्धार करेगा। हे सखी मत डरो अभी पृथ्वी पर कुमारिल भट्ट जीवित है। (ग) (क्विप् प्रत्यय) १ उसने विषय-सुखों से विरक्त हो जीवन को बिताया। २ उन्होंने अपने काम को ठीक निभाया। ३ उसने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। ४ दो 'नहीं स्वीकृति-सूचक वर्ण बताते हैं। ५ पिता पुत्र से खेत खिलवाता है। ६ धनिक नौकर से काम कराता है। ७ पुत्र को घर भेजता है। ८ पुत्र को वेद पढ़ाता है। ९ माता पुत्र को फल खिलाती है। १ गुरु शिष्य को वेद पढ़ाता है। ११ पुस्तक मेज पर रखवाई। १२ वह नौकर से मार खिलवाता है। १३ छात्रों को चित्र दिखाता है। १४ मैं यह पत्र उसके पास पहुँच दूँगा। १५ कन्धा सिर छिप रहा है। (घ) (क्विप्प्रत्यय) १ नाई बाल काटने की मशीन से बाल काटता है और उस्तरे से दाढ़ी बनाता है। आजकल अधिक लोग सेफ्टीरेजर से स्वयं ही दाढ़ी बना लेते हैं। २ धोबी कपड़ों को धोकर नील लगाता है, कलफ करता है और उनपर प्रेस करता है। ३ फैक्टरी में मिस्त्री मशीनों को ठीक करता है। ४ मिलों में मजदूर काम करते हैं। ५ लेखनी कोलकू के द्वारा निब से लेख लिखवाता है, और रखनेवाला ऊपर पर चार रखता है, बढ़ई छेनी से काठ को काटता है, वर्मा से लकड़ी में छेद करता है सुदिपा सुई-धागे से वस्त्र सीती है।

संकेत—(ख) १ क्षिपते, त्वं हि नाहनात्युपानहम्। २ तुभ्यं चैव स्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः। ३ काचं मणिं कांचनमेकसूत्रे करोषि बाले यदि सुष्ठमेतत्। अतोविद् पाणिनिरेकसूत्रे स्वानं युवानं मघवानमाह। ४ स्वहन्ति विद्वः। ५ युवानो हिंसमरणमीक्षन्ते। ६ यथा मृगलक्ष्मलत् परमरमणीयापि रमणी, कुमारलोलमन्तःकरणहरणं नैव कुरुते। ७ आदुष्यन्तुरुषन्ति। (ग) ८ शुश्रूषते पाठकम्। २ यो मन्त्रपूतां तनुमग्नौजोषत्। ३ शुश्रोतिभेषि किं बाल म त्वां भीषे विभुर्भवति। ४ मा भैषीः। ५ किं करोमि क्वचरिष्यति। मा विभेहि धरातोरे महाभाष्योपदेष्टा भूतले। (ग) १ जीवितमत्यवाहयत्। २ तनुं निरवाहयत्। ३ अभिमन्यात् अवाहयत्। ४ हौ नञौ प्रकृतार्थं गमयतः। ५ नमयति। ८ अध्यापयति। ९ धोक्षयति। ११ आहयत्। १२ वाहयति। १३ हर्षयति। १४ तत्र हर्षं भावयिष्यामि। १५ मूर्धानं वाहयति। (घ) १ क्षपति क्षुरं क्षुरयति। २ वासिता। ३ संक्षोभयति। ४ अभिक्ष्। ५ निस्सारयति क्षुरं क्षोभयति, क्षपति क्षिपति सीव्यति।

शब्दकोष–८२५ + २५ = ८५] अभ्यास ३४ (व्याकरण)

(क) शाकम् (साग), आलुः (आलू), रक्तालुः (टमाटर), गोजिह्वा (गोभी), कदाया: (मटर), मण्टाकी (भौंटा, बैंगन), वंगनः (बैंगन), भिंडकः (भिंडी), टिंडिया: (टिंडा), अलाबुः (लौकी), कूष्माण्डः (कद्दू), गाजरम् (गाजर) मूलकम् (मूली) श्वेतकन्दः (शलगम), पालकी (पालक), बास्तुकम् (बथुआ), सिम्बा (सेम), फ्रेंचबीन (फलसबीन, फ्रेंच बीन) आलिनी (लोबिया), कुन्दरः (कुन्दरू) पटोलः (परवल), कारवेल्लः (करेला), कर्कटी (ककड़ी) पनसम् (कटहल) शवः (सकाब)। (२५)

व्याकरण (हनहन् मघवन्, हा ही णिच् प्रत्यय)

१ हनहन् और मघवन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ११, १२)

२ हा और ही धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५ ५१)

नियम १९८—मूलधातु से प्रेरणार्थक धातु बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लें। (क) धातु से णिच् (अय) प्रत्यय लगता है। नियम १९५ के अनुसार वृद्धि या गुण। (ख) (भिदां ह्रस्वः) इन धातुओं के उपधा (उपान्त्य स्वर) के अ को आ नहीं होता। गम्, रम्, क्रम् नम्, क्षम् दम् अन् स्वर् घट्, ध्यप्, भू। गमयति, रमयति क्रमयति, नमयति, क्षमयति, दमयते, अनयति, स्वरयति, घटयति ध्यपयति, भवयति। अन्यत्र अ को आ होगा। पाठयति, कामयते, वासयति। (ग) (आतां पुक च वौ) आकारान्त धातुओं के अन्त में णिच् से पहले 'प' और लग जाता है। जैसे—दा> दापयति, धा> धापयति स्था> स्थापयति, पा> पापयति, म्ला> म्लापयति। (घ) (घाध्मास्थाम्ना) इन आकारान्त धातुओं में बीच में 'य्' लगेगा। घो (दा), धो (धा), सो (सा) दे (दा) ध्मे (ध्मा) धे (धा), और पा। जैसे—दाययति, धाययति पाययति (पिलवाता है)। (पातेर्वा वुक्) पा (रक्षा करना) का रूप पाल्यति होगा। (ङ) (क्रीङ्जीनां णौ) इनके ये रूप होते हैं—क्री> क्रापयति (खरीदवाना), अधि + इ> अध्यापयति (पढ़ाना) जि> ज्यपयति (जितवाना)। (च) इन धातुओं के ये रूप हो जाते हैं—व्रश्च्> वाश्चयति (पोंछना) हन> घातयति (वध करना), लुप्> लोपयति (लोप देना), रुह्> रोपयति रोहयति (उगाना) ऋ> अर्पयति (देना), हेपयति (लज्जित करना), वि + ह्री> विह्रीनयति विह्रापयति (लिखवाना), भी> भ्यापयते, भीषयते (डर की वस्तु से डराना) भाषयति (केवल डराना), वि + स्मि> विस्मापयते (किसी कारण से विस्मित करना), विस्मयपयति (केवल विस्मित करना), स्मिङ्> साधयति (बनाना) सादयति (निष्पन्न कराना) रभ्> रम्भयति (प्रारम्भ करना), रम्भयति (चिल्लाना) इ (जाना)> गमयति (भेजना) अधि + इ (जानना)> अधिगमयति (समझाना, याद दिलाना), प्रति + इ> प्रत्यायपति (विश्वास दिलाना), गृह > गूहयति (छिपाना), धू> धूनयति (हिलाना), प्री> प्रीणयति (प्रसन्न करना), मृज् > मार्जयति (साफ कराना), घद्> घादयति (गिरवाना), घादयति (भेजना)। (छ) चुरादिगण की धातुओं के रूप णिच् में वैसे ही रहते हैं। (ज) कमाख्य और भावाख्य में णिजन्त धातु के अन्तिम इ (अय) का लोप हो जाता है। जैसे—पाठयत, कामयते, हारयते, धावयते धावयते, मन्त्रयत।

अभ्यास ३४

संस्कृत बनाओ—(क) (इन्द्रहन् मघवन्) १ इन्द्र ने वृत्र का वध किया। २ मैं इन्द्र के संभाग से अनुगृहीत हूँ। ३ इन्द्र का पक्ष प्रत्येक पर्व में गाया जाता है। ४ इन्द्र का वज्र देव-सेना का संहार करता है (संहृ)। (ख) (हा, ही) १ हे अर्जुन, जब मनुष्य सभी मनोगत कामनाओं को छोड़ देता है और अपने आप में सन्तुष्ट रहता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। २ तृष्णा को छोड़ दो। ३ तुमने जो सीता को छोड़ दिया है, यह क्या तुम्हारे कुल के अनुकूल है। ४ विपत्ति में भी रसज्ञ धैर्य क्षीण नहीं होता। ५ पुत्रवधू श्वसुर से शर्माती है। ६ आपके साथ गुरुजनों के समीप जाने में मुझे लज्जा अनुभव होती है। ७ हमें आपस में ही शर्म लगती है औरों के सामने तो कहना ही क्या! (ग) (क्विप् प्रत्यय) १ शरीर को शान्ति देनेवाली शरत्कालीन चाँदनी को कौन आँचल से रोकता है! २ मैं महल पर रहूँगा वहाँ आकाश दे देना। ३ यह विषाद ही विश्वास दिलाता है कि तुम झूठ बोल रहे हो। ४ पार्वती ने अपनी करुण-कथा सुनाकर अनेकों बार सखियों को रुलाया। ५ वह मुझे पिता मानता है। ६ मैं किसके सिर दोष मढ़ूँ। ७ वह फिर अपने काम में लग गया। ८ विद्या धन से बढ़कर है। ९ अपना समाचार पत्र में लिख दो। १ वह अभी तक अपने आपको नहीं सँभाल पाया। ११ होनहार बिरवान के होत चीकने पात। १२ उसने किसी तरह आठ वर्ष बिताए। १३ उसने दासी को रानी बना दिया। १४ मौका हाथ से न जाने दे। १५ सज्जनों का मेल शीघ्र ही विश्वास दिलाता है। १६ प्रतिज्ञा केवल उत्सुकता को शान्त करती है। १७ बड़े कुल को भी आशा का बन्धन सहन करा देता है। १८ दिन चन्द्रमा को जितना कुमुदिनी को नहीं। (घ) (शाकादि-वर्ग) हरा साग और सलाद स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभप्रद है। अनेकों साग हैं किसी को कोई अच्छा लगता है, किसी को कोई। कुछ लोग बथुआ-बड़बड़कर आलू, टमाटर, गोभी मटर, बैंगन, मिण्डी तिन्डा लौकी कद्दू, गाजर मूली शलगम, परवल, पालक, सरसों मेथी, फरासबीन करेला और कच्चा का साग खाते हैं। कुछ लोग दो-तीन साग को मिलाकर बनाते हैं या एक ही समय दो-तीन साग बनाते हैं।

संकेत—(क) २. संभावनया। (ख) १ सर्वप्रकारेण यदा कामान् आत्मन्येवात्मना तुष्टः। २ जहीहि। ३ अकार्यम्, सदृशं कुलस्य। ४ तव धैर्यं न हीयते। ५ विनेति। ६ त्रिलोकेऽपि सार्धपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्। ७. अन्योन्यस्यापि किमुत किं पुनरन्येषाम्। (ग) १. शरीरनिर्वापणिकाम् पदाम्नेव वारयति। २. मां प्रासादे स्थापय। ३ प्रत्ययति। ४ निष्पाद्य अरोदयत्। ५. मां पितरि मन्यते। ६. ६ दोषमस्मै स्थापयामि। ७. मनो स्वस्थयत्। ८ अभिरिच्यते। ९. इदं वचनमारोदयत्। १ न मां पापेन दर्शयितुमर्हति आत्मानम्। ११ आदेह चन्ति हि मत्स्यानामनन्तरमप्सु जातानि निमित्तानि। १२ तेनाद्य परिसमिताः समा दश त्रिंशत्। १३ महिषीपदं प्रापितः। १४. न अवसन्नमतिवाहयेत्। १५. विश्रम्भयत्वाद्धि सतां हि योगः। १६ औत्सुक्यमात्रमवसादयति। १७. आशाबन्धः सहयति। १८. स्थापयति चन्द्रः। (घ) पर्णोत्सर्गः संमिश्रं शाकमेवं वा कुर्वन्ति।

शब्दकोष–८५ + २५=८७५] अभ्यास ३५ (व्याकरण)

(क) करमर्दकः (करौंदा), पलाण्डुः (प्याज), लशुनम् (लहसुन), तिन्तिडीकम् (इमली), आर्द्रकम् (अदरक), व्यंजनम् (मसाला), मरीचम् (मिर्च), जीरकः (जीरा), धान्यकम् (धनिया), शुण्ठी (सोंठ) हिंगु (हींग), हरिद्रा (हल्दी), लवणम् (नमक), सैन्धवम् (सेंधा नमक) रौमकम् (सांभर नमक), पिप्पली (पीपर), एला (इलायची), मधुरा (सौंफ) व्यंगम् (लौंग), दारुचक्रम् (दालचीनी), त्रिपुटा (छोटी इलायची), खादिरः (कत्था), चूर्णं (चूना) पूगम् (सुपारी), ताम्बूलम् (पान)। (२५)

व्याकरण (करिन्, पचिन् भू, मा, सन् प्रत्यय)

१ करिन् और पचिन् शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ११, १४)

२ भू और मा धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५२, ५१)

नियम १९९—(धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा) इच्छा करना या चाहना अर्थ में धातु से सन् (स) प्रत्यय लगता है। सन् के विषय में ये बातें स्मरण रखें:—(क) इच्छा करने वाला वही व्यक्ति हो तभी सन् होगा। (ख) सन् प्रत्यय ऐच्छिक है, अतः सन् न लगाना चाहें तो तुमुन् (तुम्) प्रत्यय करके इच्छ् या अभिलष् आदि धातु का प्रयोग करें। जैसे—पठितुमिच्छति। (ग) इच्छा करनेवाली क्रिया कर्म के रूप में होनी चाहिए, अन्य कारक के रूप में नहीं। करण में होने से यहाँ नहीं होगा—अहमिच्छामि पठनेन मे शानं वर्धेत। (घ) सन् का स शेष रहता है। सन् प्रत्यय करने पर धातुओं को द्वित्व होता है, जैसे भिद् प्रकार में। सेट् धातुओं में स से पहले इ लगाकर 'इस' हो जाएगा। अनिट् में केवल 'स' लगेगा यह स कहीं-कहीं पर सन्धि-नियमों के कारण ष या ष हो जाता है। (ङ) धातुओं को द्वित्व करने पर अभ्यास अर्थात् प्रथम अंश में धातु में अ होगा तो उसे इ हो जाएगा। (च) धातुओं के रूप इस प्रकार चलेंगे:—(१) परस्मैपदी के रूप परस्मै में और आत्मने के आत्मने में, उभयपदी के उभयपद में। (२) कृद्, क्रीड् कथ् विधिलिङ् में परस्मै में मध्यशिषत् आत्मने में सेव् के तुल्य। (३) भिद् प्रकार में धातु + आम् + इ, भू या अस्। (४) इडन्त में परस्मै में ईत् इयाम्, इयुः आदि और आत्मने में इय, इयाताम् इयत आदि। (५) आशीर्लिङ् में पर में यात्, यास्ताम् आदि, आत्मने में इषीष्ट आदि। (६) अन्य प्रकारों में भू या सेव् के तुल्य। जैसे—गम्>जिगमिषति, जिगमिषतु, अजिगमिषत्, जिगमिषेत् जिगमिषिष्यति जिगमिषाञ्चकार, जिगमिषिता अजिगमिषीत्, जिगमिष्यात्, अजिगमिष्यत्। (छ) सन्नन्त प्रयोगवाली प्रचलित धातुएँ ये हैं:—दा>दित्सति, धा>धित्सति पा>पिपासति, चि>चिकी षति चि>चिचीषति, भू>बुभूषति, कृ>चिकीर्षति, हृ>जिहीर्षति, मृ>मुमूर्षति तृ>तितीर्षति मुच्>मुमुक्षते, प्रच्छ्>पिप्रच्छिषति, भुज्> बुभुक्षते, पच्>पिपक्षति, क्षिप्>चिक्षिप्सति, पत्>पित्सति पिपतिषति अट्>अट-टिषति, पद्>पित्सते भिद्>बिभित्सति, बुध्>बुबोधिषति मान्>मीमांसते, इन्> जिघांसति आप्>ईप्सति स्वप्>सुषुप्सति रभ्>रिप्सते, लभ्>लिप्सते, गम्>जिगमिषति, दृश>दिदृक्षते, ग्रह्>जिघृक्षति।

अभ्यास ३५

संस्कृत बनाओ—(क) (करिन्, पथिन्) १ हाथी ने इस पेड़ की डाल तोड़ दी। २ साक्षी उपस्थित नहीं हुआ (साक्षिन्)। ३ अतिस्नेह में अनिष्ट की शंका बनी रहती है (पापशंकिन्)। ४ अगले रविवार को आप हमसे मिलिएगा (आगामिन्)। ५ सहाध्यायियों से प्रेमपूर्वक व्यवहार करो (सहाध्यायिन्)। ६ शेर गरज की ध्वनि पर हुंकार करता है गीदड़ों की आवाज पर नहीं (केसरिन्)। ७ कम से कम तीन गवाह होने चाहिएं (साक्षिन्)। ८ गुणवानों के गुण पूजा के योग्य हैं चिह्न या आयु नहीं (गुणिन्)। ९ रथी पैदल से युद्ध नहीं करता (रथिन्)। १ ऐसा परोपकारियों का स्वभाव ही होता है। ११ हाथी के सिर गीदड़ नहीं होते (हस्तिन्)। १२ मायावीन मनुष्य की और तृण की समान गति होती है (अग्निन्)। १३ वे मूल तिरस्कार को प्राप्त होते हैं जो धूर्तों से धूर्तता नहीं करते (मायाविन्)। १४ स्वाभिमानियों का स्वाभिमान ही धन होता है (मानिन्)। १५ तुम्हारा मार्ग शुभ हो। १६ वीर लोग न्याय के मार्ग से जरा भी विचलित नहीं होते। (स) (मृ, मा) १ अपना पेट कौन नहीं पालता। २ उसने पृथ्वी की पुत्र को धारण किया। ३ राजाओं के पास चुगलखोर रहते हैं। ४ सदा स्वच्छ वस्त्रों को धारण करे। ५ व्यापारी हाथ से कपड़े को नापता है (मा)। ६ पटवारी ने जंजीर से खेत नापा। (ग) (सन् प्रत्यय) १ विद्यार्थी पाठ पढ़ना चाहता है, खेल खिलना चाहता है धर्म जानना चाहता है, धन देना चाहता है धर्म करना चाहता है जल पीना चाहता है, शत्रु को जीतना चाहता है, फूल इकट्ठा करना चाहता है (संचि) गुरुवचन सुनना चाहता है कार्य करना चाहता है (इ), पाप को छोड़ना चाहता है (हा), प्रश्न पूछना चाहता है (प्रच्छ) फल खाना चाहता है (भुज्), धन पाना चाहता है (लभ्) और मित्र को देखना चाहता है। २ गुरुओं की सेवा करो। ३ वह छोटी नौका से समुद्र को पार करना चाहता है। (घ) (धात्वादि) १ कुछ लोग साग और दाल में अधिक मसाला पसन्द करते हैं। वे दाल में हल्दी, धनिया, नमक के साथ ही प्याज लहसुन इमली और लाल मिर्च भी डालते हैं। साग में भी मसाला डाला जाता है। २ कुछ लोग चाय में भी काली मिर्च दालचीनी और खाँड या शक्कर डालते हैं। ३ पनवारी पान में चूना और कत्था लगाता है बाद में छोटी इलायची और सुपारी डालकर देता है। पान खानेवाले पानदान में पान रखते हैं।

संकेत—(क) १ त्वगुत्पत्तिता। २. नोपस्थास्यौ। ३ अतिस्नेहः पापशंकी। ४ आगामिनि भवता इष्टव्या वयम्। ५ अनुकूलते वर्तध्वम् यदि गोमायुरवात् केसरी। ७. त्रयस्तः साक्षिणो देयाः। ८ गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः। ९ न रथिनः पादचारं मर्दयन्ति। १ परोपकारिणाम्। ११ भवन्ति गोमायुसङ्काः न हस्तिनः। १२ अग्निनो मान-हीनस्य तृणस्य च समा गतिः। १३ अवन्ति ते मूलविनाशमायान्ति मायाविनः ये न मायिनः। १४ स्वाभिमानेधनाः हि मानिनः। १५ शिवास्ते सन्तु पन्थानः। १६ न्यायात् पथः। (ग) १ विवक्षति। २ विजिगांसन्ति। ३ पितुमत्यं भातु पितरि शिशीलाः। ४ शिक्षयात्। ६. ऐक्षत्काः शंखकाभिः, अमापत्। (ग) १ जिघित्सन्ति विचिकित्सति। २. शुश्रूषत। ३ जहीषेत निर्वापति। (घ) १ लहेव रक्तमरीचम्, निधिरन्ति। शाकमपि अवसिञ्चते (अवसेक)। ३ शाम्बूकिका जिघ्रति विधिम्य शाम्बूकरङ्कि।

शब्दकोष-८७५ + २५ = ९] अभ्यास ३६ (व्याकरण)

(क) कृषिः (स्त्री , खेती), कृषीवलः (किसान), वसुधा (पृथ्वी), मृत्तिका (मिट्टी), उर्वरा (उपजाऊ), ऊषरः (ऊसर), शाद्वलः (घास-श्यामल), क्षेत्रम् (खेत), सीता (जुती भूमि) लाङ्गलम् (हल), पालः (हल की फाल), खनित्रम् (फावड़ा, कुदाल), दात्रम् (दरांती) खोडम् (ढेला), खोडभेदनः (१ मूँगरी, २ पटरा, ३ मैंड़ा), कोटिलः (घुर्मुस), तोत्रम् (चाबुक), कपिलः (बाज), पलालः (पराल), मुसम् (मूस), मूषः (मूसी), खादम् (खाद), खलम् (खलिहान) खनित्रवम् (ट्रैक्टर), कृषिचन्त्रम् (खेती के औजार)। (२५)

व्याकरण (दाशद् चत्रमस् वा, यङ , यङ्लुक्, नामधातु)

१ दाशद् और चत्रमस् के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द १५, १८)

२ वा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५४)

नियम २००—(धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्) अर्थवान् से प्रारम्भ होनेवाली एकाच् धातु से यङ् प्रत्यय होता है बार-बार या अधिक करने अर्थ में। यङ् प्रत्यय के लिए ये नियम स्मरण रक्खें—(क) यङ् का य शेष रहता है। सभी धातुओं के रूप केवल आत्मनेपद में चलते हैं। (ख) (एकाचो) धातु को द्वित्व होता है। (ग) (गुणो यङ्लुकोः, दीर्घोऽकितः) द्वित्व होने पर अभ्यास (पूर्वपद) में अ को आ इ ई को ए, उ ऊ को ओ होगा। नी>नेनीयते भू>बोभूयते, पच्>पापच्यते। (घ) (नित्यं कौटिल्ये गतौ) गत्यर्थक धातुओं से कुटिलता अर्थ में ही यङ् होगा। अट्>आटाट्यते (कुटिल चलता है)। (ङ) (रीगृदुपधस्य च) धातु की उपधा में ह्रस्व ऋ होगा तो उसके अभ्यास में 'री' और जमेगा। वृत्>वरीवृत्यते। (च) (लुमाम्मा) दा धा, ख्या गा, पा हा सा के आ को ई होगा। देदीयते देधीयते तेस्थीयते, जेगीयते, पेपीयते जेहीयते सेसीयते। (छ) कुछ अन्य प्रसिद्ध यङन्त रूप ये हैं—कृ>चेकीयते, दिव्>देदीव्यते, भ्रम्>बंभ्रम्यते, चर्>चंचूर्यते वृत्>वरीवृत्यते, वह्>वरीवह्यते।

नियम २०१—(यङ्लुक्) (यङोऽचि च) धातु के बाद य का लोप होगा। यङ्लुक् के लिए ये नियम स्मरण रक्खें:—(क) धातु को द्वित्व होगा। धातु के रूप परस्मैपद में ही चलेंगे। (ख) अभ्यास में अ को आ इ ई को ए, उ ऊ को ओ होगा। (ग) धातु के अन्त म ञ होगा तो उसके अभ्यास में री या रि लगेगा। (घ) यङ्लुक् के प्रयोग साहित्य में बहुत कम मिलते हैं। (ङ) ति सि, मि से पूर्व विकल्प से इ लगेगा। जैसे—भू>बोभवीति, बोभोति। वृत्>वरीवर्ति वृ>वरीवर्ति गम्>जंगमीति।

नियम २०२—(नामधातु) नामधातु में ये प्रत्यय मुख्यतया होते हैं—(क) (सुप आत्मनः क्यच्) अपने लिए चाहने अर्थ में क्यच् (य) प्रत्यय। परस्मैपद होगा। आत्मनः पुत्रमिच्छति>पुत्रीयति। कवीयति अग्नायति उदन्यति। (ख) (उपमानादाचारे) उसके तुल्य आचरण करने में क्यच् (य)। शिष्य को पुत्रवत् मानता है—पुत्रीयति शत्रम्। (ग) (काम्यच) अपने लिए चाहने में 'काम्य' होता है। पुत्र काम्यति। (घ) (कर्तुः क्यङ्) उसके तुल्य आचरण करने में क्यङ् (य) प्रत्यय। आत्मनेपद होगा। कृष्णवत् आचरण करता है>कृष्णायते। आढ्यायते अश्वायते। (ङ) (अलंकरोति तदाचष्टे) करना और कहना अर्थ में णिच्। सूत्र बनाता है—सूत्रयति।

अभ्यास ३६

संस्कृत बनाओ—(क) (तादृश् चन्द्रमस्) १ वैसे सुन्दर आकृतिवाले लोग सहृदय ही होते हैं (सचेतस्)। २ ऐसे बसे लोग सभाओं में आ जाते हैं और रंग में भंग करते हैं। ३ पुत्र-स्नेह कितना प्रबल होगा, जब कि भ्रातृ-स्नेह इतना प्रबल होता है। ४ नक्षत्र तारा और ग्रहों से युक्त भी रात्रि चन्द्रमा से ही प्रकाशित होती है। ५ मुनिपत्नी से अतिथ्य पाकर को देखकर किस सहृदय का मन दुःखित नहीं होगा (सचेतस्)। ६ उसने उसके पास खड़े हुए एक वृद्ध पुरुष को देखा (प्रत्यस्)। ७ यह दुर्वासा (दुर्वासस्) के शाप का ही प्रभाव है। ८ अपने शिष्यवालों का (सुमनस्) भले और बुरों पर समान प्रेम होता है। (ख) (दा धातु) १ पढ़ाई पर ध्यान दो। २ भगवती पृथ्वी मुझे अपने अन्दर समा लो। ३ क्या राजा ने तुम्हें यह अँगूठी इनाम में दी है। ४ घोड़ा स्वान देना। ५ ये कन्याएँ पौधों को जल दे रही हैं (दा)। ६ उसने स्वामी के लिए प्राण दे दिए। ७ अँधेरे चित्र में भी सकुन्तला को नहीं देखने देता। ८ वस्त्रों को धूप में सुखाता है। ९. गुरु शिष्य को आज्ञा देता है। १ वह खेल में मन लगाता है। ११ उसने प्रत्युत्तर दिया। १२ उसने घर में आग लगा दी। १३ उसने यह वचन कहा। १४ हंस दूध को ले लेता है और उसमें मिले हुए जल को छोड़ देता है। १५ उसने सब लोगों का मन अपनी ओर खींच लिया (आदा)। १६ उसने निर्धनों को वस्त्र दिए (प्रदा)। (ग) (यङ्, नामधातु) १ बालक बार-बार हँसता है रोता है देखा चलता है नाचता है गाता है खाना खाता है, पानी पीता है काम करता है घूमता है, प्रश्न पूछता है। २ (यङ्लुक्) वह बार-बार क्रय करता है घर आता है विद्यालय में रहता है साँप को मारता है और पुस्तक को देता है। ३ वह पत्नी-सहित तपस्या करता है। ४ वह अपने कुल को बदनाम करता है। ५ वह शिष्य को पुत्रवत् मानता है। ६ वह कृष्णवत् आचरण करता है। (घ) (कृषिवर्ग) भारत कृषि-प्रधान देश है। किसान उपजाऊ भूमि को हल से जोतता है, जुती हुई भूमि के ढेलों को मैदा चलाकर सम कर देता है, बाद में उसमें बीज बोता है, अंकुर आने के बाद सफाई करता है और अनावश्यक घास आदि को निकाल देता है। खेती तैयार होने पर दराँती से बालों को अलग कर लेते हैं या जड़ से ही काटते हैं। भुस और भूसी गायों बैलों को दी जाती है। आजकल ट्रैक्टरों से भी खेती की जाती है।

संकेत—(क) १ आकृतिविशेषा सचेतसः। २ बालकस्वाभावो बालान्, रङ्गभङ्गं विदधति। ३ कीदृश स्नेहवरस्नेहः, ईदृश्। ४ संकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः। ५. सचेतसः करुण मनो न दूयते। ६. स्वितं प्रबलतम्। ७. दुर्वासस आप एव प्रभवति। ८ सुमनसां प्रीतिर्विषमदक्षिण्येषु समा। (ख) १ अवधत्स्व। २ देहि मे विवरम्। ३ प्रतिग्रह। ४. अवधारयत्। ५. बालपादपेभ्यः। ६. प्राणान् अदात्। ७. वात्सल्यं न दरदर्शयेमां इत्युं चित्रपटेऽपि। ८ आतपे शोषयति। ९ मनो दधाति। १०. पाठयत् अदात्। ११ इति वाचमाददे। १४ हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः। १५. मन आकर्षत्। (ग) १ बालकः आहस्यते रोदिति बाल्यते नर्तीभूयते खेलीयते, पीडुभूयते पेलीयते चेष्टीयते चंक्रम्यते, मनः परीक्षीयते। स कार्यं चरीकरीति जंघन्यते चरीकरीति जागर्तीति। २ उपलीक्ष्य तपस्यति। ४ मलिनयति। (घ) कर्षति सीताय सलीकरोति बीजानि वपति क्षेत्रपरिष्कारम् संरक्षार्थं तत्पात् तृणानि मूलत एव।

शब्दकोष-१ + २५ = १२५] अभ्यास ३७ (व्याकरण)

(घ) सुहृदन्तिन् (भाग्यवान्) सहृदयः (सहृदय), निष्णात (विद्वान्), प्रतीक्षा (पूछ), यद्यान्यः (यानी) हृष्टमानस (प्रसन्नचित्त), विमनस् (दुःखित हृदय), उत्कः (उत्कण्ठित), विभुत (प्रसिद्ध), स्निग्ध (प्रेमी), आयत्तः (अधीन), आचूत (पेड़), लुम्पा (डोमी), विनीतः (नम्र), धृष्ट (ढीठ), प्रत्याख्यात (ठोड़ा हुआ), विप्रकृतः (तिरस्कृत), विप्रलब्ध (वंचित), आपन्नः (आपत्तिग्रस्त), दुर्गतः (दीन), कान्तम् (सुन्दर), अभीक्ष्णम् (मनोहर), निकृष्ट (नीच) पूतम् (पवित्र), संख्यातम् (गिना हुआ)। (२५)

व्याकरण (त्रिषस् पुंस्, घा धातु, क्त प्रत्यय)

१ त्रिषस् और पुंस् शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द १६ १७)

२ घा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५५)

नियम २०३—(क्तक्तवत् निष्ठा, निष्ठ) भूतकाल अर्थ में धातु से क्त और क्तवतु ये प्रत्यय होते हैं। दोनों का नकार त और तवत् शेष रहता है। 'त' प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य में होता है। तवत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में। 'त' प्रत्यय करने पर सेट् (इ-वाली) धातुओं में इ लगेगा अनिट् (इ-नहीं वाली) धातुओं में इ नहीं लगेगा। धातु को गुण या वृद्धि नहीं होती। संप्रसारण होता है।

नियम २०४—(क) क्त (त) प्रत्यय जब सकर्मक धातु से कर्मवाच्य में होगा तो कर्म में प्रथमा, कर्ता में तृतीया और क्रिया का लिंग वचन और विभक्ति कर्म के अनुसार होगी, कर्ता के अनुसार नहीं। (ख) अकर्मक धातु से क्त (त) प्रत्यय होगा तो कर्ता में तृतीया होगी। क्रिया में नपुंसक एक ही रहेगा। (ग) 'त' प्रत्ययान्त क्रिया-शब्द कर्म के अनुसार पुंल्लिंग होगा तो रामवत्, स्त्रीलिंग होगा तो रमावत्, नपुंसक होगा तो फलवत् चलेंगे। जैसे—मया पुस्तकं पठितम्, पुस्तके पठिते, पुस्तकानि पठितानि। मया ग्रन्थः पठितः ग्रन्थौ पठितौ ग्रन्थाः पठिताः। मया बालः दृष्टः बालौ दृष्टौ। तेन हसितम्।

नियम २०५—(गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्) इन धातुओं से क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य में भी होता है:—जाना चलना आदि की धातुओं, अकर्मक धातुओं तथा श्लिष्, शी स्था, आस्, वस्, जन्, रुह् इन धातुओं से। अतः कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया। जैसे—सः गतः। स ग्रामं प्राप्तः। स भूतः। हरिः रमामभिश्लिष्टः। स शेषमधिशयितः। वैकुण्ठमधिष्ठितः। शिवमुपाश्रितः। अजः उत्पन्नः। रामममनुजातः। दृष्टमाकाशम्। स क्षीणः।

नियम २०६—(मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च) मन्, बुध्, पूज् तथा इन अर्थोंवाली अन्य धातुओं से क्त प्रत्यय वर्तमान काल अर्थ में होता है। कर्म में पढ़े होगी। यथा मतः, बुद्धः, पूजितः।

नियम २०७—(नपुंसके भावे क्तः) कभी-कभी क्त प्रत्यय नपुंसक लिंग भाव वाचक शब्द बनाने के लिए होता है। जैसे—उक्तम् (कहना), शयितम् (सोना), हसितम् (हँसना) गतम् (चलना) स्थितम् (रहना)। कस्येदमाकूतमितम् (किसका चित्र है।)

अभ्यास ३७

संस्कृत बनाओ—(क) (विद्वस् पुंस्) १ विद्वान् ही विद्वानों के परिश्रम को समझता है। २ विद्वान् को भी दुष्ट लक्ष्मी दुर्बल बना देती है। ३ विद्वानों के मुँह से बात सहसा बाहर नहीं निकलती और जो निकल जाती है वह फिर लौटती नहीं है। ४ जिसके पास पैसा है वही संसार में पुरुष है। ५ शत्रु भी जिसके नाम का अभिनन्दन करते हैं वही पुरुष पुरुष है। ६ वह पुरुषों के द्वारा वन्दनीय है। ७ दुष्ट स्त्री पुरुष पर विश्वास नहीं करती (विश्वस्)। (ख) (या धातु) १ सहसा क्रम न करो। २ मुझे श्रेष्ठ लक्ष्मी दो। ३ हे माता तू दुर्जनों को भी पालती है। ४ कौंच सुवर्ण के संग से मरकत की कान्ति को धारण करता है। ५ इधर ध्यान दो। ६ कान पर हाथ रखता है। ७ कानों को बन्द करता है (अपिधा)। ८ खिड़की बन्द कर दो। ९ हे अर्जुन इस शरीर को क्षेत्र कहा जाता है (अभिधा)। १ आप इधर ध्यान दीजिए (अवधा)। ११ अपने से बलवान् शत्रु से सन्धि कर ले (संधा)। १२ उसने धनुष पर बाण रक्खा (संधा)। १३ नए कपड़े पहनो (परिधा)। १४ वह गुरु पर श्रद्धा करता है (श्रद्धा)। १५ वह बाँह का तकिया लगाकर सोता है (उपधा)। १६ शकुन्तला को छोड़कर मुझे क्या मिलेगा (अभिसंधा)। १७ वैदिक वाङ्मय का अनुसन्धान करो (अनुसंधा)। १८ प्रायः भाग्य ही सबका शुभ और अशुभ करता है (विधा)। १९ मैं धनुष पर विजय की आशा को रखता हूँ (निधा)। २ मेज पर पुस्तकें रख दो (निधा)। २१ जल में भूमि पर धूल को क्षण क्षिपा (निधा)। २२ मुझमें मन लगाओ (आधा)। २३ राक्षसों को छाया मद उत्पन्न करती है (आधा)। (ग) (विशेषण) १ भाग्यवान् सहृदय दानी और विद्वान् लोग तिरस्कृत वंचित, व्यापत्तिग्रस्त और दीन को कुछ नहीं देते हैं। २ निर्धन व्यक्ति भी सुन्दर अभीष्ट वस्तुओं को पाकर प्रसन्नचित्त होता है और उन्हें न पाकर खिन्न होता है। ३ पेटू पराधीन होता है, नम्र प्रसिद्ध होता है, शीघ्र तिरस्कृत होता है प्रेमी विनीत होता है और उत्कण्ठित खिन्न होता है। (घ) (क प्रत्यय) १ मैंने रघुवंश के चार सर्ग पढ़े। २ उसने बनी ठनी स्त्री देखी। ३ वह आसन पर बैठा (अधिष्ठा)। ४ वह छत पर चढ़ा (आरुह्)। ५ यह किसका चित्र है। ६ मुझे राजा मानते हैं। ७ यह अफवाह फैल गई। ८ उसका मन कहाँ और है। ९ उसने यह बात बनाई। १ उसने उस समय बहुत वीरता दिखाई।

संकेत—(क) १ विद्वानेव विद्वत्परिश्रमम्। २ अनार्यां दुर्भगेऽरोति। ३ मुखान् बाचः, बाताश्चैत्य परावन्ति। ४ यस्यार्थाः स पुमान् कोऽपि। ५ यस्य नामभिनन्दन्ति शत्रवोऽपि स पुमान् पुमान्। ६ पुरुषान्। (ख) १ सहसा विदधीत न क्रियाम्। २ मयि धेहि। ३ दधासि। ४ धत्ते मारकतीं द्युतिम्। ५ चित्रं धेहि। ६ करं दधाति। ७ कर्णौ पिधत्ते। ८ कपाटं पिधेहि। ९ क्षेत्रमित्यभिधीयते। १ अवधत्ताम्। ११ बलीयसा रिपुणा संदध्यात्। १२ समधत्त। १३ परिधत्त। १४ अदधाति। १५ बाहुमुपधाय। १६ अभिसंधाय किं लप्स्ये मया। १७ अनुसंधत्त। १८ मनिषाप्यतैव विदधाति। १९ निदधे विजयाशां धनुषि। २० लिखितं रजः क्षिपी। २१ आधत्त। २२ अधत्त मनः। २३ मदमादधति। (घ) १ तूर्णा। २ स्वलंकृता। ३ अहं राजा मतः। ४ वार्ता प्रथिता। ५ स इदानीमसंविहितः। ६ धनि तेन समरे कृतम्। १ वीरं विक्रमम्।

शब्दकोष-१२५ + २५ = ९५] अभ्यास ३८ (व्याकरण)

(घ) प्रौढम् (प्रौढ), स्तृतम् (विस्तृत), प्रेरितम् (प्रेरित), उपचित (मोटा), अपचिता (पतला), भुग्नम् (टूटा हुआ), क्षातम् (क्षेत्र), पक्वम् (पका हुआ), क्षीण (क्षीण) सूतम् (पिसा हुआ), अवगीतः (निन्दित), उद्धान्तम् (ठगा हुआ), शान्ता (शान्त), दान्तः (जितेन्द्रिय), प्रच्छन्नः (ढका हुआ), अवसित (समाप्त), पुष्टम् (दृढ) स्तब्धम् (ढीठ हुआ), निष्पन्नम् (तैयार), स्यूतम् (सिला हुआ) क्लृप्तम् (कटा हुआ) आस्वादितम् (प्राप्त), ठक्कितम् (स्पष्ट), अवगतम् (ज्ञात), अन्धम् (खाया हुआ)। (१५)

व्याकरण्य (भेवस्, अनड्वह्, दिव्, नृत्, क प्रत्यय)

१ भेवस् और अनड्वह् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ११ ४)

२. दिव् और नृत् धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५६-५७)

नियम २०८—धातु से त तवत् (तथा क्त्वा, क्तिन्) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लो। (देखो परिशिष्ट में क प्रत्यय से बने रूप)। (क) धातु को गुण या वृद्धि नहीं होगी। सेट् में इ लगेगा अनिट् में नहीं। संधि कार्य होगा। जैसे—कृ> कृतः। हृतः, भृतः। पठितम्, लिखितम्। (ख) (रदाभ्यां निष्ठातो न) र् और द् के बाद के त को न होगा धातु के द् को भी न्। अर्थात् र्+त=र्ण। द्+त=न्न। दीर्घ ऋ को इर् होता है पृ को पूर्। गृ> गीर्ण, तृ> तीर्ण, गृ> गीर्ण, कृ> कीर्ण, संकीर्ण प्रकीर्ण, विकीर्ण। पृ> पूर्ण। भिद्> भिन्न, छिद्> छिन्न, खद्> खन्न, प्रसन्न, विषण्ण आसन्न आदि। (ग) (धुमास्थागापा) गा पा और हा के आ को ई होगा। गीतम् पीतम् (पिया), हीनम् (छोड़ा)। (घ) (घट्यर्तिसर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्चिः क्तिः) दो (दा), सो (सा) मा स्था इनके आ को इ होता है। दित अवसित, परिमित, स्थित। (ङ) (अनुदात्तोपदेश) मन्, रन् नन् गन्, क्षन्, मन्, वन् और तनादिगणी धातुओं के म् और न् का लोप होता है। पन्> पत स्पत रन्> रत, विरत, नन्> नत प्रणत गन्> गत, आगत, क्षन्> क्षत मन्> मत संमत तन्> तत, विस्तृत। (च) (अनिदितां हल) उपधा के न् का लोप होगा यदि धातु का इ इस होगा तो नहीं। बन्ध्> बद्ध ध्वंस्> ध्वस्त मंस्> ध्वस्त, दंश्> दष्ट। (छ) (अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) बन् खन्, खन् के न् को आ होगा। आत खात, खात। (ज) (वचिस्वपियजादीनां किति) वच् आदि को संप्रसारण होता है, अर्थात् य्> इ व्> उ, र्> ऋ। भू या वच्> उक्त, स्वप्> सुप्त यज्> इष्ट, वप्> उप्त वह्> ऊढ वस्> उषित ग्रह्> गृहीत स्वप्> विद्, प्रच्छ्> पृष्ट आह्> आहृत, वद्> उदित। (झ) (संयोगादेरातो) ग्रा ग्ला आदि के बाद त को न। ग्लान म्लान। (ञ) (ग्लाजिस्थश्च क्तः) ग्लै आदि २१ धातुओं के बाद त को न। ष्ठ्यै> स्त्यान स्तृ> स्तीर्ण विस्तीर्ण क्षै> क्षीण धू> धूत। (ट) (ओदितश्च) जिन धातुओं में से ओ इत्य हो उनके बाद त को न। उद्गी> उद्गीर्ण, मंज्> मग्न मुज्> मुग्न मस्ज्> मग्न मज्> मग्न, ली> लीन उद्विज्> उद्विग्न षि> सन्न ए> ईन। (ठ) इन धातुओं के ये रूप होते हैं—दा> दत्त, धा> हित, निहित निहित अन्> भृत घ्रा> घ्राण पच्> पक्व, शै> शान। सद्> सीद, वद्> उन्न अद्> जग्ध, क्षि> क्षीण, निर्वा> निर्वाण निर्वाण गुह्> गूढ, लिह्> लीढ, पै> पीन, म्लान।

अभ्यास ३८

संस्कृत बनाओ—(क) (श्रेयस्, अनड्वह्) १ अपना धर्म घटिया भी अच्छा है। २ कल्याण के विषय में किसकी स्तुति होती है। ३ सूर्य अनड्वान् (बैल) है, वह पृथ्वी को धारण करता है (नृ)। ४ बैलों से खेती की जाती है। (ख) (क्विप् नृत् धातु) १ पाशों से जूआ खेलता है। २ नाचनेवाला युवतियों के साथ नाचता है। ३ नाच संसद भवन पर भी लगाते हैं (क्विप्)। ४ एक के परिश्रम से ही घर खर्च चल जाता है। (ग) (क्त प्रत्यय) १ अच्छी बात दिखाई। २ अच्छा हमने ऐसा मान लिया। ३ व्यापारी सब हुंडी जलने से मर गया। ४ आपकी घोषणा का लोगों ने स्वागत किया है। ५ यह क्या बात शुरू की। ६ ऐसा असुख न हो। ७ राजा ने अनुचित किया। ८ शकुन्तला पेड़ों से ओझल हो गई। ९ उसको भाग्य पर छोड़ दिया। १० उसकी प्रतिज्ञा सबको विदित हो गई। ११ वह दुःख के कारण अन्ध मनस्क है। १२ मैं व्यर्थ ही रोया। १३ वे दोनों एक दूसरे का मारण पर तुले हुए हैं। १४ सारी चीजें उलट-पलट हो गई हैं। १५ सीता का क्या हाल हुआ। १६ लोकापवाद मेरे लिए बलवान् है। १७ घर में आग लग गई। १८ घर में आग लगाने पर हँसना लोहना कहाँ तक उचित है। १९ राजा होश में आया। २० तुम्हारा तर्क उचित है। २१ तूने स्वयं अपना सत्यानाश किया है। २२ अब मेरी हालत ठीक है। २३ बड़ी कठिनाई से जान छूटी। २४ वह सभा के लिए चल गया। २५ उन्होंने उसे अपराधी ठहराया। २६ वह बहुत प्रसन्न हुआ। २७ उसकी आँखों में आँसू भर आए। २८ मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। २९ तुमने देर कर दी। ३० मैंने तुम्हारा कभी कुछ भी बुरा नहीं किया है। ३१ यह बात आपके कान तक पहुँची ही होगी। ३२ मैंने उसे कुछ समझा लिया। (घ) (विशेषण) १ पके और कटे फल को खाओ। २ जले हुए, खाए हुए और छोड़े हुए भोजन को न खाओ। ३ आदमी पक्का हो या मोटा, उसे शान्त और दान्त होना चाहिए। ४ प्रौढ़ व्यक्ति का ज्ञान विस्तृत, सन्तुलित, परिपक्व तीक्ष्ण और अनिन्दित होता है। ५ सिले हुए वस्त्र को, तैयार भोजन को, पिघले हुए घी को ढके हुए बर्तन का, छीले हुए फल को वहाँ रक्खो।

संकेत:—(क) १ श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः। २ श्रेयसि। ३ अनड्वान् धारयति पृथ्वीम्। (ख) १ अक्षैः क्रीडन्ति। २ नर्तकः। ३ क्विप्यन्ति। ४ व्यय क्षुण्यति। (ग) १ सुन्दरमनु दृष्टिमिदम्। २ अनुमतवन्तं तावदस्माभिरेवम्। ३ सार्थवाहो दौस्थ्यवशे विपन्नः। ४ अभिनन्दितं देवस्य शासनं जनैः। ५ किमिदमसुखमवसितम्। ६ प्रतिहतमनसंधकम्। ७ अनुचितमाचरितम्। ८ अन्तर्हिता वनराज्या। ९ स दैवायीकृतः। १० प्रख्यातो गता। ११ सन्तापेन अहहदयः। १२ अरण्ये मया चरितम्। १३ परस्परवधोद्यतौ तौ। १४ सर्वं विपर्यस्तं जातम्। १५ किं कृतम्। १६ लोकवाद् गरीयो मे। १७ अलम्मुखवतं गेहम्। १८ सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युपमं कीदृक्। १९ प्रकृतिमापन्नः। २० उपपन्नः। २१ त्वया स्वहस्तेनागारम् दलितम्। २२ कष्टं मया स्वात्मन्। २३ कष्टं कष्टमपि मुक्तः। २४ अन्तर्निहृत्यै गतः। २५ स्वातिनः। २६ अवगतस्य पतां दीर्घमिवितः। २७ तरसा सवसे वडवाग्ने जाते। २८ अनुसरमाणत्व वः। २९ देवायितमस्य कृतः। ३ निर्मितं कृतम्। ३१ इदं भवतः श्रुतिविषयमापन्नमेव। ३२ किमपि लाघवोपगः कृतः।

शब्दकोष-१५ + २५ = १७५] अभ्यास ३९ (व्याकरण)

(क) अद्रिः (पर्वत), प्रावन् (पत्थर), शिखम् (चट्टान), शृंगम् (चोटी), प्रपातः (झरना) उत्सः (सोता), निर्झरः (नाला), दरी (दर्रा), अधित्यका (पठार), गह्वरम् (गुफा) खनिः (खान), उपत्यका (तराई, भाकर), अधित्यका (पठार), निकुंजः (झाड़ी), हिमशिलः (ग्लेशियर)। (१५)। (ख) कुप् (गुस्सा करना), द्रुह् (द्रोह करना), क्षम् (क्षमा करना), दम् (दबाना) तृप् (सन्तुष्ट होना), तुष् (तुष्टि होना), व्यध् (बींधना), शुष् (सूखना), स्विद् (खिन्न होना), हृष् (प्रसन्न होना)। (१)।

व्याकरण (मति, नप्तृ, भ्रम् कक्षु प्रत्यय)

१ मति शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ४२)

२ नप्तृ, भ्रम् धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५८ ५१)

नियम २०९—कक्षु प्रत्यय भूतकाल में होता है। इसका वकार लोप रहता है। यह कर्तृवाच्य में होता है, अतः कर्ता के तुल्य क्रिया शब्द के लिंग, विभक्ति और वचन होंगे। कर्ता में प्रथमा, कर्म में द्वितीया क्रिया कर्ता के तुल्य। धातुओं के रूप क प्रत्यय के तुल्य ही बनेंगे। नियम २०८ पूरा इसमें भी लगेगा। क प्रत्यय लगाकर जो रूप बनता है, उसीमें 'वत्' और जोड़ दें। जैसे—कृ> कृतः, वकार में कृतवत् होगा। वत् प्रत्ययान्त के रूप पुल्लिंग में भगवत् (शब्द २) के तुल्य चलेंगे, स्त्रीलिंग में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुंसक में जगत् (शब्द ६८) के तुल्य। क प्रत्यय लगाने पर कर्म के लिंग, वचन, विभक्ति पर ध्यान दिया जाता है, कर्ता के लिंग आदि पर नहीं। परन्तु कक्षु प्रत्यय लगाने पर कर्ता के लिंग आदि पर ध्यान दिया जाएगा, कर्म पर नहीं। जैसे—स पुस्तकम् अपठत् का कक्षु में स पुस्तकं पठितवान्। ते पुस्तकानि पठितवन्तः। सा पुस्तकं पठितवती।

नियम २१ —वीर्य, गुण वृद्धि, संप्रसारण आदि के लिए यह सारणी ठीक स्मरण कर लें। ऊपर मूल स्वर दिए गए हैं, उनके स्थान पर गुण, वृद्धि आदि करने पर ऊपर के मूल स्वर के नीचे गुण आदि क सामने जो स्वर आदि दिए गए हैं, वे होंगे। आगे भी जहाँ गुण, वृद्धि, संप्रसारण आदि कहा जाए, वहाँ इस सारणी (टेबुल) के अनुसार काम करें। (किन स्थानों पर यह कार्य नहीं होता)।

१ स्वर	अ, आ	इ, ई	उ, ऊ	ऋ, ॠ	ऌ	ए	ऐ	ओ	औ
२ वीर्य	आ	ई	ऊ	ॠ	–	–	–	–	–
३ गुण	अ	ए	ओ	अर्	अल्	ए	–	ओ	–
४ वृद्धि	आ	ऐ	औ	आर्	आल्	ऐ	ए	औ	औ

५. संप्रसारण—य को इ, व् को उ, र को ऋ, ल को ऌ।

अभ्यास ३९

संस्कृत बनाओ—(क) (मति शब्द) १ विनाश के समय बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। २ सबकी रुचि पृथक् होती है (रुचि)। ३ कुपथ पर चलनेवाले मूर्ख को दोनों लोकों में दुःख देनेवाली आपत्ति आती है (दुर्मति)। ४ एकता से कार्य सिद्ध होते हैं (संहति)। ५ गुरुओं से गौरव प्राप्त होता है, न कि मोटापे से (गुरुता)। ६ लोभ इस वस्तु की सिद्धि में विघ्न लाते हैं (सिद्धि)। ७ चेष्टा के अनुकूल ही कर्मि फलों की मनोवृत्ति होती है (वृत्ति)। ८ अधिक पैसा पास हो तो बहुत-से सम्बन्धी हो जाते हैं (ज्ञाति)। ९ अत्युन्नति के बाद बड़ों का भी पतन होता है (अत्युन्नति)। १ वह सदा चौकन्ना रहता है (प्रत्युत्पन्नमतिः)। ११ आप क्या काम करते हैं? (वृत्ति)। १२ यह बात उस समय मुझे नहीं सूझी (बुद्धि)। १३ और कोई चारा नहीं है। १४ इस प्रकार की स्त्रियाँ गृहिणी होती हैं और इससे विपरीत कुल के लिए दुःखद होती हैं (युवति, स्त्री)। १५ राम की बुद्धि तीक्ष्ण है और देवदत्त की मोटी। १६ वह देखने में सुन्दर है। १७ उसने अनुचित का पक्ष अपनाया हुआ है। १८ वह देखने में राम की बड़ाई कर रहा है पर वस्तुतः बुराई कर रहा है। (ख) (नश् भ्रम् धातु) १ देर करनेवाला नष्ट हो जाता है (विनश्)। २ अधमात्मा नष्ट हो जाता है (विनश्)। ३ मेरा मन अस्थिर भ्रम रहा है (भ्रम्)। ४ पेड़ के चारों ओर चक्कर खा रहा है (भ्रम्)। ५ अधीनस्थ व्यक्ति बड़े कामों में जो सफल हो जाते हैं वह बड़ों की कृपा ही समझनी चाहिए (सिध्)। ६ सज्जन पापी पर क्रोध करता है (क्रुध्) दुर्जन से द्रोह करता है (द्रुह्) निरपराध को क्षमा करता है (क्षम्)। ७ राम बाण से मृगों को बींधता है (व्यध्) शत्रुओं को दबाता है (दम्) और रावण के विजय से प्रसन्न होता है (हृष्)। ८ दुर्जन थोड़े-से सन्तुष्ट होता है (तुष्)। ९ कुलमर्यादा के नाश से कुलीन स्त्रियाँ विगड़ जाती हैं (दुष्)। १ ग्रीष्म ऋतु में तालाब सूख जाता है (शुष्)। (ग) (अभ्यस्त) १ तुमने मेरा अभिप्राय ठीक समझा। २ उसके खाना खा लेने पर मैं उसके पास गया। ३ पहाड़ दिखाई दिया। ४ पत्थर गिरे। (घ) (सेट्वर्ग) १ पहाड़ की चोटी से झरना बहा। २ घाटी में सोते निकलते हैं और नाले बहते हैं। ३ पर्वत की गुफाओं में ऋषि तपस्या करते हैं। ४ पिप्पारी श्वेतेश्वर का दृश्य मनोरम है। ५ पठार की भूमि सम होती है, वहाँ वृक्षादि भी होते हैं। ६ दर्रे के मार्ग से यातायात होता है।

संकेत—(क) १. भवत्यपाये परिमोहिनी मतिः। २ भिन्नरुचिर्हि लोकः। ३. आप्तेनुगन्तव्यपथो दुर्मतिर्हि। ४. संहतिः कार्यसाधिका। ५. गुरवो यत्र पूज्यन्ते हि गुरुता न मेदसः। ६. अहो निम्नगतेः प्राणिनामर्थसिद्धेः। ७. चेष्टानुरूपिका कर्मिणामस्य वृत्तिः। ८. अल्पेनुपि विभवेषु बान्धवाः संभवन्ति। ९. अत्यारूढैर्न पतति महतामप्यपतनं किल। १० कः कृतिमुपजीवत्यार्यः। ११. किं मम कृत्ये नावसितम्। १२ तदा नाऽस्फुरत्। १३ नास्त्येव गृहिणीपदं युक्तवती यासा कुलस्त्रियः। १५. तीक्ष्णमतिः रामः, स्थूलबुद्धिः। १६. शोभनाकृतिः। १७. विपक्षपक्षिताऽत्यभवते। १८. स रामस्य व्याजस्तुतिमाचरति। (ख) १ नीर्यस्वी। २ विनाशयेत्। ४ भ्रमन्ति। ५. सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यदिधीरुक्ता संभावनागुणमवैहि तमीश्वरा याम्। ६. क्षमिने दुर्जनाय द्रुह्यति क्षमते। ७. विध्यति क्षमते हृष्यति। ८ तुष्यति। ९ प्रदुष्यन्ति दुष्कुलियः। १ शुष्यति तालाबः। (ग) १. सम्यग् निगृहीतवानसि। मुक्त वति त्वमसि। ४ प्राप्तवान्।

शब्दकोष-१७५+२५८१] अभ्यास ४० (व्याकरण)

(क) काननम् (वन), विटपिन् (वृक्ष), अवतिः (लता), मूलम् (जड़), दारु (लकड़ी), इन्धनम् (ईंधन), वल्कलिः (छाल), पर्णम् (पत्ता), किसलयम् (कोंपल), वृन्तम् (डंठल), देवदारुः (देवदार), भद्रदारुः (चीड़) किन्नूरः (बांज का पेड़), शर्मः (शमी), शाल (शाल का पेड़), आम्रकः (आमवृक्ष), करीरः (करील, बबूल), गुग्गुलुः (गूगल) लक्ष्माटकः (बिलौटा), प्रियालः (पियाल)। (२)। (ख) छिद् (काटना), अस् (फेंकना), पुष् (पुष्ट करना), शुष् (शुष्क होना), तुष् (तुष्ट होना)। (५)।

व्याकरण (नदी, अक्ष्मी शब्द, सिच् धातु प्रत्यय)

१ नदी और अक्ष्मी शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४१, ४४)

२ शम् और सिच् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ६, ११)

नियम २११—(अदः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे) (क) अद् के स्थान पर परस्मैपद में शतृ और आत्मनेपद में शानच् होता है। शतृ का अत् और शानच् का आन शेष रहता है। ये दोनों प्रत्यय क्रिया की वर्तमानता को सूचित करते हैं। हिन्दी में इनका अर्थ 'रहा है रहे हैं रहा था रहा हुआ हुए' आदि के द्वारा प्रकट किया जाता है। (ख) पाणिनि के नियमानुसार प्रथमा कारक में शतृ, शानच् का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे—स पठन् अस्ति न कहकर—स पठति ही कहना चाहिए। परन्तु प्रथमा में भी कुछ प्रयोग मिलते हैं अतः प्रथमा में भी इनका प्रयोग प्रचलित है। (ग) शतृ और शानच् प्रत्ययान्त शब्द विशेष्य या विशेषण के रूप में आते हैं। शतृ प्रत्ययान्त के लिंग वचन, कारक, कर्तृ के तुल्य होते हैं। इसके रूप पुंल्लिंग में पठत् (शब्द २४) के तुल्य चलेंगे। तुदादि की धातुओं में न् नहीं लगेगा। जैसे—दशत् दशतौ दशतः। स्त्रीलिंग में ई लगाकर नदी के तुल्य। नपुंसक में जगत् (शब्द ६८) के तुल्य। जैसे—पठन्तं रामं पश्य। पठते रामाय फलानि यच्छ। (घ) शतृ प्रत्यय में भी धातु से विकरण आदि होते हैं, अतः शतृ प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का अति सरल प्रकार यह है कि उस धातु के लट् के प्रथम पु बहुवचन के रूप में से अन्तिम इ और बीच के न् को (यदि हो तो) हटा दो। इस प्रकार शतृ प्रत्यय वाला रूप बन जाता है। जैसे भू> भवन्ति, शतृ-भवत्। अस्> सन्ति, सत्। गम्> गच्छन्ति, गच्छत्। कृ> कुर्वन्ति, कुर्वत्। दा> ददति, ददत्। (ङ) शतृप्रत्ययान्त के बाद अस् के अनुसार अस् आस् या स्य धातु का प्रयोग होता है। वर्तमान आदि में अर्थानुसार सत्, सती आदि। एवं गच्छन् आसीत्, भविष्यति वा। पठन्तौ वर्षं कुर्वन् स्यते। तं प्रतिपालयन् तस्थौ अतिष्ठत् वा। (च) शतृ-प्रत्ययान्त को स्त्रीलिंग बनाने के लिए ये नियम स्मरण रखो—(१) (ऊगितश्च) सभी जगह अन्त में ङीप् (ई) लगेगा। (२) (शपश्यनोर्नित्यम्) भ्वादि दिवादि और चुरादि की धातुओं में त् से पहले न् और लगेगा। जैसे—गच्छत्> गच्छन्ती सृजत्> सृजन्ती कथयत्> कथयन्ती। (३) (आर्धधातुकस्येड्वलादेः) अदादि की आकारान्त धातुओं तथा तुदादि की धातुओं में बीच में न् विकल्प से लगेगा। यात्> यान्ती याती, तुदत्> तुदन्ती, तुदती। (४) इसके अतिरिक्त सभी स्थानों पर न् नहीं लगेगा केवल ई अन्त में लगेगी। दन्ती, दशती, कुर्वती, कुर्वती, सेवती। (देखो परिशिष्ट में शतृ प्रत्यय)।

अभ्यास ५०

संस्कृत बनाओ—(क) (नदी, लक्ष्मी) १ नदियाँ स्वयं अपना जल नहीं पीतीं। २ नदियों में लोग तैरते हैं और उनमें मगर आदि भी रहते हैं। ३ लक्ष्मी वह है, जिससे दूसरों का उपकार करता है। ४ लक्ष्मी के प्रसाद से दोष भी गुण हो जाते हैं। ५ यह घर में लक्ष्मी है। ६ सधवा स्त्रियों का चित्त फूल के तुल्य कोमल होता है (पुरन्ध्री)। ७ जिन्होंने पुण्य कर्म नहीं किए हैं उनकी वाणी स्वच्छ और गम्भीर पदार्थवाली नहीं होती (सरस्वती)। (ख) (भवत् सिच्) १ वह कठिन परिश्रम करता है (भवत्)। २ वह तीव्रगति से वायु की ओर चला (द्रुत्)। ३ बिना कारण ही जो पक्षपात होता है उसका प्रतीकार नहीं है। यह मेरुमज्जी तन्तु है, जो प्राणियों के अन्दर से भी रहा है। ४ अच्छी सिलाई के लिए सिलाई की मशीन से वस्त्रों को सीओ। ५ इधर-उधर मत घूमो और न कूदा-फलाँग ही मनमाने फेंको (अस्)। ६ यज्ञ से वायु शुद्ध होती है (शुध्)। ७ आग लकड़ी से तृप्त नहीं होती (तृप्)। (ग) (तनु प्रत्यय) १ वह बाण चलाता हुआ दिखाई दिया। २ यौवनी योग्यता बालक होने पर भी मैं रघुवंशियों का वर्णन करूँगा। ३ वह सिर-दर्द का बहाना बना घर चला गया। ४ सूर्य के तपते होने पर अन्धकार कैसे प्रकट होगा (आविभू)। ५ नीचों से मित्रता की अपेक्षा महात्माओं से विरोध अच्छा है क्योंकि वह ऐश्वर्य को उन्नत करता है। ६ सज्जनों के सन्देहास्पद विषयों में उनके अन्तःकरण की वृत्तियाँ ही प्रमाण हैं। (घ) (द्वितीया) १ तुम्हें लोग प्रकृति कहते हैं। २ यमुना के किनारे गया। ३ उसने बड़ा दुःख दुःख। ४ राजा का हितकर्ता लोगों में बुरा समझा जाता है। ५ वह तृप्त नहीं हुआ। ६ पहाड़ की चोटी पर चढ़ा। ७ पक्षी आकाश में उड़ा। ८ चन्द्रापीड सिंहासन पर सोया। ९ दुष्यन्त इन्द्र के आधे आसन पर बैठा। १ वह सन्मार्ग पर चलता है (अभिनिविश्)। ११ कुमार्गों को धिक्कार। १२ नौकर राजा के चारों ओर खड़े हो गए। (ङ) (वन-वर्ग) वन भूमि के रक्षक हैं वे भूमि को रेगिस्तान होने से बचाते हैं। वृक्षों की उपयोगिता बहुत है। उनके पत्ते, जड़ी, छाल, कोंपल और, डण्ठल, अंकुर, फूल और फल सभी अनेकों कामों में आते हैं। कुछ पेड़ फल देते हैं और उनके फल खाए जाते हैं। कुछ पेड़ों की लकड़ी इंधन के रूप में काम आती है। पहाड़ों पर देवदार, चीड़, बाँस सरू और साल के पेड़ अधिक होते हैं। गूलर, शीशम और प्याक पर फल भी होते हैं। आबनूस की लकड़ी काली होती है और बबूल की डालें अच्छी बनती हैं।

संकेत—(क) १ अवकूपे पिबति पयोऽम्। २ पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुममृदुकुमारं हि भवति। ३ प्रकृतिरेषा साहसवृत्तकर्मणां प्रतिबन्धकारिणी सरस्वती। (ख) १ अहेतुः, न हि रोगेऽतिमात्रमन्तर्मूलादपि सीव्यति। ४ स्तूयतां भवान्। ५ क्षीयतां भवत्करिष्यम् यथेच्छम्, अस्वतः। ७ क्षुद्यताम्। (ग) १ शरत्सम्भारं कुर्वन्। २ रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्। ३ शिरोऽभ्यङ्गस्वेदनमर्दनैः। ४ वर्षासु तपति। ५ तनुत्वात् मूर्तिमत्वात्संसर्गाद् वा शिरोरोगोऽपि सभे महात्मभिः। ६ सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः। (घ) १ प्रकृतिमाजगदुः। २ कृष्णमनयोर्यमे। ३ परं विवादमत्यजत्। ४ ईश्वरां वसति कोऽहे। ५ न गुणिमात्रमपी। ६ शिखरमारोहत्। ७ दिवमुदपतत्। ८ सूक्ष्मधिक्रियते। ९ अर्थासनम् अधितस्थौ। १ अभिनिविशत सन्मार्गम्। ११ धिक् कुमार्गान्। १२ परिजनः। (ङ) वनतात् कृषिकाः, वनमुच्यते वनपालनाम्।

शब्दकोष-१ ०+२५=१ २५] अभ्यास ४१ (व्याकरण)

(क) रसालः (आम), जम्बूः (जामुन), पलाशः (ढाक) प्लक्षः (पाकड़), अश्वत्थः (पीपल), न्यग्रोधः (बड़) नीपः (कदम्ब), शाल्मलिः (सेमर) खदिरः (खैर), एरण्डः (एरंड), शिंशपा (शीशम), ताडः (ताड़), नारिकेलः (नारियल), निम्बः (नीम), मधूकः (महुआ), बिल्वः (बेल), पेनिल (रीठा), आमलकी (आँवला), विभीतकः (बहेड़ा), हरीतकी (हर्रे), पनस (कटहल), अपामार्गः (चिरचिटा), वेतसः (बेंत), अर्कः (आक), धत्तूर (धतूरा)। (२५)

व्याकरण (ङी, श्री, डो, णो, धातु, शानच् प्रत्यय)

१ ङी और श्री शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ४५, ४६)

२ डो और णो धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ६२ ६१)

नियम २१२—(क्रमः धातुशानचौ) (क) आत्मनेपदी धातुओं के अन्त के स्थान पर शानच् हो जाता है। शानच् का आन शेष रहेगा। शानच् होने पर शब्द के रूप पुंल्लिंग में रामवत्, स्त्रीलिंग में आ लगाकर रमावत्, नपुंसक में फलवत् चलेंगे। शानच् प्रत्ययान्त का लिंग वचन और कारक कर्ता के तुल्य होगा। (देखो परिशिष्ट में शानच् प्रत्यय)। (ख) शानच् प्रत्ययान्त के बाद अर्थ के अनुसार अस्, आस् धा सा का अन्त, अद् आदि का प्रयोग होगा। (ग) (आने मुक्) जिन धातुओं के अन्त में अ विकरण लगता है, वहाँ पर अ और आन के बीच में म् लगा जायगा। अर्थात् अ + आन = मान। जैसे—यजते > यजमानः। वर्तते > वर्तमानः। (घ) (ईदासः) आस् धातु का शानच् होने पर आसीन रूप होता है। (ङ) अन्यत्र आन ही चलेगा। धी > धयानः, कृ > कुर्वाणः, धा > दधानः।

नियम २१३—(क) (विदेः शतुर्वसुः) विद् के बाद शतृ को वसु विकरण से होता है। विदत्, विद्वान्। विदुषी। (ख) दिप धातु से शतृ अर्थ में और मृ से यङ् में रक्त-निचोड़ना अर्थ में शतृ होता है। दिप्यन्, मृज्यन्। (ग) अर्हं से योग्य होना अर्थ में शतृ। अर्हन्। (घ) पूङ्यजोः) पू और यज् के वर्तमान अर्थ में पवमानः यजमानः रूप होते हैं। (ङ) (शप्शानौ स्म) स्वभाव आदि अर्थों में शानच् (आन) प्रत्यय होता है। भोगं भुञ्जानः। कलहं विग्रथनः। शत्रुं निघ्नानः।

नियम २१४—(क) शतृ और शानच् क्रिया की वर्तमानता को बताते हैं। इनसे 'जब कि' अर्थ भी निकलता है। अरण्ये चरन्—जब वह वन में घूम रहा था। विवाहकौतुकं बिभ्रत एव —जब कि वह विवाह का सूत्र पहने हुए था। (ख) (अकर्तरि हेत्वोः क्रियायाः) स्वभाव और कारण अर्थ बताने में शतृ शानच् होते हैं। शत्रवो भुञ्जते पचनाः (पचन खेत-मेंड़े खाते हैं)। अर्जयन् वसति (धन कमाता हुआ रहता है)। (ग) (शप्शानौ स्म) शानच् स्वभाव आदि और शक्ति अर्थ का बोध कराता है। उदाहरण नियम २१२ (ङ) में हैं। (घ) शतृ और शानच् प्रत्ययान्त का सप्तमी में समय-सूचक अर्थ हो जाता है। जब वह सो रहा था—तस्मिन् स्वपति सति। तस्मिन् पठति सति।

नियम २१५—(लृटः सद्वा) करने जा रहा है या करनेवाला है, इस अर्थ में लृट् को परस्मै० में शतृ और आत्मने० में शानच् होता है। लृट् का रूप बनाकर शतृ, शानच् लगावें। पश्चात् क्रियापदवत् प्रयोग करें। करिष्यमाणः नगरं गमनम्।

अभ्यास ४१

संस्कृत बनाओ :—(क) (स्त्री, श्री शब्द) १ स्त्रियाँ जन्म से ही चतुर होती हैं। २ कला ही वस्तुतः स्त्रियों को सुशोभित करती है। ३ स्त्रियों में बिना शिक्षा के ही चतुरता देखी जाती है। ४ स्त्रियों का पति ही गति है। ५ स्त्रियों का भर्ता ही देवता है। ६ अथक परिश्रम ही श्री का मूल है। ७ साहस में श्री निवास करती है। ८ स्वामिभक्त भी रहे और धन भी मिले ऐसा नहीं होता। ९ सीता दशरथ के घर में लक्ष्मी के समान थी। (ख) (सो, श्रो धातु) १ शत्रु को मारता है (स्रो)। २ भीम ने दुर्योधन को मारा। ३ आज काम समाप्त हो गया (अवस्रो)। ४ वह व्यक्ति नीलकमल के पत्ते की धार से हथेली को काटने का प्रयत्न करता है (व्यवस्रो)। ५ पेड़ों को जल दिए बिना एकनाथ जल नहीं पीना चाहते थे। ६ चाकू से आदमी छीलता है (स्रो)। ७ उसने छुरी से पेन्सिल छीली। ८ कुत्ता को कसता है (स्रो)। ९ लकड़ी को काटता है (स्रो)। (ग) (श्वन्, यानवत्) १ पुत्र और शिष्य को बढ़ता हुआ प्रसन्न होता हुआ और पास करता हुआ देखना चाहे। २ सूर्योदय होने पर सोने वाले को भी जाड़ देती है। ३ मैं आराम से बैठा हूँ, आप भी आराम से बैठें। ४ बिस्तर के पास में बैठे हुए पुत्र को राजा ने देखा। ५ वह कवच पहनता है शत्रुओं को मारता है और भोगों को भोगता है। ६ मुसलमान छोटे-छोटे खाते हैं। ७ जब वह रो रहा था तभी कौआ रोटी लेकर उड़ गया। ८ धन्य धनुर्धरों को विनीत करने की इच्छा से मामों वह वन में घूमा। (घ)(द्वितीया) १ तुम्हारी सुरक्षा की शिक्षाबल मैंने आचार्य से कर दी है। २ आपके बारे में उसका प्रेम कैसा है। ३ चार महीने वर्षा नहीं हुई। ४ बालक से राजा पूछता है। ५ बालक को धर्म बताता है। ६ देवदत्त से सौ रुपया जीतता है (जि)। ७ देवदत्त का सौ रुपया चुराता है। ८ समुद्र से अमृत को मथता है। ९ बकरी को गाँव में से आम है (नी ह, हृ)। १ राजा से कुशल पूछा। ११ शोक के वश में न होओ। १२ अपने साथी से विवाह लो। १३ समय ही बलवान् को करता है। १४ सब अपना स्वार्थ देखते हैं। (ङ) (वृक्षवर्ग) उपवन में वृक्षों की सुन्दरता दर्शनीय है। वृक्षों की पंक्तियाँ लगी हुई हैं। आम कदम्ब आम्र, जामुन, ताड़, पाकड़, पीपल, वट, कदम्ब, सेम, ऐर, एरंड, शीशम ताड़ नारियल, नीम, महुआ, बेल और कटहल के वृक्ष फूलों और फलों से सुशोभित हो रहे हैं। दूर्वा, शरीफा, आँवला किसका कहा जाता है।

संकेत—(क) १. भिक्षवोऽपि। २ सुकृतमभिभूषयति शिवकमपि। ३ लोकानन्दिशिक्षा-मन्तरेण। ४ अभिवेदनं। ८. न मानिता चाभिनं करोति च शिक्षा। ९. वधं ओम। (ख) १ हन्ति। २ अर्जुनस्तिलकं कर्णस्य। ४ धारया, छेत्तुं व्यवस्यति ५ हस्तेनादाय पातुं व व्यवस्यति। ६ हन्ति। ७ अक्षात्। ८ कुक्षम् क्षति। ९ मुञ्चति। (ग) १ वर्धमानम्, मोदमानम् नमस्यन्। २ हसन्तम्। ३ तुलसीदासोऽभिवद्। ४ धनमादित्यो जनकाय। ५. शिक्षायाः निधानाय मुख्याय। ८. शिरोऽभिनत। (ङ) १. उपवनेऽवकाशेन परिदृश्यन्ते वृक्ष आम्राणं। २. अवकाशेन। ३ पङ्क्ति मालवत् न दर्शनं। ४ बालकं कथयति। ५. मूले। ६ देवदत्तं शतम् ७. तुम्बाति। ८ दूर्वा शोभमिति मन्यन्ते। ९. अवां मामत्। ११ वर्धं मा भवः। १२

शब्दकोष-१ २५+२५=१ ५] अभ्यास ४२ (व्याकरण)

(क) वकुलः (मौलश्री), कुवलयम् (नीलकमल), इन्दीवरम् (नीलकमल) कुमुदम् (श्वेत कमल), पुण्डरीकम् (सफेद कमल) कोकनदम् (लाल कमल), कह्लारम् (सफेद कमल), कुमुदिनी (कुमुद की लता) नलिनी (पद्म-समूह), शेखालिका (हार सिंगार), यूथिका (जूही) चम्पक (चम्पा) मालती (चमेली), मल्लिका (बेला), गन्धपुष्पम् (गंधा) केतकी (केवड़ा), कर्णिकारः (कनेर) वन्धूकः (दुपहरिया) कुन्दम् (कुन्द), स्वर्णयूथम् (सुवर्ण), स्वर्णक (सुवर्णलता), प्रसूनम् (फूल) मकरन्दः (पराग), जपापुष्पम् (अड़हुल), नवमालिका (नेवारी)। (२५)

व्याकरण (भिद्, वध्, कृप् पद्, तुमुन् प्रत्यय)

१ भेद् और वध् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ४७, ४८)

२ कृप् और पद् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ६४ ६५)

नियम २१६—(क) (तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्) को, के लिए अर्थ को प्रकट करने के लिए धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है। ऐसे स्थानों पर दूसरी क्रिया के लिए कोई क्रिया की जाती है। तुमुन् का तुम् शेष रहता है। यह अव्यय होता है अतः इसका रूप नहीं चलेगा। पठितुं देवितुं क्रीडितुं च विद्यालयं याति। (ख) (समानकर्तृकेषु तुमुन्) इच्छार्थक धातुओं के साथ तुमुन् होता है। पठितुं भोक्तुं वा इच्छति। भोक्तुमिच्छामि। (ग) (शक्यधृषज्ञा) शक् ज्ञा रभ् लभ् क्षम् अर्ह अस् आदि के साथ तुमुन् होता है। भोक्तुं शक्नोति, पठितुं जानाति, भोक्तुमारभते। (घ) (पर्याप्तिवचनेषु) पर्याप्त अर्थ में तुमुन्। भोक्तुं पर्याप्तः प्रवीणः कुशलो वा। (ङ) (कालसमयवेलासु) समयवाचक शब्दों के साथ तुमुन् होता है। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

नियम २१७—तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें। ये नियम तृच् (तृ), तव्यत् (तव्य) में भी लगेंगे। (क) धातु को गुण होता है अर्थात् अन्तिम इ ई> ए, उ ऊ> ओ ऋ ॠ> अर् तथा उपधा (उपान्त्य) के इ, उ, ऋ को क्रमशः ए, ओ, अर् होता है। जैसे—जि> जेतुम् भू> भवितुम्, कृ> कर्तुम्। हन्तुम्, पठितुम्। (ख) सेट् धातुओं में बीच में इ करेंगे अनिट् में नहीं। उदाहरण उपर्युक्त हैं। (ग) सन्धि नियमों के अनुसार धातु के अन्तिम प् और प् को फ्, द् को त्, ध को द् और भ् को ब् होता है। पच्-पक्तुम्, युज्-योक्तुम्, छिद् छेत्तुम्, रुध्-रोद्धुम्, लभ्-लब्धुम्। (घ) (प्रच्छप्रस्वञ्जमृजः) धातु के अन्तिम च् छ् और ज् को ष् होता है और इन धातुओं के च् या ज् को भी ष् होता है:—प्रच्छ्, भ्रस्ज् सृज्, मृज्, यज् यज, भ्राज्। ष होकर इनके ष्टुभ् वाले रूप बनेंगे। प्रष्टुम्-प्रष्टुम् प्रविष्-प्रवेष्टुम्। स्रष्टुम् यष्टुम्। (ङ) (आदेच) धातुओं के अन्तिम ए और ऐ को आ हो जाता है। आहे-आहातुम्, गै-गातुम्, त्रै-त्रातुम्। (च) धातु के अन्तिम म् को न् हो जाता है। गम् गन्तुम्, रम्-रन्तुम्। (छ) धातु के अन्तिम ह् को ध् या द् होकर ग्धुम् या ढुम् वाला रूप बनता है। दह् दग्धुम्, दुह्-दोग्धुम् दुह्-दोग्धुम्, लिह्-लेढुम्, वह्-वोढुम्। (ज) इन धातुओं के ध रूप होते हैं:—वह्-वोढुम्, पह्-पोढुम्, सह्-सोढुम्, दह्-दग्धुम्, आरह्-आरोढुम्, मह्-मोढुम्।

नियम २१८—(तुं काममनसोरपि) तुम् के म् का लोप होता है, बाद में काम या मनस् (इच्छार्थक) शब्द हों तो। वक्तुकामः, वक्तुमनाः (बोलने का इच्छुक)।

अभ्यास ४२

संस्कृत बनाओ—(क) (धेनु, बभ्रु) १ गाय को माता माना जाता है, यह उचित है, परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। इसकी सुरक्षा और पालन-पोषण का भी पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। २ यह युवक शरीर (तनु) कठिन परिश्रम के योग्य नहीं है। ३ कौआ चोंच से (चंचु) दाने चुगता है और बच्चों को सिखाता है। ४ तन्दूर में (कन्दु) पकी रोटियाँ जल्दी हजम होती हैं। ५ बभ्रु बसुर से बनाती है। ६ जामुन (जम्बु) मीठी होती है। ७ कुप्पी (कुप्) में तेल भर दो। ८ यह चम्पक (पाद्) मेरे पैर में झीक आता है। (ख) (कुप्, पद् धातु) १ राजा लोग हितवादी पर क्रोध करते हैं (कुप्)। २ गुरु शिष्य पर बहुत अधिक क्रुद्ध हुआ। ३ रक्त के दूषित होने पर शरीर में दोष कुपित हो जाते हैं। ४ उसने विदर्भ का आधिपत्य पाया (पद्)। ५ वे अपने धर्म का पालन करते हैं (पद्)। ६ दोषाचार का पालन करो (प्रतिपद्)। ७ मनुष्य दुष्ट होने पर प्राय: अपने महत्व को प्राप्त करता है (प्रतिपद्)। ८ समय मिलने पर आपका काम पूरा करूँगा (उपादि)। ९ इधर चले। १० कौन तुम्हारा अनुकरण कर सकता है (प्रतिपद्)। ११ वह यौवन को प्राप्त हुआ (प्रपद्)। १२ पूल कीचड़ हो गई (प्रपद्)। १३ कोई मुझ जैसा पैदा होगा (उत्पद्)। १४ जो पाप करेगा वह दुखी होगा (विपद्)। १५ यह तुम्हारे योग्य नहीं है (उत्पद्)। १६ पाँच को तीन से गुणा करने पर पन्द्रह हो जाते हैं (संपद्)। १७ इस शब्द का यह रूप बनता है (निष्पद्)। (ग) (तृतीया) १ चन्द्रमा के साथ चाँदनी चली जाती है और बादल के साथ बिजली। २ सज्जनों का सज्जनों से मिलकर बड़े आनन्द का होता है। ३ मृग मृगों के साथ घूमते हैं गाएँ गायों के साथ घोड़े घोड़ों के साथ मूर्ख मूर्खों के साथ विद्वान् विद्वानों के साथ। समान स्वभाव और आदतवालों की मित्रता होती है। ४ वह आँख से काना, कान से बहरा, सिर से गंजा पैर से लंगड़ा और पीठ से कुबड़ा है। ५ चोटी से हिन्दू और दाढ़ी से मुसलमान जाने जाते हैं। (घ) (तुमुन्) १ आग के अतिरिक्त और कौन जला सकता है। २ यह इस काम को कर सकता है। ३ वह घर जाने को उतावला हो रहा था। ४ दो तीन दिन प्रतीक्षा करो। ५ मेरे प्रेम को मत ठुकराओ। ६ तुम कुछ कहना चाहते हो। ७ मैं कुछ पूछना चाहता हूँ। (ङ) (पुष्पवर्ग) उपवन फूलों से सुशोभित है। तालाब में नीले-लाल और सफेद कमल खिले हुए हैं। रंग-बिरंगे फूल खिले हैं। हारसिंगार, जूही, चम्पा चमेली, केवड़ा, जपाकुसुम, मेंहदी, गुलाब, गेंदा, दुपहरिया, कैथड़ा कनेर और कुन्द के फूल शोभित हो रहे हैं।

संकेत—(क) १ मन्यते। २ इयम् अस्माभि: कठिनश्रमस्य। ३ काकान् शिक्षयते। ४ कण्ठे सूत्रम् धारयन्ति। ७. पूरय। ८ शरीरस्य वर्तते। (ख) १ हितवादिने। २. क्रुद्धम्। ३ अनुपपद्य। ४ अपद्यत। ५. पालने। ६. आचारं प्रतिपद्यस्व। ७. क्षीणात्। ८ अन्यावसरात् संसारिष्यामि। ९ अन्यार्थं प्रतिपद्यस्व १ अनुकृति प्रतिपत्स्यते। ११ प्रपेदे। १२ पङ्कार्थं प्रपेदे। १३ अन्यस्यते च मय क्षीरे सुखालक्ष्मी। १४ विपत्स्यते। १५ नैतत्त्वमुपपद्यते। १६ त्रयाणाम् पञ्च संपद्यन्ते संपद्यन्ते। १७. निष्पद्यते। (ग) १. वह नैवेद्य यदि यदीयते। २. सन्तो सहि सन्तं कथयन्ति हि पुण्येन जनेन। ३ वृथा वृष्टि: संगमनुरक्तिम। समानशीलव्यसनेषु सख्यम्। ४ अवसाय, पूर्वेण कुप्या। (ङ) १. क्रोधस्तो हृतपदार् दण्डं प्रमपति। २ तावद्विनुनक्ष्यं। ३ धारयन्त्यं। ४ दिवाल्पवासि नोदुर्वासि। ५ आहति मे प्रथमं विश्वम्। ६. अनुकरोतीति। ७. प्रपद्यताम्। (च) वातावरणीति।

शब्दकोष-१ ५ +२५=१ ७५] अभ्यास ४३ (प्राकृत)

(क) मृद्वीका (अंगूर), द्राक्षा (अंगूर) सेवम् (सेव), आम्रम् (आम), जम्बु (जामुन) कदलीफलम्(केला), नारंगम् (नारंगी, संतरा), आम्रकम् (अमरूद), दाडिमम् (अनार) जम्बीरम्(नींबू) जम्बीरकम्(कागजी नींबू), बीजपूर (बिजौरा नींबू), उदुम्बरम् (गूलर), कर्कन्धु (बेर), श्रीपर्णिका(कटहल), अमृतफलम्(नाशपाती), शुमानी (खुमानी), आलुकम् (आलूबुखारा), दुरम् (खरबूजा), मातुलुंगः (मुसम्मी), क्षीरिका (खिरनी), स्वर्णक्षीरी(सकोय) नारिकेलम् (नारियल) क्षीरिका(खीरा), कंजीरम्(ककोड़ा) । (२५) ।

व्याकरण (स्वस् मातृ मुष्, जन् कत्वा प्रत्यय)

१ स्वस् और मातृ शब्दों के रूप स्मरण करो । (देखो शब्द ४९, ५)

२ मुष् और जन् धातुओं के रूप स्मरण करो । (देखो धातु ६६, ६७)

नियम २१९—(क) (समानकर्तृकयोः पूर्वकाले) पढ़कर, लिखकर आदि 'कर' या 'करके' के अर्थ में क्त्वा प्रत्यय होता है । क्त्वा का त्वा शेष रहता है । क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए । त्वा प्रत्यय अव्यय होता है अतः इसका रूप नहीं चलता । जैसे—भोजनं खादित्वा विद्यालयं गच्छति । (ख) (अलंकृत्वो प्रतिषेधयोः) निषेधार्थक अलम् और मत के साथ धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है । जैसे—अलं दत्वा (मत दो) । पीत्वा मत (मत पीओ) । अलं हसित्वा (मत हँसो) । (देखो अभ्यास ४४ भी) । (ग) मुक्त क्त्वा और स्पष् प्रत्ययान्त कर्मप्रवचनीय के तुल्य व्यवहार में आते हैं । जैसे—उद्दिश्य, अभिकृत्य मुक्त्वा । किमुद्दिश्य (किस लिए) कर्ममभिकृत्य (काम के बारे में) ।

नियम २२०—क्त्वा (त्वा) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि क प्रत्यय से बने रूप में से त या न हटाकर त्वा लगा दो । क प्रत्यय वाले सभी नियम यहाँ भी लगते हैं । जैसे—पठ्>पठितम् त्वा में पठित्वा । इसी प्रकार लिखित> लिखित्वा गत>गत्वा, उक्त उक्त्वा कृत-कृत्वा । संक्षेप में नियम ये हैं :—(क) नियम २ ८ (क) देखो । धातु को गुण या वृद्धि नहीं होगी । सेट् में इ लगेगा अनिट् में नहीं । पठित्वा, लिखित्वा । हत्वा हत्वा, पूत्वा । (ख) नियम २ ८ (ग) देखो । भोक्त्वा पीत्वा । (ग) नियम २ ८ (घ) । दित्वा क्षित्वा मित्वा, स्थित्वा । (घ) २ ८ (ङ) । नत्वा रत्वा, नत्वा गत्वा, हत्वा, मत्वा । (ङ) नियम २ ८ (च) वक्त्वा, सक्त्वा, दष्ट्वा । (च) नियम २ ८ (ज) । उक्त्वा मुप्त्वा दृष्ट्वा, ऊढ्वा, उषित्वा, पठित्वा, पृष्ट्वा । (छ) नियम २१७ (ग) यहाँ भी लगेगा । पक्त्वा, भुक्त्वा, क्षिप्त्वा, रुद्ध्वा लभ्वा । (ज) नियम २१७ (घ) यहाँ भी लगेगा । भ्रस्ज् ज ज् को ष्ट् । भ्रष्ट्वा-भृष्ट्वा, दृज्-दृष्ट्वा, सृज्-सृष्ट्वा सज्-सृष्ट्वा । (झ) नियम २१७ (छ) । दृढ़ा ग्रन्थ या दृढ़ा वाला रूप । दह्-दग्ध्वा दुह्-दुग्ध्वा, लिह्-लीढ्वा । (ञ) दीर्घ ऋ को ईर् होगा पृ का पूर् होगा । पृ-तीर्त्वा कृ-कीर्त्वा पृ-पूर्त्वा । (ट) (उदितो वा) जिन धातुओं में से मूलरूप में उ हटा है वहाँ बीच में इ विकल्प से होगा । अतः दो रूप बनेंगे । नियम २ ८ (छ) लगेगा, अनित्वा-अन्त्वा तनित्वा-तान्त्वा, स्तनित्वा स्तान्त्वा । (ठ) (अनुनासिकस्य क्विझलोः) क्म् ह्म् श्म्, दम् भ्रम्, अम् के दो रूप होते हैं । एक इ लगाकर, दूसरा अम् को आन् बनाकर । जैसे—क्रमित्वा क्रान्त्वा भ्रमित्वा-भ्रान्त्वा । (ड)इन धातुओं के ये रूप होते हैं—दा> दत्त्वा धा>हित्वा, हा (छोड़कर)> हित्वा, भ्रस्ज्> भ्रष्ट्वा दिश्> दृष्ट्वा, देखित्वा, दिश्>स्पृष्ट्वा छेदित्वा ।

अभ्यास ४३

संस्कृत बनाओ—(क) (स्वसृ मातृ शब्द) १ वह अपनी बहन (स्वसृ) को लेकर घर आया। २. माता गौरव में सौ पिताओं से भी बढ़कर है। ३ पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाए, पर माता कुमाता नहीं होती। ४ वधू की मर्यादा (मर्यादा) से नहीं पलती है, पर देवरानी (मातृ) से अच्छी पलती है। ५ मैं मासी (मातृष्वसृ) और फूफा (पितृष्वसृ) के घर गया था। ६ लड़की विवाह के बाद दूर भेजी जाती है अतः उसे दुहिता कहते हैं। (ख) (पुंस् जन् धातु) १ पदाति पदातियों से लड़ते हैं और घुड़सवार घुड़सवारों से (सादिन्)। २ ब्रह्मा से प्रजा उत्पन्न होती है। ३ विषयों का ध्यान करनेवालों को उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से काम और काम से क्रोध होता है। ४ उसमें कोई गुण नहीं है (निर्)। ५ दुष्ट मित्रों से विमुक्त हो जाता है (विमुच्)। ६ हम अपने काम में लगाते हैं (अभियुज्)। ७ ऐसा मेरा विश्वास है (मन्)। ८ वह तुमको बहुत मानता है (मन्)। ९ मैं जबतक जीवित हूँ लड़ूँगा। (ग) (क्त्वा प्रत्यय) १ जो जन्म लेकर, पढ़कर, लिखकर सुनकर और मनन करके (मन्) भी ईश्वरभक्ति नहीं करता उसका जीवन असार है। २ बालक प्रातः उठकर, मुँह धोकर, खाना खाकर पानी पीकर पाठ याद करके (स्मृ), खेल लिखकर बस्ते में (प्रसेव) पुस्तकें रखकर विद्यालय को जाता है। ३. घर आकर खेलकर, कूदकर, हँसकर, उठकर, बैठकर, कुछ दे कर, कुछ ले कर, गाकर और नाचकर मनोरंजन करता है। ४ कुछ मिलकर हम सात आदमी हैं। ५ आप इसको उल्टा न समझें। ६ समुद्र को लाँघकर महानदी कहाँ उतरती है। ७ वह माँ बनाकर, बनावटी झगड़ा करके बोला। ८ इसका अर्थ ठीक समझकर अपना कर्तव्य निश्चित करेंगे। (घ) (तृतीया) १ इधर-उधर की मत हाँकिए, सीधी बात कहिए। २ अपव्ययी न बनिए। ३ बस इतने ही फूल रहने दो। ४ बहुत बक बक मत कीजिए। ५ ऐसे प्राण और पुरुषार्थ से क्या काम जो अपहितप्रस्तों की न रक्षा करें। ६ क्रुद्ध सर्प क्या फूल की इच्छा से कुचलनेवाले को काटता है। ७ उद्यम से ही काम सिद्ध होते हैं मनोरथों से नहीं। ८ उद्यम के बिना मनोरथ सिद्ध नहीं होते। ९ उपाय से जो चीज सम्भव है, वह पराक्रम से सम्भव नहीं। (ङ) (षष्ठवर्ग) फल स्वास्थ्य और बुद्धि को बढ़ाते हैं। शारीरिक और बौद्धिक उन्नति के लिए फलों का सेवन अनिवार्य है। यह आवश्यक नहीं है कि महँगे फल ही खाए जायँ, सस्ते फल भी उतना ही काम देते हैं। अपनी स्थिति के अनुसार फल खाएँ। ऋतु के अनुसार अंगूर अनार, सेव नासपाती घुमानी आम केला संतरा, अमरूद आमुन बेर, काफल, आड़ूखुमानी शहतूत मुसम्मी नारियल, ककड़ी खरबूजा, खिरनी और मकोय खाएँ।

संकेत—(क) १. विद्वान् सदा माता गौरवेणातिरिच्यते। २ कुपुत्रो जायेत। ३ वधूर्न-मात्रा न संगच्छते सपत्नीने। ४ दुहिता दूरे हिता भवति। (ख) १ सादिनश्च सादिभिः। २ प्रजावती विद्वान् प्रजायते संवत् संजायते। ३ पुनःस्तावत्स्त्रैव विषयते। ५. विमुच्यते। ६ अभियुञ्जामहे। ७. इति मह मन्ये। ८. मानयति प्रियं। (ग) १ प्रसेवे। ४ सर्वे मिलित्वा। ५. बनावटया संगम्य। ६ उल्लिङ्घ्य कुतस्तरति। ७ भूमिं कृत्वा कुसुमकलहं। ८ हरि गृहीत्वा भूत्वा निरपेक्षामि। (घ) १ अनर्थमनर्थेन प्रशमयेदासुमतीवताम्। ६. अलं क्लेशेनालेन। ३ अकलेनाकलि कुसुमं। ४ कृत्वात्वाधानि। ५. आपन्नत्राणविकलैः किं प्राणैः क्षीणेन वा। ६. अपरीक्ष्य कोऽन्विष्यतेऽनुष्ठा कि, पश्चा तप्यन्त इति हितिहा। ९. कण्टकवत्। (च) मयाधानि, अन्यानीति।

शब्दकोष-१ ७१+२५=११] अभ्यास ४४ (आकरम)

(क) आम्राक्षः (आड़ू), सीताफलम् (शरीफा), पुंनागम् (पुन्नाग), आम्रातकम् (१ अँबड़ा, २ अमावट) आम्रचूर्णम् (अमचूर), कर्कटिका (ककड़ी) मधुकर्कटी (खकोहरा), खर्बुजम् (खरबूजा) काश्मिरम् (तरबूज), कर्मरङ्गम् (कमरख), खर्जूरम् (खजूर) कुक्कुरम् (बड़हल) शृंगाटकम् (सिंघाड़ा), निर्बीजम् (१ बिदाना अंगूर, २ बिदाना अनार) शुष्कफलम् (मेवा) बादामः (बादाम), अक्षोटम् (अखरोट) अंकोलम् (निसोथ), काजनम् (काजू) शुष्कद्राक्षा (किशमिश), मधुरिका (मुनक्का) क्षुपाहरम् (छुहारा) मखान्नम् (मखाना) पिस्ताक्षम् (पिस्ता), पौष्टिकम् (पोस्ता)। (२५)

व्याकरण (नौ, धातु, आप् शक्, क्त्वा प्रत्यय)

१ नौ और धातु शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ५१ ५२)

२ आप् और शक धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ६८, ६)

नियम २२१—(समासेऽनभ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्) धातु से पूर्व कोई अव्यय उपसर्ग या भि प्रत्यय हो तो क्त्वा के स्थान पर ल्यप् हो जाता है। ल्यप् का य शेष रहता है। धातु से पहले नञ् (अ) होगा तो ल्यप् नहीं होगा। ल्यप् अव्यय होता है, अतः इसके रूप नहीं चलते। जैसे—आदित्य संपठ्य स्वीकृत्य। परन्तु अकृत्वा अगत्वा।

नियम २२२—ल्यप् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें :—(क) साधारणतया धातु अपने मूलरूप में रहती है। गुण या वृद्धि नहीं होती है। इ भी बीच में नहीं लगता। जैसे—विहित्य आनीय विहृत्य। (ख) (अन्तरङ्गानपि विधीन्) ल्यप् होने पर धातु को कोई भी आदेश आदि नहीं होगा। जैसे—प्रदाय, विधाय प्रहृत्य प्रस्थाय प्रक्रम्य आपृच्छ्य प्रदीप्य प्रपठ्य। इन स्थानों पर दद्, हि, धीर्, इ आदि नहीं हुए। (ग) (न ल्यपि) या ष्ठा, मा, स्था, गा, पा हा णा के आ को ई नहीं होगा। प्रदाय प्रधाय प्रगाय, प्रपाय विहाय आदि। (घ) (वा ल्यपि) गम् आदि के म् का लोप विकल्प से होता है, इन् आदि के म् का लोप नित्य। (लोप होने पर बीच में अगले नियम से त्) आगम्य>आगत्य प्रगम्प>प्रगत्य। आहत्य विकल्प, अनुमत्य। (ङ) (हस्वस्य पिति कृति तुक्) ह्रस्व अ इ उ ऋ के बाद ल्यप् से पहले त् लग जाता है। अर्थात् त्य होता है। आगत्य अधीत्य विजित्य संभृत्य प्रहृत्य प्रकृत्य। (च) दीर्घ के को ह्रस्व पू को पुर् होगा। उत्तीर्य विकीर्य प्रपूय। (छ) (क्वचित्त्वपि, प्रहिणुयात्) वच् आदि को संप्रसारण होगा। वच्>उच्य वद्>अनूद्य वस्>अभ्युष्य, स्वप्>प्रसुप्य, ह्वे>आहूय, ग्रह्>संगृह्य प्रच्छ्>आपृच्छ्य। (ज) (विरनिटि) विजन्त धातुओं के 'इ' का लोप हो जाता है। विचारि>विचार्य। (झ) (स्यपि लघुपूर्वात्) धातु की उपधा में ह्रस्व अक्षर हो तो इ को अय् होगा। विगणय्य प्रणमय्य, विरचय्य। (ञ) इनके ये रूप होते हैं—शि>प्रशीय प्राप्>प्राप्य, प्रापय्य दे>प्रदाय म्ना>प्रम्माय, म्ने>उपम्माय। मी या मि>प्रमाय। क्री>विक्रीय विक्राय।

नियम २२३—(क) (आभीक्ष्ण्ये णमुल् च नित्यवीप्सयोः) बार-बार करना अर्थ में क्त्वा और णमुल् दोनों होते हैं। ये प्रत्यय होने पर शब्द दो बार पढ़ा जाएगा। स्मृ>स्मारं स्मारम्, स्मृत्वा स्मृत्वा (याद करके)। पाय पाय-पीत्वा पीत्वा। भोज भोजं-भुक्त्वा भुक्त्वा। आर्य आर्य-भूत्वा भूत्वा। (ख) (अन्यथैवं) अन्यथा एवं आदि के साथ णमुल् होगा। अन्यथाकारम्, एवंकारम्, कथंकारं भूते।

अभ्यास ४४

संस्कृत बनाओ—(क) (नौ, वाच् शब्द) १ बड़े पुण्यरूपी मूल्य से तुमने यह शरीररूपी नौका खरीदी है। २ नौका से तीव्र वेगवाली नदी को पार करता है (तृ)। ३ चित्त, वाणी और क्रिया में सज्जनों की एकरूपता होती है। ४ वाणी उसके पीछे अर्थीगण के तुल्य चलती है। ५ लौकिक सज्जनों की वाणी अर्थ के पीछे चलती है किन्तु आदिकालीन ऋषियों की वाणी के पीछे अर्थ चलता है। ६ यह बात सिद्ध है कि ब्राह्मणों की वाणी में बल होता है और क्षत्रियों के बाहुओं में बल होता है। ७ वे लोग विद्वानों में सम्यतम गिने जाते हैं जो मनोगत बात को वाणी से प्रकट कर सकते हैं। (ख) (आप्, शक् धातु) १ इससे क्या काम होगा? २ इससे यह निष्कर्ष निकलता है। ३ पाञ्चवीं पुत्र को प्राप्त करो (आप्)। ४ ईश्वर जगत् में व्याप्त है (व्याप्)। ५ परीक्षा समाप्त हुई (समाप्)। ६ कौन इस दुष्कर काम को कर सकता है। ७ राम ही रावण को मार सका। (ग) (स्व वसुक्) १ तुम किसलिए हम पर दोषारोपण कर रहे हो। २ सत्य विषय पर गांधी जी ने लेख लिखे हैं। ३ यदि युद्ध को त्यागकर मृत्यु का भय न हो तो युद्ध को छोड़कर आना उचित है। ४ कन्या को पति-गृह भेजकर मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो गई है। ५ इस पर अधिक विचार मत करो। ६ सब लोग इष्ट वस्तु को पाकर सुखी हो जाते हैं। ७ कान बन्द करके ऐसा न हो। ८ सारी बात पत्र में लिखकर दो। ९ वह हाथ जोड़कर बोला। १० उसने लम्बी साँस लेकर पृथ्वी पर घुटने टेककर अपनी करुण कथा कही। ११ मेरी बात काटकर क्यों बोलते हो? १२ सज्जन औरों का सत्कार करके, उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके पुरस्कृत करके सुखी होते हैं। १३ दुर्जन दुर्भाव को मन में रखकर, छिपकर एकत्र होकर तिरस्कार करके दुःख देकर सुख का अनुभव करते हैं। (घ) (चतुर्थी) १ इससे मेरा काम चल जाएगा। २ उसने चावलों को धूप में डाला। ३ उन्होंने लड़ाई के लिए कमर कस ली है। ४ मैं उनको कुछ नहीं समझता। ५ जो आपको रुचे (रुच्) वह कीजिए। ६ पापियों का नाम भी न लो उससे अमंगल होगा। (ङ) (फलवर्ग) डाक्टर और वैद्य फलों का बहुत महत्व बताते हैं। फल रक्त को शुद्ध करके बल बनाता है। भोजन के बाद या तीसरे पहर फल खावे। आड़ू, शरीफा, फालसा कटहल खरबूजा तरबूज, कमरख, सिंघाड़ा निबाना सभी लाभप्रद हैं। मेवा भी पौष्टिक और रक्तवर्धक है। बादाम, अखरोट, पिस्ता काजू किशमिश मुनक्का, छुहारा, मखाना चिरौंजी और पोस्ता का भी सेवन करो।

संकेत:—(क) १ पुण्यरूपेण क्रीतवान्। २ वाचि। ४ मे वाक् वदनेवानुवर्तते। ५. अर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति। ६. वाचि वीर्यं क्षत्रियाणाम् बाहवीर्यं बाहु एव क्षत्रियाणाम्। ७. भवन्ति ते सम्यतमा विपश्चितां मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये। (ख) १. अलं किं प्राप्स्यते। २ प्राप्स्यामि। ३ आप्नुहि। ५. समाप्यत। ७ हनुमान्शक्त्। (ग) १ किमुद्दिश्य। २ सत्यमधिकृत्य। ३ यदि समरमत्यस्य। ४ नमित्य। ५. अलं विचारैः। ६. सर्वः प्राप्तिमात्रेणाभिनन्द्य। ७ विवाह्य आत्मं वापम्। ८ कृत्वा पत्रमारोप्य। ९. समाप्तीव। १ दीर्घं निःश्वस्य बाहुभ्यामवनी गत्वा। ११ अवरुध्यमानमाक्षिप्य। १२ सम्कृत्य वरीकृत्य पुरस्कृत्य। १३ मनसिकृत्य निरीक्ष्य सहत्य तिरस्कृत्य प्रतीक्ष्य। (घ) १ इदं मे वक्ष्यिष्यते कर्मसेतु। २ आतपायोत्क्षिप्तवती। ३ युद्धाय कटीरिकरासते। ४ तृणाय मन्ये। ६ कथमपि खलु कथा-मात्रकर्मणेवसे वत। (ङ) विरलतरा अपराह्णे।

शब्दकोष-११ ०+२५=११२५] अभ्यास ४५ (व्याकरण)

(क) केसरिन् (शेर), चीपिन् (चीता, चीपेण), शशादः (खरगोश), भल्लूकः (भालू) शाखामृगः (बन्दर), गोमायुः (गीदड़), वराहः (सूअर) शल्यः (सेह) वृकः (भेड़िया) कुरंगः (मृग) उलन् (ऊँट) लोमशा (लोमड़ी), महिषः (भैंसा), महिषी (भैंस) अजः (बकरा), मेषः (भेड़) कौलेयकः (कुत्ता), सरमा (कुतिया), खरः (गधा), मार्जारी (बिल्ली) वृश्चिकः (बिच्छू) गोधा (गोह), गृहगोधिका (छिपकली), सक्था (मकड़ी), कर्णजलौका (१ कानखजूरा २ गोजर)। (२५)

व्याकरण (शब्द् सरित्, वि, अश् तव्य, अनीय, केलिमर्)

१ शब्द् और सरित् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ५१, ५४)

२ वि और अश् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ७० ७१)

नियम २२४—(कृत्य प्रत्यय) (क) (तव्यत्तव्यानीयरः) 'चाहिए' अर्थ में धातु से तव्य तव्यत् और अनीयर् प्रत्यय होते हैं। तव्यत् का तव्य और अनीयर् का अनीय शेष रहता है। तव्य और तव्यत् में कोई अन्तर नहीं है। वेद में तव्यत्वाला शब्द स्मरित होगा तव्यवाला नहीं। (ख) (तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः) कृत्य प्रत्यय अर्थात् तव्य, अनीय आदि भाववाच्य और कर्मवाच्य में होते हैं। (१) जब ये कर्मवाच्य में होंगे तो कर्म के अनुसार इनका लिंग, वचन और विभक्ति होगी। कर्ता में तृतीया कर्म में प्रथमा, क्रिया कर्म के अनुसार। जैसे—मया स्वया मया अस्माभिः वा पुस्तकानि पठितव्यानि, पठनीयानि वा। (२) जब तव्य और अनीय भाववाच्य में होंगे तो इनमें नपुंसक एकवचन ही रहेगा कर्ता में तृतीया होगी। जैसे—मया हसितव्यम्, हसनीयं वा। (३) तव्य और अनीय प्रत्ययान्त के रूप पुं में रामवत्, स्त्रीलिंग में रमावत्, नपुं में फलवत् चलेंगे।

नियम २२५—'तव्य' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए देखो नियम २१७। यह नियम पूरा लगेगा। 'तव्य' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुमुन् प्रत्ययान्त धातु रूप में तुम् के स्थान पर तव्य लगा दो। जैसे—कर्तुम्—कर्तव्य पठितुम्—पठितव्य। हसितव्य, हर्तव्य।

नियम २२६—अनीय प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें। ल्युट् (अन) अच् (अ) अप् (अ) में भी ये नियम लगेंगे। (क) साधारण तथा धातु में कोई अन्तर नहीं होता। धातु मूलरूप में रहती है। बीच में इ नहीं लगेगा। गम् > गमनीय हसनीय, पठनीय। पा > पानीय, दानीय क्रयणीय। (ख) धातु के अन्तिम इ ई को ए उ ऊ को ओ ऋ ॠ को अर् गुण होगा। उपधा के इ उ, ऋ को भी क्रमशः ए, ओ, अर् गुण होगा। जैसे—जि > जयनीय भी > भयनीय, भू > भवनीय हृ > हरणीय। लेखनीय शोचनीय कथनीय। (ग) धातु के अन्तिम ए और ऐ को आ होगा। आह् > आह्वानीय गै > गानीय।

नियम २२७—(केलिमर उपसंख्यानम्) चाहिए अर्थ में केलिमर् प्रत्यय भी होता है। इसका पश्चिम रूप रहता है। पचेलिमा मापाः (पकाने योग्य)। भिदेलिमाः (काटने योग्य)।

संस्कृत बनाओ—(क) (कर्तृ कर्म क्रिया) १ यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो मन लगाकर पढ़ो। २ अपने पिता की कही हुई बात को सभी मानते थे। ३ राम (रक्ष्) से देवता की रक्षा नहीं मिटती। ४ इस में नहीं देखे का दर्शन हो जाता है और वर्णों में वर्णन है। ५ कभी किसी (किम्) की दया करो। ६ मैंने (मया) अपने दोषों के लिए क्षमा नहीं माँगी। (ख) (वि कर्तृ कर्तृ) १ दरिद्रों ने धनियों को लूटा है (वि)। २ सेठ ने धन को इकट्ठा किया है (आप), पर उसका उपभोग नहीं किया (न भुज्), इसका वह धन व्यर्थ है। ३ रणक्षेत्र का शरीर पुष्ट होता है (प्रच्)। ४ यदि हंस, तेरी चाँच सोने की है न हंसी है। ५ मैं परीक्षित हूँ (परीक्ष्) कि वह जो करता है, वही करता है। ६ आचार से धन मिलता है (उपसृज्) और अनाचार से मिलता है (अपसृज्)। ७ वह अपने कर्तव्य का निश्चय करता है (निश्चि) और उसका पालन करता है। ८ मधु को माखी बनाने के लिए फूलों को इकट्ठा करती है (सञ्चि)। अर्थ को अनर्थकारक ही पूर्व कुमारियों को नाश करता है। १ अन्तकाल पाप-पुण्यों का यहीं फल मिलता है (भुज्)। (ग) (इतरेतर) १ रात्रि में भी पूरा सोना नहीं मिलता। २ गुरुओं की आज्ञा अनुल्लंघनीय होती है। ३ इच्छानुसार काम करना चाहिए, किन्तु कहीं नहीं मिलती। ४ अन्याय तक मेरी के साथ जाए। ५ कभी भी सज्जन शोक के अधीन नहीं होते। ६ अति तन्मयता घबड़ती होती है। ७ होनहार के सम्बन्ध द्वार हो जाते हैं। ८ मित्र के कारण का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। ९ परस्त्री को नहीं देखना चाहिए। १ जो सुनना था सुन लिया जो जानना था जान लिया जो करना था कर लिया। ११ ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिए। १२ पूज्य का अपमान नहीं करना चाहिए। (घ) (चतुर्थी) १ युद्ध के लिए तैयारी करता है। २ देवदत्त को पूजा पसन्द है। ३ यज्ञदत्त राम का सौ रुपए ऋणी है (धारि)। ४ वह विद्या की इच्छा करता है (स्पृह्)। ५ मैं इस दुष्करे शिशु को चाहता हूँ (स्पृह्)। ६ यह कड़ी खंभे के लिए है यह सोना कुण्डल के लिए है और यह अस्त्र कूटने के लिए है। (ङ) (पञ्चमी) मनुष्य के तुल्य पशु भी दया के पात्र हैं। पशु हत्या घृणित कार्य है। पशु भी मनुष्य के उपकार को मानते हैं। अकारण ही बैल, भैंसा, तेंदुआ, भालू, बन्दर, गीदड़, सूअर भेड़िया मृग गाय ऐल पड़वा, मैंस भैंसा कुत्ता बिल्ली बकरा सांप या बिच्छू को नहीं मारना चाहिए।

संकेतः—(क) १ यदि त्वं वरं श्रेयोऽवाप्तुं, अधिष्ठा। २ राजकर्मणि अविरुद्धाः क्रियाः कुर्वन्त्यरिदंमाः। ४ क्षीयते। ६ क्षमस्व। (ख) २ सोऽनुभवति। ३ गात्राणि प्रचीयन्ते। ४ क्षीयते न चारक्षीयते। ५ परीक्षितोऽस्मि। ६ अपचीयते अवचीयते। ७ निश्चिनोति। ९ अर्थः अनर्थकरः प्राणहरश्च। १ पापपुण्यानीहैव फलमनुभवति। (ग) १ निशायां शयितव्यं भवति। २ अनिवार्यताः। ३ सर्वथा व्यवहारेण्यं कुतो अवधार्यताः। ४ ओदनार्थं तिलानां वपनीयाः। ५ दोहनकालः। ७ अधिकमनीयम्। ८ अतिक्रमणीयम्। ९ अनिष्टं नैव दर्शनीयम्। १ मुखं शयितव्यं यानं यातव्यम् मुखं कर्तव्यम्। ११ कर्तव्यम्। १२ अतिक्रमः नीयमि नेयानि। (घ) १ उद्यच्छति। २ ददतेऽनुमतः। ५ दुर्मनिमाचारम्। ६ कुठाय अवहन्ति यूपं दारुणम्।

शब्दकोश-१११५+२५=११५] अभ्यास ४६ (व्याकरण)

(फ) पारापतः (कबूतर), चटका (चिड़िया), परभृतः (कोयल), मरालः (हंस), बकः (बगुला) सारसः (सारस), वर्तकः (बतख), कीरः (तोता), सारिका (मैना), प्लवः (कौआ), बिलेशः (चील), गृध्रः (गिद्ध), श्येनः (बाज), कौशिकः (उल्लू), खंजनः (खंजन), चापः (नीलकंठ), दार्वाघाटः (कठफोड़ा), चातकः (पातक), चक्रवाकः (चकवा), बर्हिन् (मोर), षट्पदः (भौंरा), शलभः (१ पतंगा, २ टिड्डी), मक्षा (मधुमक्खी) वरटा (१ हंसी २ सिरड़, ततैया, बर्र), कुक्कुटः (मुर्गा)। (२५)

व्याकरण (सर्पिष्, अप्, हु धातु, यत्, ष्यत्, क्यप्)

१ सर्पिष् और अप् शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ५५, ५६)

२ हु धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ७२)

नियम २२८—(यत् प्रत्यय) (अचो यत्) चाहिए या योग्य अर्थ में आ, इ ई, उ, ऊ अन्तवाली धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। यत् का य शेष रहता है। यत् प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य में होता है। कर्मवाच्य में कर्म के तुल्य लिंग, विभक्ति, वचन। कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा क्रिया कर्मवत्। भाववाच्य में कर्ता में तृतीया क्रिया में नपुं एकवचन। मया अस्माभिः वा अर्कः पेयः दानं देयम्, पक्वानि पेयानि। मया स्थेयम्।

नियम २२९—यत् प्रत्यय लगाने पर धातु में ये अन्तर होते हैं:—(१) (ईद्यति) आ को ई होकर ए हो जायगा। आ> ए। दा> देयम् गा>गेयम् पा> पेयम् स्था>स्थेयम्, हा>हेयम्। (२) इ ई को गुण होकर ए हो जाएगा। चि> चेयम् जि> जेयम् नी> नेयम्। (३) उ ऊ को गुण ओ होकर अव् हो जायगा। भु> भव्यम् हु> हव्यम्, सु> सव्यम् भू> भव्यम्।

नियम २३०—इन स्थानों पर भी यत् (य) होता है:—(१) (पोरुपधात्) पवर्गान्त और उपधा में अ वाली धातुओं से। शप्यम् लभ्यम्। (२) (हनो वा वध्) हन् से यत् और हन् को वध। हन्> वध्यः। (३) (शकिसहोश्च) शक् और सह् धातु से। शक्यम् सह्यम्। (४) (गदमदचर) गद् मद् चर् और यम् धातु से। गद्यम् मद्यम् चर्म्यम् यम्यम्। (५) (अवद्यपण्यवर्या) अवद्यम् (नीच) पण्यम् (विक्रेय) वर्या (वरणयोग्य) ये रूप बनते हैं।

नियम २३१—(ण्यत् प्रत्यय) (१)(ऋहलोर्ण्यत्) ऋकारान्त और हलन्त धातुओं से ण्यत् (य) होगा। अन्तिम ऋ को आर् वृद्धि और उपधा के इ उ ऋ को गुण। कृ> कार्यम्। हार्यम् धार्यम्। मृज्+ण्यत्=मार्ज्यः होगा। भुज्+ण्यत्=भोग्यम् (मस्त्र), अन्यत्र भोज्यम् होगा। (२) (स्यजेरपि) स्यज्+ण्यत्=त्याज्यम् होगा। (३) (ओरावश्यके) उकारान्त से अवश्य अर्थ में। स्तु> स्ताव्यम्, पू> पाव्यम्।

नियम २३२—(क्यप् प्रत्यय) (१) (अचितन्वादिभ्यः) इन धातुओं से क्यप् (य) होगा और ये रूप बनेंगे—ई> इत्य स्तु>स्तुत्यः, धाव्>धित्यः, कृ>कृत्यः, आद>आदृत्यः, हृ>हृत्यः। (२) (मृजेर्विभाषा) मृज्>मृज्यः। (३) (भृमृशीङ्भ्यः क्यप्) भृ>भृत्यः (नौकर)। (४) (विभाषा कृवृषोः) कृ>कृत्यम्, वृ>वृत्यम्। कृ से ण्यत् होकर कार्यम् भी बनेगा।

अभ्यास ४६

संस्कृत बनाओ—(क) (समिध्, अप् शब्द) १ समिधाओं से अग्नि प्रदीप्त होती है (समिन्ध्)। २ हम समिधा लाने के लिए जा रहे हैं। ३ जल हमारे सुख और इष्ट-प्राप्ति के लिए हो। ४ जल में ओषधि के गुण हैं। ५ जल सुख प्रद है। (ख) (सु धातु) १ उसने गिलोय का रस निचोड़ा (सु)। २ प्राचीन काल में यज्ञों में सोमलता का रस निचोड़ा जाता था। ३ मूर्खता दोषों को छिपा लेती है (सु)। ४ रहाकपी योग से वह भी प्रतिदिन तप का संचय करता है (संचि)। ५ वह मन के अनुकूल जाता है (चि)। (ग) (क्त्वा प्रत्यय) १ अतः परीक्षा करके गुरु प्रेम करना चाहिए। २ दुश्शिष्य को दी हुई विद्या के तुल्य तुम अशोचनीय हो गई हो। ३ सारी अलङ्कारों में सुन्दर व्यक्ति रमणीय होते हैं। ४ इसको अंगूठी कैसे मिली इस पर विचार करना चाहिए। ५ मूल मुझे खा जाएगी। ६ ब्राह्मण को जिज्ञासार्थभाव से षड़ वेदों को पढ़ना चाहिए और जानना चाहिए। ७ उसके एक अंश का अभिनय किया गया। ८ मूर्ख की बुद्धि दूसरे के विश्वास पर चलती है। ९ वह बोध के अधीन हो गया। १ स्वस्तिपरायण नहीं होना चाहिए। ११ ऐसे लोग सभी की हँसी के पात्र होते हैं। १२ अतिथि-विशेष का संमान करना चाहिए। १३ पापी निन्दा को प्राप्त होता है। १४ वह कायर है इसलिए निन्दा को प्राप्त हुआ। १५ तुम मेरी ओर से राजा से कहना। (घ) (पंचमी) १ वह आय से अधिक व्यय करता है। २ मैंने तुम्हारे विश्वास पर और हित समझकर ऐसा किया है। ३ लाचार होकर मैंने चोरी की। ४ यह मेरे शरीर से अपूपज है। ५ झगड़ालू झगड़े से बाज नहीं आता। ६ अतिपरिचय से तिरस्कार होता है निरन्तर किसी के घर जाने से अनादर होता है। ७ वह रास्ता भूल गया। ८ कहने से करना अच्छा है। ९ कठिन समय में भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। (ङ) (पक्षिवर्ग) पक्षियों की मधुर ध्वनि किसके मन को प्रसन्न नहीं कर देती। वनों उपवनों में पक्षी मधुर संगीत करते हैं। कबूतर, कोयल, हंस, बगुले, बत्तख, तोता, मैना, कौवे, चील गिद्ध बाज खंजन, नीलकंठ, कठफोड़ा, चातक, चकवा, चकवी ये सभी आकाश में उड़ते हैं और मनोरंजन करते हैं। पक्षी वृक्षों में घोंसले बनाकर रहते हैं। भौंरे और मधुमक्खी पुष्पों का पराग से लेते हैं। मधुमक्खियाँ शहद तैयार करती हैं।

संकेत—(क) १ समिध्यते। २ वयं हेतोरग्नीन्धने यामः। ३ अम्बु भेषजम्। ४ जलं हि हा मनोनुग। (ख) १ अकृतपत्रस्वरीम्। २ सुप्तवे रस। ३ संसूनोति खलु दोषमज्ञता। ४ रहायोगात्। ५ मनसनुसुमानि विनीति। (ग) १ अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषाद् संयत रहः। २ रमणीयत्वमाकृतिविशेषात्मात्। ४ अंगुलीयकमङ्गुलेर्नमत्व विमर्शयितव्यम्। ५ मुक्त्वा पादि उपोद्घातम्। ६ ब्राह्मणेन जिज्ञासार्थः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। ७ एकोऽंशोऽभिनयार्थः कृतः। ८ मूढा परप्रत्ययबुद्धिः। ९ निहानिधेयत्वं गतः। १ भाग्यम्। ११ उपहासपात्रतामुपयान्ति। १२ संमान्याः। १३ पापवान् याति। १४ कातरः। १५ मदुपवचनात्। (ङ) १ व्ययत्वयात्, अनेन्द्र। २ अत्यन्तरागमात्। ४ अन्यधिक्षेः। ५ कलहकामः कलहान्न निवर्तते। ६ अतिपरिचयात्। ७ मार्गान्तं गतः। ८ वाचा कर्तव्यनिश्चयने। ९ स्थाप्यम्।

शब्दकोष-११७५+२५=१२] अभ्यास ४८ (व्याकरण)

(क) गात्रम् (शरीर), शिरस् (नपुं , सिर), शिरोरुहः (बाल) शिखा (चोटी), पक्ष्मन् (आँख के बाल), ललाटम् (माथा), लोचनम् (नेत्र), घ्राणम् (नाक), आस्यम् (मुँह), रसना (जीभ), रदन (दाँत), श्रोत्रम् (कान), कण्ठः (गला), ग्रीवा (गर्दन) स्कन्धः (कंधा), अंसु (नपुं , कंधे की हड्डी), कूर्चम् (दाढ़ी), श्मश्रु (नपुं , मूँछ), कपोलः (गाल), ओष्ठ (ओठ), अधरः (नीचे का होठ), भ्रूः (स्त्री , भौं), पक्ष्मन् (नपुं , पलक), वक्षस् (नपुं , छाती) कुक्षि (पेट)। (२५)

व्याकरण (दिश्, उपानह्, लिख्, स्तृघ्, तृच्, अच्, अप्)

१ दिश् और उपानह् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ५९, ६)

२. लिख् और स्तृघ् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ७५, ७६)

नियम २३६—(तृच्-तृचौ) धातु से 'वाच्य' (कर्ता) अर्थ में तृच् प्रत्यय होता है। तृच् का 'तृ' शेष रहता है। जैसे—कृ> कर्तृ (करनेवाला), हृ>हर्तृ (हरने वाला)। कर्ता के अनुसार इसके लिंग, विभक्ति और वचन होते हैं। पुंलिंग में इसके रूप कर्तृ शब्द (शब्द सं ११) के तुल्य चलेंगे। स्त्रीलिंग में अन्त में 'ई' लगाकर नदी (शब्द ४१) के तुल्य और नपुं में कर्तृ (शब्द ६७) के तुल्य रूप चलेंगे। प्रायः सभी धातुओं से तृच् प्रत्यय लगता है। तृच् प्रत्ययान्त के साथ कर्म में षष्ठी होती है। पुरुषकर्तृ कर्ता पता, हर्ता था। धातु को गुण होता है।

नियम २३७—तृच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए में नियम स्मरण कर लें। रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि धातु के तुमुन् प्रत्ययान्त रूप में से तुम् के स्थान पर तृ लगाने से तृच प्रत्ययान्त रूप बन जाता है। नियम २१७ (क) से (अ) पूरा लगेगा। (क) धातु को गुण होगा। कृ>कर्तुम्>कर्तृ। हर्तृ, भर्तृ, भर्तृ। जेता, नेता, भविता। (ब) सेट् में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। पठितृ, लेखितृ, रोदितृ। (ग) पक्तृ, मोक्तृ, छेत्तृ। (घ) ग्रहीतृ, प्रवेष्टृ खनितृ। (ङ) व्याहर्तृ, गातृ। (च) गन्तृ, रन्तृ। (छ) दग्धृ, द्रोग्धृ, वोग्धृ, भेदृ बोद्धृ। (ज) लाता, नेता, सभा प्रभा, आरोढा, ग्रहीता प्र एक में।

नियम २३८—(१) (एकाचष्) पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय होता है। अच् का अ शेष रहता है। अच् लगाने से संज्ञाशब्द बन जाते हैं। धातु को गुण होता है। पुंलिंग रहता है। रामवत् रूप होंगे। पच्>पचः। इसी प्रकार मदः चोरः, देवः, चरः, चलः, पतः, वरः, मरः, क्षमः, कोपः, जपः, सर्पः, दर्पः आदि। (२) (एरच्) इ या ई अन्तवाली धातुओं से अच् (अ) प्रत्यय होता है। गुण ए होकर अय् आदेश। चि>चयः, जि>जयः, नी>नयः। व्यभि>व्यभिचारः। इसी प्रकार प्रभवः, विनयः, प्रणयः।

नियम २३९—(ऋदोरप्) दीर्घ ऋ ऊ या ऊ अन्तवाली धातुओं से अप् (अ) प्रत्यय होता है। गुण होता है, पुंलिंग होगा। कृ> करः, गृ> गरः। धू>धवः, सू>सवः। पू>पवः, भू> भवः।

अभ्यास ४८

संस्कृत बनाओ—(क) (दिश्, उपसद्, शब्द) १ दिशाएँ स्वच्छ हो गईं और हवा सुखद बहने लगी। २ वायु प्रत्येक दिशा में मकरन्द को फैला रही है (कृ)। ३ दक्षिण दिशा में सूर्य का भी तेज मन्द हो जाता है। ४ कुत्ते को यदि राजा बना दिया जाता है तो क्या वह चूल्हा नहीं चाटता। ५ सूखा पैर में हो तो सारी पृथ्वी चमड़े से ढकी-सी दीखती है। (ख) (लिख्, स्पृश् धातु) १ असभ्यों को कविता सुनाना मेरे मानव में मत लिखना। २ रात्रि ने तारे रूपी अक्षरों से आकाश में अन्धकार की प्रशस्ति लिखी है। ३ उसने शिर, बाल, आँख, नाक, कान और पेट को छुआ। ४ हाथी छूता हुआ भी मार डालता है। ५ वह सोलह वर्ष का हो गया। ६ बिना धन के भी वीर बहुत सम्मानवाले उन्नति के पद को पाता है। ७ किसपर दोष डालूँ (निक्षिप्)। (ग) (तृच् आदि प्रत्यय) १ कौन शरीर को शान्ति देनेवाली शरत्कालीन चाँदनी को बल से रोकता है। २ विषय ऊपर से मनोहर लगते हैं, पर उनका अन्त दुःखद होता है। ३ विद्वानों के लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है। ४ विनय सम्पत्तियों को लिए क्यों न हो क्योंकि वह योगियों को मुक्ति देता है। ५ कला ही नहीं रही तो फूल कहाँ? ६ जिसको तुम आग समझते थे वह स्पर्श के योग्य रत्न है। (घ) (पद्) १ ऋषियों के लिए क्या परोक्ष है? २ वीरों का मिलन कठोर कर्मों वाला होता है वह प्रेम मार्ग की भेंट देता है। ३ उसमें ईर्ष्या लेशमात्र को नहीं है। ४ उसे आज आए आज तीसरा दिन है। ५ तुम्हारी बात सत्य-सी प्रतीत होती है। ६ वर्षा हुए दो सप्ताह हो गए। ७ मुकम्मा अब एक महीना हो गया। ८ उसका मुँह हर्ष से खिल गया। ९ उसका मुख कमल की शोभा को धारण करता है। १ उसका सौन्दर्य अवर्णनीय है। (ङ) (शरीरवर्ग) शरीर ही मुख्यतः धर्म का साधन है। शरीर को स्वस्थ रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। स्वच्छ वायु में भ्रमण और व्यायाम से शरीर स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रहता है। नियमित रूप से स्नान करे और शिर, हाथ, नाक आँख कान गर्दन कन्धा, छाती पेट, जाँघ पैर और मुँह को शुद्ध से या साबुन से धोवे। शिर में तेल डाले माथे पर तिलक लगावे, आँख में अंजन लगावे। दाढ़ी को उस्तरे से साफ करे, मूँछ को साफ रक्खे नाखूनों को रेत-कतर (नहरनी) से काटे। अंगुष्ठ तर्जनी मध्यमा अनामिका और कनिष्ठा, इन पाँचों अंगुलियों को पुष्ट रक्खे।

संकेत—(क) १ प्रसेदुः, मरुतो वयुः सुखाः। २ दिशि दिशि किरति। ३ दक्षिणस्यां मन्दायते। ४ लिखते नाश्वमारुरुक्षायाम्। ५ उषाकरनूदयारम्भ सर्वा वर्णाढ्यैव भूः। (ख) १ अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख। २ तारावलैः तमःप्रशस्तिम्। ३ स्पृशन्नपि गजो हन्ति। ५ दोषज्ञवदवधीरणमस्पृशत्। ६ स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम्। (ग) १ शरीरनिर्वापणीं शरदीम्। २ आदानरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः। ३ शीलताद् अधिकम्। ४ योगिनां परिलम्बम् विधुरुदरे केन वार्यते तत्त्वं प्रिये। ५ अज्ञातां पूर्वसूरिभिः प्रज्ञास्त्रोद्धृतः पुनः। ६ आदर्शमे पश्यन्तिम्। (घ) १ लिखनीयम्। २ वीराणां समरो हि दारुणतमः स्नेहकर्म वाचते। ३ अदत्तावकाशो मातरस्य। ४ कृतोद्वाहस्य तस्य। ५ सत्यमिव प्रतिभाति। ६ सप्ताहद्वयं गृहस्य देवस्य। ७ मासैकं मुकः कथितवान्। ८ हर्षोत्फुल्लं वभौ। ९ अनुहरति। १ श्रीर्वदनमात्मनीयम्। (ङ) शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम् निक्षिपेत् स्वस्थ इवास्य यत्नतो निषेवेत।

शब्दकोष-११ ०+२५=१२२५] अभ्यास ४९. (व्याकरण)

(फ) पृष्ठम् (पीठ) श्रोणिः (स्त्री , कमर), ऊरुः (जंघा), जानु (घुटना), गुल्फः (टखना, पैरकी ओड़की ग्रन्थी), बाहुः (बाँह), कफोणिः (कोहनी) मणिबन्धः (कलाई), चपेटः (चपत), मुष्टिः (मुट्ठी), करभः (कलाई से कनी अँगुलि तक), नाडिः (स्त्री नाड़ी), शिरा (स्त्री नस), फुप्फुसम् (फेफड़ा) हृदयम् (हृदय), यकृत् (नपुं , जिगर), प्लीहा(तिल्ली), क्लोम्(औंत), पुरीषम्(नपुं , गोद), छगणम् (गोबर), रज्जुः(रस्सा), रुधिरम्(खून), आमिषम् (मांस), चर्मा(चर्बी), मज्जा (हड्डी के अन्दर की चर्बी)। (२५)

व्याकरण (वारि, दधि, कृ, भू स्नुट्, ल्युट्, ट प्रत्यय।)

१ वारि और दधि शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ६२, ६३)।

२ कृ और भू धातुओं के रूप स्मरण करो। (दे धातु ७७ ७८)।

नियम २४०—(स्नुट् प्रत्यय) (१) (स्नुट् च) भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातु से स्नुट् प्रत्यय होता है। स्नुट् के प्र को 'अन' हो जाता है। अन प्रत्ययान्त शब्द नपुं होते हैं। धातु को गुण होता है। स्नुट् (अन) प्रत्यय में भी वही नियम लगते हैं जो अनीय प्रत्यय में लगते हैं। देखो नियम २२६। गम्>गमनम् (जाना)। इसी प्रकार पठनम् लेखनम् यजनम् पूजनम्। कृ>करणम्। हरणम्, भरणम्, मरणम्, रोदनम्। (२) (करणाधिकरणयोश्च) करण और अधिकरण अर्थों में भी स्नुट् (अन) होता है। यानम् (जिससे जाते हैं, सवारी), स्थानम् (जहाँ बैठते हैं), उपकरणम् (जिससे काम करते हैं, साधन), आकरणम् (जिससे उकसते हैं)। (३) (कर्मणि च येन) कर्ता को सुख मिले तो कर्म पहले होने पर धातु से स्नुट् (अन)। निम्न-समास होगा। पयःपानं सुखम्। (४)(नन्दिग्रहि)नन्द् आदि से ल्यु(अन)होता है। नन्दनः,जनार्दनः,मधुसूदनः।

नियम २४१—(ल्युट् तुची) करनेवाला (कर्ता) अर्थ में धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है। ल्युट् के यु को 'अक' हो जाता है। नियम २१४ के तुल्य वृद्धि होगी। कर्ता के तुल्य इसके लिंग होंगे। पुं० में रामवत् स्त्रीलिंग में इका' अन्त में होगा और रमावत्, नपुं में ज्ञानवत्। कृ>कारकः (करनेवाला), कारिका कारकम्। पाठकः, लेखकः, हारकः, उपकारकः, लेखकः। (१) (आतो युक्) आकारान्त धातु में बीच में य् लगेगा। दा>दायकः, धा>धायकः, पा>पायकः। (२) (नोदाधोपदेशस्य) इनको वृद्धि नहीं होगी। दमकः, दमकः, गमकः, यमकः। जन् को भी वृद्धि नहीं होती। जनकः। (३) इन धातुओं के ये रूप होते हैं—हन्>घातकः, वध्>वधकः, रक्ष्>रक्षकः रम्>रम्मकः, क्रम्>क्रम्मकः।

नियम २४२—(ट प्रत्यय) इन स्थानों पर ट (अ) होता है—(१) (चेष्टा) अधिकरण पहले होने पर चर् धातु से। कुरुचरः। (२) (भिक्षसेना) भिक्ष आदि पहले हों तो चर् धातु से। भिक्षाचरः, सेनाचरः, आकाशगरः। (३) (पुरोऽग्रतो) पुर आदि पहले हों तो स धातु से। पुरस्सरः, अग्रतस्सरः अग्रेसरः, अग्रगरः। (४) (कृञो हेतु) कृ धातु से हेतु स्वभाव और अनुकूल अर्थ में। यशस्करी विद्या, भयंकरः, वचनकरः। (५) (दिवाभिनिशाप्रभा) दिवा आदि पहले हों तो कृ धातु से। दिवाकरः, निशाकरः, निशाकरः, प्रभाकरः, भास्करः, किंकरः, किंकरः, चित्रकरः। (६) (कर्मणि भृतौ) कर्म पहले हो तो कृ धातु से। कर्मकरः (नौकर)।

अभ्यास ४९

संस्कृत बनाओ—(क) (आदि, दधि शब्द) १ जिस प्रकार आपके से छोड़कर मनुष्य अन्य पर जाता है उसी प्रकार सेवा से शुश्रूषा विद्या को प्राप्त कर लेता है। २ एक बार चन्द्रमा ने समुद्र के विमल (शुचि) जल में पड़े हुए अपने प्रतिबिम्ब को देखा और उसने सोदपूर्वक ताप के मूल का स्मरण किया। ३ दूध दही के रूप में परिणत होता है। ४ दही मीठी है, मधु मधुर है, अंगूर मीठे हैं, चीनी भी मीठी है। जिसका मन जिसमें रम गया उसके लिए वही मीठा है। (ख) (कृ गृ धातु) १ यह कोई वीर बालक सेनाओं के ऊपर आकाशरूपी हिम की डाल रहा है (कृ)। २ हवा प्रत्येक दिशा में पराग को फैला रही है (कृ)। ३ हरिश्चन्द्र में यह फूलों की अंजलि डाल दी है (प्रकृ)। ४ घोड़े खुरों से भूमि को खोद रहे हैं (उत्कृ)। ५ तेरी तलवार शत्रुओं के अंगों को टुकड़े-टुकड़े कर दे (विकृ)। ६ मैक्स प्रसन्नचित्त हो मिट्टी खोदता है, अभागी मुर्गा खुदे को खोदता है कुत्ता सोने के लिए मिट्टी खोदता है (अपकृ, आ)। ७ रोगी दवा की गोली को निगलता है (गृ)। ८ राजा ने वचन कहा (उद्गृ)। ९. साँप विष को उगलता है (उद्गृ)। १ बालक अन्न के ग्रास को निगलता है (निगृ)। ११ वह शब्द को नित्य मानता है (संगृ आ)। (ग) (स्मृ आदि) १ उसने राष्ट्रपतिजी से भेंट की। २ मैं राष्ट्रपतिजी से मिलना चाहता हूँ। ३ मजदूर आहुतियों के लिए क्या मन्त्रम नहीं है। ४ जीवन में हँसना रोना, मरना, जीना, उत्थान पतन लगा ही रहता है। ५ विद्या यशस्करी है। ६ अधिक बोलने के कारण मुझे बहुत ताना सहना पड़ा है। (घ) (धातु) १ वह मेरा निःस्वार्थ बन्धु है। २ वह मेरा विश्वासपात्र है। ३ राजा के पास आप हूँ। ४ वह सरकार मेरे मतोरथों से भी परे था। ५ हमेशा तुम्हारी याद करता है। ६ वह शिशु पर दया करता है। ७ यदि अपने आपको संभाल सका तो विशेष आऊँगा। ८ आपका सिक्कों पर पूरा अधिकार है। ९ पाणिनि वैयाकरणों में श्रेष्ठ है। १ वह साहसियों में पुलीस और विद्वानों में अग्रणी है। ११ क्या तुम पति को याद करती हो? (ङ) (शरीरवर्ग) शरीर की सुरक्षा के लिए प्राणायाम अनिवार्य है। प्राणायाम से फेफड़ों की सफाई होती है। प्राणायाम से शरीर के प्रत्येक अंग में शुद्ध वायु पहुँचती है। पीठ, कमर, पुट्ठा, टखना कोहनी कलाई, मुट्ठी हथेली, आँत नसें, नाड़ियाँ, सभी को प्राणायाम से लाभ होता है। वैद्यक के अनुसार वात पित्त और कफ के विकार से ही शरीर में सभी रोगों की उत्पत्ति होती है। ठीक आहार और विहार से शरीर नीरोग रहता है।

संकेत—(क) १ यथा अविनेय अविनश्यति। २ सुविनि संकान्तवत् सरसार। ३ हरिश्चन्द्र। ४ स्वयं, दध्य दधि हि मधुरम्। (ख) अनुकूलां क्रियां। ३ प्रकीर्य। ४ परिहरति। ५. अवसी विकिरतु। ६. अवसिञ्चते ७. वासिकाम्। ८. उपहार। ९. उद्गिरति। १ निगिरति। ११ शब्द नित्यं संगिरते। (ग) १ राष्ट्रपतिरहमेमे। २ राष्ट्रपतिरहमेमे-तुमहमिच्छामि। ३ विद्वांसं हि मनुष्याणां मन्त्रकर्म राक्षसीनाम्। ४ म्रियते। ५ ओदनपिण्डम् मन्त्रेण बहुधालम्भनं मतोऽस्ति। (घ) १ विश्वासपात्र। २. विश्वासभूमि। ३ कर्षेण। ४ अवीर वालासम्पभूमि। ५. अन्वेति तम्। ६. विश्वेति दधते। ७ आसनम् प्रयतिष्यते। ८ प्रसादार्थं विष्यवसत्। ९ धीरेण साहसिकाग्रणीरेवाहम्। १०. अनिवार्यतुं स्मरसि।

शब्दकोष-१२१५+२५=१२५] अभ्यास ५० (व्याकरण)

(क) कंचुकः (कुर्ता), कंचुलिका (बनियान), अधोवस्त्रम् (धोती), शाटिका (साड़ी), पादयामः (पायजामा), प्रावारः (कोट), प्रावारकम् (शेरवानी), वृहत्तिका (ओवरकोट), आमण्डीनम् (पैंट), अन्तरीयम् (पेटी कोट), अधोंस्कम् (अण्डरवीयर, जाँघिया), नक्तकम् (नाइट ड्रेस), प्रच्छदपटः (ओढ़नी, चुन्नी), स्यूतवरः (सलवार), रल्लकः (शेरी), नीवारः (रजाई), दृब्बसत्तरः (गद्दा), आस्तरणम् (दरी), प्रच्छदः (चादर), उपधानम् (तकिया), छत्राकरकम् (स्वेटर)। (२१)। (घ) कार्पासम् (सूती), कौशेयम् (रेशमी), ऊर्णम् (ऊनी), नक्कीनकम् (नाइलोन का)। (४)

व्याकरण (अस्ति, अस्ति, क्विप्, भू, क, क्वसु, णिनि प्रत्यय)

१ अस्ति और अस्ति शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ६४, ६५)

२ क्विप् और भू धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ७९,८)

नियम २४३—(क प्रत्यय) इन स्थानों पर क (अ) प्रत्यय होता है। क का 'अ' लोप रहता है। धातु को गुण नहीं होगा। धातु के अन्तिम आ का लोप होता है। 'भाव' (कर्ता) अर्थ में क प्रत्यय होता है। (१) (शुषपच्चग्रीकिट का) जिन धातुओं को उपधा में इ, उ, ऋ हो उनसे तथा शा, ग्री, कृ धातु से क प्रत्यय। किल्> किलः (किलक), युध्> युधः (विद्वान्), हन्> हन्याः (निर्दय), शा> शः, ग्री> प्रियः (प्रिय), कृ> किरः (बखेरनेवाला)। (२) (आतश्चोपसर्गे) उपसर्ग पहले हो तो आकारान्त धातु से क। प्र+शा> प्रशः विशः, नुदः, अभिज्ञः, आ+हा> आहः प्रहः। (३) (आतोऽनुपसर्गे कः) उपसर्ग-भिन्न कोई कर्म पहले हो तो आकारान्त धातु से क। दा> सुखदः, दुःखदः, गोदा। धा> आतपत्रम्, गोत्रम् पुत्रः, छत्रः। पा> हिपा गोपः, महीपः, पादपः। (४) (सुपि स्थाः) कोई शब्द पहले हो तो आकारान्त और स्था धातु से क। प> हिपः। स्था> समस्थः, विषमस्थः। (५) (मूलविभुजादिभ्यः कः) मूलविभुज आदि में क होता है। मूलविभुजः, महीध्रः, द्रुमः। (६) (गेहे कः) ग्रह धातु से पद अर्थ में क। ग्रह> पदम्।

नियम २४४—(क्वसु प्रत्यय) (इष्टुदुःसुषु) ईषत्, दुर् या सु पहले हो तो धातु से क्वसु (अ) प्रत्यय ही होता है कठिन या सरल अर्थ में। धातु को गुण होगा। ईषत्करः,दुष्करः,सुकरः। दुर्मर्षः, सुखमः, दुर्गमः, सुगमः, दुर्जयः, सुखयः,दुःसहः,सुसहः।

नियम २४५—(णिनि प्रत्यय) इन स्थानों पर णिनि (इन्) प्रत्यय होता है। नियम २१४ (१) के ह्रस्व वृद्धि या गुण। पुं में करिन् के ह्रस्व, स्त्री में ई स्यादेर नदीवत्, नपुं में वारिवत्। (१) (नन्दिग्रहि) ग्रह् आदि धातुओं से णिनि (इन्)। ग्रह > ग्राही। स्वामी, मन्त्री। (२) (सुप्यजातौ णिनिः) जाति-भिन्न कोई शब्द पहले हो तो धातु से णिनि होगा, स्वभाव अर्थ में। भुज्> उष्णभोजी,शीतभोजी, निरामिष भोजी। शाकाहारी मांसाहारी, मिथ्याचारी, मित्रद्रोही मनोहारी। वस्> निवासी, प्रवासी। कृ> उपकारी अपकारी अधिकारी। (३) (शीलकारिणि) अभ्यास करने अर्थ में। शीलयायी। (४)(कर्तर्युपमाने)उपमान अर्थ में। उष्ट्रकोशी श्वांसयायी। (५) (अन्ते) अन्त में। स्वप्नियस्यायी। (६) (मनः, आत्ममाने स्वरूप) अपने को समझने अर्थ में मन् धातु से णिनि और स्वरूप(अ)। शब्द के अन्त में म् होगा। पण्डितंमानी, पण्डितंमन्यः।

अभ्यास ५०

संस्कृत बनाओ—(क) (अक्षि, अस्थि शब्द) १ वह आँख से काणा है। २ उसकी आँख में तिनका गिर गया (पत्)। ३ उसे आगते ही रात बीती। ४ कुत्ता हड्डी को चाटता है। ५ हड्डियों में फासफोरस भी होता है। (ख) (क्षिप्, भृ धातु) १ नौकर पर दोष लगाता है (क्षिप्)। २ हे मूर्ख सुनार, तू मुझे बार-बार आग में क्यों डालता है (क्षिप्), जलने पर मेरे अन्दर गुण और बढ़ जाते हैं और मैं खरा सोना हो जाता हूँ। ३ जल में पत्थर फेंकता है (क्षिप्)। ४ उसने सूक्ष्म वस्त्र फेंककर (अवक्षिप्) मुनिवस्त्र पहने। ५ उसने द्रव्य की निन्दा की (अवक्षिप्)। ६ अरे मूर्ख, क्यों इस प्रकार अपमान कर रहा है (आक्षिप्)। ७ बालक ने देखा ऊपर फेंक (उत्क्षिप्)। ८ वह स्त्री अपना मामूलपन सुनार के पास धरोहर रखती है (निक्षिप)। ९ राजा ने उस पर क्रूर दृष्टि डाली (निक्षिप्)। १० जले पर नमक डालता है (प्रक्षिप्)। ११ गन्दी चीजें आग में न डालें (प्रक्षिप्)। १२ उसने अपना निकम्मा संक्षिप्त करके लिखा (संक्षिप्)। १३ आत्मा न उत्पन्न होता है (जन्) और न मरता है (मृ)। १४ परमात्मा न कभी मरा न हुआ भूत्य। (ग) (क वर्ग आदि) १ जिस सुखद वचन ही कहता है दुखद नहीं। २ यह काम शीघ्र करना तो सुकर है पर गुप्त रूप से करना कठिन है। ३ आँधी में भी पहाड़ निष्कम्प रहते हैं। ४ सबके मन को रुचिकर बात कहना अति कठिन है। ५ प्रियके प्रवास से उत्तम दुखद स्त्रियों के लिए अति दुखद होते हैं। ६ संसार में सुन्दरता सुकर्म है, गुणार्जन कठिन है। ७ तुम्हारे लिए मृग पकड़ना कठिन नहीं होगा। ८ नदी की ढलान ऊँची होती है। ९ बन्धुजनों के वियोग सन्तापकारी होते हैं। १० छिद्रान्वेषी लोग दोषों को ही देखते हैं। ११ उसने पृथ्वी उसके हाथों में दे दी। (घ) (सप्तमी) १ चौदहवें दिन खूब ओर से वर्षा हुई थी। २ पति के कहने में रहना (स्था)। ३ सपत्नीजन पर प्रिय-सखी का व्यवहार करना। ४ प्रेमा होने पर क्षमा करना चाहिए। ५ सकलाश प्राप्त होने पर विद्वान् व्यक्ति आशा छोड़ देता है। ६ रण में जयश्री उत्कर्ष पर निर्भर है। (ङ) (वस्त्रवर्ग) वस्त्र शरीर को ढकने के लिए हैं। स्वच्छ और धुले हुए वस्त्र पहनने चाहिएँ (धारि)। प्राचीन पद्धति को अपनानेवाले लोग कुर्ता धोती पहनते हैं। पाश्चात्य पद्धति को अपनानेवाले लोग कोट पैंट या पायजामा, शेरवानी पहनते हैं। स्त्रियाँ साड़ी, घाघरा, पेटीकोट पहनती हैं। कुर्ता सलवार और ओढ़नी का पंजाब में अधिक प्रचलन है। आजकल सूती रेशमी, ऊनी और नाइलोन के कपड़े अधिक चलते हैं। बिस्तर में दरी गद्दा, चादर, तकिया रजाई, खोई, कम्बल इत्यादि के काम आते हैं।

संकेत—(क) १ अक्ष्णोः प्रमाणमासीत्। ४ कैद। ५ भास्वरत्। (ख) १ दोषान् क्षिपति। २ हन्त मूर्खमति अयसि गुणातिरेकं विधुरान्। ४ अवक्षिप्य अवस्त। ५ कुण्डमवा क्षिपत्। ६ आक्षिपसि। ७ अवक्षिपत्। ८ वस्त्रे निक्षिपति। ९ निक्षिपेत्। १० धारं छत्रे प्रक्षिपति। ११ अमेध्यम्। १२ संक्षिप्य। १३ न जायते न म्रियते (ग) १ सौकर्यमिति सुकरम् नैष्कर्यमिति दुष्करम्। ३ प्रकाशेरन्। ४ दुर्जनानां सर्वमनोरमा गिरः। ६ दुष्करा रम्यता कोऽपि दुर्लभं हि गुणार्जनम्। ७ सुखो दुष्करः। ८ दत्तनिम्नो। ९ छिद्रान्वेषिणः। ११ हस्तयोर्मेदिनीमसर्जयत्। (घ) १ चतुर्दशे दिवसे घनानारतवर्षं देवः। २ आसीत्। ३ वृष्टिम्। ४ पत्यौ मनसे सति। ५ सपत्नीजने। ६ प्रकाशेरन्। (ङ) लोकुर्जनाः प्रवसन्ति सम्भावान् वस्त्रम्, दिवसे वस्त्रं धरन्ते।

शब्दकोष-१२५+२५=१२५] अभ्यास ४१ (व्याकरण)

(क) आभरणम् (आभूषण), मूर्धाभरणम् (बेंदी), अक्षयगाभरणम् (टिकुली), नासाभरणम् (१ नथ २ बुलाक), नासापुष्पम् (नाक का फूल), कर्णपूरः (कनफूल), कुण्डलम् (कान की बाली), कण्ठाभरणम् (कण्ठा), ग्रैवेयकम् (हसुली), हारः (मोती का हार), एकावली (एक लड़ का हार) मुक्तावली (मोती की माला), स्रक् (पुष्प-माला), केयूरम्(बाजूबन्द, ब्रेसलेट), कंकणम्(कंगन), काञ्चनकम्(चूड़ी), अंगुलीयकम्(अंगूठी), कटकः (सोने का कड़ा), त्रोटकम् (हाथ का तोड़ा), मेखला (करधन), नूपुरम् (पाजेब), पादाभरणम्(झाँझे), मुकुटम्(मुकुट), मुद्रिका(नामांकित अँगूठी),किंकिणी(घुँघरू)। (२५)

व्याकरण (मनु, कर्तृ, शृद् मुच्, क्तिन्, अप्, क्विप्)

१ मनु और कर्तृ शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ६६, ६७)

२ शृद् और मुच् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ८१, ८२)

नियम २४६—(क्तिन् प्रत्यय) (१) (क्रियां क्तिन्) धातुओं से स्त्रीलिंग में क्तिन् प्रत्यय होता है। क्तिन् का 'ति' शेष रहता है। 'ति' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग ही होते हैं। गुण या वृद्धि नहीं होगी। सम्प्रसारण होगा। ति प्रत्यय से भाववाचक संज्ञा शब्द बनते हैं। जैसे—कृ> कृतिः, कृतिः, स्तुतिः, भूतिः। 'ति' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए देखो नियम २ ८ (क) (ग) से (ङ)। साधारणतया क प्रत्ययान्त रूप में त के स्थान पर ति लगाने से ति प्रत्ययान्त रूप बन जाते हैं। जैसे—गा> गीत> गीतिः, गम् > गत> गतिः, वच् > उक्त> उक्तिः। (क) कृतिः, स्तुतिः, भूतिः। (ग) गीतिः, पीतिः। (घ) उपमितिः, स्थितिः। (ङ) गतिः,मतिः नतिः। (छ) जातिः ख्यातिः। (ज) उक्तिः, इष्टिः, सृष्टिः। (झ) म्लानिः, म्लानिः। (ञ) (त्यागापापपञ्चो भावे) इनसे भावार्थ में क्तिन्। उपस्थितिः, गीतिः, संपीतिः, पक्तिः। (३) (ऊतियूति) ये रूप बनते हैं—ऊतिः, ईतिः, कीर्तिः। (४) (संपदादिभ्यः) संपद् आदि से। संपत्तिः विपत्तिः।

नियम २४७—(अप् प्रत्यय) (कर्मण्यण्) कोई कर्मवाचक शब्द पहले हो तो धातु से अप् (अ)प्रत्यय होता है। धातु को वृद्धि होती है। कुम्भं करोतीति> कुम्भकारः।

नियम २४८—(क्विप् प्रत्यय) इन स्थानों पर क्विप् प्रत्यय होता है। क्विप् का पूरा लोप हो जाएगा कुछ शेष नहीं रहेगा। (१) (सप्तम्यां क्विप्) उपसर्ग या अन्य कोई शब्द पहले हो तो सद् से क्विप् दुह् विद् आदि से क्विप। उपनिषद्। प्रसद्। मित्रद्रुह्। गोदुह्। वेदवित्। (२) (क्विप् च) धातुओं से क्विप होता है। उल्लासत् पर्णपत्, वाहम्मह्। (३) (ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्) ब्रह्म आदि पहले हों तो भूत अर्थ में हन् धातु से। ब्रह्महा, भ्रूणहा वृत्रहा। (४) (सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः) सुकर्म आदि पहले हों तो कृ धातु से क्विप्। कृ अन्त में सुट् आएगा। सुकृत् कर्मकृत्, पापकृत्, मन्त्रकृत्, पुण्यकृत्। भूयस् के तुल्य रूप चलेंगे। (५)(आजसास) आज् स्पृश्, सृज्, दृश्, ऊर्ध्व्, पुर् आदि से क्विप् होता है। विभ्राट् भा, भू, विभ्रुट्, ऊर्ध्व्, पूः।

नियम २४९—(क्वनिप् प्रत्यय) इन स्थानों पर क्वनिप् होता है। इसका 'वन्' शेष रहता है। गुण नहीं होगा। रूप आत्मनेपद। (१) (इयोः क्वनिप्) इण् धातु से क्वनिप्। पारेवा। (२) (राजनि युधिकृञ्) राजन् पहले हो तो युध् और कृ धातु से क्वनिप्। राजयुध्वा, राजकृत्वा। (३) (तदे च) तद् पहले हो तो युध् और कृ धातु से। तदयुध्वा, तदकृत्वा। (४) (अन्येभ्योऽपि) अन्य धातुओं से भी क्वनिप्। इ> इत्वा, प्रातरित्वा। बीच में त् लगा।

अभ्यास ५१

संस्कृत बनाओ—(क) (मधु कृत् शस्त्र) १ भौंरे कमलों से मधु को पीते हैं। २ दुर्जनों के विलास पर मधु रहता है और हृदय में घोर विष। ३ भोजन पकाने के लिए लकड़ियाँ (दारु) लाओ और कूएँ से जल (अम्बु) लाओ। ४ पहाड़ की चोटी पर (सानु) ऋषि मुनि रहते हैं। ५ आग पर रोंगा (त्रपु) और लवण (लवण) पिघलाओ। ६ ओंठ (अम्बु) मत गिराओ देव रक्खो। ७ प्रातः लेकर रेजर से दाढ़ी (श्मश्रु) बनाओ। ८ ब्रह्म जगत् का कर्ता धर्ता और संहर्ता है। (ख) (तुद्, मुच्) १ दुर्जन वाणी रूपी बाण से सज्जनों को दुःख देते हैं (तुद्)। २ भीम ने गदा से शत्रु को चोट मारी (तुद्)। ३ रात्रि बीत गई, बिस्तर छोड़ो (मुच्)। ४ मृगों पर बाण छोड़ना है (मुच्)। ५ सत्यवादी सब पापों से मुक्त हो जाता है। ६ मारो या छोड़ो, यह आपकी इच्छा पर है। (ग) (क्लिद् आदि प्रत्यय) १ मनोरथ के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। २ मरना मनुष्यों का स्वभाव है, इसका डरना जीवन है। ३ अविवेक बड़ी आपत्तियों का घर है। ४ विपत्ति में(विपद्) धैर्य और वैभव में क्षमा, यह महात्माओं में होता है। ५ विपत्ति में धैर्य धारण करके रहना चाहिए। ६ अच्छे लोगों को विपत्ति आती ही है। ७ विपत्ति के पीछे विपत्ति और संपत्ति के पीछे संपत्ति चलती है। ८ संपत्तियाँ अच्छे आचरणवालों का भी विचलित कर देती हैं। ९ यह वचन मर्मभेदी है। १० मन्त्रियों की इस असारता को धिक्कार है। (घ) (सप्तमी) १ मनुष्यों पर पक्षपात होता ही है। २ सब अपने सचिवों पर विश्वास करते हैं। ३ प्रायः ऐश्वर्य से उन्मत्तों में ये विकार करते हैं। ४ प्रजा राजा पर बहुत अनुरक्त है। ५ लाहस में भी रहती है। ६ उसने चावलों को घृत में डाला। ७ पढ़ाई शुरू करने के समय क्यों सोच रहे हो। ८ प्रसन्नता के स्थानपर दुःख न करो। ९ वर्षा होने पर वह घर गया। १० यह मेरी समझ के बाहर है। ११ आप मेरे पिता की जगह पर हैं। १२ मेरी आवाज की पहुँच के अन्दर रहना। १३ सिपाही के आते ही चोर भाग गए। १४ तुम्हारे रहते हुए कौन दीनों का दुःख दे सकता है। १५ यज्ञ करने पर क्या हुआ। १६ व्यर्थ हुए वर्षों को भिटाई दो। (ङ) (आभूषणवर्ग) अलंकार शरीर को अलंकृत करते हैं। सधवा स्त्रियाँ सिर पर वेणी माथे पर मुकुट और बिंदुली, नाक में नथ और नाक का फूल कान में कनफूल और बाली, गले में हँसुली, कण्ठा मोती का हार और फूल-माला बाँह में बाजूबन्द, कलाई में कंगन और चूड़ी अँगुलियों में अँगूठी कमर में करधन, पैरों में पाजेब, छल्ले और घुँघरू पहनती हैं।

संकेत—(क) २. हस्ताहस्ति। ५ ज्ञातव। ६. वासय। ८. कर्तृ धर्तृ संहर्तृ। (ख) १ वाग्बाणैस। २ दुर्योधः। ३ रात्रिं मुञ्च। (ग) १ असम्भवि। २. मरणं प्रकृतिः स्त्रीरियं विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः। ३ अविवेकः परमापदां पदम्। ५. आपत्स्वम्य। ६. विपदुत्तमितमता महतामिदम्। ७ विपद् विपदमनुधावति संपद् संपदम्। ८. सतामपि चित्तविप्लवकरी। ९. मर्मभिद्। १ धिगिमां देवमन्त्रिणामसारताम्। (घ) २ सर्वः स्वपक्षेषु विश्वसिति। ३ मूर्छन्ति। ६. सूर्यास्ते दत्तवती। ७. अभ्यवसे प्रारब्धवसि। ८. दुर्वस्थाने मां विद्धेव। ९. सत्ते वाचीश्वरे। १ मम विषयः अपि न वर्तते। ११ पितृस्थानी वर्तसे। १२. अवधानीयरे सिद्ध। १३ प्रतिहतोऽपि सन् रक्षति। १४ स्थिते वर्षत्यामे। १५ अनारभ्य।

शब्दकोष-१२७१+२८=११] अभ्यास २० (व्याकरण)

(क) सिन्दूरम् (सिन्दूर), चूर्णकम् (पाउडर), बिन्दुः (बिन्दी) लञ्जटिका (टीका) तिलकम् (तिलक) पत्रलेखा (पत्रलेखा), कज्जलम् (काजल), गन्धतैलम् (इत्र), क्षौमम् (स्नो) मुखम् (क्षीम) दर्पण (शीशा) प्रसाधनी (कंघी), ओष्ठरञ्जनम् (लिपस्टिक), कपोलरञ्जनम् (रूज) नखरञ्जनम् (नेल पालिश) फेनिलम् (साबुन) शृंगारपेटकम् (ड्रेसिंग टेबुल), क्षीरमाजनी (बुश), दन्तधावनम् (१ दाँत का बुश, २ साबुन) दन्तपिष्टकम् (टूथ पेस्ट), दन्तचूर्णम् (१ टूथ पाउडर २ मंजन) मेन्दिका (मेंहदी), अक्षशाला (आशाराम, महाशय), उद्वर्तनम् (उबटन) शृङ्गारभवनम् (सिंगारदान) (२५)

व्याकरण (अगात्, क्विप्, मिप्, इष्णु, क्त्वा आदि प्रत्यय)

१ अगात् शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ५८)

२ क्विप् और मिप् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ८३ ८४)

नियम २५०—(इष्णुच् प्रत्यय) (अलंकृञ् निराकृञ्) अलंकृ, निराकृ आदि धातुओं से इष्णुच् प्रत्यय होता है। इष्णु शेष रहता है। धातु को गुण, गुरुवत् रूप। अलंकरिष्णु। निराकरिष्णु। उत्पतिष्णुः। उत्पविष्णु। पचिष्णु। वर्धिष्णुः। सहिष्णुः। चरिष्णुः।

नियम २५१—(क्त्वा प्रत्यय) इन स्थानों पर क्त्वा होता है। इसका आ शेष रहता है। (अकर्तरिच) क्त्वा होने पर पहले अव्यय शब्द के अन्त में म् जुड़ जाएगा। गुण होगा। (१) (एकोः क्त्वा) एधि धातु से क्त्वा (आ)। अनमेजयतीति अनमेजय। (२) इन स्थानों पर क्त्वा होता है—खनम्यम अग्निहो वायुः, मितम्पचः, विपुलम्भरा, अरुन्तुदः अस्त्रम्पश्या अकाटन्तप। (३) (आत्ममाने खश्च) अपने आपको समझने अर्थ में क्त्वा। पण्डितंमन्य। काश्मिन्या। क्षिप्रंमन्याः। नरंमन्य।

नियम २५२—(क्त्वा प्रत्यय) क्त्वा का आ शेष रहता है। पूर्वसद में म् जुड़ेगा। गुण होगा। (१) (प्रियवशे वदः खच्) प्रिय वश पहले हों तो वद् से खच्। प्रियंवदा वशंवदा। (२) (गमेः सुपि, विहायसो विह) गम् धातु से क्त्वा। भुजंगम भुजंगा। विहंगमः, विहंगमा। (३) (द्विषत्परयोस्तापे) द्विषत्, पर पहले हों तो तापि से खच्। द्विषन्तपः, परन्तपः। (४) इन स्थानों पर खच् होता है—पार्श्वयम पुरन्दरः, सर्वसहः, कूर्मकपा नदी भयंकरः, अभयंकरः, भद्रंकरः विश्वंभरः, पतिंवरा कन्या अरिन्दमः।

नियम २५३—(अयुच्) अयुच् का अयु शेष रहता है। गुण होगा। (द्विषतो युच्) जिन धातुओं में से द्व हटा है, वहाँ अयुच् होगा। वप्> वेपयु वि> वापयुः।

नियम २५४—(ड्वनीयङ्) दा नी शद्, सु आदि से ड्वन् होता है। इसका अ शेष रहता है। गुण होगा। दात्रम् नेत्रम् शस्त्रम्। पत्> पत्रम्। दम्> दंष्ट्र।

नियम २५५—(ष्ट्रन) (अस्तिभूसृधृस्वन) अस्, घस्, भू सू, खन्, सह् धर् धातुओं से ष्ट्रन प्रत्यय होता है। गुण होगा। आस्त्रम् अवित्रम् खनित्रम्, धरित्रम्।

नियम २५६—(ठ) (खनाञ्जसिभ्यश्च ठः) खन् प्रत्यय जिनके अन्त में हो उनसे, आञ्जस् और सिध् धातु से ठ प्रत्यय होता है। खिकीर्षुः, आञ्जसुः, सिधुः।

नियम २५७—(ड) ड का अ शेष रहता है। कि का लोप होगा। (१) (सप्तम्यां जनेर्डः) सप्तम्यन्त शब्द पहले हो तो जन् धातु से ड। सरोजम्, सरोजम्। (२) इन स्थानों पर भी ड होता है—प्रज्ञा, अजः द्विजः।

नियम २५८—(अ) (अ प्रत्ययात्) प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीलिंग में अ। बाद में टाप्। विकीर्षा। नियम २५९—(युच्) (व्याहृमन्त्रो) व्याह से युच् (अन) होता है। कारि> कारणा। हारणा, धारणा।

अभ्यास ५२

संस्कृत बनाओ—(क) (जगत् शब्द) १ तुम जंगम और स्थावर का आत्मा है। २ जगत् के माता-पिता पार्वती और शिव की वन्दना करता हूँ। ३ यह सारा संसार ही नश्वर है इसमें भी यह शरीर और अधिक नश्वर है। ४ यदि एक ही काम से संसार को वश में करना चाहते हो तो पर-निन्दा से वाणी को रोको। ५ पत्नी के वियोग में यह सारा संसार शून्यवत् हो जाता है। ६ पति के स्वर्गवास होने पर संसार जीव अरण्यवत् हो जाता है। ७ मृग ऊँची उछाल के कारण आकाश में अधिक और भूमि पर कम चल रहा है (मियत्)। ८ वृक्ष से पत्ते गिर रहे हैं (पतत्)। ९ आज से फूल गिरे (पतितवत्)। (ख) (छिद् भिद् धातु) १ इस आत्मा को शस्त्र नहीं काटते हैं (छिद्)। २ हमारे बन्धनों को काटो (छिद्)। ३ तृष्णा को नष्ट करो (छिद्)। ४ मेरे इस संशय को दूर करो (छिद्)। ५ इससे हमारा कुछ नहीं बिगड़ता (छिद्)। ६ पढ़ा लिखकर कपड़ा लादकर गधे की सवारी करके जिस किसी प्रकार ही मनुष्य प्रसिद्धि प्राप्त करे। ७ ठण्डा जल भी क्या पहाड़ को नहीं तोड़ देता (भिद्)। ८ शत्रु ने सन्धि को तोड़ा (भिद्)। ९ मुख बस छः अक्षरों में पड़ते ही समाप्त हो जाती है। १ उदर को पीसता है (पिष्)। ११ यह व्यर्थ ही विश्लेषण करता है। (ग) (इष्णु आदि) १ बन ठनकर रहनेवाले लोग बालों में तेल और इत्र डालते हैं कभी से बालों को चाहते हैं मुँह पर स्नो और क्रीम लगाते हैं। दाँत के ब्रुश पर टूथ पेस्ट लेकर दाँत साफ करते हैं। नखों पर पालिश कराते हैं और वस्त्रों पर लोहा कराते हैं। २ बड़े आदमी मर्मभेदी वचन कभी नहीं कहते। ३ कमल शैवाल से घिरा हुआ भी मनोहर होता है। ४ सज्जन प्रियवादी शिष्य आज्ञाकारी, दुर्जन भयंकर, लम्पट अभयंकर, मुनि बारहवर्षी राजा सप्तस्वरी महल गगनचुम्बी साधु चन्द्र-शीतल, सूर्य अन्धकारापी और कृपण मितभाषी है। (घ) (प्रसाधनवर्ग) स्त्रियाँ प्रायः शृंगार-प्रिय होती हैं। वे सज-धज से रहना चाहती हैं। वे सिर में सिन्दूर लगाती हैं, माथे पर टीका और बेंदी लगाती हैं आँखों में काजल देह में उबटन भालों पर नख पालिश, गालों पर रूज ओठों पर लिपस्टिक मुँह पर स्नो और क्रीम पैरों में महावर और हाथों पर मेंहदी लगाती हैं। ड्रेसिंग टेबुल पर सिंगारदान और शृंगार का सामान रखती हैं। कुछ स्त्रियाँ जूड़ा बाँधती हैं, कुछ चोटी की जाली लगाती हैं और कुछ बालों में कांघा लगाती हैं।

संकेत—(क) १ जगतश्चराचरस्य। २ गिरौ। ३ निखिलं जगदेव नश्वरम् किमुतान्। ४ वशीकर्तुमेकेनैव परनिन्दातो निवारय। ५. प्रियावियोगे कृत्स्नं जगदेव शून्यवदाभाति। ६ जगत्पतौ दिवंगते सति जगदरण्यवदेव भवति। ७. उच्चप्लुतत्वात् मियति। ८ पतन्ति पतितानि। ९. पतितवन्ति। (ख) २ पाशान्। ४ छिन्धि। ५ न वा किंचिद् छिद्यते। ६ लिखित्वा छित्वा, हत्वा वर्वरोऽपि नरः। येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्। ८ अभिनत्। ९ षड्वर्णो विनश्यति। १ मापेषं पिनष्टि। (ग) १ अलंकुरिष्णवः, प्रसाधयन्ति वा दृढं (वर्णं वोद्वर्तयन्ति, अवदातं रचयन्ति। २ अवगुणवन्तं मनुजं सपोषणः। ३ सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्। ४ प्रियंवदः शिष्यः, आज्ञाकरः अरिष्टकरः, अभयंकरः, मितभाषः, अल्पभाषः, मितभाषी। (घ) अलंकुरिष्णवो भवन्ति। केशेषु सिन्दूरं धारयन्ति केशेषु पुष्पाणि धारयन्ति।

शब्दकोष–११ +२५=११२५] अभ्यास ५३ (व्याकरण)

(क) ग्राम (गाँव), नगरी (कस्बा) नगरम् (शहर), कुटी (झोंपड़ी), भवनम् (मकान), प्रासादः (महल) मार्ग (सड़क), राजमार्ग (मुख्य सड़क), मुख्यमार्गः (कच्ची सड़क), वटमार्ग (पक्की सड़क) रथ्या (चौड़ी सड़क) पीथिका (१ गली, २ गैलरी), नगरपालिका (म्युनिसिपलिटी), निगमः (कार्पोरेशन) नगराध्यक्षः(म्युनिसिपल चेयरमैन), निगमाध्यक्षः (मेयर), चतुष्पथः (१ चौक,२ चौराहा), पुरोद्यानम् (पार्क), रक्षिस्थानम् (थाना) कोटपालिका (कोतवाली), जनमार्गः(आम रास्ता), उपवेशगृहम् (वेटिंग रूम), मोक्षनगृहम् (बाइनिंग रूम), स्नानागारम् (बाथ रूम), माष्टागारम् (स्वीपर रूम) ।(२५)

व्याकरण (नामन् धर्मन् हिंस् भंज् अपत्यार्थक प्रत्यय)

१ नामन् और धर्मन् शब्दों के रूप स्मरण करो । (दे शब्द ६९, ७)

२ हिंस् और भंज् धातुओं के रूप स्मरण करो । (दे धातु ८५ ८६)

नियम २६०—सारे तद्धित के लिए यह नियम मुख्यतया स्मरण कर लें। (तद्धितेष्वचामादेः, किति च) जिस तद्धित प्रत्यय में से प् न् या क् हटा होगा वहाँ पर शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि हो जायगी । (१) अ् हटेवाले प्रत्यय,जैसे—अञ् इञ्,अम् ठञ्। (२) प् हटे वाले प्रत्यय—अप्, ढप्, ष्य । (३) क् हटे वाले—ठक्, ढक्।

नियम २६१—(अञ् प्रत्यय) अपत्य अर्थात् पुत्र या पुत्री के अर्थ में इन स्थानों पर अञ् प्रत्यय होगा । अञ् का अ शेष रहेगा । शब्द के प्रथम अक्षर को वृद्धि। (यस्येति च) शब्द के अन्तिम अ आ इ और ई का लोप हो जायगा । (१) (तस्यापत्यम्) अपत्य अर्थ में अञ् (अ) होगा । वसुदेवस्यापत्यम्> वासुदेव । उपगु> औपगवः । (२) (अश्वपत्यादिभ्यश्च) अश्वपति आदि से अपत्य अर्थ में अण । अश्वपति> आश्वपतम् । गणपति> गाणपतम् । (३)(शिवादिभ्योऽण्) शिव आदि से अण् । शिव स्यापत्यं> शैवः । गंगा>गागः । (४) (कुलत्थकुलटि) कृशि, अन्धकवर्णी वृष्णिवर्णी और कुरुवर्णी से अपत्यार्थ में अञ् । वसिष्ठ> वासिष्ठः । विश्वामित्र>वैश्वामित्रः । अनिरुद्ध> आनिरुद्धः । नकुल> नाकुलः । सहदेव> साहदेवः । (५) (मानुषस्यसंज्ञा) कोई संज्ञा, जिस का मनु पहले होगा तो मनु शब्द से अपत्यार्थ में अञ्। मनु को मानुर् हो जायगा । हिमनु> हैमानुरः । पद्मनु> पाद्मानुरः । सोमनु> सौमानुरः ।

नियम २६२—(इञ् प्रत्यय) अपत्य अर्थ में इन स्थानों पर इञ् प्रत्यय होगा । इञ् का इ शेष रहेगा । शब्द के प्रथम अक्षर को वृद्धि । इरिञ् रूप चलेगा । (१) (अत इञ्) अकारान्त शब्दों से इञ् । दशरथ> दाशरथिः (राम) । दक्ष> दाक्षिः । सुमित्रा> सौमित्रिः (लक्ष्मण) । द्रोण> द्रौणिः (अश्वत्थामा)। (२) (वाहादिभ्यश्च) वाहु आदि से इञ्। उ को गुण ओ हो जायगा । वाहु> वाहिः ।

नियम २६३—(ढक् प्रत्यय) अपत्य अर्थ में इन स्थानों पर ढक् होगा । ढ को एय हो जायगा । प्रथम स्वर को वृद्धि । (१) (स्त्रीभ्यो ढक्) स्त्रीलिंग शब्दों में ढक् (एय) । विनता> वैनतेय । भगिनी> भागिनेय । (२) (इषुग) दो स्वरवाले स्त्रीलिंग शब्दों से ढक्। कुन्ती> कौन्तेयः, माद्री> माद्रेयः राधा> राधेयः, गंगा> गांगेय ।

नियम २६४—(ण्य प्रत्यय) अपत्यार्थ में ण्य । य शेष रहेगा । प्रथम स्वर को वृद्धि । (१) (दितादित्या) दिति, अदिति आदिस्थ पति अन्तवाले शब्दों से ण्य। दैत्य, आदित्यः, आदित्य, प्रजापति> प्राजापत्य । (२) (कुरुनादिभ्यो ण्यः) कुरुवंशी और नकारादि से ण्य । कुरु> कौरव्य । नियध> नैषध्यः ।

अभ्यास ५३

संस्कृत बनाओ—(क) (नामन् धर्मन् शब्द) १ उसने अपने पुत्र का नाम रघु रक्खा। २ मानी लोग यशों और सुख को सरलता से छोड़ देते हैं। ३ अपने किये कर्म को कौन नहीं भोगता (कर्मन्)। ४ वह स्वधर्म्मार्ग से चल पड़ा (धर्मन्)। ५ वे सन्मार्ग से जरा भी नहीं हटे (सद्धर्मन्)। ६ उसने मन वचन, शरीर और कर्म से देशसेवा की। ७ उस वचन ने उस पर पूरा असर किया (मर्मन्)। (ख) (हिंस्, भञ्ज् धातु) १ जो निरपराध जीवों की हिंसा करता है वह पापी होता है (हिंस्)। २ धूम कर्म पापों को नष्ट करता है (हिंस्)। ३ किसी भी जीव को न मारो। ४ बन्दर बगीचे को तोड़-फोड़ रहा है (भञ्ज्)। ५ राम ने धनुष को तोड़ दिया (भंज्)। ६ कुटुम्बसम्बन्धों को न तोड़। ७ यह सुन्दर भाषण उसकी वाग्मिता को व्यक्त करता है (वि+भंज्)। (ग) (अपस्वार्थक) १ ब्राह्मर्षि राम ने अभद्रम्भ राम को निर्भीकता से उत्तर दिया। २ वासुदेव ने कुन्ती के पुत्र अर्जुन का सारथि होना स्वीकार किया। ३ पृथा के पुत्र भीम ने दुर्योधन के पुत्र दुश्शासन को मार दिया। ४ राधा के पुत्र कर्ण ने द्रोण पुत्र अश्वत्थामा से कहा—मैं सारथि होऊँ या सारथि-पुत्र, अथवा जो कुछ भी होऊँ, इससे क्या। सत्कुल में जन्म होना भाग्याधीन है पर पुरुषार्थ अपना मेरे हाथ में है। ५ माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव युधिष्ठिर के साथ ही वन में गए। ६ सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने कभी भी राम का साथ नहीं छोड़ा। (घ) (पुरवर्ग) नगर में सज्जन दुर्जन, विद्वान् अविद्वान्, धनिक, निर्धन बड़े-छोटे, हिन्दू, मुसलमान ईसाई सभी रहते हैं। नगर की उन्नति सभी नागरिकों का कर्तव्य है। सत्य अहिंसा प्रेम, सद्भाव और सहानुभूति से जन-जीवन सुखमय होता है। अतः इन गुणों को अपनाना और इनका उपयोग करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। प्रत्येक देश में गाँव कस्बे और नगर होते हैं। गाँवों में झोपड़ियाँ और कुटिया होती हैं परन्तु नगरों में मकान और महल अधिक होते हैं। शहरों में पक्की सड़कें, चौड़ी सड़कें मेन रोड और गलियाँ भी होती हैं। वहाँ पार्क बच्चों के पार्क, जिमखाना बाटर-वर्क्स थाना, कोतवाली भी होते हैं। छोटे शहरों में म्युनिसिपलिटी होती है और उसका अध्यक्ष म्युनिसिपल-चेयरमैन होता है। बड़े शहरों में कार्पोरेशन होता है और उसका अध्यक्ष मेयर होता है। इनका काम होता है कि नगर की सुरक्षा करें और नगर की उन्नति के लिए सभी साधनों को अपनावें। नगरों में प्रत्येक घर में साधारणतया ड्राइंगरूम, डाइनिंग रूम बाथरूम, स्टोर रूम, रसोई, सोने का कमरा, रहने का कमरा शौचालय मूत्रालय और अतिथिगृह होते हैं। कुछ मकानों में पड़ोसा और बगीचे भी होते हैं।

संकेत:—(क) १ नाम्ना रघुं चकार। २ अयशः धर्मं च। ३ कर्मं का सुकृतमत्र न भुज्यते। ४ प्रजाभ्यो स्वधर्मात्। ५ सद्धर्मतो रेखामात्रमपि न व्यगीयुः। ६ मनोवाक्च कर्मभिः। ७. तस्य हृदयमर्मास्पृशत्। (ख) १ दुष्कृतानि हिनस्ति। ४ भनक्ति। ७. व्यनक्ति। (ग) १ सार्थः पार्थोऽपृच्। ४ सूतो वा सूतपुत्रो वा। दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्। ५ सोऽभिषेक्ष्यत् (ङ) अयोध्या कश्चिद् ग्रामः वसति, ईदृशमाकाशचुम्बिनः, चारयन् वटवृक्षः पक्षिणामावासानि सिषुरसूत्रयति वटवृक्षाः छायासूत्रम् वातसूत्रम् नि

शब्दकोष-१२५+२५=१५०] अभ्यास ५४ (व्याकरण)

(क) आपणः (दूकान), विपणिः (स्त्री, बाजार) महाहट्टः (मंडी), प्राकारः (परकोटा), वृतिः (बाड़, बेड़ा), भित्तिः (स्त्री, दीवार), द्विभूमिकः (दुमंजिला), त्रिभूमिकः (तिमंजिला), चतुःशालम् (चारों ओर मकान, बीच में आँगन), उटजः (झोपड़ी), मण्डपः (१ मंडप, २ टेन्ट), अन्तःपुरम् (जनाना), देहली (देहली), प्रपा (प्याऊ) पण्यिकाध्वजः (दुकानिशाना) अट्टः (अटारी, कुर्सी) पद्मी (छज्जा), गोपुरम् (मुख्य द्वार) वेदिका (वेदी), द्वारम् (द्वार), चत्वरम् (चबूतरा) अजिन्दः (घर के बाहर का चबूतरा), अजिरम् (आंगन), निश्रेणिः (सीढ़ी, काठ आदि की), सोपानम् (सीढ़ी) (२५)।

व्याकरण (अहन्, अहन् रूप, मुज् चातुरर्थिक प्रत्यय)

१ अहम् और अहन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ७१ ७२)

२ रुच् और मुज् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ८७, ८८)

नियम २६५—(रक्तार्थक) रंग आदि से रंगने अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं:—(१) (तेन रक्तं रागात्) जिससे रंगा जाए, उससे अण् (अ) प्रत्यय। प्रथम स्वर को वृद्धि। *कषाय>काषायम् (गेरु से रंगा हुआ वस्त्र)। माञ्जिष्ठम् (मँजीठ से रंगा हुआ)।* (२) (नील्या वन्) नीली शब्द से वन् (क)। नीली>नीलकम् (नील से रंगा हुआ)। (३) (पीताक्त्न्) पीत से क्त्न् (क)। पीतकम् (पीले रंग से रंगा हुआ)। (४)(हरिद्रा) हरिद्रा से अम् (अ)। हारिद्रम् (हल्दी से रंगा हुआ)।

नियम २६६—(कालार्थक) किसी नक्षत्र से युक्त समय या पूर्णिमा होगी तो ये प्रत्यय होंगे। (१) (नक्षत्रेण युक्तः कालः) नक्षत्र से अण् (अ)। पुष्य>पौषम् अहः, पौषी रात्रिः (पुष्य से युक्त दिन या रात)। (२) (तस्मिन्) नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होने पर मास का यह नाम पड़ता है। अण् (अ) प्रत्यय। पुष्य से युक्त मास—पौष। चित्रा>चैत्र। विशाखा>वैशाख। आषाढा>आषाढ।

नियम २६७—(देवतार्थक) देवता अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं। (१) (तस्य देवता) देवता अर्थ में अण् (अ)। इन्द्र>ऐन्द्रं हविः (इन्द्र है देवता जिसका)। पशुपति>पाशुपतम्। (२) (सोमाट् ष्यञ्) सोम से ष्यञ् (य)। सोम>सौम्यम्। (३) (वायुतः) वायु आदि से यत् (य)। वायु>वायव्यम्। पितृ>पित्र्यम्। (४) (अग्नेर्ढक्) अग्नि से ढक्। ढ को एय। अग्नि>आग्नेयम्।

नियम २६८—(समूहार्थक) समूह अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं:—(१) (तस्य समूहः) समूह अर्थ में अण् (अ)। काक>काकम् (काक-समूह)। बक>बाकम्। (२) (भिक्षादिभ्योऽञ्) भिक्षा आदि से अण् (अ)। भिक्षा>भैक्षम्। युवति>यौवनम् (स्त्री-समूह)। (३) (ग्रामजनबन्धुसहायात्तल्) ग्राम आदि से तल् (ता)। ग्रामता जन>जनता (जनसमूह)। बन्धु>बन्धुता। (४) (मयुरव्यंसकादेरञ्) इनसे अञ् (अ) होगा। कपोत>कापोतम्। मयूर>मायूरम् (मयूर-समूह)।

नियम २६९—(अध्ययनार्थक) पढ़ने या जानने अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं—(१) (तदधीते तद्वेद) पढ़ने या जानने अर्थ में अण् (अ)। (न प्रावृष्या) संयुक्ताक्षरों में प से पहले ऐ बढ़ने पहले को लोप। व्याकरण>वैयाकरण (व्याकरण पढ़ने या जाननेवाला)। न्याय>नैयायिकः। (२) (छन्दोब्राह्मणादिभ्यो युन्) छन्द आदि से युन् (अक) होता है। मीमांसा>मीमांसकः।

अभ्यास ५४

संस्कृत बनाओ—(क) (अदन् अहन् शब्द) १ ब्रह्म नित्य शुद्ध मुक्त-स्वभाव सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। २ सभी दानों में विद्या-दान श्रेष्ठ है। ३ जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्राह्मण होता है। ४ यह वेद में (अदन्) निष्णात है। ५ चन्द्रमा चाण्डाल के घर से (अदन्) चाँदनी को नहीं हटाता। ६ कवच (चर्मन्) धारण करो त्यौहार (पर्वन्) मनाओ वेद (अदन्) पढ़ो घर में (सदन्) सुख से रहो शुभ लक्षण (लक्षमन्) धारण करो। ७ दिन ज्योति का प्रतीक है और रात्रि अन्धकार की। ८ दिन में ऐसा काम न करे, जिससे रात्रि सुखद प्रतीत हो। ९ दिन प्रायः बीत गया है। (ख) (रुप् मुच् धातु) १ वह खेत में गायों को रोकता है। २ प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणायाम करे (रुप्)। ३ स्नेह का बन्धन ही स्त्रियों के अतिकोमल हृदय को वियोग के समय रोकता है (रुप्)। ४ बिस्तरे पर बैठकर न खावे (मुच्)। ५ पापी आदमी सैकड़ों दुःखों को भोगता है। ६ उसने यज्ञ का पुरोहित की तरह पालन किया (मुच्, पर)। ७ वह अकेला ही सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करता है (मुच्)। (ग) (चातुर्थिक प्रत्यय) १ संन्यासी गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। कुछ लोग नील से रँगे हुए वस्त्रों को पहनते हैं, कुछ पीले रंग से रँगे हुए और कुछ हल्दी से रँगे हुए वस्त्रों को। २ संस्कृत में महीनों के नाम नक्षत्रों के नामों से पड़े हैं। पूर्णिमा के दिन जो नक्षत्र होता है उसके नाम से ही वह मास बोध्य जाता है। जैसे—चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होने पर चैत्र मास, विशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ, अषाढा से आषाढ, श्रवणा से श्रावण, भद्रपदा से भाद्रपद, अश्विनी से आश्विन कृत्तिका से कार्तिक, मृगशिरा से मार्गशीर्ष, पुष्य से पौष, मघा से माघ और फल्गुनी से फाल्गुन नाम पड़े हैं। ३ प्राचीन समय में बहुत से अद्भुत गुणोंवाले अस्त्र थे। जैसे—आग्नेय, वारुण वायव्य, पाशुपत आदि। ४ जनता में प्रेम और एकता होनी चाहिए। ५ काक-समूह, बक-समूह, कपोत-समूह और मयूर-समूह, ये अपने समूह के साथ ही रहते उड़ते और बैठते हैं। ६ वैयाकरण व्याकरण पढ़ता है, नैयायिक न्याय को, मीमांसक मीमांसा को और वेदान्ती वेदान्त को। (घ) (पुरवर्ग) बड़े शहरों में बाजार, मंडी और दूकानें होती हैं। वहीं से नगरनिवासी सामान लाकर अपना आवश्यक काम करते हैं। शहरों में दुमंजिले, तिमंजिले, चारमंजिले और अट मंजिले मकान भी होते हैं। सीढ़ी के द्वारा ऊपर की मंजिलों पर पहुँचते हैं। आजकल बम्बई कलकत्ता आदि बड़े शहरों में लिफ्ट के द्वारा ऊपर की मंजिल पर सरलता से पहुँच जाते हैं और उससे ही उतर आते हैं। प्राचीन नगरों के चारों ओर परकोटा या बाड़ होती थी। मकानों में अटारी, छज्जा, द्वार मुखद्वार, ओसारा, सीढ़ी, दीवार, चबूतरा देहली, रनवास, मंडप भी होते थे। नगरों में प्याऊ, मुसाफिरखाने आदि भी होते थे।

संकेत—(क) १ ब्रह्मणानं विद्यिष्यते। ५ वैरयन्। ६ विधिवत् संधारय। ९ दिनम् प्रायशः। (ख) ६ अदन्। ९ आसाद्य। ४ एकान्ते न भुञ्जीत। ५ भुङ्क्ते। ६ स्नेहाभिबन्धनम्। ७ भुनक्ति। (ग) चतुर्भूमिकाः अष्टभूमिकाः प्रासादाः करवालनक्तेन कर्णभूमिम् अवतरन्ति।

शब्दकोष–११५०+२५=११७५] अभ्यास ५५ (व्याकरण)

(क) गवाक्षः (खिड़की), छविः (स्त्री , छत), पटवासवासः (स्काई लाइट), परश्वः (परसों), प्रकोष्ठः (पोर्टिको), कुड्मलम् (पत्ती), कपाटम् (किवाड़) अर्गलम् (अगला, किवाड़ के पीछे का डंडा), कीलः (चटकनी), नासादण्डकः (सूँघी), कक्षः (कमरा), महाकक्षः (हॉल) अपवरकः (कोठरी), खड्गः (खंभा) दारु (लकड़ी), काचः (काँच), अवस्फूर्णम् (सीमेंट), प्रलेपः (प्लास्टर) तृणम् (पूँस) वस्त्रम् (लत्ता, टीन), वस्त्रपटलकम् (टीन की चद्दर), लोहपटलकम् (लोहे की चद्दर), प्रणालिका (नाली), खपरैल (खपड़ा)। (२४) (घ) स्वर्णपट्टकम् (सफ़ेद का)। (१)

व्याकरण (इमनिच्, मतुप् मुक्, तद्धित प्रत्यय)

१ इमनिच् मतुप् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ७१, ७४)

२ मुक् और तद्धित धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ८ ९)

नियम २७०—(तत्र भवः, तत्र भवा) सप्तम्यन्त शब्दों से उत्पन्न होना आदि अर्थों में तद्धित प्रत्यय अण् आदि होते हैं। मुख्य प्रत्यय ये हैं—(१) (होने) अर्थात् आदि से होप अर्थों में अण् आदि होते हैं। चक्षुष्> चाक्षुषं रूपम् (आँख से देखने योग्य), श्रवण> श्रावणः शब्दः। (२) (राष्ट्रावारपाराद्) राष्ट्र शब्द से य (इय) और अवारपार से त्य (ईन) होते हैं। राष्ट्रे भवः> राष्ट्रियः। अवारपार> अवारपारीणः। (३) (ग्रामाद्यखञौ) ग्राम से ख और खञ् (ईन) होते हैं। ग्राम्यः, ग्रामीणः। (४) (दक्षिणापश्चात्) दक्षिण आदि से स्मिन् (स्य) होता है। दक्षिणा> दाक्षिणात्यः। पश्चात्> पाश्चात्यः। पुरस्> पौरस्त्यः। (५) (पूर्वापरप्रतीचः) दिक् प्राच् अपाच् उदच् और प्रतीच् से यत् (य) होता है। दिक्यम्, प्राच्यम्, अपाच्यम् उदीच्यम्, प्रतीच्यम्। (६) (अमेहकत्वसिजेभ्य) अम्य इह, क तः और त्व प्रत्ययान्त से त्यप् (त्य) होता है। अमात्यः, इहत्यः, कत्व, ततस्त्यः, तत्रत्यः। (७) (त्यदादीनि च) त्यद् आदि सर्वनामों की वृद्ध संज्ञा होने से छ (ईय) प्रत्यय। त्वदीय। मदीय। (८) (वृद्धाच्छः) शब्द का प्रथम अक्षर दीर्घ हो तो छ (ईय) प्रत्यय। शाल्व> शालवीयः। माद्रीय। (९) (भवतष्ठक्छसौ) भवत् शब्द से ठक् (क) और छस् (ईय) होते हैं। भावकः, भवदीयः। (१०) (युष्मदस्मदो) युष्मद् अस्मद् शब्द के ये रूप बनते हैं—युष्मदीयः (तुम्हारा), यौष्माकीणः, यौष्माकः, तावकीनः (तेरा), तावकः, त्वदीयः। अस्मदीयः, आस्माकीनः, आस्माकः, मामकीनः, मामकः मदीय। (११) (काल्यट्टम्) कालवाचकों से ठञ् (इक)। मास>मासिकम्। वार्षिकम्।(१२)(शार्वचिरं) शार्व चिर आदि के अन्त में तन लग जाता है। शार्वतनम्, चिरन्तनम्, पुराणतनम्, नवीनतनम्।

नियम २७१—(प्रभवति) उत्पन्न होना अर्थ में अण्(अ)। हिमवत्> हैमवती गंगा।

नियम २७२—(अधिकृत्य कृते) जिस विषय को लेकर ग्रन्थ बनाया जाए, वहाँ अण् आदि। शकुन्तला> शाकुन्तलम्। कहानी आदिमें प्रत्ययका लोप। वासवदत्ता।

नियम २७३—(तेन प्रोक्तम्) कृति अर्थ में अण् आदि। पाणिनि> पाणिनीयम्।

नियम २७४—इन अर्थों में भी अण्(अ) या इक लगता है। (१) (तद् गच्छति) रास्ता या वृत्त का जाना। सुघ्न> सौघ्नः। (२) (लोऽस्य निवासः) निवास अर्थ में अण्। शैव। (३) (तस्येदम्) इतका यह है अर्थ में अण्। शरद्> शारदम्। (४) (हेतौ प्रत्ये) प्रत्य अर्थ में। वरत्रा> वारत्रम्।

अभ्यास ५९

संस्कृत बनाओ—(क) (हविष्, धनुष् शब्द) १ अग्नि विधिपूर्वक हुत हवि को देवों को पहुँचाता है। २ यह सामग्री और घी से हवन करता है। ३ अग्नि पर घी को (सर्पिष्) पिघलाओ। ४ आकाश में तारों (ज्योतिष्) की ज्योति (रोचिष्) चमक रही है। ५ उसने धनुष पर अमोघ बाण रक्खा। ६ आँख से (चक्षुष्) देखकर आगे पैर रक्खो। ७ यह शरीर बिना कृत्रिमता के ही सुन्दर है (वपुष्)। ८ इसका शरीर हर्ष से रोमांचित है। ९ आयु मर्मस्थलों की रक्षा करती है (आयुष्)। १ प्राण ही जीवों की आयु है। (ख) (युज्, तन् धातु) १ युद्ध के अन्त में विपक्ष शस्त्र का प्रयोग नहीं करते हैं। २ आत्मा को परमात्मा में लगाओ। ३ उसने आशीर्वाद दिया। ४ कुछ नाटक प्रेमी आपस (प्रयुज्)। ५ ऋषि अन्तर्यामी हैं, जो इस ब्रह्माण्ड को ब्रह्मचर्य के कार्यों में लगाते हैं (नियुज्)। ६ उन्मत्त मनुष्य को मूर्खता भी नहीं छोड़ती है (वियुज्)। ७ सौभाग्य से उसकी आज नहीं गई (वियुग्)। ८ विद्या का सत्कार्य में उपयोग करें (उपयुज्)। ९. मलिन भी चन्द्रमा का चिह्न शोभा को करता है (तन्)। १० सज्जनों की संगति क्या मंगल नहीं करती है (भावन्)। ११ सत्संगति दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है (तन्)। १२ नौकरों ने शत्रियाने को फैलाया (वितन्) (ग) (वैदिक प्रत्यय) १ पौरस्त्य और पाश्चात्य संस्कृतियों में भेद होते हुए भी पर्याप्त समानता है। दोनों ही मौलिक सिद्धान्तों को मानते और अपनाते हैं। पुरातन हो या नूतन, सभी संस्कृतियों ने विश्व को लाभ पहुँचाया है। २ हे गोविन्द, तुम्हारी वस्तु तुम्हें भेंट करते हैं। ३ पाणिनीय अष्टाध्यायी सारे व्याकरणों का सार है और विद्वत्ता की पराकाष्ठा है। ४ विद्यालयों और उच्चविद्यालयों में वार्षिक, मासिक त्रैमासिक, षाण्मासिक और वार्षिक परीक्षाएँ भी होती हैं। ५ कन्या पराई संपत्ति है। (घ) (गृहवर्ग) निवास के लिए घरों की आवश्यकता सदा रही है और सदा रहेगी। समयानुसार इनकी निर्माण-विधि में अन्तर होता रहा है। प्राचीन समय में ग्रामों में मकान फूँस के या खपड़ैल के होते थे। आज कल भी ग्रामों में अधिक मकान फूँस और खपड़ैल के हैं। नगरों में अधिकांश मकान पक्की ईंटों के होते हैं। उनमें पक्की छतें की छत होती हैं, खिड़कियाँ स्काईलाइट, बरामदा, पर्दा किवाड़, चटकनी, सेंढ़ी आदि भी होती हैं। मकानों में सीमेंट का प्लास्टर होता है। कुछ मकानों पर पेन या खपड़ैल की चादरें भी लगाई जाती हैं। पहाड़ में मकानों में लकड़ी और काँच अधिक लगाया जाता है, जिससे खिड़की आदि बन्द होने पर भी प्रकाश अन्दर आ सके और कमरों में अँधेरा न हो।

संकेत—(क) १. वहति। २. हविषा जुहोति। ३. सर्पिः स्रावय। ४. द्यौर्ज्योतिषा द्योतते। ५. धनुषि अमोघं बाणं। ६. चक्षुषा दूरं विलोक्यान्यत्र पादौ धेहि। ७. अकृत्रिमेणैव वपुषा। ८. हर्षेण रोमाञ्चितं। ९. आयुर्मर्माणि रक्षति। १. प्राणो हि भूतानामायुः। (ख) १ युद्धान्ते विपक्षाः न प्रयुञ्जते। २ आत्मानं युञ्जे। ३ प्रयोदयत। ४. आत्मानमेव नियुङ्क्ते। ५. वियुङ्क्ते। ६. प्रान्तं अयुञ्जत। ७ अयुग्गीत। ८. उपयुञ्जीत। ९. अस्य मलिनो अपीन्दोः। १ संगः सतां किमु न मंगलमातनोति। ११. चन्द्रातपं अवततनिषु। (ग) १ पूर्वमेव वर्तमाने। ४ वार्षिकाः वार्षिकाः। ५. अन्यो हि कन्या परस्यैव धनं। (घ) कार्यालयानिमितानि अवलोकयति।

शब्दकोष-११७५ + २५ = १४] अभ्यास ५६ (व्याकरण)

(ग) अंग (१ संबोधन, २ आदरार्थ में), अप (१ मंगलार्थक २ प्रारम्भ में, ३ बादमें, ४ प्रश्नार्थक), अथ किम् (१ और क्या, २ हाँ), अधिरूप(बारे में), अपि (१ भी, २ प्रश्नार्थक, ३ सम्भव), आम् (हाँ), इति (१ कथनोद्धरण में, २ अतएव) इव (१ सदृश, २ मानों),कक्षित् (आशा करता हूँ कि), कच-कच (बहुत अन्तर-सूचक), कामम् (भले ही), किमुत (क्या कहना), किल (१ वस्तुतः, २ ऐसा कहते हैं, ३ आश्चर्य अर्थ में), खलु (१ वस्तुतः, २ प्रार्थना सूचक, ३ निषेधार्थक, ४ क्योंकि), ततः (१ इसलिए, २ तो, ३ वहाँ से ४ आगे), तथा (१ वैसा, २ और भी, ३ हाँ), तावत् (१ तो, २ उस तक, ३ अभी ४ वस्तुतः) दिष्ट्या (१ भाग्य से, २ बधाई देना), नञ् (अभाव), न नु (१ अवश्य, २ क्या ३ क्या ४ चूँकि), बत (खेद, हर्ष), यथा-तथा (१ जैसा-तैसा २ इस प्रकार कि, ३ चूँकि इसलिए, ४ यदि तो, ५ जितना उतना) यावत्-तावत् (१ उतना ही जितना २ जब ३ जबतक तबतक, ४ ज्योंही त्योंही), वरं-न (अच्छा है न कि) स्यात् (उचित है)। (२५)

व्याकरण (पयस् मनस्, डा धातु मत्वर्थक प्रत्यय।

१ पयस् और मनस् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ७५,७६)

२. डा धातु के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ९६)

नियम २७५—(१) (तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्) इसके पास है या इसमें है इन अर्थों में मतुप् प्रत्यय होता है। इसका मत् शेष रहता है, पुं में मत्वत् के तुल्य रूप बनेंगे, स्त्री ई लगाकर नदीवत्, नपुं में जगत् के तुल्य। (२) (मादुपधायाश्च) शब्द के अन्त में या उपधा में अ आ या म् हो तो मत् के म को व, अर्थात् मत्> वत्। धन>धनवान् (धनयुक्त)। गुणवान्, विद्यावान् धीमान्, श्रीमान्, बुद्धिमान्। यव आदि के बाद म को व नहीं होगा। यवमान्, भूम्मान्। (३) (तयः) वर्ग के १ से ४ के बाद मत् को वत् होगा। विद्युत्> विद्युत्वान्। (४) (रसादिभ्यश्च) रस आदि से मतुप् प्रत्यय। रसवान्, कपिवान्।

नियम २७६—(अत इनिठनौ) अकारान्त शब्दों से युक्त या वाला अर्थ में इनि (इन्) और ठन् (इक) प्रत्यय होते हैं। दण्ड>दण्डी दण्डिकः (दण्डवाला)। धन>धनी, धनिकः। इन् प्रत्ययान्त के रूप पुं में करिन् के तुल्य, स्त्री में ई लगाकर नदीवत्, नपुं में मनोहारिन् के तुल्य।

नियम २७७—(स्तोमादिपामादि) (१) स्तोमन् आदि से डा प्रत्यय। स्तोमन्>स्तोमडा (स्तोमयुक्त)। रोमन्>रोमडाः। (२) पामन् आदि से न प्रत्यय। पामन्>पामना (खाजवाला), अंग>अंगना (स्त्री), लक्ष्मी>लक्ष्मणाः (लक्ष्मीयुक्त)। (३) पिच्छ आदि से इलच् (इल)। पिच्छ>पिच्छिलः। उरस्>उरसिलः।

नियम २७८—(तदस्य संजातं) युक्त अर्थ में तारका आदि शब्दों से इतच्(इत) प्रत्यय होगा। तारका> तारकितं नभः। पुष्पित कुसुमितः, दुःखित,अंकुरित,शुष्कित।

नियम २७९—कुछ मत्वर्थक प्रत्यय ये हैं—(१) (अस्मायामेधा) अस् अन्त वाले शब्दों, माया, मेधा, स्रज् से विनि (विन्) प्रत्यय। यशस्वी, मायावी, मेधावी, स्रग्वी। (२) (वाह ऊठ्) वाह् से ऊठ् प्रत्यय। वाह्यी (सुन्दर घोड़ा)। (३)(अर्श आदिभ्योऽच्) अर्शस् आदि से अच् (अ)। अर्शसः(बवासीर-युक्त) (४)(दन्त उन्नत) दन्त से उरच् (उर)। दन्तुरः। (५) (केशाद् वो) केश से व प्रत्यय। केश>केशवः।

अभ्यास ५६

संस्कृत बनाओ—(क) (पयस्, मनस् शब्द) १ माता शिशु को दूध पिला रही है। २ साँप को दूध पिलाना केवल उसका विष बढ़ाना है। ३ महात्माओं के मन वचन (वचस्) और कर्म में एक ही बात होती है पर दुरात्माओं के मन वचन और कर्म में अन्तर होता है। ४ मैंने मन से भी कभी आज तक तुम्हारा बुरा नहीं किया है। ५ मेरा मन सन्देह में ही पड़ा है। ६ यह विश्वासवाले मन को और नीचे की ओर बहते हुए पानी को कौन रोक सकता है। ७ हितकारी और मनोहर वचन दुर्लभ है। ८ बस्ती को शत्रुओं से अपने पक्ष की रक्षा करनी चाहिए। ९ विभक और कलुषित होता हुआ चित्त बता देता है कि कौन उसका हितैषी है और कौन शत्रु है (चेतस्)। १ उसकी बात पर दुर्भाव का आरोप न लगाओ। (ख) (ज्ञा धातु) १ मैं तपस्या के बल को जानता हूँ। २ जानता हुआ भी मेधावी संसार में बुरे के बुरा आचरण करे। ३ हमें घर जाने के लिए आज्ञा दीजिए (अनुज्ञा)। ४ मैं करूँगा, यह प्रतिज्ञा करता हूँ राम दुबारा नहीं कहता (प्रतिज्ञा)। ५ निर्धनों का अपमान न करो (अवज्ञा)। ६ सीता ने क्या किया है इस बात से मुकरता है (अपज्ञा)। ७ बहू की सास से पटती है (संज्ञा)। (ग) (मत्वर्थक प्रत्यय) १ बलवान्, धनवान् गुणवान् बुद्धिमान् रूपवान् और श्रीमान् सभी को अपनी विशेषता का अभिमान होता है। २ दण्डी धनी, दानी मानी ज्ञानी और गुणी ये अपने गुणों से दूसरों को तिरस्कृत करते हैं। ३ यशस्वी, तेजस्वी वर्चस्वी, मेधावी और वाग्मी अपने ज्ञान और तेज से दूसरों का पथप्रदर्शन करते हैं। (घ) (अव्ययवर्ग) १ श्रीमन् (अंग), बच्चे को पढ़ा दीजिए। २ अब (अथ) शब्दानुशासन प्रारम्भ होता है। ३ क्या यह काम कर सकते हैं? ४ अब मैं ग्रीष्म ऋतु के बारे में गाऊँगा। ५ क्या यह चोर तो नहीं है? ६ मैं विदेशी हूँ, क्या पूछता हूँ। ७ वह कृष्ण की हँसी-सा कर रहा था। ८ आशा करता हूँ कि आप सकुशल हैं। ९. कहाँ तपस्या और कहाँ तुम्हारा कोमल शरीर। १ भले ही वह मेरे सामने न बैठे। ११ मुझ पर यम भी प्रहार नहीं कर सकता है अन्य हिंसकों का तो कहना ही क्या। १२ भाग्य से विपत्ति टल गई। १३ महाराज आपको विजय के लिए बधाई है। १४ ऐसा करना, जिससे राजा की कृपा पात्र हो जाऊँ। १५ मुझे मार जितना दुःख नहीं दे रहा है, जितना वाग्पति प्रयोग। १६ जितना पाया सब खा लिया। १७ जबतक एक दुःख समाप्त नहीं होता तबतक दूसरा उपस्थित हो जाता है। १८. प्राणत्याग अच्छा है पर भूखों का रहा नहीं।

संकेत—(क) १ वत्सवति। २ पयःपानम्। ३ महात्मनाम् मनसैव मनस्यन्यत्। ४ न ते मित्रिणं हृत्पूर्वम्। ५ संशयमेव गाहते। ६. न ईप्सितार्थविरितिविषमं मनः पदाच नियन्तुमुत्पथं प्रतीपयेत्। ८. बस्तस्तु रक्षणं परतो वधोद्यमैः। ९. विभक्तमनुपीडयन्च चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा। १ तस्य वचसि दुराशयं मा आरोपय। (ख) १ अनुजानीहि। ४ प्रतिजाने, रामो द्विर्नाभिभाषते। ५ मावमानीस्। ६ इतरथा मानीते। ७ आज्ञा संजानीते। (घ) १ अथ। २. अनुशासिकल्प। ५ अपि चौरो भवेत्। ६. इति। ७. जहासेव। ८ कच्चित् कुशली। ९. अल्पस्य। १ कामम् ११ किमुतान्यैर्हिंसाः। १२. दिष्ट्या विपदितं दुर्जनम्। १३ दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते। १४ तथा···यथा। १५ तथा···यथा वाग्पति वाहते। १६ यावत्···तावत्। १७. यावत्···तावत्। १८ वरं···न।

शब्दकोष-१४ + २५ = १४२५] अभ्यास ७७ (व्याकरण)

(क) पीड् (उ , दुःख देना) पृ (उ०, पूरा करना), वह् (उ , चोट मारना), स्फुट् (उ तोड़ना), स्फुर् (उ फोना), तुद् (उ , तोड़ना) पाद् (उ रक्षा करना) क्षिप् (उ , फेंक करना) स्तुत् (उ गुणगान करना), तन्त्र् (आ , आसन करना, पालन करना), मन्त्र् (आ० मंत्रणा करना), मुद् (आ , तोड़ना), तर्ष् (आ , चमकाना), अर्थ् (आ प्रार्थना करना), कुत्स् (आ० दोष लगाना), मर्ष् (आ सहना) स्कन्द् (उ , स्रोदना, रुकाना) पश् (उ सोचना), भृ (उ , धारण करना), मृष् (उ क्षमा करना) कम्प् (उ , उत्कम्पन करना) तुष् (उ , संतोषण करना) ईर् (उ , प्रेरणा देना) मी (उ , प्रसन्न करना), गवेष् (उ , गवेषणा करना)। (२५)। सूचना—इनके रूप पुर् के तुल्य चलेंगे।

व्याकरण (पाद, दन्त, बन्ध्, मन्त्र्, विभक्त्यर्थ प्रत्यय)

१ पाद और दन्त के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द २)।

२ बन्ध् और मन्त्र् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ११ ११)

नियम २८०—(तः प्रत्यय) (१) (पञ्चम्यास्तसिल्) पंचमी विभक्ति के स्थान पर तसिल् (तः) प्रत्यय होता है। यस्मात्> यतः, ततः, इतः, अतः, अमुतः, सर्वतः, उभयतः। स्वतः, परतः, अस्मत्तः युष्मत्तः। (२) (कु तिहोः) किम् को कु हो जाएगा। कस्मात्> कुतः। (३) (पर्यभिभ्यां च) परि और अभि से तः प्रत्यय। परितः, अभितः।

नियम २८१—(त्र प्रत्यय) (१) (सप्तम्यास्त्रल्) सप्तमी के स्थान पर त्रल् (त्र) प्रत्यय होता है। कुत्र यत्र, तत्र, सर्वत्र, उभयत्र अत्र अन्यत्र, बहुत्र। (२) (किमोऽत्, क्वाति) किम् के क और कुत्र दोनों रूप होते हैं। (३) (इदमो हः) इदम् का इह (यहाँ) भी रूप बनता है। (४) (इतराभ्योऽपि) पंचमी और सप्तमी के अतिरिक्त भी तः और त्र होते हैं। स भवान्> ततः भवान्, ततो भवान् (पूज्य आप)। अयं भवान्> अतः भवान् (पूज्य आप)।

नियम २८२—(१) (सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा) सर्व आदि से समय अर्थ में 'दा' प्रत्यय होता है। सर्वदा एकदा अन्यदा किम्> कदा यदा, तदा। (२) (सर्वस्य सो) सर्व को स भी हो जाता है। सदा। (३) (अधुना) इदम् को अधुना हो जाता है। अधुना (अव्य)। (४) (दानीं च) इदम् से दानीम् प्रत्यय भी होता है। इदानीम् (अव्य)। (५) (तदो वा च) तद् से दानीम् भी होता है। तदानीम्।

नियम २८३—(१) (प्रकारवचने थाल्) 'प्रकार' अर्थ में किम् आदि से थाल् (था) प्रत्यय होगा। तेन प्रकारेण>तथा। इसी प्रकार—यथा, सर्वथा उभयथा (दोनों प्रकार से), अन्यथा। (२) (इदमस्थमुः) इदम् से था की जगह थम् होगा। इदम्> इत्थम्। (३) (किमश्च) किम् से भी था को थम्। किम्>कथम् (कैसे)।

नियम २८४—(संख्याया विधार्थे धा) संख्यावाची शब्दों से प्रकार अर्थ में 'धा' प्रत्यय होता है। एकधा द्विधा त्रिधा चतुर्धा पंचधा। बहुधा, शतधा, सहस्रधा।

नियम २८५—(प्रमाण आदि अर्थ में) (१) (प्रमाणे द्वयसज्) प्रमाण अर्थात् माप-तोल आदि अर्थ में द्वयस दघ्न और मात्र प्रत्यय होते हैं। क्रमेण तक—ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम् ऊरुमात्रम्। हस्तमात्रम्, मुष्टिमात्रम् कटिमात्रम्। (२) (यत्तदेतेभ्यः) यत् आदि से परिमाण अर्थ में वत् प्रत्यय। यावान्, तावान्, एतावान्। किम् का कियान् इदम् का इयान् होता है।

अभ्यास ५७

संस्कृत बनाओ—(क) (पाद, दन्त, मनस् शब्द) १ उसने गुरु के पैर छूए। २ अपराधी ने राजा के पैर छूकर क्षमा माँगी। ३ मनुष्य द्विपाद् और पशु चतुष्पाद् होते हैं। ४ इस पुस्तक का मूल्य सवा रुपया है। ५ दाँतों को मुख से साफ करो और दाँतों में कोई तिनका फँसा हो तो दाँत साफ करने की सूई से उसे निकाल दो। ६ उसके वचन (वचस्) से मेरा हृदय द्रवित हो गया। ७ उसकी बात (वचस्) मेरे हृदय पर असर कर गई। ८ उसके हृदय (चेतस्) पर उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ा। ९ मेरा मन सन्देह में पड़ा है। १० ये विचार मेरे मन में उत्पन्न हुए (प्रादुर्भू)। ११ आज हवा बन्द है। १२ यहाँ घोर अँधेरा है। १३ दुरावस्था में इसे सूझा सूझी हुई है। १४ यह उसकी बात (वचस्) का निष्कर्ष है। १५ मैं तुम्हारी बात का समर्थन नहीं करता। १६ मेरी पूरी बात सुनो। १७ उसके हृदय (चेतस्) में कुतूहलता उत्पन्न हुई। १८ उसका मन नरम हो गया। १९. तेज तेज में (तेजस्) लाभ होता है। (ख) (बन्ध् मन्ध् धातु) १ उसने उससे प्रीति बढ़ाई (बन्ध्)। २ अपने बाणों को ठीक बाँधो (बन्ध्)। ३ पुण्यात्मा कर्मों से बद्ध नहीं होता। ४ चूड़ामणि पैर में नहीं पहना जाता। ५ चित्रकूट मेरी दृष्टि को आकृष्ट कर रहा है। ६ क्या यह श्लोक तुमने बनाया है (बन्ध्)? ७ उसने बाहुयुद्ध के लिए कमर कस ली। ८ मैं हाथ जोड़कर तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ (प्रार्थ्)। ९ इसके बीच में मत बोलो। १० उसने फिर अपने काम में मन लगाया। ११ देवों ने समुद्र से अमृत को मथकर निकाला (मन्थ्)। १२ मैं युद्ध में सौ कौरवों को नष्ट करूँगा (मन्थ्)। (ग) (विभक्तपर्य प्रत्यय) १ कन्या को आत्मा के तुल्य तुमसे भी अधिक प्रिय है, ऐसा मैं सोचता हूँ। २ तीक्ष्ण का बल और अग्नि ये और चीज से तुलित होने योग्य नहीं हैं। ३ इस विषय में मूल्य व्यवहारों प्रमाण बताता हूँ। ४ यह बंश आठ भागों में विभक्त होकर फैला (प्रसृ)। ५ यहाँ वहाँ जहाँ कहीं से भी छात्र आवें, उन्हें विद्यादान दो। ६ जब तब मुझे पत्र लिखते रहना। ७ कहाँ कैसे व्यवहार करें? यहाँ इस प्रकार से और वहाँ उस प्रकार से बर्तें। ८ यहाँ कितना जल है? कहीं कमर भर, कहीं घुटने भर, कहीं आँख भर। (घ) (क्रियावर्ग) १ जो दुष्ट है, चोट मारे, कराहे चिल्लाये, जाति मत को तोड़े मर्यादा का उल्लंघन करे, दोष लगाये उसके साथ न रहे और न उससे मित्रता करे। २. राजा अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करता है, नौकर वर्तनों को धोता है बनिया चीनी तोलता है राजा प्रजा की रक्षा करता है (पाल्), धार धरने वाला शस्त्रों और अस्त्रों को तेज करता है कवि राजा का गुणगान करता है राजा प्रजा पर शासन करता है राजा मन्त्रियों से मंत्रणा करता है, सज्जनों को प्रेरित करता है।

संकेत—(क) १. नमामि। २. पादयोर्निपत्य क्षमां याचते। ४ उपग्रन्थोऽयम्। ५ मिलितं चेत् दन्तशलाकया। ६. द्रवीभूतम्। ७. हृदयमवगाहते। ८ चेतसि नोपदेशः। ९. संशयमेव गाहते ११ निर्वातं वर्तते। १२. घूपोऽयं तमः। १३ परिणतबुद्धिः खेदायते। १४. वचो निश्चितमस्ति। १५. समर्थये। १६. कुतूहलेन पूर्णं वदतु। १८ मनश्चेतसमभवत्। १९. लाभयति। (ख) १. दृढं बध्नीत। २ न बध्यते ४ बध्यते। ५. बध्नाति। ६. बद्धा। ७. परिकरं बध्नीत। ८ संनद्धो वदति, प्रार्थये। ९. मैवमन्तरा प्रतिवदतु। १ बध्नीत। (ग) १ स्वयं, वर्तयामि। २. नास्यतः शुद्धिमर्हतः। ३ अवश्यकर्तव्यं प्रमाणीकरोमि। विभक्तः विभजते। ६. वदा वदा। ८ परिवस्व, आचरतु। (घ) १ पीडयेत् त्रासयेत्। २. पालयति, प्रज्ञापयति शोधयति वदति कीर्तयति उत्तेजयते मन्त्रयते प्रेरयति।

शब्दकोष–१४२५+२५=१४५] अभ्यास ५८ (व्याकरण)

(क) कार्तस्वरम् (सुवर्ण, सोना), रूप्यम् (चाँदी), चन्द्रलौहम् (चमकने वाला लोहा), आयसम् (लोहा), निष्कलंकायसम् (स्टेनलेस स्टील), ताम्रकम् (ताँबा), पीतलम् (पीतल), कांस्यम् (काँसा धातु) कांस्यकृत्रिमः (कसकूट) मौक्तिकम् (मोती), इन्द्रनीलः (नीलम) वैदूर्यम् (लहसुनिया), हीरकः (हीरा), प्रवालम् (मूँगा) पुष्परागः (पुखराज) मरकतम् (पन्ना), माणिक्यम् (चुन्नी), अभ्रकम् (अभ्रक) पीतकम् (हरताल), गन्धकः (गन्धक), सुधांजनम्(खरिया) पारदः(पारा) पाषादम्(अस्त),सीसम्(सीसा),स्फटिकः(फिटकिरी)।(२५)

व्याकरण (गोपा, विभक्ति, स्त्री, सह् मार्गदर्शक प्रत्यय)

१ गोपा शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द १)। विभक्ति गोपा के तुल्य।
२ स्त्री और सह् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु १४, १५)

नियम २८६—(तस्य भावस्त्वतलौ) भाव (हिन्दी 'पन') अर्थ में शब्द के अन्त में त्व और तल जोड़ते हैं। त्व–प्रत्ययान्त के रूप नपुं में ही चलेंगे, सहज। तल–प्रत्ययान्त के रूप रमावत्। लघु> लघुत्वम् लघुता (हल्कापन), गुरु> गुरुत्वम्, गुरुता। ब्राह्मण ब्राह्मण पिङ्गल> पिङ्गलत्वम्, पिङ्गलता। महत्>महत्त्वम् महत्ता।

नियम २८७—(ष्यञ् प्रत्यय) (१) (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च) वर्णवाचकों और दृढ आदि शब्दों से ष्यञ् (य) प्रत्यय होगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। शुक्ल> शौक्ल्यम् (सफेदी)। कृष्ण> कार्ष्ण्यम् (कालापन)। दृढ> दार्ढ्यम् (दृढता)। (२) (गुणवचन ब्राह्मणादिभ्यः) गुणवाचक और ब्राह्मण आदि शब्दों से ष्यञ् (य)। धृ> धैर्यम्। सुन्दर> सौन्दर्यम्। धीर> धैर्यम्, सुख> सौख्यम्। कवि>काव्यम्। (३) (चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे) चतुर्वर्ण आदि से स्वार्थ में ष्यञ् (य)। चातुर्वर्ण्यम्। चातुराश्रम्यम्। पञ्चगुण> पाञ्चगुण्यम्। सेना> सैन्यम्। समीप> सामीप्यम्। त्रिलोक> त्रैलोक्यम्।

नियम २८८—(इमनिच् प्रत्यय) (पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा) पृथु आदि से भाव अर्थ में इमनिच् (इमन्) प्रत्यय होता है। टि (अन्तिम स्वर-सहित अंश) का लोप होगा। (र ऋतां) शब्द के ऋ को र होगा। पृथु> प्रथिमा। लघु> लघिमा, गुरु> गरिमा, अणु> अणिमा महत्>महिमा मृदु>म्रदिमा।

नियम २८९—भावार्थक कुछ अन्य प्रत्यय ये हैं—(१) (इगन्ताच्च लघुपूर्वात्) शब्द के अन्त में इ उ या ऋ हो और उससे पहले ह्रस्व स्वर हो तो शब्द से अण् (अ) होगा। शुचि> शौचम् (स्वच्छता), मुनि> मौनम् (मौन) पृथु>पार्थवम् (मोटापा)। (२) (सख्युर्यः) सखि से य प्रत्यय होगा। सखि> सख्यम् (मित्रता)। (३) (पत्यन्त) पति अन्तवाले शब्दों पुरोहित आदि और राजन् से यञ् (य) होगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। सेनापति>सैनापत्यम्। पौरोहित्यम्। राजन्>राज्यम्। (४) (प्राणभृजाति) प्राणी जातिवाचक और आयु-वाचक से अण् (अ)। अश्व> आश्वम्। कुमार>कौमारम्। कैशोरम्। (५) (हायनान्त०) हायन अन्तवाले और युवन् आदि से अण् (अ)। द्विहायनम् (२ वर्ष का)। युवन्> यौवनम्।

नियम २९०—(कृत्, क) (१) (तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः) तृतीयान्त से तुल्य अर्थ में वति (वत्) क्रियासाम्य में। ब्राह्मणेन तुल्यं> ब्राह्मणवत् अधीते। (२) (तत्र तस्येव) सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्त से तुल्य अर्थ में वत्। मथुरायामिव>मथुरावत्। चैत्रवत्।(३)(दृष्टे प्रतिकृतौ)उत्कीर्ण मूर्ति या चित्र अर्थ में कन्(क)। अश्व इव>अश्वकः।

अभ्यास ५८

संस्कृत बनाओ—(क) (गोपा विश्पा शब्द) १ ग्वाला गायों को चराता है, उनकी सेवा करता है और उनकी रक्षा करता है। २ ईश्वर विश्पा है, वह विश्व का पालन करता है। ३ शंख बजानेवाला (शंखध्मा) शंख को बजाता है। ४ भूमपान करनेवाले (भूमपा) बीड़ी सिगरेट और हुक्का पीते हैं। ५ सोमपान करनेवाला (सोमपा) सोम को पीता है। (ख) (श्री ग्रह् धातु) १ प्राणों के मूल्य से यश को खरीदो। २ बनिया सामान खरीदता है और गाहकों को बेचता है (विक्री)। ३ वर वधू के हाथ को पकड़ता है (ग्रह्)। ४ प्रजा के कल्याण के लिए ही उसने प्रजा से कर लिया (ग्रह्)। ५ राजा चोरों को पकड़े (ग्रह्) और उन्हें जेल में डाल दे। ६ लोभी को धन से जीते (ग्रह्)। ७ मुझ मूर्ख बुद्धि ने भी वैसा ही समझ लिया (ग्रह्)। ८ लोग ऐसा समझते हैं (ग्रह्)। ९ पापी का नाम भी न ले (ग्रह्)। १ तुमने यह पुस्तक कितने मूल्य में खरीदी (ग्रह्)। ११ मनुष्य पुराने कपड़ों को उतारकर नवीन वस्त्रों को पहनता है (ग्रह्)। १२ बलवान् के साथ लड़ाई न करे (विग्रह)। १३ आप मुझे विद्यादान से अनुगृहीत करें (अनुग्रह्)। १४ राजा पापियों और चोरों को दण्ड दे (निग्रह्)। १५ इस आतिथ्य-सत्कार को स्वीकार कीजिए (प्रतिग्रह्)। १६ इन्द्रियों को संयम में रक्खो (निग्रह्)। १७ सारी फूलों को इकट्ठा करके (संग्रह) आपने उनसे उसने मालाएँ बनाईं। १८ इस विषय में मुनि कुछ नहीं मानेंगे। १९ क्या कारण है कि गुरु की अभी तक कृपा नहीं हुई। (ग) (भावार्थक) १ प्रतिष्ठा उच्छृङ्खलताभाव को नष्ट करती है। २ ढीठ, पर्दा स्वच्छन्द हो रही है। ३ इस विषय उन सबकी एक राय है। ४ मन्थर से लड़कों को मिठाई बाँटो (क्रि)। ५ महान् दारुण भी मुझे दुख नहीं देता। ६ संसार में मनुष्य के अपने कर्म ही उसे गौरव या हीनता को देते हैं। ७ बुद्धि करना मानव-धर्म है। ८ दुष्टों पर सिंचाई शिक्षण नीति नहीं है। ९ सम्भाव-हीनता दुखद है। १ क्षण-क्षण में जो नवीनता को प्राप्त हो वही सौन्दर्य है। (घ) (धातुवर्ग) संसार में धातुओं का बहुत महत्व है। धातुओं से ही सभी उपयोगी वस्तुएँ बनती हैं। सोना चाँदी, मोती, नीलम लहसुनिया हीरा मूँगा, पुखराज, पन्ना और जुमी ये बहुमूल्य धातुएँ हैं और आभूषणों आदि में इनका उपयोग होता है। बर्तन लिफ्वर, लोहा स्टेनलेस स्टील, ताँबा, पीतल काँसा, फलफूल, लस्त और शीशे के विविध प्रकार के बर्तन आदि बनते हैं।

संकेत—(क) १ वसति (व्या)। ४ तमासुरीप्रिकाम् तमासुरतिकाम् सूचनस्त्रिकाम्। (ख) १ प्राप्नुवन्ति। २ पश्चात् विक्रीणीते। ३ धनं गृह्णाति। ५ गृहीत्वा कारायां निक्षिपेत्। ७ गृहीत्वत्। ९ विद्या मूल्येन गृहीतवत्। १०. विहाय गृह्णाति। १२. न विगृह्णीयात्। १३ अनुगृह्णातु। १५. प्रतिगृह्णत आतिथेयं सत्कारम्। १७. संगृह्य। १८. न दोषं ग्रहीष्यन्ति। १९. कारणं किमद्य गुरुकृपा। (ग) (भावार्थक) १ औद्धत्यभावमवश्यं नाशयति। २ धृष्टीभावे हि लज्जास्वच्छन्दचरन्ती। ३ ऐकमत्यम्। ४ मन्थरेण। ५ न दारुणमाददाति। ६ लोके गुरुत्वं विपरीतानां वा लघुत्वमेव वर्तं कुरुतः। ७ करणम्। ८ शासनं हि दुष्टेषु। ९ अवज्ञाजनकः। १ अवयवानुपैति क्षणेन रूपं रमणीयतायाः।

शब्दकोष-[१४५+२५=१७५] अभ्यास ५९ (व्याकरण)

(क) नव रसाः (नौ रस), सप्त स्वराः (सात स्वर), मन्द्राः (कोमल स्वर), मध्याः (मध्यम स्वर) तारः (तीव्र स्वर) आरोहः (चढ़ाव), अवरोहः (उतार), वीणा (सितार), मुरली (बाँसुरी) मनोहारिवाद्यम् (हारमोनियम) सारंगी (१ वाद्योदिन, २ सारंगी), तन्त्रीकवाद्यम् (सितार), तानपूराः (तानपूरा), अन्तरंगाः (अन्तरंग) मुरजः (तबला), ढोलकः (ढोलक) मंजीरम् (मंजीरा), दुन्दुभिः (नगाड़ा), पटहः (ढोल), दर्दुरम् (दुदुही खनाई) डिण्डिमः (डिंडोरा) वादित्रगणाः (बैण्ड), वीणावाद्यम् (वीणावाद्य, नकीरी), संवाद्यीसः (विगुल), कोषः (मिजराब)। (२५)।

व्याकरण (कति पुर् धिन्, तर, तम, ईयसुन्, इष्ठ)

१ कति शब्द के रूप स्मरण करो। (दे शब्द ९९)।

२ पुर् और धिन् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु १७ १८)।

नियम २९१—(द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ) दो की तुलना में विशेषण शब्द से तरप् (तर) और ईयसुन् (ईयस्) प्रत्यय होते हैं। तर प्रत्यय लगने पर पुं में रामवत्, स्त्री में रमावत् और नपुं में पद्मवत् रूप चलेंगे। ईयस् लगने पर पुं में भेयस् (शब्द ९९) के तुल्य, स्त्री में अन्त में ई लगाकर नदीवत् और नपुं में मनस् के तुल्य रूप चलेंगे। जिससे विशेषता दिखाई जाती है उसमें पंचमी होगी। रामः श्यामात् पटुतरः, पटीयान् वा।

नियम २९२—(अतिशायने तमबिष्ठनौ) बहुतों में से एक की विशेषता बताने अर्थ में तमप् (तम) और इष्ठन् (इष्ठ) प्रत्यय होते हैं। दोनों के रूप पुं में रामवत्, स्त्री में रमावत्, नपुं में पद्मवत् चलेंगे। जिससे विशेषता बताई जाती है उसमें षष्ठी या सप्तमी होगी। छात्राणां छात्रेषु वा रामः पटुतमः पटिष्ठः वा।

नियम २९३—ईयस् और इष्ठ के बारे में ये बातें स्मरण रखें—(१) (अज्यादी गुणवचनादेव) ईयस् और इष्ठ गुणवाचकों से ही लगेंगे अन्य से नहीं। तर, तम सर्वत्र लगते हैं। (२) (टेः) ईयस या इष्ठ बाद में होगा तो टि (अन्तिम स्वर सहित अंश) का लोप होगा। (३) (र ऋतो) शब्द के ऋ को र् होगा। (४) (स्थूल-दूर) स्थूल दूर आदि के अन्तिम र, ल वा व का लोप होगा ईयस् या इष्ठ बाद में होगा तो। (५) (प्रियस्थिर) प्रिय स्थिर आदि को प्र स्थ आदि होते हैं। विशेष प्रसिद्ध रूप ये हैं। कोष्ठगत शब्द शेष रहता है। इन शब्दों से तर तम भी लगते हैं।

प्रशस्य (श)	श्रेयान्	श्रेष्ठः	गुरु (गर्)	गरीयान्	गरिष्ठ
वृद्ध, प्रशस्य (ज्य)	ज्यायान्	ज्येष्ठः	दीर्घ (द्राघ्)	द्राघीयान्	द्राघिष्ठः
अन्तिक (नेद्)	नेदीयान्	नेदिष्ठः	बहु (भू)	भूयस्	भूयिष्ठः
आढ (साध्)	साधीयान्	साधिष्ठः	युवन् (कन्)	कनीयान्	कनिष्ठः
स्थूल (स्थ्)	स्थवीयान्	स्थविष्ठः	पटु (पद्)	पटीयान्	पटिष्ठः
दूर (द्)	दवीयान्	दविष्ठ	अल्पु (अल्प्)	अल्पीयान्	अल्पिष्ठः
प्रिय (प्र)	प्रेयान्	प्रेष्ठः	महत् (मह्)	महीयान्	महिष्ठः
स्थिर (स्थ)	स्थेयान्	स्थेष्ठः	मृदु (मर्द)	मर्दीयान्	मर्दिष्ठः
वर (वर्)	वरीयान्	वरिष्ठः	बलिन् (बल्)	बलीयान्	बलिष्ठः

अभ्यास ५९

संस्कृत बनाओ—(क) (अति शब्द) १ कितनी अग्नियाँ हैं, कितने सूर्य हैं। २ मन, तू स्मरण कर कि तूने कितने पाप किए हैं और कितने पुण्य। ३ कुछ ही पैर चलकर वह तन्वी रुक गई। ४ उस पर्वत पर उसने कुछ महीने बिताए (नी)। ५. कागज पर कुछ कुछ लिखे हैं। ६ कुछ दिन बीतने पर वह घर लौटा। (ख)(चुर् क्विप्) १ चोर ने तिजोरी तोड़कर तीन एक हजार रुपये के दस एक सौ के, पचास दस रुपए के और अस्सी पाँच रुपए के नोट चुराए। २ नारद ने धर्मात्मा की शोभा को चुराया। ३ सोचो किस बहाने से हम आश्रम में आवें। ४ धन की हानि को मन से भी न सोचे (क्विप्)। ५ पिता तुम्हारी देख-भाल करेंगे (क्विप्)। ६ पाखण्डियों और कुकर्मियों की बाणी से भी पृथा न करे (अच्)। ७ ऐसी बाणी न कहे (ठकीर्), जिससे दूसरे के हृदय को दुःख पहुँचे। ८ कर्म पूरा करने का इच्छुक मनस्वी न दुःख की परवाह करता है और न सुख की। ९ धर्म की प्राचीन मान्यताओं का पता चलाओ (गवेष्)। १ यह मुँह पर पूँछ कटाती है। ११ मारीच सरकार ने गोहत्या-निरोध की घोषणा की (घुष्)। १२ चित्रकार कपड़े पर नेहरूजी का चित्र बनाता है (क्विप्)। १३ मैं दुर्योधन की जंघा को चूर-चूर कर दूँगा (चूर्ण्)। १४ वह आभूषणों से अपने शरीर का अलंकृत कर रही है (अलंकृ)। १५ विद्या और धन को बड़े परिश्रम से एकत्र करो (अर्ज्)। (ग) (तर, तम आदि) १ पदोन्नति के लिए पद्य बड़ी चीज है (गुरु)। २ बड़े लोग स्वभाव से ही कम बोलते हैं। ३ बड़ों की सहायता से क्षुद्र भी सफल हो जाता है। ४ जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है (गुरु)। ५ स्वधर्म परधर्म से बढ़कर है। ६ राम श्याम से अधिक बड़ा (प्रशस्य) अच्छा (वाढ), प्रिय, विद्वान् (उरु) भारी (गुरु) लम्बा (दीर्घ) चतुर (पटु) महान् और बलवान् (बहिन्) है और श्याम राम से हलका (लघु) छोटा (युवन्), कोमल (मृदु) और क्षुद्र है। ७ इन्द्र सबसे अधिक बड़ा अच्छा, प्रिय विद्वान्, भारी लम्बा, चतुर, महान् और बलवान् है और मरुत्त सबसे अधिक हलका छोटा कोमल और क्षुद्र है। (घ) (नाट्यरस) विभाव अनुभाव और संचारि भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। शृंगार वीर आदि नौ रस हैं और उनके रति उत्साह आदि नौ स्थायिभाव हैं। निषाद ऋषभ गान्धार, षड्ज, मध्यम धैवत और पंचम ये सात स्वर हैं। इनके प्रथम अक्षरों को लेकर स रे ग म आदि सरगम बना है। संगीत में कोमल मध्यम और तीव्र स्वरों के तीन सप्तक होते हैं। स्वरों का आरोह और अवरोह होता है। प्राचीन वाद्यों में से सितार, बाँसुरी सारंगी तानपूरा तबला, डाकड़ मंजीरा नगाड़ा ढोल तुरही दिलरुबा इनका प्रचलन अभी तक है। नवीन वाद्यों में हारमोनियम वायोलिन पियानो जलतरंग बैंड बीनवाद्य और सितार का अधिक प्रचलन है। संगीत जीवन को सरस और मधुर बनाता है।

संकेत—(क) १ अतिविद्येव ४ अतिनित्। ५. अतिशयेन कृशोऽयम् कृशतरः। ६. अतिशयेनातिक्रमणे। (ख) १ चौर्यमेतत् किमर्थं, महाकस्यचिदात्मनः कथमि मानसानि। २. अचूचुरत्। ३ अपदेशेन। ५. त्वां चिन्तयिष्यन्ति। ६. पाखण्डिनो विकर्मस्थान् धर्म्म वेषादि वार्त्तयेत्। ७. ब्रूयात्। ८ अल्पमपि कार्यार्थी मनस्वी नाति दुःखं न च सुखम्। ९. गवेषय। १ हृदयमुपगच्छति। ११ घोषणाकरः, अघोषयत्। १२ चित्रयति। १३ संचूर्णयिष्यामि। १४ अलंकरोति। १५. अर्जयेत्। (ग) १ पदोन्नतौ हि पद्यो गरीयः। २ महीयांसः मितभाषिणः। ३ हरन्तहायः कार्यान्ते लोकोऽयमरि पश्यति। ४ गरीयसी। ५. श्रेयान्। ६. श्यामात् भाजीयान्।

शब्दकोष—१२७५+१५८=१५] अभ्यास ६० (ग्याकरण)

(कं) कासः (खांसी), प्रतिश्यायः (जुकाम) ज्वरः (बुखार) विषमज्वरः (मले-रिया) शीतज्वरः (इन्फ्लुएन्जा 'फ्लू'), प्रलापकज्वरः (निमोनिया), सन्निपातज्वरः (याइफाइड), राजयक्ष्मन् (पु , तपैदिक टी बी) शीतला (चेचक), मन्थरज्वरः(मोतीझरा), अतिसारः (दस्त), प्रवाहिका (पेचिश, संग्रहणी), वमथुः (कै) विषूचिका (हैजा), रक्तचापः (ब्लडप्रेशर) पिटकः (फोड़ा) पिटिका (फुंसी), अर्शस् (नपुं , बवासीर), प्रमेहः (प्रमेह) मधुमेहः (बहुमूत्र डायबिटीज) पाण्डुः (पीलिया), अजीर्णम् (कब्ज), उपदंशः (गरमी, सिफलिस) विद्रधिः (कैन्सर) पक्षाघातः (लकवा मारना) ।(२५)

नियम २९४—(विकारार्थक) विकार अर्थ में य प्रत्यय होते हैं—(१) (तस्य विकारः) विकार अर्थ में अण् (अ) । मस्मन्>मास्मनः । (२)(मयड्वैतयो) विकार और अवयव अर्थ में मय प्रत्यय । अश्मन्> अश्ममयम् । (३)(गोश्च पुरीषे) गोबर अर्थ में मय । गो>गोमय ।(४)(गोपयसोर्यत्) गो और पयस् से यत्(य)। गव्यम् । पयस्यम् ।

नियम २९५—(ठक्) इन अर्थों में ठक् (इक) होता है । प्रथम स्वर को वृद्धि । (१) (तेन दीव्यति) जुआ खेलना आदि अर्थों में । अक्ष>आक्षिकः । (२) (संस्कृतम्) बनाने अर्थ में । वधि>वाधिकम् । (३) (तरति) तैरने अर्थ में । उडुप> औडुपिकः (नाव से पार करनेवाला) । (४) (चरति) सवारी करना अर्थ में । हस्तिन्> हास्तिकः । (५) (एषति) रक्षा अर्थ में । समाज>सामाजिकः ।

नियम २९६—(यत्) इन स्थानों पर यत् (य) होता है:—(१) (तद्वहति) ढोने अर्थ में यत् । रथ>रथ्यः । (२) (पुरो यद्द्वौ) पुर् से य और ठक् (एय) । पुर्>पुर्यः, पौरेयः । (३) (नौवयोधर्म) नौ आदि से । नौ>नाव्यम् ।(४) (तत्र साधुः) सिद्ध अर्थ में यत् । शरण>शरण्यः । (५)(समावा य) सभा से य प्रत्यय । सभ्य । (६) (पथ्यतिथि) पथिन् आदि से ठञ् (एय) । पथिन्>पाथेयम् । अतिथि>आतिथेयम् ।

नियम २९७—(ढ, यत्) ढ का ऐय, यत् का य रहता है । (१) (उगवा दिभ्यो) हित अर्थ में उकारान्त और गो आदि से यत् । धेनु> धेनव्यम् । गो> गव्यम् । (२) (तस्मै हितम्) हित अर्थ में ढ (ऐय) । वत्स> वत्सीय । (३) (शरीर अवयवाच्च) शरीरावयवों से यत् (य) । वक्षस्, कक्षस् । (४) (आत्मनखिसर्वभ्य) आत्मन् आदि से हित अर्थ में ख (ईन)। आत्मन्>आत्मनीनम् । विश्वजन>विश्वजनीनम् ।

नियम २९८—(ठञ्) ठ को इक । (१) (तेन क्रीतम्) खरीदने अर्थ में ठञ् (इक) । शत>शातिकम् ।(२)(तदर्हति) योग्य होने अर्थ में ठञ् (इक) । सहस्र>साहस्रिकः । (३) (दण्डादिभ्यो यत्) दण्ड आदि से यत् (य) । दण्ड>दण्ड्यः ।

नियम २९९—(स्वार्थिक) (१) (प्रकारिस्वरूप) प्रकार आदि से स्वार्थ में अण् (अ) । प्रकार>प्राकारः, देवता>दैवतः, बन्धु>बान्धवः । (२) (अल्प हस्व) अल्प और छोटा अर्थ में कन् (क) । लेख>लेखकम्, दृश>दृशकः ।

नियम ३००—(१) (कृञ्भ्वस्तियोगे) होना आदि अर्थ में च्वि प्रत्यय होता है । च्वि का कुछ नहीं शेष रहता । बाद में कृ भू अस् का प्रयोग होता है । च्वि होने पर शब्द के अ को ई, इ और उ को दीर्घ होगा । शुक्ल> शुक्लीकरोति शुक्लीभवति शुक्लीस्यात् । (२) (विभाषा साति) सम्पूर्ण अर्थ में साति (सात्) । मांसात्, अग्निसात् । (३) (नित्यवीप्सयोः) बार-बार और द्विरुक्ति अर्थ में पद को द्वित्व होता है । मुहुस्तथा मुहुस्तथा । वृक्षं वृक्षं सिञ्चति । (४) (इदमस्थमुसौ) कुछ कम अर्थ में कस्य देश देशीय प्रत्यय होते हैं । व्याकरण ५ वर्ष का—पंचकल्पदेशीय,—देशः । मध्याह्नकल्पः ।

अभ्यास ६०

संस्कृत बनाओ—(क) (कप्, मक्ष् धातु) १ उन दानों की संपत्ति का क्या कहना। २ उन्होंने चमक से कहा कि राम धनुष को देखना चाहते हैं। ३ कथा के बहाने से यहाँ नीति ही कही गई है। ४ दूसरे का उच्छिष्ट न खावे। ५ गुरु आज्ञा देते हैं (आज्ञापि) कि पापों को छोड़ो। ६ स्त्री अलंकारों से अपने शरीर को विभूषित करती है (भूष्)। ७ बालक मिठाई का स्वाद लेता है (आस्वद्)। ८ वह बर्तनों को माँजता है (मृज्) शत्रुओं को तपाता है (तप्) सज्जनों को तृप्त करता है (तृप्) मान्यों का मान करता है (मान्) और दुष्टों को दबाता है (धूप)। (ख) (तद्धित प्रत्यय) १ शारीरिक पुष्टि के लिए पंचगव्य का सेवन करना चाहिए। २ तुम्हारी पासों से तुम्हा सेव्वा है (दिव्)। ३ सब अपने-अपने स्थानों की ओर गए। ४ अहिंसा का सिद्धान्त अपनी भलाई और विश्व की भलाई दोनों के लिए है। ५ राम लगभग अठारह वर्ष का है। ६ अब लगभग दोपहर का समय है। ७ वह लगभग मरा हुआ है। ८ आग सब वस्तुओं को भस्मसात् कर देती है। ९ नेहरूजी का कथन है कि श्रमिकों की गन्दी बस्तियों को जला दो और उनके लिए साफ मकान बनाओ। १० पुलकित होकर देशोद्धार में लगो (प्रवृत्)। ११ कुल मिलाकर मुझे बीस रुपए दो। १२ यह बात मुझको ही संकेत करती है। १३ मकान जलकर राख हो गए। १४ यह बात सर्वत्र फैल गई है। (ग) (रोगवर्ग) १ मुझे बड़ा शिरदर्द है। २ वह घोड़े पर चोटा सिपाही है। ३ उसके रोग का शीघ्र इलाज करो। ४ अब मेरी तबीयत पहले से ठीक है। ५ रोग को ठीक जाने बिना उसका इलाज नहीं करना चाहिए। ६ इसका रोग बहुत बढ़ गया है। ७ रोगी की जान खतरे में है। ८ उसका रोग असाध्य है। (घ) (रोगवर्ग) शरीर व्याधियों का घर है। अतः कहा गया है कि—धर्म अर्थ, काम और मोक्ष का सर्वोत्तम मूल आरोग्य है। अतः सदा स्वस्थ रहने का प्रयत्न करना चाहिए। सात्विक भोजन उचित आहार विहार, दैनिक व्यायाम प्रातः योगासन और प्राणायाम से शरीर नीरोग रहता है। इन नियमों पर ध्यान न देने से ही खाँसी जुकाम बुखार, मलेरिया इन्फ्लुएन्जा, निमोनिया, डाइफाइड, तपेदिक चेचक मोतीझरा दस्त पेचिश संग्रहणी हैजा, फोड़ा पुंसी बवासीर, प्रमेह, मधुमेह, कम्प आदि रोग होते हैं। कैन्सर, लकवा मारना तपेदिक और दिल के रोग, ये घातक रोग हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि रोगों का कारण जीवन को अनियमित्त है। जीवन को नियमित बनाओ और वेद के शब्दों में नीराग होकर सौ वर्ष जीवें। सब सुखी हों सब नीरोग हों सब सुख देखें और कोई दुःखी न हो।

संकेत—(क) १ किं कथयते श्रीमत्सदस्य तस्य। २ मैथिलाय कथयांचक्रुः। ३ छलेन। ४. वर्जय। ५. भूषयति। ६. आस्वादयति। ७ मार्जयति तापयति तर्पयति मानयति धर्षयति। (ख) २. अस्मिन्नः अस्ते। ३ प्रतिनिवृत्ताः। ४ अहिंसासिद्धान्तो विश्वजनीनश्च वर्तते। ५. अष्टादश-वर्षदेशीयः। ६ मध्याह्नकालः। ७. भस्मसात्। ८. झोपड्यश्चालातस्तत्रागच्छन् अग्निसात् कुरुत। ९ वस्तिरुच्छीभूय। ११ मिलीकृत्य। १२. कथा लक्षीकरोति। १३ भस्मीभूतानि। १४ सर्वं श्रुतीकृतम्। (ग) १ मस्तकशूलं शिरोवेदना वा वर्तते। २ घुडसवारोऽयं विशिष्टः सैनिकः। ३ चिकित्सां विलम्बयेत्। ४ अद्यैव मे चिकित्सय। ५. चिकित्सां विना रोगस्यास्यानारम्भो प्रतीकारस्य। ६. अतिवृद्धि गतः। ७. आतुरो जीवितसंशये वर्तते। (घ) हर्षोल्लासः। श्रीमत् शरीरं शतम्। सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।

व्याकरण

आवश्यक-निर्देश

१ शब्दरूप-संग्रह में उन सभी शब्दों का (१० शब्दों का) संग्रह किया गया है, जो अधिक प्रचलित हैं। जिन शब्दों का प्रयोग बहुत कम होता है या सर्वथा नहीं होता है, उनका समावेश इसमें नहीं किया गया है।

२ शब्दों और धातुओं के रूप के साथ अभ्यासों की संख्याएँ दी गई हैं। उसका भाव यह है कि उस शब्द या धातु का प्रयोग उस अभ्यास में हुआ है और उस प्रकार से चलनेवाले शब्द या धातु भी उस अभ्यास में दिए गए हैं। अनुवाद वाले प्रकरण में उस शब्द या धातु के अभ्यास में उसी प्रकार चलनेवाले शब्द या धातु यथास्थान कोष्ठ में दिए गए हैं, उनके रूप भी निर्दिष्ट शब्द या धातु के तुल्य चलेंगे।

३ संकेत के लिए निम्नलिखित संकेतों का उपयोग किया गया है :—

(क) शब्दरूपों में प्रथमा आदि के लिए उनके प्रथम अक्षर रक्खे गए हैं। जैसे—प्र = प्रथमा, द्वि = द्वितीया तृ = तृतीया च = चतुर्थी पं = पंचमी, ष = षष्ठी, स = सप्तमी, सं = संबोधन।

(ख) पुं = पुल्लिंग, स्त्री = स्त्रीलिंग नपु० = नपुंसक लिंग। एक = एकवचन द्वि = द्विवचन बहु = बहुवचन। दे अ = देखो अभ्यास, अ = अभ्यास। प्रत्येक शब्द या धातु के रूप में ऊपर से नीचे की ओर प्रथम पंक्ति एकवचन की है, दूसरी द्विवचन की और तीसरी बहुवचन की। जो शब्द किसी विशेष वचन में ही चलते हैं उनमें उसी वचन के रूप हैं।

(ग) धातुरूपों में प्र पु या प्र = प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) म पु या म = मध्यम पुरुष, उ पु या उ = उत्तम पुरुष। प = परस्मैपद आ = आत्मनेपद उ = उभयपद।

४ सर्वनाम शब्दों का संबोधन नहीं होता, अतः उनके रूप संबोधन में नहीं दिए गए हैं।

५ शब्दरूपों के लिए ये नियम स्मरण कर लें—(१) (अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि) र् और ष् के बाद न को ण होता है यदि अट् (स्वर, ह य व र) कवर्ग पवर्ग, आ, न् बीच में हों तो भी न् को ण् होगा। क्ष वाले शब्दों में भी यह नियम लगेगा। अतः र्, ष और ष् वाले शब्दों में इस नियम के अनुसार न् को ण् करें अन्यत्र न ही रहेगा। (२) (इकोऽचि विभक्तौ) अ को छोड़कर अन्य स्वरों के बाद तथा कवर्ग के बाद प्रत्यय के न् को ण् हो जाता है। धातुओं में भी यह नियम लगेगा। जैसे—रामेण, हरिणा कर्तृभ्याम्, वाग्भ्यः।

(१) शब्दरूप-संग्रह

(क) अजन्त पुंलिंग शब्द

(१) राम (राम) (देखो अभ्यास १)

रामः	रामौ	रामाः	प्र	पादः	पादौ	पादाः
रामम्	,,	रामान्	द्वि	पादम्	,,	पदः
रामेण	रामाभ्याम्	रामैः	तृ०	पदा	पद्भ्याम्	पद्भिः
रामाय		रामेभ्यः	च०	पदे	,,	पद्भ्यः
रामात्	,,		पं	पदः	,,	,,
रामस्य	रामयोः	रामाणाम्	ष	पदः	पदोः	पदाम्
रामे	,,	रामेषु	स	पदि	,,	पत्सु
हे राम	हे रामौ	हे रामाः	सं	हे पाद	हे पादौ	हे पादाः

(२) पाद (पैर) (देखो अभ्यास ५७)

सूचना—पाद के पूरे रूप राम के तुल्य भी चलेंगे। पाद के तुल्य ही दन्त के द्वितीया बहु० आदि में दतः दतः, दद्भ्याम् आदि रूप होंगे।

(३) गोपा (ग्वालिन) (दे अ ५८)

गोपाः	गोपौ	गोपाः	प्र	हरिः	हरी	हरयः
गोपाम्	,,	गोपाः	द्वि	हरिम्		हरीन्
गोपया	गोपाभ्याम्	गोपाभिः	तृ	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
गोपायै		गोपाभ्यः	च	हरये	,,	हरिभ्यः
गोपाः	,,		पं	हरेः		,,
,,	गोपोः	गोपानाम्	ष	,,	हर्योः	हरीणाम्
गोपि	,,	गोपासु	स०	हरौ	,,	हरिषु
हे गोपाः	हे गोप्यौ	हे गोप्यः	सं	हे हरे	हे हरी	हे हरयः

(४) हरि (विष्णु) (देखो अ ४)

(५) सखि (मित्र) (दे अ १९)

सखा	सखायौ	सखायः	प्र	पतिः	पती	पतयः
सखायम्	,,	सखीन्	द्वि०	पतिम्	,,	पतीन्
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः	तृ	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
सख्ये	,,	सखिभ्यः	च	पत्ये	,,	पतिभ्यः
सख्युः		,,	पं	पत्युः	,,	,,
,,	सख्योः	सखीनाम्	ष	,,	पत्योः	पतीनाम्
सख्यौ	,,	सखिषु	स	पत्यौ	,,	पतिषु
हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः	सं०	हे पते	हे पती	हे पतयः

(६) पति (पति) (दे अ २)

सूचना—स्त्रीलिंग में सखी के रूप नदीवत् चलेंगे।

(७) भूपति (राजा) (हरिवत्) (दे अ ४)

भूपतिः	भूपती	भूपतयः	प्र
भूपतिम्	,,	भूपतीन्	द्वि
भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः	तृ
भूपतये	,,	भूपतिभ्यः	च
भूपतेः	,,	,,	पं
,,	भूपत्योः	भूपतीनाम्	ष
भूपतौ	,,	भूपतिषु	स
हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतयः	सं

(८) सुधी (विद्वान्) (दे अ २१)

सुधीः	सुधियौ	सुधियः	प्र
सुधियम्	,,	,,	द्वि
सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः	तृ
सुधिये	,,	सुधीभ्यः	च
सुधियः	,,	,,	पं
,,	सुधियोः	सुधियाम्	ष
सुधियि	,,	सुधीषु	स
हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः	सं

(९) गुरु (गुरु) (दे अ ५)

गुरुः	गुरू	गुरवः	प्र
गुरुम्	,,	गुरून्	द्वि
गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः	तृ
गुरवे	,,	गुरुभ्यः	च
गुरोः	,,	,,	पं
,,	गुर्वोः	गुरूणाम्	ष
गुरौ	,,	गुरुषु	स
हे गुरो	हे गुरू	हे गुरवः	सं

(१०) स्वभू (ब्रह्मा) (दे अ २१)

स्वभूः	स्वभुवौ	स्वभुवः	प्र
स्वभुवम्	,,	,,	द्वि
स्वभुवा	स्वभूभ्याम्	स्वभूभिः	तृ
स्वभुवे	,,	स्वभूभ्यः	च
स्वभुवः	,,	,,	पं
,,	स्वभुवोः	स्वभुवाम्	ष
स्वभुवि	,,	स्वभूषु	स
हे स्वभूः	हे स्वभुवौ	हे स्वभुवः	सं

(११) कर्तृ (करनेवाला) (दे अ २१)

कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	प्र
कर्तारम्	,,	कर्तॄन्	द्वि
कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	तृ
कर्त्रे	,,	कर्तृभ्यः	च
कर्तुः	,,	,,	पं
,,	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्	ष
कर्तरि	,,	कर्तृषु	स
हे कर्तः	हे कर्तारौ	हे कर्तारः	सं

(१२) पितृ (पिता) (दे अ २१)

पिता	पितरौ	पितरः	प्र
पितरम्	,,	पितॄन्	द्वि
पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः	तृ
पित्रे	,,	पितृभ्यः	च
पितुः	,,	,,	पं
,,	पित्रोः	पितॄणाम्	ष
पित्रि	,,	पितृषु	स
हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः	सं

(१३) नृ (मनुष्य) (पितृवत्) (१४) गो (गाय या बैल) पुं, स्त्री (द्र अ २४)

	ए	द्वि	ब			ए	द्वि	ब	
प्र	नरौ	नरः	नरः		प्र	गौः	गावौ	गावः	
द्वि	नरम्	नृन्	नृः		द्वि	गाम्	"	गाः	
तृ	नरा	नृभिः	नृभ्यः		तृ	गवा	गोभ्याम्	गोभिः	
च	नरे	नृभ्यः	"		च	गवे	"	गोभ्यः	
पं	नुः	"	"		पं	गोः	"	"	
ष	"	नृणाम्	नृणाम्		ष	"	गवोः	गवाम्	
स	नरि	नृषु	नृषु		स	यवि	"	गोषु	
सं	हे नरः	हे नरः	हे नरः		सं	हे गौः	हे गावौ	हे गावः	

(स) हलन्त पुलिंग शब्द

(१५) पयोमुच् (बादल) (द्र अ २६) (१६) प्राच् (पूर्व) (द्र अ २५)

	ए	द्वि	ब			ए	द्वि	ब	
प्र	पयोमुक्	पयोमुचौ	पयोमुचः		प्र	प्राङ्	प्राचौ	प्राचः	
द्वि	पयोमुचम्	"	"		द्वि	प्राचम्	"	प्राचः	
तृ	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः		तृ	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः	
च	पयोमुचे	"	"		च	प्राचे	"	प्राग्भ्यः	
पं	पयोमुचः	"	"		पं	प्राचः	"	"	
ष	"	पयोमुचोः	पयोमुचाम्		ष	"	प्राचोः	प्राचाम्	
स	पयोमुचि	"	पयोमुक्षु		स	प्राचि	"	प्राक्षु	
सं	हे पयोमुक्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः		सं	हे प्राङ्	हे प्राचौ	हे प्राचः	

(१७) उदच् (उत्तरी) (द्र अ २५) (१८) वणिच् (बनिया) (द्र अ २६)

	ए	द्वि	ब			ए	द्वि	ब	
प्र	उदक्	उदचौ	उदचः		प्र	वणिक्	वणिचौ	वणिचः	
द्वि	उदचम्	"	उदीचः		द्वि	वणिचम्	"	वणिग्भिः	
तृ	उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः		तृ	वणिचा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः	
च	उदीचे	"	उदग्भ्यः		च	वणिचे	"	"	
पं	उदचः	"	"		पं	वणिचः	"	वणिजाम्	
ष	"	उदीचोः	उदीचाम्		ष	"	वणिचोः	वणिक्षु	
स	उदीचि	"	उदक्षु		स	वणिचि	"		
सं	हे उदक्	हे उदचौ	हे उदचः		सं	हे वणिक्	हे वणिचौ	हे वणिचः	

(१९) भूमन् (प्रभा, पदवी)
(दे अ २७)

भूमा	भूम्नौ	भूम्नः	प्र०
भूम्नम्	,,	,,	द्वि
भूम्ना	भूमभ्याम्	भूमभिः	तृ
भूम्ने	,,	भूमभ्यः	च०
भूम्नः	,,		पं०
,,	भूम्नोः	भूम्नाम्	ष
भूम्नि	,,	भूमसु	स
हे भूमन्	हे भूम्नौ	हे भूमानः	सं

(२०) भगवत् (भगवान्)
(दे अ २८)

भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः	प्र०
भगवन्तम्	,,	भगवतः	द्वि
भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भिः	तृ
भगवते	,,	भगवद्भ्यः	च०
भगवतः	,,	,,	पं०
,,	भगवतोः	भगवताम्	ष
भगवति	,,	भगवत्सु	स
हे भगवन्	हे भगवन्तौ	हे भगवन्तः	सं

(२१) धीमत् (बुद्धिमान्)
(दे अ २८)

धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्तः	प्र
धीमन्तम्	,,	धीमतः	द्वि
धीमता	धीमद्भ्याम्	धीमद्भिः	तृ
धीमते	,,	धीमद्भ्यः	च
धीमतः	,,	,,	पं
,,	धीमतोः	धीमताम्	ष
धीमति	,,	धीमत्सु	स
हे धीमन्	हे धीमन्तौ	हे धीमन्तः	सं

(२२) महत् (महान्)
(दे अ २९)

महान्	महान्तौ	महान्तः	प्र
महान्तम्	,,	महतः	द्वि
महता	महद्भ्याम्	महद्भिः	तृ
महते		महद्भ्यः	च
महतः	,,	,,	पं
,,	महतोः	महताम्	ष
महति	,,	महत्सु	स
हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्तः	सं

(२३) भवत् (आप) (दे अ १)

भवान्	भवन्तौ	भवन्तः	प्र
भवन्तम्	,,	भवतः	द्वि
भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः	तृ
भवते	,,	भवद्भ्यः	च
भवतः	,,	,,	पं
,,	भवतोः	भवताम्	ष
भवति	,,	भवत्सु	स
हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः	सं

(२४) पठत् (पढ़ता हुआ) (दे अ १)

पठन्	पठन्तौ	पठन्तः	प्र
पठन्तम्	,,	पठतः	द्वि
पठता	पठद्भ्याम्	पठद्भिः	तृ
पठते	,,	पठद्भ्यः	च
पठतः	,,	,,	पं
,,	पठतोः	पठताम्	ष
पठति	,,	पठत्सु	स
हे पठन्	हे पठन्तौ	हे पठन्तः	सं

(२१) भावत् (जितना) (वि० अ १)

भावान्	भावन्तौ	भावन्तः
भावन्तम्	"	भावतः
भावता	भावद्भ्याम्	भावद्भिः
भावते	"	भावद्भ्यः
भावतः	"	"
"	भावतोः	भावताम्
भावति	"	भावत्सु
हे भावन्	हे भावन्तौ	हे भावन्तः

(२२) सुप् (विभक्ति) (वि० अ ११)

सुप्	सुपौ	सुपः
सुपम्	"	"
सुपा	सुभ्याम्	सुभिः
सुपे	"	सुभ्यः
सुपः	"	"
सुपोः		सुपाम्
सुपि		सुषु
हे सुप्	हे सुपौ	हे सुपः

(२७) आत्मन् (आत्मा) (वि अ १२)

आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
आत्मानम्	"	आत्मनः
आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
आत्मने	"	आत्मभ्यः
आत्मनः	"	"
"	आत्मनोः	आत्मनाम्
आत्मनि	"	आत्मसु
हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः

(२८) राजन् (राजा) (वि अ १२)

राजा	राजानौ	राजानः
राजानम्	"	राज्ञः
राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
राज्ञे	"	राजभ्यः
राज्ञः	"	"
"	राज्ञोः	राज्ञाम्
राज्ञि, राजनि	"	राजसु
हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

(२९) श्वन् (कुत्ता) (वि अ ११)

श्वा	श्वानौ	श्वानः
श्वानम्	"	शुनः
शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
शुने	"	श्वभ्यः
शुनः	"	"
"	शुनोः	शुनाम्
शुनि	"	श्वसु
हे श्वान्	हे श्वानौ	हे श्वानः

(३०) युवन् (युवक) (वि अ ११)

युवा	युवानौ	युवानः
यूनम्	"	यूनः
यूना	युवभ्याम्	युवभिः
यूने	"	युवभ्यः
यूनः	"	"
"	यूनोः	यूनाम्
यूनि	"	युवसु
हे युवन्	हे युवानौ	हे युवानः

(३१) वृत्रहन् (इन्द्र) (दे अ १४)

वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः	प्र	मघवा	मघवानौ	मघवानः
वृत्रहणम्	,,	वृत्रघ्नः	द्वि	मघवानम्	,,	मघोनः
वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः	तृ	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
वृत्रघ्ने	,,	वृत्रहभ्यः	च	मघोने	,	मघवभ्यः
वृत्रघ्नः	,,	,,	पं	मघोनः	,,	,,
,,	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्	ष	,	मघोनोः	मघोनाम्
वृत्रघ्नि / वृत्रहणि	,	वृत्रहसु	स	मघोनि	,,	मघवसु
हे वृत्रहन्	हे वृत्रहणौ	हे वृत्रहणः	स	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः

—

सूचना—इसका ही मघवत् शब्द बनाकर भगवत् (शब्द २) के तुल्य भी रूप चलेंगे।

(३३) करिन् (हाथी) (दे अ १५)

करी	करिणौ	करिणः	प्र	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
करिणम्	,	,,	द्वि	पन्थानम्	,,	पथः
करिणा	करिभ्याम्	करिभिः	तृ	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
करिणे	,,	करिभ्यः	च	पथे		पथिभ्यः
करिणः	,,	,	पं	पथः	,,	,
,	करिणोः	करिणाम्	ष	,	पथोः	पथाम्
करिणि	,,	करिषु	स	पथि	,,	पथिषु
हे करिन्	हे करिणौ	हे करिणः	स	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः

—

(३४) पथिन् (मार्ग) (दे अ १५)

पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः	प्र	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
पन्थानम्	,,	पथः	द्वि	पन्थानम्	,,	पथः
पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः	तृ	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
पथे		पथिभ्यः	च	पथे		पथिभ्यः
पथः	,,	,	पं	पथः	,,	,
,	पथोः	पथाम्	ष	,	पथोः	पथाम्
पथि	,,	पथिषु	स	पथि	,,	पथिषु
हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः	स	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः

—

(३५) तादृश् (वैसा) (दे अ १६)

तादृक्	तादृशौ	तादृशः	प्र	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
तादृशम्	,,	,,	द्वि	विद्वांसम्	,,	विदुषः
तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः	तृ	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
तादृशे	,,	तादृग्भ्यः	च	विदुषे	,,	विद्वद्भ्यः
तादृशः	,,	,,	पं	विदुषः	,	,,
,,	तादृशोः	तादृशाम्	ष	,,	विदुषोः	विदुषाम्
तादृशि	,,	तादृक्षु	स	विदुषि	,,	विद्वत्सु
हे तादृक्	हे तादृशौ	हे तादृशः	स	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः

(३७) पुंस् (पुरुष) (दे अ १७)

पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
पुमांसम्	,	पुंसः
पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः
पुंसे	,,	पुंभ्यः
पुंसः	,,	
,	पुंसोः	पुंसाम्
पुंसि	,,	पुंसु
हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः

(३८) चन्द्रमस् (चन्द्रमा) (दे अ ११)

प्र	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
द्वि०	चन्द्रमसम्	,,	,,
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
च	चन्द्रमसे	,,	चन्द्रमोभ्यः
पं	चन्द्रमसः	,,	,
ष	,,	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
स	चन्द्रमसि		चन्द्रमस्सु
सं	हे चन्द्रमः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः

(३९) श्रेयस् (अधिक प्रशंसनीय)

(दे अ १८)

श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः
श्रेयांसम्	,,	श्रेयसः
श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभिः
श्रेयसे	,	श्रेयोभ्यः
श्रेयसः	,	
,,	श्रेयसोः	श्रेयसाम्
श्रेयसि	,,	श्रेयस्सु
हे श्रेयन्	हे श्रेयांसौ	हे श्रेयांसः

(४०) अनड्वह् (बैल)

(दे अ १८)

प्र	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
द्वि	अनड्वाहम्	,,	अनडुहः
तृ	अनडुहा	अनड्वद्भ्याम्	अनड्वद्भिः
च	अनडुहे	,	अनड्वद्भ्यः
पं	अनडुहः	,,	
ष	,,	अनडुहोः	अनडुहाम्
स	अनडुहि	,,	अनडुत्सु
सं	हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः

(ग) स्त्रीलिंग शब्द

(४१) रमा (लक्ष्मी) (दे० अ० १)

रमा	रमे	रमाः
रमाम्	,,	,,
रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
रमायै	,,	रमाभ्यः
रमायाः	,,	
,,	रमयोः	रमाणाम्
रमायाम्	,,	रमासु
हे रमे	हे रमे	हे रमाः

(४२) मति (बुद्धि) (दे० अ० १९)

प्र	मतिः	मती	मतयः
द्वि	मतिम्	,,	मतीः
तृ	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
च	मत्यै मतये	,,	मतिभ्यः
पं	मत्याः मतेः	,,	
ष	,, ,,	मत्योः मतेः	मतीनाम्
स	मत्याम्, मतौ	,,	मतिषु
सं	हे मते	हे मती	हे मतयः

(४३) नदी (नदी) (दे० अ० ४)

नदी	नद्यौ	नद्यः	प्र
नदीम्	,,	नदीः	द्वि
नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः	तृ०
नद्यै	,,	नदीभ्यः	च०
नद्याः	,,	,,	पं
,,	नद्योः	नदीनाम्	ष
नद्याम्	,,	नदीषु	स
हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः	सं

(४४) लक्ष्मी (लक्ष्मी) (दे० अ ४)

लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः	प्र
लक्ष्मीम्	,,	लक्ष्मीः	द्वि
लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः	तृ
लक्ष्म्यै	,,	लक्ष्मीभ्यः	च
लक्ष्म्याः	,,	,,	पं
,,	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्	ष
लक्ष्म्याम्	,,	लक्ष्मीषु	स
हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः	सं

(४५) स्त्री (स्त्री) (दे अ ४१)

स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः	प्र
स्त्रियम्, स्त्रीम्	,,	,, स्त्रीः	द्वि
स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः	तृ
स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्यः	च
स्त्रियाः		,,	पं
,,	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्	ष
स्त्रियाम्		स्त्रीषु	स
हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः	सं

(४६) श्री (लक्ष्मी) (दे अ ४१)

श्रीः	श्रियौ	श्रियः	प्र
श्रियम्	,,	,,	द्वि
श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः	तृ
श्रियै श्रिये	,,	श्रीभ्यः	च
श्रियाः, श्रियः	,,	,,	पं
,,	,, श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्	ष
श्रियाम्, श्रियि	,,	श्रीषु	स
हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः	सं

(४७) धेनु (गाय) (दे अ ४२)

धेनुः	धेनू	धेनवः	प्र
धेनुम्	,,	धेनूः	द्वि०
धेन्या	धेनुभ्याम्	धेनुभिः	तृ
धेन्वै, धेनवे	,,	धेनुभ्यः	च
धेन्वाः, धेनोः	,,	,,	पं
,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्	ष
धेनाम्, धेन्वि	,,	धेनुषु	स०
हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः	सं

(४८) वधू (बहू) (दे अ ४२)

वधूः	वध्वौ	वध्वः	प्र
वधूम्	,,	वधूः	द्वि
वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः	तृ
वध्वै	,,	वधूभ्यः	च
वध्वाः	,,	,,	पं
,,	वध्वोः	वधूनाम्	ष
वध्वाम्	,,	वधूषु	स
हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः	सं

(४९) स्वसृ (बहिन) (दे अ० ४१)

स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः	प्र
स्वसारम्	,,	स्वसॄः	द्वि
स्वसा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः	तृ
स्वसे	,,	स्वसृभ्यः	च
स्वसुः	,,		पं
,,	स्वसोः	स्वसॄणाम्	ष०
स्वसरि	,,	स्वसृषु	स०
हे स्वसः	हे स्वसारौ	हे स्वसारः	सं

(५०) मातृ (माता) (दे० अ० ४१)

माता	मातरौ	मातरः	प्र
मातरम्	,,	मातॄः	द्वि
मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः	तृ
मात्रे	,,	मातृभ्यः	च
मातुः	,,	,,	पं
,,	मात्रोः	मातॄणाम्	ष०
मातरि	,,	मातृषु	स०
हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः	सं

(५१) द्यौ (नाव) (दे अ ४४)

द्यौः	नावौ	नावः	प्र
नावम्	,,	,,	द्वि
नावा	नौभ्याम्	नौभिः	तृ०
नावे	,,	नौभ्यः	च०
नावः	,,	,,	पं०
,,	नावोः	नावाम्	ष०
नावि	,,	नौषु	स०
हे द्यौः	हे नावौ	हे नावः	सं

(५२) वाच् (वाणी) (दे अ० ४४)

वाक्-ग्	वाचौ	वाचः	प्र
वाचम्	,,	,,	द्वि
वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः	तृ०
वाचे	,,	वाग्भ्यः	च०
वाचः	,,	,,	पं०
,,	वाचोः	वाचाम्	ष०
वाचि	,,	वाक्षु	स०
हे वाक्,-ग्	हे वाचौ	हे वाचः	सं

(५३) (सज्) (माला) (दे अ ४५)

सक्	सजौ	सजः	प्र०
सजम्	,,	,,	द्वि
सजा	सग्भ्याम्	सग्भिः	तृ
सजे	,,	सग्भ्यः	च
सजः	,,	,,	पं
,,	सजोः	सजाम्	ष
सजि	,,	सक्षु	स
हे सक्	हे सजौ	हे सजः	सं

(५४) सरित् (नदी) (दे अ० ४५)

सरित्	सरितौ	सरितः	प्र०
सरितम्	,,		द्वि
सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः	तृ
सरिते	,,	सरिद्भ्यः	च
सरितः	,,	,,	पं
,,	सरितोः	सरिताम्	ष
सरिति	,,	सरित्सु	स
हे सरित्	हे सरितौ	हे सरितः	सं

(५५) समिध् (समिधा) (दे अ ४६) (५६) अप् (जल) (दे अ० ४६)

समित्	समिधौ	समिधः	प्र०	आपः
समिधम्	,,	,,	द्वि०	अपः
समिधा	समिद्भ्याम्	समिद्भिः	तृ	अद्भि
समिधे	,,	समिद्भ्यः	च	अद्भ्यः
समिधः	,,	,,	पं	,,
,,	समिधोः	समिधाम्	ष	अपाम्
समिधि	,,	समित्सु	स	अप्सु
हे समित्	हे समिधौ	हे समिधः	सं	हे आपः

—

सूचना—अप् के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं।

(५७) गिर् (वाणी) (दे अ ४७) (५८) पुर् (नगर) (दे० अ ४७)

गीः	गिरौ	गिरः	प्र	पूः	पुरौ	पुरः
गिरम्	,,	,,	द्वि	पुरम्	,,	,,
गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः	तृ	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
गिरे	,,	गीर्भ्यः	च	पुरे	,,	पूर्भ्यः
गिरः			पं	पुरः	,,	,,
,,	गिरोः	गिराम्	ष	,,	पुरोः	पुराम्
गिरि	,,	गीर्षु	स	पुरि	,,	पूर्षु
हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः	सं	हे पूः	हे पुरौ	हे पुरः

—

—

(५९) दिश् (दिशा) (दे अ ४८) (६०) उपानह (जूता) (दे अ ४८)

दिक्	दिशौ	दिशः	प्र०	उपानत्	उपानहौ	उपानहः
दिशम्	,,	,,	द्वि	उपानहम्	,,	,,
दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः	तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
दिशे	,,	दिग्भ्यः	च०	उपानहे	,,	उपानद्भ्यः
दिशः	,,	,,	पं०	उपानहः	,,	,,
,,	दिशोः	दिशाम्	ष०	,,	उपानहोः	उपानहाम्
दिशि	,,	दिक्षु	स	उपानहि	,,	उपानत्सु
हे दिक्	हे दिशौ	हे दिशः	सं	हे उपानत्	हे उपानहौ	हे उपानहः

—

—

(घ) नपुंसकलिंग शब्द

(६१) गृह (घर) (दे अ २)

गृहम्	गृहे	गृहाणि	प्र
,,	,,	,	द्वि
गृहेण	गृहाभ्याम्	गृहैः	तृ
गृहस्य	,,	गृहेभ्यः	च
गृहात्	,,	,,	पं
गृहस्य	गृहयोः	गृहाणाम्	ष
गृहे	,,	गृहेषु	स०
हे गृह	हे गृहे	हे गृहाणि	सं

(६२) वारि (जल) (दे अ० ४९)

वारि	वारिणी	वारीणि	प्र
,,	,,	,,	द्वि
वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः	तृ
वारिणे	,,	वारिभ्यः	च
वारिणः	,,	,,	पं
,	वारिणोः	वारीणाम्	ष
वारिणि	,,	वारिषु	स०
हे वारि, वारे	हे वारिणी	हे वारीणि	सं

सूचना—मनोहारिन् आदि इन् अन्तवालों के रूप वारि के तुल्य चलेंगे। दो स्थानों पर अन्तर होगा। षष्ठी बहु० में 'इनाम्' अन्त में होगा और सं एक में 'इन्'।

(६३) दधि (दही) (दे अ ४९)

दधि	दधिनी	दधीनि	प्र
,,	,	,	द्वि
दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः	तृ०
दध्ने	,,	दधिभ्यः	च०
दध्नः	,,	,	पं
,,	दध्नोः	दध्नाम्	ष
दध्नि दधनि	,,	दधिषु	स
हे दधि, दधे	हे दधिनी	हे दधीनि	सं

(६४) अक्षि (आंख) (दधिवत्) (दे अ ५०)

अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि	प्र
,,	,,	,,	द्वि
अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः	तृ०
अक्ष्णे	,,	अक्षिभ्यः	च०
अक्ष्णः	,,	,,	पं
,,	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्	ष
अक्षिन् अक्षणि	,,	अक्षिषु	स
हे अक्षि, अक्षे	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि	सं

(६५) अस्थि (हड्डी) (दधिवत्) (दे अ ५)

अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि	प्र
,,	,,	,	द्वि
अस्थ्ना	अस्थिभ्याम्	अस्थिभिः	तृ
अस्थ्ने	,,	अस्थिभ्यः	च
अस्थ्नः	,,	,,	पं
,,	अस्थ्नोः	अस्थ्नाम्	ष
अस्थिन् अस्थनि	,,	अस्थिषु	स
हे अस्थि, अस्थे	अस्थिनी	अस्थीनि	सं०

(६६) मधु (शहद) (दे अ ५१)

मधु	मधुनी	मधूनि	प्र
	,,	,,	द्वि
मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः	तृ
मधुने	,,	मधुभ्यः	च
मधुनः	,,	,	पं
,,	मधुनोः	मधूनाम्	ष
मधुनि	,,	मधुषु	स
हे मधु, मधो	हे मधुनी	हे मधूनि	सं०

(६७) कर्तृ (करने वाला) (दे अ ५१) (६८) जगत् (संसार) (दे अ ५२)

कर्तृ	कर्तृभी	कर्तृभि	प्र	जगत्	जगती	जगन्ति
,,	,,	,	द्वि	,,	,,	,,
कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	तृ	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
कर्तृणे	,,	कर्तृभ्यः	च	जगते	,,	जगद्भ्यः
कर्तृणः	,,	,,	पं	जगतः	,,	,,
,,	कर्तृणोः	कर्तृणाम्	ष	,,	जगतोः	जगताम्
कर्तृणि	,,	कर्तृषु	स	जगति	,,	जगत्सु
हे कर्तृ, कर्तः	हे कर्तृभी	हे कर्तृभि	सं०	हे जगत्	हे जगती	हे जगन्ति

सूचना—कर्तृ के तृतीया एक से सप्तमी बहु तक कर्तृ पुं (शब्द ११) के तुल्य भी रूप चलेंगे।

(६९) नामन् (नाम) (दे अ ५१) (७०) धर्मन् (सुख) (दे अ ५१)

नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि	प्र	धर्म	धर्मणी	धर्माणि
,,	,,	,,	द्वि	,,		,
नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः	तृ	धर्मणा	धर्मभ्याम्	धर्मभिः
नाम्ने	,,	नामभ्यः	च	धर्मणे	,,	धर्मभ्यः
नाम्नः	,,	,,	पं	धर्मणः	,,	,,
,,	नाम्नोः	नाम्नाम्	ष	,,	धर्मणोः	धर्मणाम्
नामि, नामनि	,,	मामसु	स	धर्मणि		धर्मसु
हे नाम मामन्	नाम्नी नामनी	मामानि	सं	हे धर्म, धर्मन्	हे धर्मणी	हे धर्माणि

(७१) ब्रह्मन् (ब्रह्म, वेद) (दे अ ५४) (७२) अहन् (दिन) (दे अ० ५४)

ब्रह्म	ब्रह्मणी	ब्रह्माणि	प्र	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,, ,,	,,
ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभिः	तृ	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
ब्रह्मणे	,,	ब्रह्मभ्यः	च	अह्ने	,,	अहोभ्यः
ब्रह्मणः	,,	,,	पं०	अह्नः	,,	,,
,,	ब्रह्मणोः	ब्रह्मणाम्	ष०	,,	अह्नोः	अह्नाम्
ब्रह्मणि	,,	ब्रह्मसु	स०	अह्नि, अहनि	,,	अहःसु, -त्सु
हे ब्रह्म, ब्रह्मन्	हे ब्रह्मणी	हे ब्रह्माणि	सं	हे अहः	अह्नी, अहनी	अहानि

(७१) हविष् (हवि) (दे अ० ५५)

हवि	हविषी	हवींषि	प्र०
,,	,,	,,	द्वि०
हविषा	हविर्भ्याम्	हविर्भिः	तृ
हविषे	,,	हविर्भ्यः	च
हविषः	,	,	पं०
,,	हविषोः	हविषाम्	ष०
हविषि		हविःषु, -त्सु	स०
हे हविः	हे हविषी	हे हवींषि	सं

(७४) धनुष् (धनुष) (दे अ० ५५)

धनुः	धनुषी	धनूंषि
,	,,	,,
धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
धनुषे	,	धनुर्भ्यः
धनुषः		,,
,,	धनुषोः	धनुषाम्
धनुषि	,	धनुःषु, -त्सु
हे धनुः	हे धनुषी	हे धनूंषि

(७५) पयस् (दूध, जल) (दे अ० ५६)

पयः	पयसी	पयांसि	प्र
,,	,,	,,	द्वि
पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः	तृ
पयसे	,	पयोभ्यः	च
पयसः		,,	पं
,,	पयसोः	पयसाम्	ष
पयसि	,,	पयःसु, -त्सु	स
हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि	सं

(७६) मनस् (मन) (दे अ ५६)

मनः	मनसी	मनांसि
,	,,	,,
मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
मनसे	,,	मनोभ्यः
मनसः	,	,
,,	मनसोः	मनसाम्
मनसि	,	मनःसु, -त्सु
हे मनः	हे मनसी	हे मनांसि

(ङ) सर्वनाम शब्द

(७७) (क)सर्व(सब)पुंल्लिंग(दे अ ६) (७८) (ग) सर्वा(स्त्रीलिंग) (दे० अ ८)

सर्वः	सर्वौ	सर्वे	प्र
सर्वम्		सर्वान्	द्वि
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	तृ
सर्वस्मै	,,	सर्वेभ्यः	च
सर्वस्मात्	,,	,,	पं
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्	ष
सर्वस्मिन्	,,	सर्वेषु	स

सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सर्वाम्	,,	,,
सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
सर्वस्यै	,,	सर्वाभ्यः
सर्वस्याः	,,	
,,	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वस्याम्	,,	सर्वासु

(७९) (ख) सर्व (नपुंसकलिंग) (दे अ ७)

सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
..	..	..

प्र	
द्वि	

(६७) कर्तृ (करने वाला) (दे अ ५१) (६८) जगत् (संसार) (दे अ ५२)

कर्तृ	कर्तृणी	कर्तृणि	प्र	जगत्	जगती	जगन्ति
,,	,,	,,	द्वि	,,	,,	,,
कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	तृ	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
कर्तृणे	,,	कर्तृभ्यः	च	जगते	,,	जगद्भ्यः
कर्तृणः	,,	,,	पं	जगतः	,,	,,
,,	कर्तृणोः	कर्तृणाम्	ष	,,	जगतोः	जगताम्
कर्तृणि	,,	कर्तृषु	स	जगति	,,	जगत्सु
हे कर्तृ कर्तः	हे कर्तृणी	हे कर्तृणि	सं	हे जगत्	हे जगती	हे जगन्ति

सूचना—कर्तृ के तृतीया एक से सप्तमी बहु तक कर्तृ पुं (शब्द ११) के तुल्य ही रूप चलेंगे।

(६९) नामन् (नाम) (दे अ ५१) (७०) शर्मन् (सुख) (दे० अ ५१)

नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि	प्र	शर्म	शर्मणी	शर्माणि
,,	,,	,,	द्वि	,,	,,	,,
नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः	तृ	शर्मणा	शर्मभ्याम्	शर्मभिः
नाम्ने	,,	नामभ्यः	च	शर्मणे	,,	शर्मभ्यः
नाम्नः	,,	,,	पं	शर्मणः	,,	,,
,,	नाम्नोः	नाम्नाम्	ष	,,	शर्मणोः	शर्मणाम्
नामि, नामनि	,,	नामसु	स	शर्मणि	,,	शर्मसु
हे नाम नामन्	हे नाम्नी नामनी	नामानि	सं	हे शर्म, शर्मन्	हे शर्मणी	हे शर्माणि

—

(७१) ब्रह्मन् (ब्रह्म, वेद) (दे अ ५४) (७२) अहन् (दिन) (दे अ ५४)

ब्रह्म	ब्रह्मणी	ब्रह्माणि	प्र	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
,,	,,	,,	द्वि	,,	,,	,,
ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभिः	तृ	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
ब्रह्मणे	,,	ब्रह्मभ्यः	च	अह्ने	,,	अहोभ्यः
ब्रह्मणः	,,	,,	पं	अह्नः	,,	,,
,,	ब्रह्मणोः	ब्रह्मणाम्	ष	,,	अह्नोः	अह्नाम्
ब्रह्मणि	,,	ब्रह्मसु	स०	अह्नि, अहनि		अहःसु, -त्सु
हे ब्रह्म, ब्रह्मन्	हे ब्रह्मणी	हे ब्रह्माणि	सं	हे अहः	अह्नी, अहनी	अहानि

—

(३१) हविष् (हवि) (१ अ० ५५)

हविः	हविषी	हविंषि	प्र	मधु	मधुनी	मधूनि
"	"	"	द्वि०	"	"	"
हविषा	हविभ्याम्	हविर्भिः	तृ	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
हविषे	"	हविर्भ्यः	च०	मधुने	"	मधुभ्यः
हविषः	"	"	पं०	मधुनः	"	"
"	हविषोः	हविषाम्	ष	"	मधुनोः	मधूनाम्
हविषि	"	हविःषु-त्सु	स	मधुनि	"	मधुःषु-त्सु
हे हविः	हे हविषी	हे हविंषि	सं	हे मधु	हे मधुनी	हे मधूनि

(३२) पयस् (दूध जल) (१ अ० ५६)

पयः	पयसी	पयांसि	प्र	मनः	मनसी	मनांसि
"	"	"	द्वि०	"	"	"
पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः	तृ	मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
पयसे	"	पयोभ्यः	च०	मनसे	"	मनोभ्यः
पयसः	"	"	पं०	मनसः	"	"
"	पयसोः	पयसाम्	ष	"	मनसोः	मनसाम्
पयसि	"	पयःषु-त्सु	स	मनसि	"	मनःषु-त्सु
हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि	सं	हे मनः	हे मनसी	हे मनांसि

(४) सर्वनाम शब्द

(३३) (क) सर्व (सब) पुंलिंग (१ अ० १)

सर्वः	सर्वौ	सर्वे	प्र	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सर्वम्	"	सर्वान्	द्वि	सर्वाम्	"	"
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	तृ	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
सर्वस्मै	"	सर्वेभ्यः	च०	सर्वस्यै	"	सर्वाभ्यः
सर्वस्मात्	"	"	पं०	सर्वस्याः	"	"
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्	ष	"	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वस्मिन्	"	सर्वेषु	स	सर्वस्याम्	"	सर्वासु

(३३) (ख) सर्व (नपुंसकलिंग) (१ अ० ७)

(७७)(क)विश्व(सब)पुंल्लिंग(दे०अ ६) (७९)(क)पूर्व(पहला)पु

विश्वः	विश्वौ	विश्वे	प्र	पूर्वः	पूर्वौ
विश्वम्	,,	विश्वान्	द्वि	पूर्वम्	,,
विश्वेन	विश्वाभ्याम्	विश्वैः	तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्
विश्वस्मै	,,	विश्वेभ्यः	च	पूर्वस्मै	,,
विश्वस्मात्	,,		पं०	पूर्वस्मात् पूर्वात्	,,
विश्वस्य	विश्वयोः	विश्वेषाम्	ष	पूर्वस्य	पूर्वयोः
विश्वस्मिन्	,,	विश्वेषु	स०	पूर्वस्मिन्,पूर्वे	,,

(७८)(ख)विश्व(नपुंसकलिंग)(दे अ ७)(७९)(ख)पूर्व(नपुंसकलि

विश्वम्	विश्वे	विश्वानि	प्र०	पूर्वम्	पूर्वे
,,	,,	,,	द्वि०		,,

शेष पुंल्लिंग के तुल्य (दे अ ७८, क) (शेष पुंल्लिंग के तुल्य (दे

(७८) (ग)विश्व(स्त्रीलिंग)(दे० अ ८) (७९) (ग)पूर्व(स्त्रीलि

विश्वा	विश्वे	विश्वाः	प्र०	पूर्वा	पूर्वे
विश्वाम्	,,	,,	द्वि	पूर्वाम्	,,
विश्वया	विश्वाभ्याम्	विश्वाभिः	तृ०	पूर्वया	पूर्वाभ्याम्
विश्वस्यै		विश्वाभ्यः	च०	पूर्वस्यै	,,
विश्वस्याः	,,	,,	पं	पूर्वस्याः	,,
,,	विश्वयोः	विश्वासाम्	ष		पूर्वयोः
विश्वासाम्	,,	विश्वासु	स	पूर्वासाम्	,,

(८०)(क)अन्य(दूसरा)पुंल्लिंग(दे अ ६) (८०)(ग)अन्य(स्त्रीलि

अन्यः	अन्यौ	अन्ये	प्र	अन्या	अन्ये
अन्यम्	,,	अन्यान्	द्वि०	अन्याम्	,,
अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यैः	तृ०	अन्यया	अन्याभ्याम्
अन्यस्मै	,,	अन्येभ्यः	च	अन्यस्यै	,,
अन्यस्मात्	,,	,,	पं	अन्यस्याः	,,
अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्	ष०	,,	अन्ययोः
अन्यस्मिन्	,,	अन्येषु	स	अन्यासाम्	,,

(८०)(ख)अन्य(नपुंसकलिंग)(दे०अ ७) —

अन्यत्	अन्ये	अन्यानि	प्र०
,,	,,	,,	द्वि

शेष पुंल्लिंग के तुल्य (देखो ८०, क)

(८१) (क) तद् (वह) पुंलिंग (दे० अ ६)

सः	तौ	ते	प्र	यः	यौ	ये
तम्	,,	तान्	द्वि०	यम्	,,	यान्
तेन	ताभ्याम्	तैः	तृ	येन	याभ्याम्	यैः
तस्मै	,,	तेभ्यः	च०	यस्मै	,,	येभ्यः
तस्मात्	,,	,,	पं०	यस्मात्	,,	,,
तस्य	तयोः	तेषाम्	ष	यस्य	ययोः	येषाम्
तस्मिन्	,,	तेषु	स०	यस्मिन्	,,	येषु

(८२) (क) यद् (जो) पुंलिंग (दे अ ६)

(८१) (ख) तद् (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७)

तत्	ते	तानि	प्र	यत्	ये	यानि
,,	,,	,,	द्वि			,,

शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८१, क)

(८२) (ख) यद् (नपुंसकलिंग) (दे अ ७)

शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८२, क)

(८१) (ग) तद् (स्त्रीलिंग) (दे अ ८)

सा	ते	ताः	प्र	या	ये	याः
ताम्	,,	,,	द्वि	याम्	,,	,,
तया	ताभ्याम्	ताभिः	तृ	यया	याभ्याम्	याभिः
तस्यै	,,	ताभ्यः	च	यस्यै	,,	याभ्यः
तस्याः	,,	,,	पं	यस्याः	,,	,,
,,	तयोः	तासाम्	ष		ययोः	यासाम्
तस्याम्	,,	तासु	स	यस्याम्		यासु

(८२) (ग) यद् (स्त्रीलिंग) (दे० अ ८)

(८३) (क) एतद् (यह) पुंलिंग (तद् के तुल्य)

एषः	एतौ	एते	प्र	कः	कौ	के
एतम्	,,	एतान्	द्वि	कम्	,,	कान्

शेष तद् पुंलिंग (८१ क) के तुल्य।

(८४) (क) किम् (क्या) पुंलिंग (तद् के तुल्य)

शेष तद् पुंलिंग (८१, क) के तुल्य।

(८३) (ख) एतद् (नपुंसकलिंग)

एतत्	एते	एतानि	प्र	किम्	के	कानि
,,		,,	द्वि		,,	,,

शेष तद् नपुं० (८१, ख) के तुल्य।

(८४) (ख) किम् (नपुंसक०)

शेष तद् नपुं (८१, ख) के तुल्य

(८३) (ग) एतद् (स्त्रीलिंग)

एषा	एते	एताः	प्र	का	के	काः
एताम्	,,	,,	द्वि	काम्	,,	,,

शेष तद् स्त्रीलिंग (८१ ग) के तुल्य।

(८४) (ग) किम् (स्त्रीलिंग)

शेष तद् स्त्रीलिंग (८१ ग) के तुल्य

(८५) युष्मद् (तू) (३ ब ११)

त्वम्	युवाम्	यूयम्	प्र०
त्वाम्	"	युष्मान्	द्वि
त्वा	वाम्	वः	
त्वया	युवाभ्याम्	युष्मभिः	तृ
तुभ्यम्	"	युष्मभ्यम्	च
ते	वाम्	वः	
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	पं
तव	युवयोः	युष्माकम्	ष
ते	वाम्	वः	
त्वयि	युवयोः	युष्मासु	स

(८६) अस्मद् (मैं) (३ ब ११)

अहम्	आवाम्	वयम्	प्र०
माम्, मा	नौ	अस्मान्	द्वि
मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः	तृ
मह्यम्, मे	नौ "	अस्मभ्यम्	च
मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्	पं
मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः	ष
मयि	आवयोः	अस्मासु	स

(८७) (क) इदम् (यह) पुंल्लिंग (३ ब १)

अयम्	इमौ	इमे	प्र
इमम्		इमान्	द्वि
अनेन	आभ्याम्	एभिः	तृ
अस्मै		एभ्यः	च
अस्मात्	"	"	पं
अस्य	अनयोः	एषाम्	ष
अस्मिन्	"	एषु	स

(८७) (ख) इदम् (नपुंसक०)

इदम्	इमे	इमानि	प्र
"	"	"	द्वि

शेष पुंल्लिंग के तुल्य (देखो ८७ क)

(८७) (ग) इदम् (स्त्रीलिंग)

इयम्	इमे	इमाः	प्र
इमाम्		"	द्वि
अनया	आभ्याम्	आभिः	तृ
अस्यै	,	आभ्यः	च
अस्याः	"	"	पं
"	अनयोः	आसाम्	ष
अस्याम्	"	आसु	स

(८८)(क) अदस् (वह) पुंल्लिंग (३ ब १)

असौ	अमू	अमी	प्र
अमुम्	"	अमून्	द्वि
अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः	तृ
अमुष्मै	"	अमीभ्यः	च
अमुष्मात्	"	"	पं
अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्	ष
अमुष्मिन्	"	अमीषु	स

(८८) (ख) अदस् (नपुंसक०)

अदः	अमू	अमूनि	प्र
"	"	"	द्वि

शेष पुंल्लिंग के तुल्य (देखो ८८ क)

(८८) (ग) अदस् (स्त्रीलिंग)

असौ	अमू	अमूः	प्र
अमूम्	"	"	द्वि
अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः	तृ
अमुष्यै		अमूभ्यः	च
अमुष्याः	"	"	पं
"	अमुयोः	अमूषाम्	ष
अमुष्याम्	"	अमूषु	स

(८९) एक (एक) (दे० अ० ११)

पुंल्लिंग	नपुंसक०	स्त्रीलिंग
एक	एकम्	एका
एकम्		एकाम्
एकेन	एकेन	एकया
एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै
एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्याः
एकस्य	एकस्य	,
एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्

(९०) द्वि (दो) (दे अ० १४)

	पुंल्लिंग	नपुं०, स्त्रीलिंग
प्र	द्वौ	द्वे
द्वि०	,,	,,
तृ०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
च	,	,
पं		,
ष	द्वयोः	द्वयोः
स	,	,,

सूचना—केवल एकवचन में रूप चलते हैं। सूचना—द्वि के द्विवचन में ही रूप चलेंगे।

(९१) त्रि (तीन) (दे अ १५)

पुं०	नपुं०
त्रयः	त्रीणि
त्रीन्	
त्रिभिः	त्रिभिः
त्रिभ्य	त्रिभ्यः
,,	,
त्रयाणाम्	त्रयाणाम्
त्रिषु	त्रिषु

(९२) चतुर (चार) (दे अ १६)

	पुं०	नपुं०	स्त्री०
प्र	चत्वारः	चत्वारि	चतस्र
द्वि	चतुरः	,,	,
तृ	चतुर्भिः	चतुर्भिः	चतसृभिः
च०	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्य
पं	,	,,	,,
ष	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
स	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

सूचना—त्रि के बहु० में ही रूप चलते हैं। सूचना—चतुर् के बहु में ही रूप चलते हैं

(९३) पंचन् (पाँच)

प्र	पञ्च
द्वि	,,
तृ	पञ्चभिः
च	पञ्चभ्यः
पं	,,
ष	पञ्चानाम्
स	पञ्चसु

(९४) षष् (छः)

प्र	षट्
द्वि	,,
तृ	षड्भिः
च	षड्भ्यः
पं	,
ष	षण्णाम्
स	षट्सु

(९५) सप्तन् (सात)

प्र	सप्त
द्वि	,,
तृ	सप्तभिः
च	सप्तभ्यः
पं	,,
ष	सप्तानाम्
स	सप्तसु

सूचना—१ से १८ तक की संख्याओं के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं।

(८५) युष्मद् (तू) (द्वि० ब० ११)

प्र	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि	त्वाम्	"	युष्मान् वः
तृ	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च	तुभ्यम् ते	"	युष्मभ्यम् वः
पं	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
ष	तव ते	युवयोः	युष्माकम् वः
स	त्वयि	"	युष्मासु

(८६) अस्मद् (मैं) (द्वि० ब० १२)

प्र	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि	माम् मा	"	अस्मान् नः
तृ	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च	मह्यम् मे	"	अस्मभ्यम् नः
पं	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
ष	मम मे	आवयोः	अस्माकम् नः
स	मयि	"	अस्मासु

(८७) (क) इदम् (यह) पुंल्लिंग

(द्वि० ब० १)

प्र	अयम्	इमौ	इमे
द्वि	इमम्	"	इमान्
तृ	अनेन	आभ्याम्	एभिः
च	अस्मै	"	एभ्यः
पं	अस्मात्	"	"
ष	अस्य	अनयोः	एषाम्
स	अस्मिन्	"	एषु

(८८) (क) अदस् (वह) पुंल्लिंग

(द्वि० ब० १)

प्र	असौ	अमू	अमी
द्वि	अमुम्	"	अमून्
तृ	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च	अमुष्मै	"	अमीभ्यः
पं	अमुष्मात्	"	"
ष	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स	अमुष्मिन्	"	अमीषु

(८७) (ख) इदम् (नपुंसक०)

प्र	इदम्	इमे	इमानि
द्वि	"	"	"

शेष पुंल्लिंग के तुल्य (देखो ८७ क)

(८८) (ख) अदस् (नपुंसक०)

प्र	अदः	अमू	अमूनि
द्वि	"	"	"

शेष पुंल्लिंग के तुल्य (देखो ८८, क)

(८७) (ग) इदम् (स्त्रीलिंग)

प्र	इयम्	इमे	इमाः
द्वि	इमाम्	"	"
तृ	अनया	आभ्याम्	आभिः
च	अस्यै	"	आभ्यः
पं	अस्याः	"	"
ष	"	अनयोः	आसाम्
स	अस्याम्	"	आसु

(८८) (ग) अदस् (स्त्रीलिंग)

प्र	असौ	अमू	अमूः
द्वि	अमूम्	"	"
तृ	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च	अमुष्यै	"	अमूभ्यः
पं	अमुष्याः	"	"
ष	"	अमुयोः	अमूषाम्
स	अमुष्याम्	"	अमूषु

एक द्वि त्रि चतुर् पंचन् षष् सप्तन्

(८९) एक (एक) (दे० अ ११)

पुंलिंग	नपुंसक०	स्त्रीलिंग		पुंलिंग	नपुं०, स्त्रीलिंग
एक:	एकम्	एका	प्र०	द्वौ	द्वे
एकम्	,,	एकाम्	द्वि	,,	,,
एकेन	एकेन	एकया	तृ	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै	च	,,	,,
एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्या:	पं	,,	,,
एकस्य	एकस्य	,,	ष	द्वयो:	द्वयो:
एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्	स०	,,	,,

सूचना—केवल एकवचन में रूप चलते हैं। सूचना—द्वि के द्विवचन में ही रूप चलेंगे।

(९१) त्रि (तीन) (दे० अ १५)

पुं०	नपुं०	स्त्री०		पुं०	नपुं०	स्त्री०
त्रय:	त्रीणि	तिस्र	प्र०	चत्वार:	चत्वारि	चतस्र
त्रीन्	,,	,,	द्वि	चतुर:	,,	,,
त्रिभि:	त्रिभि:	तिसृभि:	तृ	चतुर्भि:	चतुर्भि:	चतसृभि:
त्रिभ्य:	त्रिभ्य:	तिसृभ्य:	च	चतुर्भ्य:	चतुर्भ्य:	चतसृभ्य:
,,	,,	,,	पं	,,	,,	,,
त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	ष	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु	स०	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

(९२) चतुर (चार) (दे० अ १६)

सूचना-त्रि के बहु में ही रूप चलते हैं। सूचना—चतुर् के बहु० में ही रूप चलते हैं

(९३) पंचन् (पाँच)

पञ्च	प्र
,,	द्वि
पञ्चभि:	तृ
पञ्चभ्य:	च
,,	पं
पञ्चानाम्	ष
पञ्चसु	स

(९४) षष् (छः)

षट्	प्र
,,	द्वि
षड्भि:	तृ
षड्भ्य:	च
,,	पं
षण्णाम्	ष
षट्सु	स

(९५) सप्तन् (सात)

सप्त	प्र
,,	द्वि
सप्तभि:	तृ
सप्तभ्य:	च
,,	पं
सप्तानाम्	ष
सप्तसु	स

सूचना—१ से १८ तक की संख्याओं के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं।

(९७) अष्टन् (आठ)

अष्ट	अष्टौ
”	”
अष्टभिः	अष्टाभिः
अष्टभ्यः	अष्टभ्यः
”	”
अष्टानाम्	अष्टानाम्
अष्टसु	अष्टासु

(९७) नवन् (नौ)

प्र	नव
द्वि	”
तृ	नवभिः
च	नवभ्यः
पं	”
ष	नवानाम्
स	नवसु

(९८) दशन् (दस)

दश	
”	
दशभिः	
दशभ्यः	
”	
दशानाम्	
दशसु	

सूचना—अष्टन् नवन् दशन् के रूप बहुवचन में ही चलते हैं।

(९९) कति (कितने) (३ अ ५९)

कति	
”	
कतिभिः	
कतिभ्यः	
”	
कतीनाम्	
कतिषु	

सूचना—कति के रूप बहु में ही चलते हैं।

(१००) उभ (दोनों) (३ अ १)

	पुं	स्त्री	नपुं
प्र	उभौ	उभे	”
द्वि	”	”	”
तृ	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्	”
च	”	”	”
पं	”	”	”
ष	उभयोः	उभयोः	”
स	”	”	”

सूचना—उभ के रूप तीनों लिंगों में केवल द्विवचन में ही चलते हैं।

(२) संख्याएँ

१ एक:, एकम्, एका
२ द्वौ, द्वे, द्वे
३ त्रय:, त्रीणि, तिस्र:
४ चत्वार:, चत्वारि, चतस्र:
५ पञ्च
६ षट्
७ सप्त
८ अष्ट, अष्टौ
९ नव
१० दश
११ एकादश
१२ द्वादश
१३ त्रयोदश
१४ चतुर्दश
१५ पञ्चदश
१६ षोडश
१७ सप्तदश
१८ अष्टादश
१९ नवदश
एकोनविंशति:
२० विंशति
२१ एकविंशति
२२ द्वाविंशति:
२३ त्रयोविंशति:
२४ चतुर्विंशति:
२५ पञ्चविंशति:
२६ षड्विंशति
२७ सप्तविंशति:
२८ अष्टाविंशति:
२९ नवविंशति
एकोनत्रिंशत्
३ त्रिंशत्
३१ एकत्रिंशत्
३२ द्वात्रिंशत्
३३ त्रयस्त्रिंशत्
३४ चतुस्त्रिंशत्
३५ पञ्चत्रिंशत्
३६ षट्त्रिंशत्
३७ सप्तत्रिंशत्
३८ अष्टात्रिंशत्
३९ नवत्रिंशत्
एकोनचत्वारिंशत्
४ चत्वारिंशत्
४१ एकचत्वारिंशत्
४२ द्विचत्वारिंशत्
द्वाचत्वारिंशत्
४३ त्रिचत्वारिंशत्
त्रयश्चत्वारिंशत्
४४ चतुश्चत्वारिंशत्
४५ पञ्चचत्वारिंशत्
४६ षट्चत्वारिंशत्
४७ सप्तचत्वारिंशत्
४८ अष्टचत्वारिंशत्
अष्टाचत्वारिंशत्
४९ नवचत्वारिंशत्
एकोनपञ्चाशत्
५ पञ्चाशत्
५१ एकपञ्चाशत्
५२ द्विपञ्चाशत्
द्वापञ्चाशत्
५३ त्रिपञ्चाशत्
त्रयःपञ्चाशत्
५४ चतुःपञ्चाशत्
५५ पञ्चपञ्चाशत्
५६ षट्पञ्चाशत्
५७ सप्तपञ्चाशत्
५८ अष्टपञ्चाशत्
अष्टापञ्चाशत्
५९ नवपञ्चाशत्
एकोनषष्टि
६ षष्टि:
६१ एकषष्टि:
६२ द्विषष्टि:, द्वाषष्टि
६३ त्रिषष्टि:
त्रयःषष्टि:
६४ चतुःषष्टि
६५ पञ्चषष्टि:
६६ षट्षष्टि
६७ सप्तषष्टि:
६८ अष्टषष्टि:
अष्टाषष्टि
६९ नवषष्टि:
एकोनसप्तति:
७ सप्तति:
७१ एकसप्तति:
७२ द्विसप्तति:
द्वासप्तति:
७३ त्रिसप्तति
त्रयःसप्तति:
७४ चतुःसप्तति:
७५ पञ्चसप्तति

७६ षट्षष्टिः	८५ पञ्चाशीतिः		(संख्या
७७ सप्तषष्टिः	८६ षडशीतिः		
७८ अष्टषष्टिः	८७ सप्ताशीतिः		
अष्टात्रिंशत्तिः	८८ अष्टाशीतिः		
७९ नवषष्टिः	८९ नवाशीतिः		
एकोनाशीतिः	एकोननवति		
८० अशीतिः	१ नवतिः		
८१ एकाशीतिः	९१ एकनवतिः		
८२ द्व्यशीतिः	९२ द्विनवतिः		
८३ त्र्यशीति	द्यानवतिः		
८४ चतुरशीतिः	९३ त्रिनवतिः		
	९४ चतुर्नवति		
	९५ पञ्चनवति		
	९६ षण्णवति		
	९७ सप्तनवतिः		
	९८ अष्टनवतिः		
	अष्टानवति.		
	९९ नवनवतिः		
	एकोनशतम्		
	१ शतम् ।		

१ दश—दशम् । १ दश—अयुतम् । १ लक्ष—लक्षम् । १ लक्ष—नियुत-
प्रयुतम् । १ करोड़—कोटिः । १ करोड़—दशकोटिः । १ अरब—अर्बुदम्
१ अरब—दशार्बुदम् । १ खरब—सर्वम् । १ खरब—दशसर्वम् । १ नील—
नीलम् । १ नील—दशनीलम् । १ पद्म—पद्मम् । १ पद्म—दशपद्मम् । १ शंख—
शंखम् । १ शंख—दशशंखम् । १ महाशंख—महाशंखम् ।

सूचना—१ (क) १ १ आदि संख्याओं के लिए अधिक शब्द लगाकर संख्या शब्द बनायें । जैसे, १ १ एकाधिकं शतम् । १ २ द्व्यधिकं शतम् आदि । (ख) १ आदि के लिए दो आदि संख्यावाचक शब्द पहले रखकर बाद में 'दशी' रखें, या शत पहले रखकर द्विदशम्, त्रिदशम् आदि रखें । जैसे—२ , त्रिदशी शतद्वयम् । १ त्रिदशी शतत्रयम्, ४ • चतुःशती, ५ पञ्चशती, ६ षट्शती ७० सप्तशती (हिन्दी सतसई) आदि ।

२. नि (१) से लेकर १८ (अष्टादशन्) तक सारे शब्दों के रूप केवल बहुवचन में चलते हैं । दशन् से अष्टादशन् तक दशन् के तुल्य ।

१ एकोनविंशति से नवविंशति तक सारे शब्द एकवचनान्त स्त्रीलिंग हैं । इनके रूप एकवचन में ही चलते हैं । इकारान्त विंशति, सप्तति अशीति, नवति तथा त्रिंशद् अन्त में ये हैं उनके रूप मति के तुल्य चलेंगे । तकारान्त विंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत् के रूप सरित् के तुल्य (शब्द सं० ५४) चलेंगे ।

४ शतम् शतम्, अयुतम्, लक्षम् नियुतम्, प्रयुतम् आदि शब्द तथा एकवचनान्त नपुंसक हैं । शतन् एक में रूप चलेगा । शालि के मतिवत् ।

५ संक्षेप शब्द (प्रथम, द्वितीय आदि) बनाने के लिए अष्टाद १८ का स्वाङ्गरूप

(३) धातुरूप-संग्रह

आवश्यक-निर्देश

१ संस्कृत में सारी धातुओं को १ विभागों में बाँटा गया है। उन्हें 'गण' कहते हैं, अतः १ गण हैं। धातु और लिङ् (ति, ता आदि) प्रत्यय के बीच में होनेवाले अ, उ नु आदि को 'विकरण' कहते हैं। इनके अन्तर के आधार पर ही ये गण बनाए गए हैं। ये 'विकरण' कृ, तुद्, तृह्, विविच्-में ही होते हैं, अन्य १ प्रकारों में नहीं होते, यह स्मरण रक्खें। प्रत्येक गण में तीनों प्रकार की धातुएँ होती हैं, परस्मैपदी (ति तः, अन्ति आदिवाली) आत्मनेपदी (ते एते, अन्ते आदिवाली) और उभयपदी (पूर्वोक्त दोनों प्रकार के रूपवाली)। प्रत्येक गण की विशेषताएँ आगे प्रत्येक गण के विवरण में दी गई हैं। यहाँ अधिक प्रसिद्ध १ धातुओं के रूप दिए गए हैं।

२ प्रत्येक गण के विवरण में उस गण में आनेवाली धातुओं के अन्त में क्या संक्षिप्त-रूप बनेंगे, इसका विवरण दिया गया है। उस गण की धातुओं के अन्त में उन प्रकारों में निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप बनावें।

३ गणों के अन्तर के कारण कृ, तुद्, आशीर्लिङ्, लृङ्, लिङ् और तुद् में कोई अन्तर नहीं होता। अतः सभी गणों में इन प्रकारों में एक से ही रूप बनेंगे। इन प्रकारों के संक्षिप्त रूप आगे दिए हैं, उन्हें स्मरण कर लें। सभी गणों में उन्हीं संक्षिप्त-रूपों को बनावें। अतएव धातुरूपों में लट्, तुद्, आशीर्लिङ् और लृङ् के प्रारम्भिक रूप ही संकेतमात्र दिए गए हैं। सभी धातुओं के लिङ् और तुद् के पूरे रूप दिए गए हैं।

४ दसों गणों के विकरण और गुण-कार्य ये हैं :—

गण	विकरण	कार्य
(१) भ्वादिगण	अ	कृ आदि में धातु को गुण होगा।
(२) अदादिगण	×	कृ आदि के एक में धातु को गुण होगा।
(३) जुहोत्यादिगण	×	कृ आदि में धातु को द्वित्व और एक में गुण।
(४) दिवादिगण	य	कृ आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(५) स्वादिगण	नु (नो)	कृ आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(६) तुदादिगण	अ	" "
(७) रुधादिगण	न (न्)	" "
(८) तनादिगण	उ (ओ)	कृ आदि में धातु को पर में गुण होगा।
(९) क्र्यादिगण	ना (नी)	कृ आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(१०) चुरादिगण	अय	कृ आदि में धातु को गुण या वृद्धि होती।

(क) टकारों के संक्षिप्त-रूप

परस्मैपद

लट्

ति	तः	अन्ति	प्र
सि	थः	थ	म
मि	वः	मः	उ

आत्मनेपद

ते	इते (आते)	अन्ते (अते)	प्र
से	इथे (आथे)	ध्वे	म
इ (ए)	वहे	महे	उ

लोट्

तु	ताम्	अन्तु	प्र
—, हि	तम्	त	म
अनि	आव	आम	उ

लोट्

ताम्	इताम् (आताम्)	अन्ताम् (अताम्)	प्र
स्व	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्	म
ऐ	आवहै	आमहै	उ

लङ्

त्	ताम्	अन्	प्र
ः	तम्	त	म
अम्	व	म	उ

लङ्

त	इताम् (आताम्)	अन्त (अत)	प्र
थाः	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्	म
इ	वहि	महि	उ

विधिलिङ्

ईत्	ईताम्	ईयुः	प्र
ईः	ईतम्	ईत	म
ईयम्	ईव	ईम	उ

विधिलिङ्

यात्	यास्ताम्	युः	प्र
याः	यास्तम्	यास्त	म
यासम्	यास्व	यास्म	उ

लट्

(ई) स्यति	स्यतः	स्यन्ति	प्र
स्यसि	स्यथः	स्यथ	म
स्यामि	स्यावः	स्यामः	उ

(ई) स्यते स्येते स्यन्ते प्र
स्यसे स्येथे स्यध्वे म
स्ये स्यावहे स्यामहे उ

लुट्

(ई) ता	तारौ	तारः	प्र
तासि	तास्थः	तास्थ	म
तास्मि	तास्वः	तास्मः	उ

(ई) ता तारौ तारः प्र
तासे तासाथे तास्ध्वे म
तास्ये तास्वहे तास्महे उ

आशीर्लिङ्

(ई) सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्	प्र
सीष्ठाः	सीवास्थाम्	सीध्वम्	म
सीय	सीवहि	सीमहि	उ

आशीर्लिङ्

(X) यात्	यास्ताम्	यासुः	प्र
याः	यास्तम्	यास्त	म
यासम्	यास्व	यास्म	उ

लङ् (धातु से पहले अ लगेगा)

(ई) स्यत्	स्यताम्	स्यन्	प्र०
स्याः	स्यतम्	स्यत	म
स्यम्	स्याव	स्याम	उ०

(ई) स्यत स्येताम् स्यन्त प्र
स्यथाः स्येथाम् स्यध्वम् म
स्ये स्यावहि स्यामहि उ

लङ् (धातु से पहले अ लगेगा)

सूचना—लट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लङ् में सट् में स रूप से पहले इ भी लगेगा।

परस्मैपद-छिद्

अ	अत्ताः	ठाः	प्र	पु०
(इ)व	अत्तु	अ	म	पु
अ	(इ)व	(इ)म	उ	पु

आत्मनेपद-छिद्

ए	आते	इरे	
(इ)से	आथे	(इ)ध्वे	
ए	(इ)वहे	(इ)महे	

छुद् (१ स्-लोप वाला भेद)

द्	ताम्	ठाः (अन्)	प्र	पु
:	तम्	त	म	पु
अम्	त	म	उ	पु

सूचना—यह भेद आत्मनेपद में नहीं होता। छुद् के ७ भेद होते हैं। आगे रूपों में छुद् के आगे संख्या से इसका निर्देश होगा।

(२ अ-वाला भेद)

अत्	अताम्	अन्	प्र	पु
अः	अतम्	अत	म	पु
अम्	आव	आम	उ	पु

(३ द्वित्व-वाला भेद)

अत्	अताम्	अन्	प्र	पु
अः	अतम्	अत	म	पु
अम्	आव	आम	उ	पु

(४ स्-वाला भेद)

क्षीत्	क्षाम्	क्षुः	प्र	पु०
क्षीः	क्षम्	क्षत	म	पु
क्षम्	क्ष	क्ष	उ	पु

(५ इष्-वाला भेद)

इत्	इषाम्	इषुः	प्र	पु
ईः	इषम्	इष्ट	म	पु
इषम्	इष्व	इष्म	उ	पु

(६ सिप्-वाला भेद)

सीत्	सिषाम्	सिषुः	प्र	पु
सीः	सिषम्	सिष्ट	म	पु
सिषम्	सिष्व	सिष्म	उ	पु

(७ स-वाला भेद)

क्षत्	क्षाम्	क्षन्	प्र	पु
क्षः	क्षम्	क्षत	म	पु
क्षम्	क्षाव	क्षाम	उ०	पु

छुद् (१ स्-लोप वाला भेद)

सूचना—यह भेद आत्मनेपद में नहीं होता। छुद् के ७ भेद होते हैं। आगे रूपों में छुद् के आगे संख्या से इसका निर्देश होगा।

(२ अ-वाला भेद)

अत	एताम्	अन्त		
अथा	एथाम्	अध्वम्		
ए	आवहि	आमहि		

(३ द्वित्व-वाला भेद)

अत	एताम्	अन्त		
अथा	एथाम्	अध्वम्		
ए	आवहि	आमहि		

(४ स्-वाला भेद)

क्ष	क्षाताम्	क्षत		
क्षथा	क्षाथाम्	क्ष्वम्		
क्षि	क्ष्वहि	क्ष्महि		

(५ इष्-वाला भेद)

इष	इषाताम्	इषत		
इष्ठा	इषाथाम्	इढ्वम्-इध्वम्		
इषि	इढ्वहि	इढ्महि		

(६ सिप्-वाला भेद)

सूचना—आत्मनेपद में यह भेद नहीं होता।

(७ स-वाला भेद)

क्षत	क्षाताम्	क्षन्त		
क्षथाः	क्षाथाम्	क्षध्वम्		
क्षि	क्ष्वहि	क्ष्महि		

(२) स्वादिगण

(१) स्वादिगण की प्रथम धातु सू है, अतः इसका नाम स्वादिगण पड़ा। दसों गणों में यह गण सबसे सुखद है। सबसे अधिक धातुएँ इसी गण में हैं। चुरादि गण तक धातुपाठ में वर्णित धातुओं की संख्या २९७० है। इनमें से स्वादिगण की धातुओं की संख्या १०१५ है। अतः ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण धातुपाठ की आधे से अधिक धातुएँ स्वादिगण में हैं।

(२) स्वादिगण की विशेषताएँ ये हैं—(क) धातु और प्रत्यय के बीच में (कहीं कहीं) श्नु (अ) विकरण लगता है। इसलिए धातु के अन्त में अति, अतः, अन्ति आदि आयेंगे। मूल प्रत्यय ति, तः आदि हैं। (ख) धातु के अन्तिम स्वर इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ को तथा उपधा (अन्तिम अक्षर से पूर्व) के इ, उ, ऋ को क्रमशः ए, ओ, अर् गुण हो जाता है। अन्त में गुण के ए को अय् और ओ को अव् हो जाता है। जैसे—भू> भवति, जि>जयति, इ> एति, द्रुच्> द्रोचति, सुद्> मोदते।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त रूप निम्नलिखित आयेंगे। लट्, लृट्, आशीर्लिङ् लकार में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही आयेंगे।

परस्मैपद	लट्			आत्मनेपद	लट्	
अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ	ए	आवहे	आमहे
	लोट्				लेट	
अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म	असव	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ए	आवहै	आमहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)			लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
अत्	अताम्	अन्	प्र	अत	एताम्	अन्त
अ	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ	ए	आवहि	आमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
एत्	एताम्	एयुः	प्र	एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ	एय	एवहि	एमहि

(१) भ्वादिगण (परस्मैपदी धातुएं)

(१) भू (होना) लट् (वर्तमान) (दे. सू १)				लोट् (आज्ञा अर्थ)		
भवति	भवतः	भवन्ति	प्र पु	भवतु	भवताम्	भवन्तु
भवसि	भवथः	भवथ	म पु	भव	भवतम्	भवत
भवामि	भवावः	भवामः	उ पु०	भवानि	भवाव	भवाम
लङ् (भूतकाल, अनद्यतन)				विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अर्थ)		
अभवत्	अभवताम्	अभवन्	प्र०पु	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
अभवः	अभवतम्	अभवत	म पु	भवेः	भवेतम्	भवेत
अभवम्	अभवाव	अभवाम	उ०पु	भवेयम्	भवेव	भवेम
लृट् (भविष्यत्)				लृट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति	प्र पु	भविता	भवितारौ	भवितारः
भविष्यसि	भविष्यथ	भविष्यथ	म पु	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः	उ पु	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः
आशीर्लिङ् (आशीर्वाद)				लृङ् (हेतुहेतुमत् भविष्यत्)		
भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः	प्र पु	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त	म पु	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म	उ पु	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम
लिट् (परोक्ष भूत)				लुङ् (१) (सामान्य भूत)		
बभूव	बभूवतुः	बभूवुः	प्र पु	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव	म०पु	अभूः	अभूतम्	अभूत
बभूव	बभूविव	बभूविम	उ पु	अभूवम्	अभूव	अभूम

—

सूचना—(१) लङ्, लुङ् और लृङ् में धातु से पहले 'अ' लगता है। यदि धातु का प्रथम अक्षर स्वर होगा तो धातु से पहले 'आ' लगेगा और सन्धिकार्य भी होगा।

(२) लुङ् के आगे दी हुई संख्यायें इस बात का निर्देश करती हैं कि पृष्ठ १४९ पर दिए हुए लुङ् के ७ भेदों में से कौनसा भेद यहाँ पर है। जिस भेद का निर्देश हो, उसी भेद के संकेतित रूप पृष्ठ १४९ के अनुसार धातु के अन्त में लगावें। सम्पूर्ण धातुरूप के लिए यह निर्देश स्मरण रक्खें।

(१) पद् (पढ़ना) (भू के तुल्य)

(१ ग १)

		लट्			
म	पु	पठति	पठतः	पठन्ति	
म०	पु	पठसि	पठथः	पठथ	
उ	पु	पठामि	पठावः	पठामः	
		लोट्			
म	पु	पठतु	पठताम्	पठन्तु	
म	पु	पठ	पठतम्	पठत	
उ	पु	पठानि	पठाव	पठाम	
		लङ्			
म	पु	अपठत्	अपठताम्	अपठन्	
म	पु	अपठः	अपठतम्	अपठत	
उ	पु	अपठम्	अपठाव	अपठाम	
		विधिलिङ्			
म	पु	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः	
म	पु	पठेः	पठेतम्	पठेत	
उ०	पु	पठेयम्	पठेव	पठेम	
		—			
		लृट्			
		पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति	
		पठित्वा	पठित्वारौ	पठित्वारः	
		पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः	
		आशिर्लिङ्			
		अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्	
		लुङ्			
म	पु	पपाठ	पेठतुः	पेठुः	
म	पु	पेठिथ	पेठथुः	पेठ	
उ	पु	पपाठ पपठ	पेठिव	पेठिम	
		लुङ् (५)			
म	पु	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषुः	
म	पु	अपाठीः	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट	
उ	पु	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म	

सूचना—पद् और हृद् में अपठीत् आदि भी रूप होते हैं। हृद् (हृद्)

(२) हस् (हँसना) (भू के तुल्य)

(१ ग १)

		लट्			
म	पु	हसति	हसतः	हसन्ति	
म०	पु	हससि	हसथः	हसथ	
उ	पु	हसामि	हसावः	हसामः	
		लोट्			
म	पु	हसतु	हसताम्	हसन्तु	
म	पु	हस	हसतम्	हसत	
उ	पु	हसानि	हसाव	हसाम	
		लङ्			
म	पु	अहसत्	अहसताम्	अहसन्	
म	पु	अहसः	अहसतम्	अहसत	
उ	पु	अहसम्	अहसाव	अहसाम	
		विधिलिङ्			
म	पु	हसेत्	हसेताम्	हसेयुः	
म	पु	हसेः	हसेतम्	हसेत	
उ०	पु	हसेयम्	हसेव	हसेम	
		—			
		लृट्			
		हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति	
		हसित्वा	हसित्वारौ	हसित्वारः	
		हस्यात्	हस्यास्ताम्	हस्यासुः	
		आशिर्लिङ्			
		अहसिष्यत्	अहसिष्यताम्	अहसिष्यन्	
		लुङ्			
म	पु	अहसत्	अहसतुः	अहसुः	
म	पु	अहसः	अहसथुः	अहसत	
उ	पु	अहसम्	अहसिव	अहसिम	
		लुङ् (५)			
म	पु	अहसीत्	अहसिष्टाम्	अहसिषुः	
म	पु	अहसीः	अहसिष्टम्	अहसिष्ट	
उ	पु	अहसिषम्	अहसिष्व	अहसिष्म	

(४) रक्ष् (रक्षा करना) (भ्वा० पर०)
(दे० अ० १)

				लट्			
रक्षति	रक्षतः	रक्षन्ति	प्र	पु	वदति	वदतः	वदन्ति
रक्षसि	रक्षथः	रक्षथ	म	पु	वदसि	वदथः	वदथ
रक्षामि	रक्षावः	रक्षामः	उ	पु	वदामि	वदावः	वदामः
				लोट्			
रक्षतु	रक्षताम्	रक्षन्तु	प्र	पु०	वदतु	वदताम्	वदन्तु
रक्ष	रक्षतम्	रक्षत	म	पु०	वद	वदतम्	वदत
रक्षाणि	रक्षाव	रक्षाम	उ	पु	वदानि	वदाव	वदाम
				लङ्			
अरक्षत्	अरक्षताम्	अरक्षन्	प्र	पु	अवदत्	अवदताम्	अवदन्
अरक्षः	अरक्षतम्	अरक्षत	म	पु	अवदः	अवदतम्	अवदत
अरक्षम्	अरक्षाव	अरक्षाम	उ	पु०	अवदम्	अवदाव	अवदाम
				विधिलिङ्			
रक्षेत्	रक्षेताम्	रक्षेयुः	प्र	पु	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः
रक्षेः	रक्षेतम्	रक्षेत	म	पु	वदेः	वदेतम्	वदेत
रक्षेयम्	रक्षेव	रक्षेम	उ	पु०	वदेयम्	वदेव	वदेम
		—				—	
रक्षिष्यति	रक्षिष्यतः	रक्षिष्यन्ति		लृट्	वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति
रक्षिता	रक्षितारौ	रक्षितारः		लुट्	वदिता	वदितारौ	वदितारः
रक्षात्	रक्षाताम्	रक्षासुः		आ शिष्	उद्यात्	उद्यास्ताम्	उद्यासुः
अरक्षिष्यत्	अरक्षिष्यताम्	अरक्षिष्यन्		लृङ्	अवदिष्यत्	अवदिष्यताम्	अवदिष्यन्
				लिट्			
ररक्ष	ररक्षतुः	ररक्षुः	प्र	पु	उवाद	ऊदतुः	ऊदुः
ररक्षिथ	ररक्षथुः	ररक्ष	म	पु	उवदिथ	ऊदथुः	ऊद
ररक्ष	ररक्षिव	ररक्षिम	उ०	पु	उवाद, उवद	ऊदिव	ऊदिम
				लुङ् (५)			
अरक्षीत्	अरक्षिष्टाम्	अरक्षिषुः	प्र	पु	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः
अरक्षीः	अरक्षिष्टम्	अरक्षिष्ट	म	पु	अवादीः	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
अरक्षिषम्	अरक्षिष्व	अरक्षिष्म	उ	पु	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

(५) वद् (बोलना) (भ्वा० पर०)
(दे० अ० १)

(१) गम् (जाना) (मू के तुल्य)
(दे० अ १)

सूचना—कर् आदि में गम् को गच्छ होगा। सूचना—कर् आदि में दृश् को पश्य् होगा।

	कर्					कर्		
गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति	प्र	पु	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ	म	पु०	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः	उ	पु	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः
	लोट्					लोट्	
गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु	प्र	पु	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
गच्छ	गच्छतम्	गच्छत	म	पु	पश्य	पश्यतम्	पश्यत
गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम	उ	पु	पश्यानि	पश्याव	पश्याम
	लङ्					लङ्	
अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्	प्र	पु	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत	म	पु	अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम	उ०	पु	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम
	विधिलिङ्					विधिलिङ्	
गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः	प्र	पु	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत	म	पु	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम	उ	पु	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम
	—					—	
गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति	लृट्		द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः	लुट्		द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः	आ	शिष्	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः
अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्	लृङ्		अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
	लिट्					लिट्	
जगाम	जग्मतुः	जग्मुः	प्र०	पु	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
जगमिथ, जगन्थ	जग्मथुः	जग्म	म	पु	ददर्शिथ, ददृष्ठ	ददृशथुः	ददृश
जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम	उ	पु	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम
	लुङ् (२)					लुङ् (१), (४)	
अगमत्	अगमताम्	अगमन्	प्र	पु	(क) अदर्शत्	अदर्शताम्	अदर्शन्
अगमः	अगमतम्	अगमत	म	पु	अदर्शः	अदर्शतम्	अदर्शत
अगमम्	अगमाव	अगमाम	उ	पु	अदर्शम्	अदर्शाव	अदर्शाम
	—				(ख) अद्राक्षीत्	अद्राक्षाम्	अद्राक्षुः
					अद्राक्षीः	अद्राक्षम्	अद्राक्ष
					अद्राक्षम्	अद्राक्ष्व	अद्राक्ष्म

(८) पा (पीना) (भ्वा के तुल्य) (दे.अ.५) (९) स्था (रुकना) (भ्वा के तुल्य)(दे.अ.९)

सूचना—लट् आदि में पा को पिब् होगा।

सूचना—लट् आदि में स्था को तिष्ठ् होगा।

लट्

पिबति	पिबतः	पिबन्ति	प्र॰पु	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
पिबसि	पिबथः	पिबथ	म पु॰	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
पिबामि	पिबावः	पिबामः	उ पु	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः

लोट्

पिबतु	पिबताम्	पिबन्तु	प्र पु	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
पिब	पिबतम्	पिबत	म पु	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
पिबानि	पिबाव	पिबाम	उ पु	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

लङ्

अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्	प्र पु	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
अपिबः	अपिबतम्	अपिबत	म पु	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
अपिबम्	अपिबाव	अपिबाम	उ पु	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

विधिलिङ्

पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः	प्र पु	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
पिबेः	पिबेतम्	पिबेत	म पु	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
पिबेयम्	पिबेव	पिबेम	उ पु	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

—

पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति	लृट्	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
पाता	पातारौ	पातारः		स्थाता	स्थातारौ	स्थातारः
पेयात्	पेयास्ताम्	पेयासुः	आ शिष्	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासुः
अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्	लृङ्	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्

लिट्

पपौ	पप्तुः	पपुः	प्र पु	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप	म पु	तस्थिथ,तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ
पपौ	पपिव	पपिम	उ पु	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

लुङ्(१)

अपात्	अपाताम्	अपुः	प्र पु	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः
अपाः	अपातम्	अपात	म पु	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात
अपाम्	अपाव	अपाम	उ पु	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

—

—

(२ अ ११)

सूचना—सद् आदि में आ को विद् होगा।

सद्

अस्ति	विद्यते	विद्यन्ति	प्र० पु०	सीदति	सीदतः	सीदन्ति
असि	विद्यसे	विद्यध्वे	म पु०	सीदसि	सीदथः	सीदथ
अस्मि	विद्यावहे	विद्यामहे	उ पु	सीदामि	सीदावः	सीदामः

लोट्

अस्तु	विद्यताम्	विद्यन्ताम्	प्र पु	सीदतु	सीदताम्	सीदन्तु
अ	विद्यस्व	विद्यध्वम्	म पु	सीद	सीदतम्	सीदत
असानि	विद्यावहै	विद्यामहै	उ पु	सीदानि	सीदाव	सीदाम

लङ्

अविद्यत्	अविद्यताम्	अविद्यन्त	प्र पु	असीदत्	असीदताम्	असीदन्
अविद्यः	अविद्यथाम्	अविद्यध्वम्	म पु	असीदः	असीदतम्	असीदत
अविद्यम्	अविद्यावहि	अविद्यामहि	उ पु	असीदम्	असीदाव	असीदाम

विधिलिङ्

ओत्	विद्येताम्	विद्येरन्	प्र पु	सीदेत्	सीदेताम्	सीदेयुः
ओः	विद्येथाम्	विद्येध्वम्	म पु	सीदेः	सीदेतम्	सीदेत
एयम्	विद्येवहि	विद्येमहि	उ पु	सीदेयम्	सीदेव	सीदेम

—

स्यति	भास्यतः	भास्यन्ति	सद्	अस्यति	अस्यतः	अस्यन्ति
ता	भातारौ	भातारः	सद	सत्ता	सत्तारौ	सत्तारः
यात्	भेयास्ताम्	भेयासुः	आ विद्	सद्यात्	सद्यास्ताम्	सद्यासुः
यास्यत्	अभास्यताम्	अभास्यन्	सद्	असत्स्यत्	असत्स्यताम्	असत्स्यन्

विद्

वौ	ऊचतुः	ऊचुः	प्र पु	सस्राद	सेदतु	सेदुः
वेष, वक्षाथ	ऊचुः	ऊच	म पु	सेदिथ, सस्रत्थ	सेदथुः	सेद
वै	ऊचिव	ऊचिम	उ पु०	सस्राद सस्रद	सेदिव	सेदिम

सद् (६) (१)

आत्	अभाताम्	अभुः	प्र	असदत्	असदताम्	असदन्
थाः	अभाथाम्	अभाध्वम्	म	असदः	असदतम्	असदत
आम्	अभाव	अभाम	उ	असदम्	असदाव	असदाम

सद् (ल्) (१)

असीत्	अभासिष्टाम्	अभासिषुः
असीः	अभासिष्टम्	अभासिष्ट
असिषम्	अभासिष्व	अभासिष्म

(२ अ ५)

सूचना—सद आदि में सद् को सीद् होगा।

सद्

अस्ति	सीदतः	सीदन्ति	प्र० पु०	सीदति	सीदतः	सीदन्ति
असि	सीदथः	सीदथ	म पु०	सीदसि	सीदथः	सीदथ
अस्मि	सीदावः	सीदामः	उ पु	सीदामि	सीदावः	सीदामः

लोट्

अस्तु	सीदताम्	सीदन्तु	प्र पु	सीदतु	सीदताम्	सीदन्तु
अ	सीदतम्	सीदत	म पु	सीद	सीदतम्	सीदत
असानि	सीदाव	सीदाम	उ पु	सीदानि	सीदाव	सीदाम

लङ्

अविद्यत्	असीदताम्	असीदन्	प्र पु	असीदत्	असीदताम्	असीदन्
अविद्यः	असीदतम्	असीदत	म पु	असीदः	असीदतम्	असीदत
अविद्यम्	असीदाव	असीदाम	उ पु	असीदम्	असीदाव	असीदाम

विधिलिङ

ओत्	सीदेताम्	सीदेयुः	प्र पु	सीदेत्	सीदेताम्	सीदेयुः
ओः	सीदेतम्	सीदेत	म पु	सीदेः	सीदेतम्	सीदेत
एयम्	सीदेव	सीदेम	उ पु	सीदेयम्	सीदेव	सीदेम

—

स्यति	अस्यतः	अस्यन्ति	सद्	अस्यति	अस्यतः	अस्यन्ति
ता	सत्तारौ	सत्तारः	सद	सत्ता	सत्तारौ	सत्तारः
यात्	सद्यास्ताम्	सद्यासुः	आ विद्	सद्यात्	सद्यास्ताम्	सद्यासुः
यास्यत्	असत्स्यताम्	असत्स्यन्	सद्	असत्स्यत्	असत्स्यताम्	असत्स्यन्

विद्

वौ	ऊचतुः	ऊचुः	प्र पु	सस्राद	सेदतु	सेदुः
वेष, वक्षाथ	ऊचुः	ऊच	म पु	सेदिथ, सस्रत्थ	सेदथुः	सेद
वै	ऊचिव	ऊचिम	उ पु०	सस्राद सस्रद	सेदिव	सेदिम

सद् (१)

आत्	असदताम्	असदन्	प्र	असदत्	असदताम्	असदन्
थाः	असदतम्	असदत	म	असदः	असदतम्	असदत
आम्	असदाव	असदाम	उ	असदम्	असदाव	असदाम

(१२) पच् (पकाना) (भ्वा० उभ०)

(१० अ० ११)

लट्

पचति	पचतः	पचन्ति	प्र	पु
पचसि	पचथः	पचथ	म	पु
पचामि	पचावः	पचामः	उ	पु

लोट्

पचतु	पचताम्	पचन्तु	प्र	पु०
पच	पचतम्	पचत	म	पु
पचानि	पचाव	पचाम	उ	पु

लङ्

अपचत्	अपचताम्	अपचन्	प्र	पु
अपचः	अपचतम्	अपचत	म	पु
अपचम्	अपचाव	अपचाम	उ	पु

विधिलिङ्

पचेत्	पचेताम्	पचेयुः	प्र	पु०
पचेः	पचेतम्	पचेत	म	पु
पचेयम्	पचेव	पचेम	उ	पु

—

पक्ष्यति	पक्ष्यतः	पक्ष्यन्ति	लृट्	
पक्ता	पक्तारौ	पक्तारः	लुट्	
पक्ष्यात्	पक्ष्यास्ताम्	पक्ष्यासुः	आ० लिङ्	
अपक्ष्यत्	अपक्ष्यताम्	अपक्ष्यन्	लृङ्	

लिट्

पपाच	पेचतुः	पेचुः	प्र	पु
पेचिथ, पपक्थ	पेचथुः	पेच	म	पु
पपाच, पपच	पेचिव	पेचिम	उ	पु

लुङ् (४)

अपाक्षीत्	अपाक्षाम्	अपाक्षुः	प्र	पु
अपाक्षीः	अपाक्षम्	अपाक्ष	म	पु
अपाक्षम्	अपाक्ष्व	अपाक्ष्म	उ	पु

(१३) नम् (नमस्कार करना)

(१० अ० ११)

लट्

नमति	नमतः	नमन्ति	प्र	पु
नमसि	नमथः	नमथ	म	पु
नमामि	नमावः	नमामः	उ	पु

लोट्

नमतु	नमताम्	नमन्तु	प्र	पु०
नम	नमतम्	नमत	म	पु
नमानि	नमाव	नमाम	उ	पु

लङ्

अनमत्	अनमताम्	अनमन्	प्र	पु
अनमः	अनमतम्	अनमत	म	पु
अनमम्	अनमाव	अनमाम	उ	पु

विधिलिङ्

नमेत्	नमेताम्	नमेयुः	प्र	पु०
नमेः	नमेतम्	नमेत	म	पु
नमेयम्	नमेव	नमेम	उ	पु

—

नंस्यति	नंस्यतः	नंस्यन्ति	लृट्	
नन्ता	नन्तारौ	नन्तारः	लुट्	
नम्यात्	नम्यास्ताम्	नम्यासुः	आ० लिङ्	
अनंस्यत्	अनंस्यताम्	अनंस्यन्	लृङ्	

लिट्

ननाम	नेमतुः	नेमुः	प्र	पु
नेमिथ, ननन्थ	नेमथुः	नेम	म	पु
ननाम, ननम	नेमिव	नेमिम	उ	पु

लुङ् (६)

अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनंसिषुः	प्र	पु
अनंसीः	अनंसिष्टम्	अनंसिष्ट	म	पु
अनंसिषम्	अनंसिष्व	अनंसिष्म	उ	पु

(१४) स्तृ (स्मरण करना) (दे अ १२) (१५) जि (जीतना) (दे अ १२)

	लट्				लट्	
स्मरति	स्मरतः	स्मरन्ति	प्र० पु०	जयति	जयतः	जयन्ति
स्मरसि	स्मरथः	स्मरथ	म पु०	जयसि	जयथः	जयथ
स्मरामि	स्मरावः	स्मरामः	उ पु	जयामि	जयावः	जयामः
	लोट्				लोट्	
स्मरतु	स्मरताम्	स्मरन्तु	प्र० पु	जयतु	जयताम्	जयन्तु
स्मर	स्मरतम्	स्मरत	म पु	जय	जयतम्	जयत
स्मराणि	स्मराव	स्मराम	उ पु	जयानि	जयाव	जयाम
	लङ्				लङ्	
अस्मरत्	अस्मरताम्	अस्मरन्	प्र पु	अजयत्	अजयताम्	अजयन्
अस्मरः	अस्मरतम्	अस्मरत	म० पु	अजयः	अजयतम्	अजयत
अस्मरम्	अस्मराव	अस्मराम	उ पु	अजयम्	अजयाव	अजयाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
स्मरेत्	स्मरेताम्	स्मरेयुः	प्र पु	जयेत्	जयेताम्	जयेयु
स्मरेः	स्मरेतम्	स्मरेत	म० पु	जयेः	जयेतम्	जयेत
स्मरेयम्	स्मरेव	स्मरेम	उ पु	जयेयम्	जयेव	जयेम
	—				—	
स्मरिष्यति	स्मरिष्यतः	स्मरिष्यन्ति	लृट्	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति
स्मर्ता	स्मर्तारौ	स्मर्तारः	लृट्	जेता	जेतारौ	जेतारः
स्मर्यात्	स्मर्यास्ताम्	स्मर्यासुः	आ० लिङ्	जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासु
अस्मरिष्यत्	अस्मरिष्यताम्	अस्मरिष्यन्	लृङ्	अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्
	सिद्				सिद्	
सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरुः	प्र पु	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
सस्मर्थ	सस्मरथुः	सस्मर	म पु	जिगयिथ जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य
सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम	उ पु०	जिगाय जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम
	लुङ् (च)				लुङ् (च)	
अस्मार्षीत्	अस्मार्ष्टाम्	अस्मार्षुः	प्र पु	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः
अस्मार्षीः	अस्मार्ष्टम्	अस्मार्ष्ट	म पु	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट
अस्मार्षम्	अस्मार्ष्व	अस्मार्ष्म	उ पु	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म
	—				—	

(१६) शु (सुनना) (दे. अ. २०)

शृ (शु को शृ)

शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति	प्र पु०	कर्षति	कर्षतः	कर्षन्ति
शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ	म पु	कर्षसि	कर्षथः	कर्षथ
शृणोमि	शृणुवः,-व्वः	शृणुमः-म्मः	उ पु	कर्षामि	कर्षावः	कर्षामः

लोट्

शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु	प्र पु	कर्षतु	कर्षताम्	कर्षन्तु
शृणु	शृणुतम्	शृणुत	म पु०	कर्ष	कर्षतम्	कर्षत
शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम	उ०पु	कर्षाणि	कर्षाव	कर्षाम

लङ्

अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्	प्र पु	अकर्षत्	अकर्षताम्	अकर्षन्
अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत	म पु	अकर्षः	अकर्षतम्	अकर्षत
अशृणवम्	अशृणुव,-व्व	अशृणुम,-म्म	उ पु	अकर्षम्	अकर्षाव	अकर्षाम

विधिलिङ्

शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः	प्र पु	कर्षेत्	कर्षेताम्	कर्षेयुः
शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात	म पु	कर्षेः	कर्षेतम्	कर्षेत
शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम	उ०पु	कर्षेयम्	कर्षेव	कर्षेम

—

श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति	लृट्	क्रक्ष्यति / कर्क्ष्यति	क्रक्ष्यतः / कर्क्ष्यतः	क्रक्ष्यन्ति / कर्क्ष्यन्ति
श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः	लृट्	क्रष्टा	कर्ष्टा	(दोनों प्रकार से)
शृणुयात्	शृणुयास्ताम्	शृणुयासुः	आशिर्लिङ्	कृष्यात्	कृष्यास्ताम्	कृष्यासुः
अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः	लुङ्	अक्राक्षीत्,	अक्राष्टाम्	अक्राक्षुः (दोनोंप्रकारसे)

शिद्

शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः	प्र पु	चकर्ष	चकृषतुः	चकृषुः
शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव	म पु	चकर्षिथ	चकृषथुः	चकृष
शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम	उ पु	चकर्ष	चकृषिव	चकृषिम

लुङ् (४)

अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः	प्र पु	अकार्क्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्क्षुः
अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट	म पु	अकार्क्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म	उ पु	अकार्क्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म

सूचना—कर् आदि में शु को शृ होगा। सूचना—लुङ् में अक्राक्षीत् और अकार्क्षीत् भी रूप बनेंगे। कृ (७) के लुङ् के तुल्य रूप चलेंगे।

(१८) वस (पहना) (दे अ १४)

लट्

वसति	वसतः	वसन्ति	प्र	पु
वससि	वसथः	वसथ	म	पु
वसामि	वसावः	वसामः	उ	पु

लोट्

वसतु	वसताम्	वसन्तु	प्र	पु
वस	वसतम्	वसत	म	पु
वसानि	वसाव	वसाम	उ	पु

लङ्

अवसत्	अवसताम्	अवसन्	प्र	पु
अवसः	अवसतम्	अवसत	म	पु
अवसम्	अवसाव	अवसाम	उ	पु

विधिलिङ्

वसेत्	वसेताम्	वसेयुः	प्र	पु
वसेः	वसेतम्	वसेत	म	पु
वसेयम्	वसेव	वसेम	उ	पु

—

वत्स्यति	वत्स्यतः	वत्स्यन्ति	प्र	पु
वत्स्यसि	वत्स्थः	वत्स्यथ	म	पु
उष्यात्	उष्यास्तम्	उष्यासुः	आ	लिङ्
अवत्स्यत्	अवत्स्यताम्	अवत्स्यन्		लङ्

लिट्

उवास	ऊषतुः	ऊषुः	प्र	पु
उवसिथ, उवस्थ	ऊषथुः	ऊष	म	पु
उवास, उवास	ऊषिव	ऊषिम	उ	पु

लुङ् (४)

अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सुः	प्र	पु
अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त	म	पु
अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्स्म	उ	पु

—

(१९) त्यज (छोड़ना) (दे अ १५)

लट्

त्यजति	त्यजतः	त्यजन्ति	प्र	पु
त्यजसि	त्यजथः	त्यजथ	म	पु
त्यजामि	त्यजावः	त्यजामः	उ	पु

लोट्

त्यजतात्	त्यजताम्	त्यजन्तु	प्र	पु
त्यज	त्यजतम्	त्यजत	म	पु
त्यजानि	त्यजाव	त्यजाम	उ	पु

लङ

अत्यजत्	अत्यजताम्	अत्यजन्	प्र	पु
अत्यजः	अत्यजतम्	अत्यजत	म	पु
अत्यजम्	अत्यजाव	अत्यजाम	उ	पु

विधिलिङ

त्यजेत्	त्यजेताम्	त्यजेयुः	प्र	पु
त्यजेः	त्यजेतम्	त्यजेत	म	पु
त्यजेयम्	त्यजेव	त्यजेम	उ	पु

—

त्यक्षत्	त्यक्षतः	त्यक्षन्ति	प्र	पु
त्यक्षः	त्यक्षथः	त्यक्षथ	म	पु
त्यक्षम्	त्यक्ष्वः	त्यक्ष्मः	उ	पु

लिट्

त्यजाञ्चकार	त्यजतुः	त्यजुः	प्र	पु
त्यजाञ्चकर्थ, त्यजाञ्चक्रथ	त्यजथुः	त्यज	म	पु
त्यजाञ्चकार, त्यजाञ्चकर	त्यजिव	त्यजिम	उ	पु

लुङ (४)

अत्याक्षीत्	अत्याक्षाम्	अत्याक्षुः	प्र	पु
अत्याक्षीः	अत्याक्षम्	अत्याक्ष	म	पु
अत्याक्षम्	अत्याक्ष्व	अत्याक्ष्म	उ	पु

—

भ्वादिगण (आत्मनेपदी धातुएँ)

(२०) सेवृ (सेवा करना) (१ अ १)

लट्				लोट्		
सेवते	सेवेते	सेवन्ते	प्र० पु	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे	म० पु	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
सेवे	सेवावहे	सेवामहे	उ पु	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

—

लङ्				विधिलिङ्		
असेवत	असेवेताम्	असेवन्त	प्र पु	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्	म पु०	सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
असेवे	असेवावहि	असेवामहि	उ पु	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

—

लृट्				लुट्		
सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते	प्र पु	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे	म पु	सेवितासे	सेवितासाथे	सेविताध्वे
सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे	उ पु	सेवितास्मि	सेवितास्वहे	सेवितास्महे

—

आशीर्लिङ्				लृङ्		
सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्	प्र	असेविष्यत	असेविष्येताम्	असेविष्यन्त
सेविषीष्ठाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीध्वम्	म	असेविष्यथाः	असेविष्येथाम्	असेविष्यध्वम्
सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि	उ	असेविष्ये	असेविष्यावहि	असेविष्यामहि

—

लिट्				लुङ् (५)		
सिषेवे	सिषेवाते	सिषेविरे	प्र पु	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
सिषेविषे	सिषेवाथे	सिषेविध्वे	म पु	असेविष्ठाः	असेविषाथाम्	असेविढ्वम्
सिषेवे	सिषेविवहे	सिषेविमहे	उ पु	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

—

सूचना—लङ्, लुङ् और लृङ् में धातु से पहले 'अ' आता है। यदि धातु का प्रथम अक्षर स्वर होगा तो धातु से पहले 'अ' लगेगा और सन्धि-कार्य भी होगा।

(२१) रुभ् (पाना) (तुदादि के तुल्य)
(देखो अ० १)

लट्

लभते	लभेते	लभन्ते	प्र	पु
लभसे	लभेथे	लभध्वे	म०	पु०
लभे	लभावहे	लभामहे	उ०	पु०

लोट्

लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्	प्र	पु
लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्	म	पु
लभै	लभावै	लभामै	उ	पु

लङ्

अलभत	अलभेताम्	अलभन्त	प्र	पु०
अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्	म०	पु
अलभे	अलभावहि	अलभामहि	उ०	पु

विधिलिङ्

लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्	प्र०	पु०
लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्	म	पु
लभेय	लभेवहि	लभेमहि	उ	पु०

—

लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते	लृट्	
लप्सा	लप्सारौ	लप्सारः	लुट्	
लप्सीष्ट	लप्सीयास्ताम्	लप्सीरन्	आ शिष्	
अलप्स्यत	अलप्सयेताम्	अलप्सत	लुङ्	

लिट्

लेभे	लेभाते	लेभिरे	प्र	पु
लेभिषे	लेभाथे	लेभिध्वे	म	पु०
लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे	उ०	पु०

लुङ् (४)

अलब्ध	अलब्धाताम्	अलब्धत	प्र०
अलब्धाः	अलब्धाथाम्	अलब्ढ्वम्	म
अलब्धि	अलब्ध्वहि	अलब्ध्महि	उ०

—

(२२) वृष् (पड़ना) (तुदादि के तुल्य)
(देखो अ० ७)

लट्

वर्षति	वर्षेते	वर्षन्ति	प्र	पु
वर्षसि	वर्षथे	वर्षथ	म०	पु०
वर्षे	वर्षावहे	वर्षामहे	उ०	पु०

लोट्

वर्षतात्	वर्षेताम्	वर्षन्तु	प्र	पु
वर्षस्व	वर्षेथाम्	वर्षध्वम्	म	पु
वर्षै	वर्षावहै	वर्षामहै	उ	पु

लङ्

अवर्षत्	अवर्षेताम्	अवर्षन्त	प्र	पु०
अवर्षथाः	अवर्षेथाम्	अवर्षध्वम्	म०	पु
अवर्षे	अवर्षावहि	अवर्षामहि	उ०	पु

विधिलिङ्

वर्षेत	वर्षेयाताम्	वर्षेरन्	प्र०	पु०
वर्षेथाः	वर्षेयाथाम्	वर्षेध्वम्	म	पु
वर्षेय	वर्षेवहि	वर्षेमहि	उ	पु०

—

वर्षिष्यते,	वर्षिता	(दोनों प्रकार से)	लृट्	
वर्षिता	वर्षितारौ	वर्षितारः	लुट्	
वर्षिषीष्ट	वर्षिषीयास्ताम्	वर्षिषीरन्	आ शिष्	
अवर्षिष्यत	अवर्षिष्येताम्	अवर्षिष्यन्	लृङ्	(दोनों प्रकार से)

लिट्

वर्षाम्बभूव	वर्षाम्बभूवतुः	वर्षाम्बभूवुः	प्र	पु
वर्षाम्बभूविथ	वर्षाम्बभूवथुः	वर्षाम्बभूव	म	पु०
वर्षाम्बभूव	वर्षाम्बभूविव	वर्षाम्बभूविम	उ०	पु०

लुङ् (क) (१)

अवर्षिष्ट	अवर्षिष्टाताम्	अवर्षिष्त	प्र०
अवर्षिष्ठाः	अवर्षिष्याथाम्	अवर्षिढ्वम्	म
अवर्षिषि	अवर्षिष्वहि	अवर्षिष्महि	उ०

लुङ् (ख) (२)

अवर्षीत्	अवर्षीताम्	अवर्षीत्	प्र०
अवर्षीः	अवर्षीतम्	अवर्षीत	म
अवर्षीम्	अवर्षीव	अवर्षीम	उ०

(२३) मुद् (प्रसन्न होना) (सेट् के तुल्य) (देखो अ १)

	लट्			
मोदते	मोदेते	मोदन्ते	प्र	पु
मोदसे	मोदेथे	मोदध्वे	म	पु
मोदे	मोदावहे	मोदामहे	उ	पु
	लोट्			
मोदताम्	मोदेताम्	मोदन्ताम्	प्र	पु
मोदस्व	मोदेथाम्	मोदध्वम्	म	पु
मोदै	मोदावहै	मोदामहै	उ	पु
	लङ्			
अमोदत	अमोदेताम्	अमोदन्त	प्र	पु
अमोदथाः	अमोदेथाम्	अमोदध्वम्	म	पु
अमोदे	अमोदावहि	अमोदामहि	उ	पु
	विधिलिङ्			
मोदेत	मोदेयाताम्	मोदेरन्	प्र	
मोदेथाः	मोदेयाथाम्	मोदेध्वम्	म	
मोदेय	मोदेवहि	मोदेमहि	उ	
	—			
मोदिष्यते	मोदिष्येते	मोदिष्यन्ते	लृट्	
मोदिता	मोदितारौ	मोदितारः	लुट्	
मोदिषीष्ट	मोदिषीयास्ताम्	मोदिषीरन्	आ लिङ्	
अमोदिष्यत	अमोदिष्येताम्	अमोदिष्यन्त	लृङ्	
	लिट्			
मुमुदे	मुमुदाते	मुमुदिरे	प्र	
मुमुदिषे	मुमुदाथे	मुमुदिध्वे	म	
मुमुदे	मुमुदिवहे	मुमुदिमहे	उ	
	सुच् (५)			
अमोदिष्ट	अमोदिषाताम्	अमोदिषत	प्र	
अमोदिष्ठाः	अमोदिषाथाम्	अमोदिढ्वम्	म	
अमोदिषि	अमोदिष्वहि	अमोदिष्महि	उ	

(२४) सह् (सहना) (सेट् के तुल्य) (देखो अ १)

	लट्			
सहते	सहेते	सहन्ते	प्र	पु
सहसे	सहेथे	सहध्वे	म	पु
सहे	सहावहे	सहामहे	उ	पु
	लोट्			
सहताम्	सहेताम्	सहन्ताम्	प्र	पु
सहस्व	सहेथाम्	सहध्वम्	म	पु
सहै	सहावहै	सहामहै	उ	पु
	लङ्			
असहत	असहेताम्	असहन्त	प्र	पु
असहथाः	असहेथाम्	असहध्वम्	म	पु
असहे	असहावहि	असहामहि	उ	पु
	विधिलिङ्			
सहेत	सहेयाताम्	सहेरन्	प्र	
सहेथाः	सहेयाथाम्	सहेध्वम्	म	
सहेय	सहेवहि	सहेमहि	उ	
	—			
सहिष्यते	सहिष्येते	सहिष्यन्ते	लृट्	
सहिता / सोढा	सहितारौ / सोढारौ	सहितारः / सोढारः	लुट्	
सहिषीष्ट	सहिषीयास्ताम्	सहिषीरन्	आ लिङ्	
असहिष्यत	असहिष्येताम्	असहिष्यन्त	लृङ्	
	लिट्			
सेहे	सेहाते	सेहिरे	प्र	
सेहिषे	सेहाथे	सेहिध्वे	म	
सेहे	सेहिवहे	सेहिमहे	उ	
	सिच् (५)			
असहिष्ट	असहिषाताम्	असहिषत	प्र	
असहिष्ठाः	असहिषाथाम्	असहिढ्वम्	म	
असहिषि	असहिष्वहि	असहिष्महि	उ	

(२५) वृत् (होना) (भ्वा० के तुल्य) (रेफो अ० १)

			लट्			
वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते	प्र०	इवर्ते	ईवेते	इवन्ते
वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे	म०	इवर्से	ईवेथे	ईवध्वे
वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे	उ०	ईवे	ईवावहे	ईवामहे
			लोट्			
वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्	प्र	इवर्ताम्	ईवेताम्	इवन्ताम्
वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्	म०	ईवर्स्व	ईवेथाम्	ईवध्वम्
वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै	उ	ईवै	ईवावहै	ईवामहै
			लङ्			
अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त	प्र	ऐवर्त	ऐवेताम्	ऐवन्त
अवर्तथाः	अवर्तेथाम्	अवर्तध्वम्	म०	ऐवर्थाः	ऐवेथाम्	ऐवध्वम्
अवर्ते	अवर्तावहि	अवर्तामहि	उ	ऐवे	ऐवावहि	ऐवामहि
			विधिलिङ्			
वर्तेत	वर्तेयाताम्	वर्तेरन्	प्र	इवेत	ईवेयाताम्	ईवेरन्
वर्तेथाः	वर्तेयाथाम्	वर्तेध्वम्	म०	इवेथाः	ईवेयाथाम्	ईवेध्वम्
वर्तेय	वर्तेवहि	वर्तेमहि	उ०	इवेय	ईवेवहि	ईवेमहि
			—			
वर्तिष्यते, वर्त्स्यति (दोनों प्रकार से)			लृट्	ईविष्यते	ईविष्येते	ईविष्यन्ते
वर्तिता	वर्तितारौ	वर्तितारः	लृट्	ईविता	ईवितारौ	ईवितारः
वर्तिषीष्ट	वर्तिषीयास्ताम्०		आ लिङ्	ईविषीष्ट	ईविषीयास्ताम्	
अवर्तिष्यत, अवर्त्स्यत् (दोनों प्रकार से)			लृङ्	ऐविष्यत	ऐविष्येताम्	
			सिद्			
वृते	वृताते	वृतिरे	प्र	इवाचक्रे	ईवाचक्राते	ईवाचक्रिरे
वृतिषे	वृताथे	वृढ्वम्	म	इवाचकृषे	ईवाचक्रथे	ईवाचकृढ्वे
वृते	वृतिवहे	वृतिमहे	उ	ईवाचक्रे	ईवाचकृवहे	ईवाचकृमहे
			लुङ् (क) (५)		लुङ् (५)	
अवर्तिष्ट	अवर्तिषाताम्	अवर्तिषत	प्र	ऐविष्ट	ऐविषाताम्	ऐविषत
अवर्तिष्ठाः	अवर्तिषाथाम्	अवर्तिढ्वम्	म	ऐविष्ठाः	ऐविषाथाम्	ऐविढ्वम्
अवर्तिषि	अवर्तिष्वहि	अवर्तिष्महि	उ	ऐविषि	ऐविष्वहि	ऐविष्महि
			लुङ् (ख) (२)		—	
अवृतम्	अवृतताम्	अवृतन्	प्र			
अवृताः	अवृतम्	अवृत	म			
अवृतम्	अवृताव	अवृताम	उ			

स्वादिगण (उभयपदी धातुएँ)

(२७) णी (ले जाना) परस्मैपद आत्मनेपद (दे. अ १८)

लट्

नयति	नयतः	नयन्ति	प्र	नयते	नयेते	नयन्ते
नयसि	नयथः	नयथ	म	नयसे	नयेथे	नयध्वे
नयामि	नयावः	नयामः	उ	नये	नयावहे	नयामहे

लोट्

नयतु	नयताम्	नयन्तु	प्र	नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्
नय	नयतम्	नयत	म	नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्
नयानि	नयाव	नयाम	उ	नये	नयावहै	नयामहै

लङ्

अनयत्	अनयताम्	अनयन्	प्र	अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
अनयः	अनयतम्	अनयत	म	अनयथाः	अनयेथाम्	अनयध्वम्
अनयम्	अनयाव	अनयाम	उ	अनये	अनयावहि	अनयामहि

विधिलिङ्

नयेत्	नयेताम्	नयेयुः	प्र	नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्
नयेः	नयेतम्	नयेत	म	नयेथाः	नयेयाथाम्	नयेध्वम्
नयेयम्	नयेव	नयेम	उ	नयेय	नयेवहि	नयेमहि

—

नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति	लृट्	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
नेता	नेतारौ	नेतारः	लुट्	नेता	नेतारौ	नेतारः
नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासुः	आ शिष्	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्	लृङ्	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त

णिच्

निनाय	निन्यतुः	निन्युः	प्र	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
ननयिथ, निनेथ	निन्यथुः	निन्य	म	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे
निनाय, निनय	निन्यिव	निन्यिम	उ	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

लुङ् (४)

अनैषीत्	अनेष्टाम्	अनैषुः	प्र	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
अनैषीः	अनेष्टम्	अनेष्ट	म	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म	उ	अनैषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

(२८) ह (हरना) परस्मैपद आत्मनेपद (ह. अ. १२)

लट्

हरति	हरतः	हरन्ति	प्र	हरते	हरेते	हरन्ते
हरसि	हरथः	हरथ	म	हरसे	हरेथे	हरध्वे
हरामि	हरावः	हरामः	उ०	हरे	हरावहे	हरामहे

लोट्

हरतु	हरताम्	हरन्तु	प्र०	हरताम्	हरेताम्	हरन्ताम्
हर	हरतम्	हरत	म	हरस्व	हरेथाम्	हरध्वम्
हराणि	हराव	हराम	उ	हरै	हरावहै	हरामहै

लङ्

अहरत्	अहरताम्	अहरन्	प्र	अहरत	अहरेताम्	अहरन्त
अहरः	अहरतम्	अहरत	म	अहरथाः	अहरेथाम्	अहरध्वम्
अहरम्	अहराव	अहराम	उ०	अहरे	अहरावहि	अहरामहि

विधिलिङ्

हरेत्	हरेताम्	हरेयुः	प्र	हरेत	हरेयाताम्	हरेरन्
हरेः	हरेतम्	हरेत	म	हरेथाः	हरेयाथाम्	हरेध्वम्
हरेयम्	हरेव	हरेम	उ	हरेय	हरेवहि	हरेमहि

हरिष्यति	हरिष्यतः	हरिष्यन्ति	लृट्	हरिष्यते	हरिष्येते	हरिष्यन्ते
हर्तव्य	हर्तारौ	हर्तारः	लुट्	हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः
हियात्	हियास्ताम्	हियासुः	आ० लिङ्	हसीष्ट	हसीयास्ताम्	हसीरन्
अहरिष्यत्	अहरिष्यताम्	अहरिष्यन्	लृङ्	अहरिष्यत	अहरिष्येताम्	अहरिष्यन्त

लिट्

जहार	जह्रतुः	जह्रुः	प्र०	जह्रे	जह्राते	जह्रिरे
जहर्थ	जह्रथुः	जह्र	म०	जह्रिषे	जह्राथे	जह्रिध्वे
जहार,जहर	जह्रिव	जह्रिम	उ	जह्रे	जह्रिवहे	जह्रिमहे

लुङ् (४)

अहार्षीत्	अहार्ष्टाम्	अहार्षुः	प्र	अहृत	अहृषाताम्	अहृषत
अहार्षीः	अहार्ष्टम्	अहार्ष्ट	म	अहृथाः	अहृषाथाम्	अहृढ्वम्
अहार्षम्	अहार्ष्व	अहार्ष्म	उ०	अहृषि	अहृष्वहि	अहृष्महि

लुङ् (८)

अहरत्	अहरताम्	अहरन्	प्र	अहृत	अहरेताम्	अहरन्त
अहरः	अहरतम्	अहरत	म	अहरथाः	अहरेथाम्	अहरध्वम्
अहरम्	अहराव	अहराम	उ०	अहरे	अहरावहि	अहरामहि

(२९) याच् (माँगना) परस्मैपद आत्मनेपद (१ व १६)

	लट्				लट्	
याचति	याचतः	याचन्ति	प्र०	याचते	याचेते	याचन्ते
याचसि	याचथः	याचथ	म	याचसे	याचेथे	याचध्वे
याचामि	याचावः	याचामः	उ०	याचे	याचावहे	याचामहे

	लोट्				लोट्	
याचतु	याचताम्	याचन्तु	प्र०	याचताम्	याचेताम्	याचन्ताम्
याच	याचतम्	याचत	म०	याचस्व	याचेथाम्	याचध्वम्
याचानि	याचाव	याचाम	उ०	याचै	याचावहै	याचामहै

	लङ्				लङ्	
अयाचत्	अयाचताम्	अयाचन्	प्र	अयाचत	अयाचेताम्	अयाचन्त
अयाचः	अयाचतम्	अयाचत	म	अयाचथाः	अयाचेथाम्	अयाचध्वम्
अयाचम्	अयाचाव	अयाचाम	उ	अयाचे	अयाचावहि	अयाचामहि

	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
याचेत्	याचेताम्	याचेयुः	प्र०	याचेत	याचेयाताम्	याचेरन्
याचेः	याचेतम्	याचेत	म	याचेथाः	याचेयाथाम्	याचेध्वम्
याचेयम्	याचेव	याचेम	उ०	याचेय	याचेवहि	याचेमहि

					—	
याचिष्यति	याचिष्यतः	याचिष्यन्ति	लृट्	याचिष्यते	याचिष्येते	याचिष्यन्ते
याचिता	याचितारौ	याचितारः	लुट्	याचिता	याचितारौ	याचितारः
याच्यात्	याच्यास्ताम्	याच्यासुः	आ शिष्	याचिषीष्ट	याचिषीयास्ताम्	
अयाचिष्यत्	अयाचिष्यताम्		लृङ्	अयाचिष्यत	अयाचिष्येताम्	

	लिट्				लिट्	
ययाच	ययाचतुः	ययाचुः	प्र	ययाचे	ययाचाते	ययाचिरे
ययाचिथ	ययाचथुः	ययाच	म०	ययाचिषे	ययाचाथे	ययाचिध्वे
ययाच	ययाचिव	ययाचिम	उ०	ययाचे	ययाचिवहे	ययाचिमहे

	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अयाचीत्	अयाचिष्टाम्	अयाचिषुः	प्र	अयाचिष्ट	अयाचिषाताम्	अयाचिषत
अयाचीः	अयाचिष्टम्	अयाचिष्ट	म	अयाचिष्ठाः	अयाचिषाथाम्	अयाचिढ्वम्
अयाचिषम्	अयाचिष्व	अयाचिष्म	उ	अयाचिषि	अयाचिष्वहि	अयाचिष्महि

(३०) वह् (ढोना) परस्मैपद (म्वादि वह् धातु) आत्मनेपद (ई. स १०)

		लट्						लट्	
वहति	वहतः	वहन्ति	प्र	वहते	वहेते	वहन्ते
वहसि	वहथः	वहथ	म	वहते	वहेथे	वहध्वे
वहामि	वहावः	वहामः	उ	वहे	वहावहे	वहामहे
		लोट्						लोट्	
वहतु	वहताम्	वहन्तु	प्र	वहताम्	वहेताम्	वहन्ताम्
वह	वहतम्	वहत	म	वहस्व	वहेथाम्	वहध्वम्
वहानि	वहाव	वहाम	उ	वहै	वहावहै	वहामहै
		लङ्						लङ्	
अवहत्	अवहताम्	अवहन्	प्र	अवहत	अवहेताम्	अवहन्त
अवहः	अवहतम्	अवहत	म	अवहथाः	अवहेथाम्	अवहध्वम्
अवहम्	अवहाव	अवहाम	उ	अवहे	अवहावहि	अवहामहि
		विधिलिङ्						विधिलिङ्	
वहेत्	वहेताम्	वहेयुः	प्र	वहेत	वहेयाताम्	वहेरन्
वहेः	वहेतम्	वहेतः	म	वहेथाः	वहेयाथाम्	वहेध्वम्
वहेयम्	वहेव	वहेम	उ	वहेय	वहेवहि	वहेमहि
		—						—	
वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति	लृट्	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
वोढा	वोढारौ	वोढारः	लृट्	वोढा	वोढारौ	वोढारः
उद्यात्	उद्यास्ताम्	उद्यासुः	आ शिष्	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्	लृङ्	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
		शिष्						शिष्	
उह्यात्	उह्यास्ताम्	उह्यासुः	प्र	उह्यास्त	उह्यासाताम्	उह्यासत
उह्याः, उह्यात्	उह्यास्तम्	उह्यास्त	म	उह्यास्थाः	उह्यासाथाम्	उह्यास्ध्वम्
उह्यासम्	उह्यास्व	उह्यास्म	उ	उह्यासम्	उह्यासहि	उह्यास्महि
		लुङ् (४)						लुङ् (४)	
अवाक्षीत्	अवोढाम्	अवाक्षुः	प्र	अवोढ	अवक्षाताम्	अवक्षत
अवाक्षीः	अवोढम्	अवोढ	म	अवोढाः	अवक्षाथाम्	अवोढ्वम्
अवाक्षम्	अवाक्ष्व	अवाक्ष्म	उ	अवक्षि	अवक्षावहि	अवक्ष्महि

(२) अदादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु अद् (खाना) है, अतः गण का नाम अदादिगण पड़ा। (अदिप्रभृतिभ्यः शपः) अदादिगण की धातुओं में अद्, जेट्, जक्ष् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में कोई विकरण नहीं लगता है (शप् का लोप होता है)। धातु के अन्त में केवल ति तः आदि लगते हैं। उपर्युक्त प्रकारों में धातु को एकवचन में गुण होता है, अन्यत्र नहीं।

(२) इस गण में ७२ धातुएँ हैं।

(१) अद् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त रूप निम्नलिखित होंगे। लुङ्, लृङ्, आशीर्लिङ् और लङ् में पृ० १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही लगेंगे। लट् आदि में सेट् (इ-वाली) धातुओं में संक्षिप्त रूप से पहले इ भी लगता है, अनिट् (इ-नहीं वाली) धातुओं में केवल संक्षिप्त रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं रूप)					आत्मनेपद (सं रूप)	
	अद्				अद्	
सि	तः	अन्ति	प्र	ते	आते	अते
सि	थः	थ	म	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ	ए	वहे	महे
	जेट्				जेट	
त	ताम्	अन्तु	प्र	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म	स्व	आथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ	ऐ	आवहै	आमहै
	अद् (धातु से पूर्व अ या आ)				अद (धातु से पूर्व अ या आ)	
त्	ताम्	अन्	प्र	त	आताम्	अत
ः	तम्	त	म	थ	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	युः	प्र	इत	ईयताम्	ईरन्
याः	यातम्	यात	म	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ	ईय	ईवहि	ईमहि

(३०) वह् (ढोना) परस्मैपद आत्मनेपद (ट. अ. १०)

लट्

वहति	वहतः	वहन्ति	प्र	वहते	वहेते	वहन्ते
वहसि	वहथः	वहथ	म	वहसे	वहेथे	वहध्वे
वहामि	वहावः	वहामः	उ	वहे	वहावहे	वहामहे

लेट्

वह	वहतात्	वहन्तु	प्र	वहताम्	वहेताम्	वहन्ताम्
वह	वहतम्	वहत	म	वहस्व	वहेथाम्	वहध्वम्
वहानि	वहाव	वहाम	उ	वहै	वहावहै	वहामहै

लट्

अवहत्	अवहताम्	अवहन्	प्र	अवहत	अवहेताम्	अवहन्त
अवहः	अवहतम्	अवहत	म	अवहथाः	अवहेथाम्	अवहध्वम्
अवहम्	अवहाव	अवहाम	उ	अवहे	अवहावहि	अवहामहि

विधिलिङ्

वहेत्	वहेताम्	वहेयुः	प्र	वहेत	वहेयाताम्	वहेरन्
वहेः	वहेतम्	वहेत	म	वहेथाः	वहेयाथाम्	वहेध्वम्
वहेयम्	वहेव	वहेम	उ	वहेय	वहेवहि	वहेमहि

—

वहयति	वाहयतः	वाहयन्ति	लट्	वाहयते	वाहयेते	वाहयन्ते
वोढा	वोढारौ	वोढारः	लुट्	वोढा	वोढारौ	वोढारः
उह्यात्	उह्यास्ताम्	उह्यासुः	आ क्रिया-वशीष्ट	वक्षीष्टाम्	वक्षीरन्
अवाक्षीत्	अवक्षाताम्	अवक्षन्	लुङ्	अवक्षत	अवक्षेताम्	अवक्षन्त

लिट्

उवाह	ऊहतुः	ऊहुः	प्र	ऊहे	ऊहाते	ऊहिरे
उवहिथ/उवोढ	ऊहथुः	ऊढ	म	ऊढे	ऊहाथे	ऊढ्वे
उवाह उवह	ऊहिव	ऊहिम	उ	ऊहे	ऊहिवहे	ऊहिमहे

लुङ्(४)

अवाक्षीत्	अवोढाम्	अवाक्षुः	प्र	अवोढ	अवक्षाताम्	अवक्षत
अवाक्षीः	अवोढम्	अवोढ	म	अवोढाः	अवक्षाथाम्	अवोढ्वम्
अवाक्षम्	अवाक्ष्व	अवाक्ष्म	उ	अवक्षि	अवक्षावहि	अवक्षामहि

(२) अदादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु अद् (खाना) है, अतः गण का नाम अदादिगण पड़ा। (अदिप्रभृतिभ्यः शपः) अदादिगण की धातुओं में अद्, होट, हन्, और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में कोई विकरण नहीं लगता है (शप् का लोप होता है)। धातु के अन्त में केवल ति तः आदि लगते हैं। उपर्युक्त अवस्थाओं में धातु को एकवचन में गुण होता है, अन्यत्र नहीं।

(२) इस गण में ७२ धातुएँ हैं।

(१) अद् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त रूप निम्नलिखित होंगे। स्तुद्, तुद्, व्यधैङ्क् और तुह् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही होंगे। अद् आदि में ईद् (ई-वाली) धातुओं में संक्षिप्त रूप से पहले इ भी लगता है, अनिद् (इ-नहीं वाली) धातुओं में केवल संक्षिप्त रूप ही होंगे।

परस्मैपद (सं रूप)					आत्मनेपद (सं रूप)	
	अद्				अद्	
ति	तः	अन्ति	त	ते	आते	अते
सि	थः	थ	म	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ	ए	वहे	महे
	होट्				होट	
टु	ताम्	अन्तु	प्र	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म	स्व	आथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ	ऐ	आवहै	आमहै
	हन् (धातु से पूर्व अ या आ)				हन् (धातु से पूर्व अ या आ)	
द्	ताम्	अन्	प्र	त	आताम्	अत
ः	तम्	त	म	था'	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	युः	प्र	इत	ईयाताम्	ईरन्
याः	यातम्	यात	म	ईथा'	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ	ईय	ईवहि	ईमहि

अदादिगण (परस्मैपदी धातुएँ)

(३१) अद् (खाना) (ट अ० २१)

	अद्				औद्	
अदि	अत्तः	अदन्ति	प्र०	अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु
अत्सि	अत्थः	अत्थ	म०	अद्धि	अत्तम्	अत्त
अदमि	अद्वः	अद्मः	उ०	अदानि	अदाव	अदाम
	—				—	
	अद्				विधिलिङ्	
आदत्	आत्ताम्	आदन्	प्र	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
आदः	आत्तम्	आत्त	म०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
आदम्	आद्व	आद्म	उ०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम
	—				—	
	सद्				लुङ्	
अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति	प्र	अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ	म०	अत्तासि	अत्तासथः	अत्तास्थ
अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः	उ०	अत्तास्मि	अत्तास्वः	अत्तास्मः
	—				—	
	आशीर्लिङ्				लृङ्	
अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासुः	प्र	आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
अद्याः	अद्यास्तम्	अद्यास्त	म	आत्स्यः	आत्स्यतम्	आत्स्यत
अद्यासम्	अद्यास्व	अद्यास्म	उ	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम
	—				—	
	घिस् (क)				लुङ् (१) (अद् को घस्)	
आद	आदतुः	आदुः	प्र	अघसत्	अघसताम्	अघसन्
आदिथ	आदथुः	आद	म०	अघसः	अघसतम्	अघसत
आद	आदिव	आदिम	उ	अघसम्	अघसाव	अघसाम
	घिस् (ख) (अद् को घस्)				—	
अघास	अत्तुः	अत्तुः	प्र			
अत्थ	अत्थुः	अत्त	म			
अघास, अघस	आदिव	आदिम	उ०			

(३२) अस् (होना) (प. अ २४) (३३) इ (जाना) (प. अ १०)

सूचना—भिद् छिद् आदि में अस् को स् होगा। सूचना—इ को छद् में गा होगा।

	अस्				अस्	
अस्ति	स्तः	सन्ति	प्र०	एति	इतः	यन्ति
असि	स्थः	स्थ	म	एषि	इथः	इथ
अस्मि	स्वः	स्मः	उ	एमि	इवः	इमः
	अस्				अस्	
अस्तु	स्ताम्	सन्तु	प्र	एतु	इताम्	यन्तु
एधि	स्तम्	स्त	म	इहि	इतम्	इत
असानि	असाव	असाम	उ	अयानि	अयाव	अयाम
	अद्				अद्	
अभवीत्	आस्ताम्	आसन्	प्र०	येत्	येताम्	यायन्
आधीः	आस्तम्	आस्त	म	येः	येतम्	येत
आसम्	आस्व	आस्म	उ	अयम्	येव	येम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
स्यात्	स्याताम्	स्युः	प्र	इयात्	इयाताम्	इयुः
स्याः	स्यातम्	स्यात	म०	इयाः	इयातम्	इयात
स्याम्	स्याव	स्याम	उ	इयाम्	इयाव	इयाम
—					—	
भविष्यति	भविष्यतः (भू के तुल्य)			स्तद् एष्यति	एष्यतः	एष्यन्ति
भविता	भवितारौ (,,)			स्तद् एता	एतारौ	एतारः
भूयात्	भूयास्ताम् (,,)			आ शिष् ईयात्	ईयास्ताम्	ईयासुः
अभविष्यत्	अभविष्यताम् (,,)			स्तद् ऐष्यत्	ऐष्यताम्	ऐष्यन्
	भिद् (भू के तुल्य)				भिद्	
बभूव	बभूवतुः	बभूवुः	प्र	इयाय	ईयतुः	ईयुः
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव	म	इयथिथ, इयेथ	ईयथुः	इय
बभूव	बभूविव	बभूविम	उ	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिम
	छद् (१) (भू के तुल्य)				छद् (१) (इ को गा)	
अभूत्	अभूताम्	अभूवन्	प्र	अगात्	अगाताम्	अगुः
अभूः	अभूतम्	अभूत	म०	अगाः	अगातम्	अगात
अभूवम्	अभूव	अभूम	उ०	अगाम्	अगाव	अगाम

(३४) रुद् (रोना) (२० अ २८)

		लट्			
रोदिति	रुदितः	रुदन्ति	प्र	रुदिते	रुदाते
रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ	म	रुदिषे	रुदाथे
रोदिमि	रुदिवः	रुदिम	उ	रुदे	रुदावहे
		लोट्			
रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु	प्र०	रुदिताम्	रुदाताम्
रुदिहि	रुदितम्	रुदित	म	रुदिष्व	रुदाथाम्
रोदानि	रोदाव	रोदाम	उ	रुदै	रुदावहै
		लङ्			
अरोदीत्, अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्	प्र	अरुदित	अरुदाताम्
अरोदीः, अरोदः	अरुदितम्	अरुदित	म	अरुदिथाः	अरुदाथाम्
अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम	उ	अरुदे	अरुदावहि
		विधिलिङ्			
रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः	प्र	रुदीत	रुदीयाताम्
रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात	म	रुदीथाः	रुदीयाथाम्
रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम	उ	रुदीय	रुदीवहि
	—			—	
रोदिष्यति	रोदिष्यतः	रोदिष्यन्ति	लृट्	रोदिष्यते	रोदिष्येते
रोदिता	रोदितारौ	रोदितारः	लृट्	रोदिता	रोदितारौ
रुद्यात्	रुद्यास्ताम्	रुद्यासुः	आ लिङ्	रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्
अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्		लुङ्	अरुदिष्यत	अरुदिष्येताम्
	लिङ्			लिङ्	
रुद्यात्	रुद्यास्ताम्	रुद्यासुः	प्र	रुदिषीष्ट	रुदिषीयास्ताम्
रुद्याः	रुद्यास्तम्	रुद्यास्त	म	रुदिषीष्ठाः	रुदिषीयास्थाम्
रुद्यासम्	रुद्यास्व	रुद्यास्म	उ०	रुदिषीय	रुदिषीवहि

(३५) स्वप् (सोना) (२ अ २८)

		लट्			
स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति	प्र	स्वपिते	स्वपाते
स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ	म	स्वपिषे	स्वपाथे
स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः	उ	स्वपे	स्वपावहे
		लोट्			
स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु	प्र०	स्वपिताम्	स्वपाताम्
स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित	म	स्वपिष्व	स्वपाथाम्
स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम	उ	स्वपै	स्वपावहै
		लङ्			
अस्वपीत्, अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्	प्र	अस्वपित	अस्वपाताम्
अस्वपीः, अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित	म	अस्वपिथाः	अस्वपाथाम्
अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम	उ	अस्वपे	अस्वपावहि
		विधिलिङ्			
स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः	प्र	स्वपीत	स्वपीयाताम्
स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात	म	स्वपीथाः	स्वपीयाथाम्
स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम	उ	स्वपीय	स्वपीवहि
	—			—	
स्वप्स्यति	स्वप्स्यतः	स्वप्स्यन्ति	लृट्	स्वप्स्यते	स्वप्स्येते
स्वप्ता	स्वप्तारौ	स्वप्तारः	लृट्	स्वप्ता	स्वप्तारौ
सुप्यात्	सुप्यास्ताम्	सुप्यासुः	आ लिङ्	सुप्सीष्ट	सुप्सीयास्ताम्
अस्वप्स्यत्	अस्वप्स्यताम्		लुङ्	अस्वप्स्यत	अस्वप्स्येताम्
	लिङ्			लिङ्	
सुप्यात्	सुप्यास्ताम्	सुप्यासुः	प्र	सुषुपीष्ट	सुषुपीयास्ताम्
सुप्याः	सुप्यास्तम्	सुप्यास्त	म	सुषुपीष्ठाः	सुषुपीयास्थाम्
सुप्यासम्	सुप्यास्व	सुप्यास्म	उ०	सुषुपीय	सुषुपीवहि

लुङ् (क) (२)

अरुदत्	अरुदताम्	अरुदन्	प्र	अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सुः
अरुदः	अरुदतम्	अरुदत	म	अस्वाप्सीः	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
अरुदम्	अरुदाव	अरुदाम	उ	अस्वाप्सम्	अस्वाप्स्व	अस्वाप्स्म
	लुङ् (ख) (५)			—		
अरोदीत्	अरोदिष्टाम्	अरोदिषुः	प्र			
अरोदीः	अरोदिष्टम्	अरोदिष्ट	म			
अरोदिषम्	अरोदिष्व	अरोदिष्म	उ			

(३६) दुह् (दुहना) (दि अ० २७) (३७) लिह (चाटना) (दि अ २७)

सूचना—केवल परस्मैपद के रूप दिए हैं। सूचना—केवल परस्मै के रूप दिए हैं।

	लट्				लट्	
दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति	प्र	लेढि	लीढः	लिहन्ति
धोक्षि	दुग्धः	दुग्ध	म	लेक्षि	लीढः	लीढ
दोहि	दुहः	दुह्मः	उ	लेहि	लिहः	लिह्मः
	लोट्				लोट्	
दोग्धु	दुग्धाम्	दुहन्तु	प्र	लेढु	लीढाम्	लिहन्तु
दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध	म	लीढि	लीढम्	लीढ
दोहानि	दोहाव	दोहाम	उ	लेहानि	लेहाव	लेहाम
	लङ्				लङ्	
अधोक्, -ग्	अदुग्धाम्	अदुहन्	प्र	अलेट्, -ड्	अलीढाम्	अलिहन्
अधोक्, -ग्	अदुग्धम्	अदुग्ध	म	"	अलीढम्	अलीढ
अधोहम्	अदुह	अदुह्म	उ	अलेहम्	अलिह	अलिह्म
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
दुह्यात्	दुह्यास्ताम्	दुह्युः	प्र	लिह्यात्	लिह्यास्ताम्	लिह्युः
दुह्याः	दुह्यास्तम्	दुह्यात	म	लिह्याः	लिह्यास्तम्	लिह्यात
दुह्याम्	दुह्याव	दुह्याम	उ	लिह्याम्	लिह्याव	लिह्याम
	—				—	
धोक्ष्यति	धोक्ष्यतः	धोक्ष्यन्ति	लृट्	लेक्ष्यति	लेक्ष्यतः	लेक्ष्यन्ति
दोग्धा	दोग्धारौ	दोग्धारः	लुट्	लेढा	लेढारौ	लेढारः
दुह्यात्	दुह्यास्ताम्	दुह्युः	आ लिङ्	लिह्यात्	लिह्यास्ताम्	लिह्युः
अधोक्ष्यत्	अधोक्ष्यताम्	अधोक्ष्यन्	लृङ्	अलेक्ष्यत्	अलेक्ष्यताम्	
	लिट्				लिट्	
दुदोह	दुदुहतुः	दुदुहुः	प्र०	लिलेह	लिलिहतुः	लिलिहुः
दुदोहिथ	दुदुहथुः	दुदुह	म	लिलेहिथ	लिलिहथुः	लिलिह
दुदोह	दुदुहिव	दुदुहिम	उ	लिलेह	लिलिहिव	लिलिहिम
	लुङ् (च्लि)				लुङ् (च्लि)	
अदुग्ध	अदुग्धाम्	अदुहन्	प्र	अलिक्षत्	अलिक्षताम्	अलिक्षन्
अदुग्धाः	अदुग्धम्	अदुग्ध	म	अलिक्षः	अलिक्षतम्	अलिक्षत
अदुहम्	अदुह्व	अदुह्म	उ	अलिक्षम्	अलिक्षाव	अलिक्षाम
	—				—	

(३८) हन् (मारना) (ह म २१)

		लट्			
हन्ति	हतः	घ्नन्ति	प्र	स्तौति	स्तुतः
हन्सि	हथः	हथ	म	स्तौषि स्तौषीषि	स्तुथः
हनमि	हन्वः	हन्मः	उ	स्तौमि स्तौमीम	स्तुवः
		लोट्			
हन्तु	हताम्	घ्नन्तु	प्र	स्तौतु,स्तौतात्	स्तुताम्
जहि	हतम्	हत	म	स्तुहि	स्तुतम्
हनानि	हनाव	हनाम	उ	स्तवानि	स्तवाव
		लङ्			
अहन्	अहताम्	अघ्नन्	प्र	अस्तौत्	अस्तुताम्
अहन्	अहतम्	अहत	म	अस्तौः, अस्तवीः	अस्तुतम्
अहनम्	अहन्व	अहन्म	उ	अस्तवम्	अस्तुव
		विधिलिङ्			
हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः	प्र	स्तुयात्	स्तुयाताम्
हन्याः	हन्यातम्	हन्यात	म	स्तुयाः	स्तुयातम्
हन्याम्	हन्याव	हन्याम	उ	स्तुयाम्	स्तुयाव
		—			—
हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति	लृट्	स्तोष्यति	स्तोष्यतः
हन्ता	हन्तारौ	हन्तारः	लृट्	स्तोता	स्तोतारौ
घ्नन्तात्	घ्नन्तास्ताम्	घ्नन्तु	आ शिष्	स्तूयात्	स्तूयास्ताम्
अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्	अहनिष्यन्	लुङ्	अस्तोष्यत्	अस्तोष्यताम्
		शिष्			शिष्
वध्यात्,	वध्यास्ताम्,	वध्यासुः	प्र	ष्टुयात्	ष्टुयास्ताम्
वधिषीष्ट,	वधिषीयास्ताम्,	वधिषीरन्	म	ष्टुषीष्ठाः	ष्टुषीयास्ताम्
वधिषीय	वधिषीवहि	वधिषीमहि	उ	ष्टुषीय	ष्टुषीवहि
		लुङ् (५) (हन् को वध)			लुङ् (५)
अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषुः	प्र	अस्तावीत्	अस्तविष्टाम्
अवधीः	अवधिष्टम्	अवधिष्ट	म	अस्तावीः	अस्तविष्टम्
अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म	उ	अस्तविषम्	अस्तविष्व
	—				—

(४०) या (जाना) (द्वि अ २६)

	लट्				लट्	
याति	यातः	यान्ति	प्र	याति	यातः	यान्ति
यासि	यायः	याथ	म	यासि	यायः	याथ
यामि	यावः	यामः	उ	यामि	यावः	यामः
	लोट्				लोट्	
यातु	याताम्	यान्तु	प्र	यातु	याताम्	यान्तु
याहि	यातम्	याय	म	याहि	यातम्	याय
यानि	याव	याम	उ	यानि	याव	याम
	लङ्				लङ्	
अयात्	अयाताम्	अयुः, अयान्	प्र	अयात्	अयाताम्	अयुः, अयान्
अयाः	अयातम्	अयात	म	अयाः	अयातम्	अयात
अयाम्	अयाव	अयाम	उ	अयाम्	अयाव	अयाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यायात्	यायाताम्	यायुः	प्र	यायात्	यायाताम्	यायुः
यायाः	यायातम्	यायात	म	यायाः	यायातम्	यायात
यायाम्	यायाव	यायाम	उ	यायाम्	यायाव	यायाम
	—				—	
यास्यति	यास्यतः	यास्यन्ति	लृट्	यास्यति	यास्यतः	यास्यन्ति
यातासि	यातास्थः	यातास्थ	लृट्	यातासि	यातास्थः	यातास्थ
यायात्	यायास्टम्	यायास्टुः	आ०लिङ्	यायात्	यायास्टम्	यायास्टुः
अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्	लृङ्	अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्
	लिट्				लिट्	
ययौ	ययतुः	ययुः	प्र	ययौ	ययतुः	ययुः
ययिथ, ययाथ	ययथुः	यय	म	ययिथ, ययाथ	ययथुः	यय
ययौ	यय्व	यय्म	उ	ययौ	यय्व	यय्म
	लुङ्(१)				लुङ्(१)	
अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषुः	प्र	अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषुः
अयासीः	अयासिष्टम्	अयासिष्ट	म	अयासीः	अयासिष्टम्	अयासिष्ट
अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म	उ	अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म
	—				—	

(४१) पा (रक्षा करना) (द्वि अ २६)

	लट्				लट्	
पाति	पातः	पान्ति	प्र	पाति	पातः	पान्ति
पासि	पाथः	पाथ	म	पासि	पाथः	पाथ
पामि	पावः	पामः	उ	पामि	पावः	पामः
	लोट्				लोट्	
पातु	पाताम्	पान्तु	प्र	पातु	पाताम्	पान्तु
पाहि	पातम्	पात	म	पाहि	पातम्	पात
पानि	पाव	पाम	उ	पानि	पाव	पाम
	लङ्				लङ्	
अपात्	अपाताम्	अपुः, अपान्	प्र	अपात्	अपाताम्	अपुः, अपान्
अपाः	अपातम्	अपात	म	अपाः	अपातम्	अपात
अपाम्	अपाव	अपाम	उ	अपाम्	अपाव	अपाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
पायात्	पायाताम्	पायुः	प्र	पायात्	पायाताम्	पायुः
पायाः	पायातम्	पायात	म	पायाः	पायातम्	पायात
पायाम्	पायाव	पायाम	उ	पायाम्	पायाव	पायाम
	—				—	
पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति	लृट्	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
पाता	पातारौ	पातारः	लृट्	पाता	पातारौ	पातारः
पायात्	पायास्टम्	पायास्टुः	आ०लिङ्	पायात्	पायास्टम्	पायास्टुः
अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्	लृङ्	अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्
	लिट्				लिट्	
पपौ	पपतुः	पपुः	प्र	पपौ	पपतुः	पपुः
पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप	म	पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप
पपौ	पप्व	पप्म	उ	पपौ	पप्व	पप्म
	लुङ्(१)				लुङ्(१)	
अपासीत्	अपासिष्टाम्	अपासिषुः	प्र	अपासीत्	अपासिष्टाम्	अपासिषुः
अपासीः	अपासिष्टम्	अपासिष्ट	म	अपासीः	अपासिष्टम्	अपासिष्ट
अपासिषम्	अपासिष्व	अपासिष्म	उ	अपासिषम्	अपासिष्व	अपासिष्म
	—				—	

(४२) शास् (शिक्षा देना) (दि. अ २१) (४३) विद् (जानना) (दि अ १)

	लट्				लट्	
शास्ति	शिष्टः	शासति	प्र०	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति
शास्सि	शिष्टः	शिष्ट	म	वेत्सि	वित्थः	वित्थ
शास्मि	शिष्वः	शिष्मः	उ०	वेद्मि	विद्वः	विद्मः
	लोट्				लोट्	
शास्तु	शिष्टाम्	शास्तु	प्र०	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
शाधि	शिष्टम्	शिष्ट	म	विद्धि	वित्तम्	वित्त
शासानि	शासाव	शासाम	उ०	वेदानि	वेदाव	वेदाम
	लङ्				लङ्	
अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः	प्र०	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः
अशाः,अशात्	अशिष्टम्	अशिष्ट	म	अवेः,अवेत्	अवित्तम्	अवित्त
अशासम्	अशिष्व	अशिष्म	उ	अवेदम्	अविद्व	अविद्म
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्युः	प्र०	विद्यात्	विद्यास्ताम्	विद्युः
शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात	म	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम	उ	विद्याम्	विद्याव	विद्याम
—					—	
शासिष्यति	शासिष्यतः	शासिष्यन्ति	लृट्	वेदिष्यति	वेदिष्यतः	वेदिष्यन्ति
शासिता	शासितारौ	शासितारः	लुट्	वेदिता	वेदितारौ	वेदितारः
शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्यासुः	आ लिङ्	विद्यात्	विद्यास्ताम्	विद्यासुः
अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्		लृङ्	अवेदिष्यत्	अवेदिष्यताम्	
	लिट्				लिट्	
शशास	शशासतुः	शशासुः	प	विवेद	विविदतुः	विविदुः
शशासिथ	शशासथुः	शशास	म	विवेदिथ	विविदथुः	विविद
शशास	शशासिव	शशासिम	उ	विवेद	विविदिव	विविदिम
	लुङ् (२)				लुङ् (५)	
अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्	प्र०	अवेदीत्	अवेदिष्टाम्	अवेदिषुः
अशिषः	अशिषतम्	अशिषत	म	अवेदीः	अवेदिष्टम्	अवेदिष्ट
अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम	उ	अवेदिषम्	अवेदिष्व	अवेदिष्म

सूचना—(१) लट् में वेद विदतुः विदुः, वेत्थ विदथुः विद वेद विद्व विद्म भी रूप होते हैं।

(२) विद् और लोट् में विद्+इ अर्थात् विदांचकार और विदांचकोतु आदि भी होते हैं।

अदादिगण—आत्मनेपदी धातुएँ

(४४) आस् (बैठना) (दे अ ११)

लट्				लोट्		
आस्ते	आसाते	आसते	प्र	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
आस्से	आसाथे	आध्वे	म	आस्स्व	आसावहै	आसामहै
आसे	आस्वहे	आस्महे	उ	आसै	आसावहै	आसामहै

लङ्				विधिलिङ्		
आस्त	आसाताम्	आसत	प्र	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
आस्थाः	आसाथाम्	आध्वम्	म	आसीथाः	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
आसि	आस्वहि	आस्महि	उ	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

लृट्				लुट्		
आसिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते	प्र	आसिता	आसितारौ	आसितारः
आसिष्यसे	आसिष्येथे	आसिष्यध्वे	म०	आसितासे	आसितासाथे	आसिताध्वे
आसिष्ये	आसिष्यावहे	आसिष्यामहे	उ०	आसिताहे	आसितास्वहे	आसितास्महे

आशीर्लिङ्				लृङ्		
आसिषीष्ट	आसिषीयास्ताम्	आसिषीरन्	प्र	आसिष्यत	आसिष्येताम्	आसिष्यन्त
आसिषीष्ठाः	आसिषीयास्थाम्	आसिषीध्वम्	म	आसिष्यथाः	आसिष्येथाम्	आसिष्यध्वम्
आसिषीय	आसिषीवहि	आसिषीमहि	उ	आसिष्ये	आसिष्यावहि	आसिष्यामहि

लिट् (आस + इ)				लुङ् (५)		
आसांचक्रे	आसांचक्राते	आसांचक्रिरे	प्र	आसिष्ट	आसिषाताम्	आसिषत
—चकृषे	—चक्राथे	—चकृढ्वे	म	आसिष्ठाः	आसिषाथाम्	आसिढ्वम्
—चक्रे	—चकृवहे	—चकृमहे	उ	आसिषि	आसिष्वहि	आसिष्महि

(४५) शी (सोना) (दे अ २२)

		श्रद्		
शेते	शयाते	शेरते	प्र	
शेषे	शयाथे	शेध्वे	म०	
शये	शेवहे	शेमहे	उ	
		शेत्		
शेताम्	शयाताम्	शेरताम्	प्र०	
शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्	म	
शयै	शयावहै	शयामहै	उ	
		अङ्		
अशेत	अशयाताम्	अशेरत	प्र	
अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्	म	
अशयि	अशेवहि	अशेमहि	उ	
		विधिलिङ्		
शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्	प्र०	
शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्	म	
शयीय	शयीवहि	शयीमहि	उ	
		—		
शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते	लृट	
शयिता	शयितारौ	शयितारः	लुट्	
शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्		आशिर्लिङ्	
अशयिष्यत	अशयिष्येताम्		लृङ्	
		शिद्		
शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे	प्र	
शिश्यिषे	शिश्याथे	शिश्यिध्वे	म	
शिश्ये	शिश्यिवहे	शिश्यिमहे	उ	
		शुङ् (५)		
अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत	प्र	
अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिध्वम्	म	
अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि	उ	
		—		

(४६) अधि + इ (पढ़ना) (दे अ० १२)

		श्रद्		
अधीते	अधीयाते	अधीयते	प्र	
अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे	म०	
अधीये	अधीवहे	अधीमहे	उ	
		शेत्		
अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्	प्र०	
अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्	म	
अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै	उ	
		अङ्		
अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत	प्र	
अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्	म	
अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि	उ	
		विधिलिङ्		
अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्	प्र०	
अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्	म	
अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि	उ	
		—		
अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते	लृट	
अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतारः	लुट्	
अध्येषीष्ट	अध्येषीयास्ताम्		आशिर्लिङ्	
अध्यैष्यत	अध्यगीष्यत (दोनों प्रकार से)		लृङ्	
		शिद् (इ को गा)		
अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे	प्र	
अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिध्वे	म	
अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे	उ	
		शुङ् (क) (४)		
अध्येष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत	प्र	
अध्यैष्ठाः	अध्यैषाथाम्	अध्यैढ्वम्	म	
अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि	उ	
		शुङ् (ख) (४) (इ को गा)		
अध्यगीष्ट	अध्यगीषाताम्	अध्यगीषत		
अध्यगीष्ठाः	अध्यगीषाथाम्	अध्यगीढ्वम्		
अध्यगीषि	अध्यगीष्वहि	अध्यगीष्महि		

(४७) ब्रू (कहना) परस्मैपद

सूचना—लट् आदि में ब्रू को वच् होगा ।

	लट्				लट्	
ब्रवीति / आह	ब्रूतः / आहतुः	ब्रुवन्ति / आहुः	प्र	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
ब्रवीषि / आत्थ	ब्रूथः / आहथुः	ब्रूथ	म	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः	उ	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे
	लोट्				लोट्	
ब्रवीतु	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु	प्र	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत	म	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम	उ	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै
	लङ्				लङ्	
अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्	प्र	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत	म	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम	उ	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः	प्र	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात	म	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम	उ	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि
	—				—	
वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति	लृट्	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः	लुट्	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासुः	आ शिष्	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्	लृङ्	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
	लिट्				लिट्	
उवाच	ऊचतुः	ऊचुः	प्र	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
उवचिथ, उवक्थ	ऊचथुः	ऊच	म०	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिध्वे
उवाच, उवच	ऊचिव	ऊचिम	उ०	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे
	लुङ् (१)				लुङ् (२)	
अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्	प्र	अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त
अवोचः	अवोचतम्	अवोचत	म	अवोचथाः	अवोचेथाम्	अवोचध्वम्
अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम	उ०	अवोचे	अवोचावहि	अवोचामहि

(३) जुहोत्यादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु हु (हवन करना) है, उसका रूप जुहोति आदि होता है, अतः गण का नाम जुहोत्यादिगण पड़ा। जुहोत्यादिगण में भी अदादिगण के तुल्य धातु और प्रत्यय के बीच में श्नु, शो, श्ना और विकरण नहीं लगता है। (जुहोत्यादिभ्यः श्लुः, ७५) उक्त अवस्थाओं में धातु को द्वित्व होता है अर्थात् धातु को दो बार पढ़ा जाता है और द्वित्व के प्रथम भाग में कुछ परिवर्तन भी होता है। उक्त अवस्थाओं में धातु को एकवचन में गुण होता है, अन्यत्र नहीं।

(२) इस गण में २४ धातुएँ हैं।

(३) श्नु आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त रूप निम्नलिखित लगेंगे। लट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृट् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही लगेंगे। लट् आदि में सेट् धातुओं में संक्षिप्त रूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् में नहीं।

परस्मैपद (ऽ रूप)				आत्मनेपद (ऽ रूप)		
	लट्				लट्	
ति	तः	अति	म	ते	आते	अते
सि	थः	थ	म	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ	ए	वहे	महे
	लोट्				लोट्	
तु	ताम्	अतु	म	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म	स्व	आथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ	ऐ	आवहै	आमहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)	
त्	ताम्	उः	म	त	आताम्	अत
ः	तम्	त	म	थाः	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	युः	म	ईत	ईयाताम्	ईरन्
याः	यातम्	यात	म	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ	ईय	ईवहि	ईमहि

—

—

(४८) हु (हवन करना) (द्वि अ ११)

परस्मैपदी

		लट्			
जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	प्र	विभेति	बिभीतः	बिभ्यति
जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ	म	विभेषि	बिभीथः	बिभीथ
जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः	उ	विभेमि	बिभीवः	बिभीमः
		लोट्			लोट्	
जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु	प्र	विभेतु	बिभीताम्	बिभ्यतु
जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत	म	बिभीहि	बिभीतम्	बिभीत
जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम	उ	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम
		लङ्			लङ्	
अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुह्वुः	प्र	अबिभेत्	अबिभीताम्	अबिभयुः
अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत	म	अबिभेः	अबिभीतम्	अबिभीत
अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम	उ	अबिभयम्	अबिभीव	अबिभीम
		विधिलिङ्			विधिलिङ्	
जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः	प्र	बिभीयात्	बिभीयाताम्	बिभीयुः
जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात	म	बिभीयाः	बिभीयातम्	बिभीयात
जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम	उ	बिभीयाम्	बिभीयाव	बिभीयाम
		—			—	
होष्यति	होष्यतः	होष्यन्ति	प्र	भेष्यति	भेष्यते	भेष्यन्ति
होता	होतारौ	होतारः	म	भेता	भेतारौ	भेतारः
हुयात्	हुयास्ताम्	हुयासुः	आ लिङ्	भीयात्	भीयास्ताम्	भीयासुः
अहोष्यत्	अहोष्यताम्	अहोष्यन्	लङ्	अभेष्यत्	अभेष्यताम्	अभेष्यन्
		लिट् (क)			लिट् (क)	
जुहाव	जुहुवतुः	जुहुवुः	प्र	बिभाय	बिभ्यतुः	बिभ्युः
जुहविथ जुहोथ	जुहुवथुः	जुहुव	म	बिभयिथ, बिभेथ	बिभ्यथुः	बिभ्य
जुहाव जुहव	जुहुविव	जुहुविम	उ	बिभाय बिभय	बिभ्यिव	बिभ्यिम
		लिट् (ख) (हवं + क)			लिट् (ख) (बिभी+क)	
जुहवांचकार -चक्र	-चक्रतुः	-चक्रुः	प्र	बिभयांचकार -चक्रतुः		-चक्रुः
-चकर्थ -चक्र	-चक्रथुः	-चक्र	म	-चकर्थ	-चक्रथुः	-चक्र
-चकार, चकर -चकृव	-चकृव	-चकृम	उ	-चकार, चकर -चकृव		-चकृम
		लुट् (ग)			लुट् (ग)	
अहोषीत्	अहोष्टाम्	अहोषुः	प्र	अभेषीत्	अभेष्टाम्	अभेषुः
अहोषीः	अहोष्टम्	अहोष्ट	म	अभेषीः	अभेष्टम्	अभेष्ट
अहोषम्	अहोष्व	अहोष्म	उ	अभेषम्	अभेष्व	अभेष्म

(५०) हा (छोड़ना) (दे भ १४)

परस्मैपदी

				लट्		
जहाति	जहीतः	जहति	प्र	जिहेति	जिहीतः	जिहेयति
जहासि	जहीथः	जहीथ	म	जिहेषि	जिहीथः	जिहीथ
जहामि	जहीवः	जहीमः	उ	जिहेमि	जिहीवः	जिहीमः
				लोट्		
जहातु	जहीताम्	जहतु	प्र०	जिहेतु	जिहीताम्	जिहयतु
जहाहि,जहीहि	जहीतम्	जहीत	म०	जिहीहि	जिहीतम्	जिहीत
जहानि	जहाव	जहाम	उ	जिहयानि	जिहयाव	जिहयाम
				लङ्		
अजहात्	अजहीताम्	अजहुः	प्र	अजिहेत्	अजिहीताम्	अजिहयुः
अजहाः	अजहीतम्	अजहीत	म	अजिहेः	अजिहीतम्	अजिहीत
अजहाम्	अजहीव	अजहीम	उ	अजिहयम्	अजिहीव	अजिहीम
				विधिलिङ्		
जह्यात्	जह्याताम्	जह्युः	प्र	जिहीयात्	जिहीयाताम्	जिहीयुः
जह्याः	जह्यातम्	जह्यात	म	जिहीयाः	जिहीयातम्	जिहीयात
जह्याम्	जह्याव	जह्याम	उ	जिहीयाम्	जिहीयाव	जिहीयाम
	—			—		
हास्यति	हास्यतः	हास्यन्ति	लृट्	हेष्यति	हेष्यतः	हेष्यन्ति
हाय	हातारौ	हातारः	लृट्	हेय	हेतारौ	हेतारः
हेयात्	हेयास्ताम्	हेयासुः	आ० लिङ्	हीयात्	हीयास्ताम्	हीयासुः
अहास्यत्	अहास्यताम्	अहास्यन्	लृङ्	अहेष्यत्	अहेष्यताम्	अहेष्यन्
				लिट्		
जहे	जहाथः	जहुः	प्र	जिहाय	जिहिष्टुः	जिहिषुः
जहिथ,जहाथ	जहथुः	जह	म	जिहयिथ,जिहेथ	जिहिष्टुः	जिहिष्ट
जहे	जहिव	जहिम	उ	जिहाय,जिहय	जिहिविव	जिहिविम
				लुङ् (४)		
अहासीत्	अहासिष्टाम्	अहासिषुः	प्र	अहेषीत्	अहेष्टाम्	अहेषुः
अहासीः	अहासिष्टम्	अहासिष्ट	म	अहेषीः	अहेष्टम्	अहेष्ट
अहासिषम्	अहासिष्व	अहासिष्म	उ	अहेषम्	अहेष्व	अहेष्म

(५१) ही (लज्जित होना) (दे०भ १४)

परस्मैपदी

				लट्		
जिहीते	जिहीतः	जिहीयते	प्र	जिह्रेति	जिह्रीतः	जिह्रियति
जिहीषे	जिहीथः	जिहीध्वे	म	जिह्रेषि	जिह्रीथः	जिह्रीथ
जिहीये	जिहीवहे	जिहीमहे	उ	जिह्रेमि	जिह्रीवः	जिह्रीमः
				लोट्		
जिहीताम्	जिहीताम्	जिहयताम्	प्र०	जिह्रेतु	जिह्रीताम्	जिह्रियतु
जिहीष्व	जिहीतम्	जिहीध्वम्	म०	जिह्रीहि	जिह्रीतम्	जिह्रीत
जिहये	जिहयावहै	जिहयामहै	उ	जिह्रयानि	जिह्रयाव	जिह्रयाम
				लङ्		
अजिहीत	अजिहीताम्	अजिहयत	प्र	अजिह्रेत्	अजिह्रीताम्	अजिह्रियुः
अजिहीथाः	अजिहीतम्	अजिहीध्वम्	म	अजिह्रेः	अजिह्रीतम्	अजिह्रीत
अजिहये	अजिहयावहि	अजिहयामहि	उ	अजिह्रयम्	अजिह्रीव	अजिह्रीम
				विधिलिङ्		
जिहीत	जिहीयाताम्	जिहीरन्	प्र	जिह्रीयात्	जिह्रीयाताम्	जिह्रीयुः
जिहीथाः	जिहीयाथाम्	जिहीध्वम्	म	जिह्रीयाः	जिह्रीयातम्	जिह्रीयात
जिहीय	जिहीवहि	जिहीमहि	उ	जिह्रीयाम्	जिह्रीवाव	जिह्रीयाम
				—		
हेष्यते	हेष्येते	हेष्यन्ते	लृट्	हेष्यति	हेष्यतः	हेष्यन्ति
हेषीष्ट	हेषीयास्ताम्	हेषीरन्	लृट्	हेय	हेतारौ	हेतारः
हेषीष्ट	हेषीयास्ताम्	हेषीरन्	आ० लिङ्	हीयात्	हीयास्ताम्	हीयासुः
अहेष्यत	अहेष्येताम्	अहेष्यन्त	लृङ्	अहेष्यत्	अहेष्यताम्	अहेष्यन्
				लिट्		
जिहीये	जिहीयाथे	जिहीरे	प्र	जिह्राय	जिह्रियतुः	जिह्रियुः
जिहीषे,जिहीये	जिहीयाथे	जिहीध्वे	म	जिह्रयिथ,जिह्रेथ	जिह्रियतुः	जिह्रिय
जिहीये	जिहीवहे	जिहीमहे	उ	जिह्राय,जिह्रय	जिह्रियिव	जिह्रियिम
				लुङ् (४)		
अहेषीष्ट	अहेषीयास्ताम्	अहेषीरन्	प्र	अहेषीत्	अहेष्टाम्	अहेषुः
अहेषीष्ठाः	अहेषीयास्ताम्	अहेषीढ्वम्	म	अहेषीः	अहेष्टम्	अहेष्ट
अहेषीय	अहेषीवहि	अहेषीमहि	उ	अहेषम्	अहेष्व	अहेष्म

सूचना—ही के क्ङित् में जिह्रा + क अर्थात् जिह्रयाञ्चकार आदि भी रूप होते हैं।

(५२) भू(पालन करना) (दि० अ० प०) (५३) मा(तोलना, नापना) (दि अ० प०)

उभयपदी					आत्मनेपदी	
सूचना—केवल परस्मैपद के रूप दिए हैं।						
	लट्				लट्	
बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति	प्र	मिमीते	मिमाते	मिमते
बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ	म०	मिमीषे	मिमाथे	मिमीध्वे
बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः	उ०	मिमे	मिमीवहे	मिमीमहे
	लोट्				लोट्	
बिभर्तु	बिभृताम्	बिभ्रतु	प्र	मिमीताम्	मिमाताम्	मिमताम्
बिभृहि	बिभृतम्	बिभृत	म	मिमीष्व	मिमाथाम्	मिमीध्वम्
बिभराणि	बिभराव	बिभराम	उ०	मिमै	मिमावहै	मिमामहै
	लङ्				लङ्	
अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः	प्र०	अमिमीत	अमिमाताम्	अमिमत
अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत	म०	अमिमीथाः	अमिमाथाम्	अमिमीध्वम्
अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम	उ०	अमिमि	अमिमीवहि	अमिमीमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
बिभृयात्	बिभृयाताम्	बिभृयुः	प्र	मिमीत	मिमीयाताम्	मिमीरन्
बिभृयाः	बिभृयातम्	बिभृयात	म	मिमीथाः	मिमीयाथाम्	मिमीध्वम्
बिभृयाम्	बिभृयाव	बिभृयाम	उ	मिमीय	मिमीवहि	मिमीमहि
	—				—	
भरिष्यति	भरिष्यतः	भरिष्यन्ति	लृट्	मास्यते	मास्येते	मास्यन्ते
भर्ता	भर्तारौ	भर्तारः	लुट्	माता	मातारौ	मातारः
बिभ्रात्	बिभ्राताम्	बिभ्रासुः	आ	शिष् मासीष्ट	मासीयास्ताम्	मासीरन्
अभरिष्यत्	अभरिष्यताम्	अभरिष्यन्	लृङ्	अमास्यत	अमास्येताम्	अमास्यन्त
	शिष्				शिष्	
बभ्यर	बभ्रुव	बभ्रुम	प्र	ममे	ममाते	ममिरे
बभर्थ	बभ्रुथः	बभ्र	म	ममिषे	ममाथे	ममिध्वे
बभार,बभर	बभ्रुव	बभ्रुम	उ०	ममे	ममिवहे	ममिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अभार्षीत्	अभार्ष्टाम्	अभार्षुः	प्र	अमास्त	अमास्साताम्	अमास्सत
अभार्षीः	अभार्ष्टम्	अभार्ष्ट	म	अमास्थाः	अमास्साथाम्	अमास्ध्वम्
अभार्षम्	अभार्ष्व	अभार्ष्म	उ०	अमासि	अमास्वहि	अमास्महि

सूचना—शिष् में शिषं+क्त आदि

शिष्टोत्पत्कार आदि भी रूप बनेंगे।

—

(५४) दा (देना) परस्मैपद (उभयपदी दा धातु)

आत्मनेपद (दे. अ १६)

	लट्					लट्		
ददाति	दत्तः	ददति	प्र	दत्ते		ददाते	ददते	
ददासि	दत्थ	दत्थ	म	दत्से		ददाथे	दद्ध्वे	
ददामि	ददः	दद्मः	उ	ददे		ददवहे	दद्महे	
	लोट्					लोट्		
ददातु	दत्ताम्	दद्तु	प्र	दत्ताम्		ददाताम्	ददताम्	
देहि	दत्तम्	दत्त	म	दत्स्व		ददाथाम्	दद्ध्वम्	
ददानि	ददाव	ददाम	उ	ददै		ददावहै	ददामहै	
	लङ्					लङ्		
अददात्	अदत्ताम्	अददुः	प्र	अदत्त		अददाताम्	अददत	
अददाः	अदत्तम्	अदत्त	म	अदात्था		अददाथाम्	अदद्ध्वम्	
अददाम्	अदद	अदद्म	उ	अददि		अदद्वहि	अदद्महि	
	विधिलिङ्					विधिलिङ्		
ददात्	ददाताम्	ददुः	प्र	ददीत		ददीयाताम्	ददीरन्	
ददाः	ददातम्	ददात	म	ददीथाः		ददीयाथाम्	ददीध्वम्	
ददाम्	ददाव	ददाम	उ	ददीय		ददीवहि	ददीमहि	
	—					—		
दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति	लृट्	दास्यते		दास्येते	दास्यन्ते	
दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ	लृट्	दास्यसे		दास्येथे	दास्यध्वे	
दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः	लृट्	दास्ये		दास्यावहे	दास्यामहे	
	आशीर्लिङ्					आशीर्लिङ्		
देयात्	देयास्ताम्	देयासुः	आ शिष्	दासीष्ट		दासीयास्ताम्	दासीरन्	
अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्	लुङ्	अदास्यत		अदास्येताम्	अदास्यन्त	
	लिट्					लिट्		
ददौ	ददतुः	ददुः	प्र	ददे		ददाते	ददिरे	
ददिथ, ददाथ	ददथुः	दद	म	ददिषे		ददाथे	ददिध्वे	
ददौ	ददिव	ददिम	उ	ददे		ददिवहे	ददिमहे	
	लुङ् (१)					लुङ् (४)		
अदात्	अदाताम्	अदुः	प्र	अदित		अदिषाताम्	अदिषत	
अदाः	अदातम्	अदात	म	अदिथाः		अदिषाथाम्	अदिढ्वम्	
अदाम्	अदाव	अदाम	उ	अदिषि		अदिष्वहि	अदिष्महि	

(५५) धा (धारण करना) परस्मैपद आत्मनेपद (दे अ १७)

लट्

दधाति	धत्तः	दधति	प्र	धत्ते	दधाते	दधते
दधासि	धत्थः	धत्थ	म	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
दधामि	दध्वः	दध्मः	उ	दधे	दध्वहे	दध्महे

लोट्

दधातु	धत्ताम्	दधतु	प्र	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
धेहि	धत्तम्	धत्त	म	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्
दधानि	दधाव	दधाम	उ	दधै	दधावहै	दधामहै

लङ्

अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः	प्र	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
अदधाः	अधत्तम्	अधत्त	म	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
अदधाम्	अदध्व	अदध्म	उ	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि

विधिलिङ्

दध्यात्	दध्याताम्	दध्युः	प्र	दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
दध्याः	दध्यातम्	दध्यात	म	दधीथाः	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
दध्याम्	दध्याव	दध्याम	उ	दधीय	दधीवहि	दधीमहि

—

धास्यति	धास्यतः	धास्यन्ति	लृट्	धास्यते	धास्येते	धास्यन्ते
धाता	धातारौ	धातारः	लुट्	धाता	धातारौ	धातारः
धेयात्	धेयास्ताम्	धेयासुः	आ शिष्	धासीष्ट	धासीयास्ताम्	धासीरन्
अधास्यत्	अधास्यताम्	अधास्यन्	लृङ्	अधास्यत	अधास्येताम्	अधास्यन्त

लिट्

दधौ	दधतुः	दधुः	प्र	दधे	दधाते	दधिरे
दधिथ,दधाथ	दधथुः	दध	म	दधिषे	दधाथे	दधिध्वे
दधौ	दधिव	दधिम	उ	दधे	दधिवहे	दधिमहे

लुङ्(१)

अधात्	अधाताम्	अधुः	प्र	अधित	अधिषाताम्	अधिषत
अधाः	अधातम्	अधात	म	अधिथाः	अधिषाथाम्	अधिढ्वम्
अधाम्	अधाव	अधाम	उ	अधिषि	अधिष्वहि	अधिष्महि

(४) दिवादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु दिव् है, अतः गण का नाम दिवादिगण पड़ा। (दिवादिभ्यः श्यन्) दिवादिगण की धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में श्यन्, क्षोद्, लङ् और विधिलिङ् में श्यन् (य) विकरण आता है और धातु को गुण नहीं होता। इस गण की धातुओं के रूप चलाने का सरल उपाय यह है कि धातु के अन्त में 'य' लगाकर परस्मैपद में भू धातु के तुल्य और आत्मनेपद में सेव् धातु के तुल्य रूप चलेंगे।

(२) इस गण में १४० धातुएँ हैं।

(१) छद् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित होंगे।
छद्, छद् आशीर्लिङ् और लङ् में सूत्र १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही होंगे।

छद् आदि में सेव् धातुओं में संक्षिप्तरूप से पहले इ भी होगा अनिट् में नहीं।

परस्मैपद (भ रूप)

छद्

पति	पतः	पन्ति	प्र	पते	पन्ते
पसि	पथ	पथ	म	पसे	पध्वे
पामि	पावः	पामः	उ	पे	पामहे

क्षोद्

पत्तु	पतताम्	पन्तु	प्र	पताम्	पन्ताम्
प	पतम्	पत	म	पस्व	पध्वम्
पानि	पाव	पाम	उ	पै	पामहै

लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)

अपत्	अपताम्	अपन्	प्र	अपत	अपन्त
अपः	अपतम्	अपत	म	अपथाः	अपध्वम्
अपम्	अपाव	अपाम	उ	अपे	अपामहि

विधिलिङ्

पेत्	पेताम्	पेयुः	प्र	पेत	पेरन्
पेः	पेतम्	पेत	म	पेथाः	पेध्वम्
पेयम्	पेव	पेम	उ	पेय	पेमहि

—

आत्मनेपद (स रूप)

छद्

पेते	पेताम्	पन्ते	प्र	पेते	पेरन्
पेषे	पेथाम्	पध्वे	म	पेषे	पेयाथाम्
पावहे	पावहे	पामहे	उ	पेवहि	पेमहि

क्षोद्

पेताम्	पेताम्	पन्ताम्	प्र	पेताम्	पेरन्
पेषाम्	पेथाम्	पध्वम्	म	पेस्व	पेयाथाम्
पावहै	पावहै	पामहै	उ	पै	पेमहि

लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)

अपेताम्	अपेताम्	अपन्त	प्र	अपेत	अपेरन्
अपेथाम्	अपेथाम्	अपध्वम्	म	अपेथाः	अपेयाथाम्
अपावहि	अपावहि	अपामहि	उ	अपेय	अपेमहि

—

दिवादिगण—परस्मैपदी धातुएँ

(५६) दिव् (चमकना आदि) (दे अ १८) (५७) नृत् (नाचना) (दे अ १८)

	लट्				लट्	
दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति	प्र	नृत्यति	नृत्यतः	नृत्यन्ति
दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ	म	नृत्यसि	नृत्यथः	नृत्यथ
दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः	उ	नृत्यामि	नृत्यावः	नृत्यामः
	लोट्				लोट्	
दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु	प्र	नृत्यतु	नृत्यताम्	नृत्यन्तु
दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत	म	नृत्य	नृत्यतम्	नृत्यत
दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम	उ	नृत्यानि	नृत्याव	नृत्याम
	लङ्				लङ	
अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्	प्र	अनृत्यत्	अनृत्यताम्	अनृत्यन्
अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत	म	अनृत्यः	अनृत्यतम्	अनृत्यत
अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम	उ	अनृत्यम्	अनृत्याव	अनृत्याम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः	प्र	नृत्येत्	नृत्येताम्	नृत्येयुः
दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत	म	नृत्येः	नृत्येतम्	नृत्येत
दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम	उ	नृत्येयम्	नृत्येव	नृत्येम
	—				—	
देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति	स्रट्	नर्तिष्यति	नर्त्स्यति (दोनों प्रकार से)	
देविता	देवितारौ	देवितारः	तृट्	नर्तिता	नर्तितारौ	नर्तितारः
दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासुः	आ शिष्	नृत्यात्	नृत्यास्ताम्	नृत्यासुः
अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्		स्रट्	अनर्तिष्यत्	अनर्त्स्यत् (दोनों प्रकारसे)	
	लिट्				लिट्	
दिदेव	दिदिवतुः	दिदिवुः	प्र	ननर्त	ननृततुः	ननृतुः
दिदेविथ	दिदेवथुः	दिदिव	म	ननर्तिथ	ननृतथुः	ननृत
दिदेव	दिदिविव	दिदिविम	उ०	ननर्त	ननृतिव	ननृतिम
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषुः	प्र०	अनर्तीत्	अनर्तिष्टाम्	अनर्तिषुः
अदेवीः	अदेविष्टम्	अदेविष्ट	म	अनर्तीः	अनर्तिष्टम्	अनर्तिष्ट
अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म	उ	अनर्तिषम्	अनर्तिष्व	अनर्तिष्म

(५८) नश् (नष्ट होना) (दे अ० ११) (५९) भ्रम् (घूमना) (दे० अ० ११)

	लट्				लट्	
नश्यति	नश्यतः	नश्यन्ति	प्र०	भ्राम्यति	भ्राम्यतः	भ्राम्यन्ति
नश्यसि	नश्यथः	नश्यथ	म	भ्राम्यसि	भ्राम्यथः	भ्राम्यथ
नश्यामि	नश्यावः	नश्यामः	उ०	भ्राम्यामि	भ्राम्यावः	भ्राम्यामः
	लोट्				लोट्	
नश्यतु	नश्यताम्	नश्यन्तु	प्र०	भ्राम्यतु	भ्राम्यताम्	भ्राम्यन्तु
नश्य	नश्यतम्	नश्यत	म	भ्राम्य	भ्राम्यतम्	भ्राम्यत
नश्यानि	नश्याव	नश्याम	उ	भ्राम्यानि	भ्राम्याव	भ्राम्याम
	लङ्				लङ्	
अनश्यत्	अनश्यताम्	अनश्यन्	प्र	अभ्राम्यत्	अभ्राम्यताम्	अभ्राम्यन्
अनश्यः	अनश्यतम्	अनश्यत	म	अभ्राम्यः	अभ्राम्यतम्	अभ्राम्यत
अनश्यम्	अनश्याव	अनश्याम	उ	अभ्राम्यम्	अभ्राम्याव	अभ्राम्याम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
नश्येत्	नश्येताम्	नश्येयुः	प्र	भ्राम्येत्	भ्राम्येताम्	भ्राम्येयुः
नश्येः	नश्येतम्	नश्येत	म	भ्राम्येः	भ्राम्येतम्	भ्राम्येत
नश्येयम्	नश्येव	नश्येम	उ	भ्राम्येयम्	भ्राम्येव	भ्राम्येम
	—				—	
नशिष्यति, नङ्क्ष्यति (दोनों प्रकार से)			लृट्	भ्रमिष्यति	भ्रमिष्यतः	भ्रमिष्यन्ति
नशित, नष्ट (दोनों प्रकार से)			क्त	भ्रमित	भ्रमितारौ	भ्रमितारः
नश्यात्	नश्यास्ताम्	नश्यासुः	आ शिष्	भ्रम्यात्	भ्रम्यास्ताम्	भ्रम्यासुः
अनशिष्यत्	अनङ्क्ष्यत् (दोनों प्रकार से)		लृङ	अभ्रमिष्यत्	अभ्रमिष्यताम्	
	लिट्				लिट्	
ननाश	नेशतुः	नेशुः	प्र	बभ्राम / भ्रेमतुः	बभ्रमतुः / भ्रेमतुः	बभ्रमुः / भ्रेमुः
नेशिथ / ननष्ठ	नेशथुः	नेश	म	बभ्रमिथ / भ्रेमिथ	बभ्रमथुः / भ्रेमथुः	बभ्रम / भ्रेम
ननाश / ननश	नेशिव / नेश्व	नेशिम / नेश्म	उ	बभ्राम / बभ्रम	बभ्रमिव / भ्रेमिव	बभ्रमिम / भ्रेमिम
	लुङ् (१)				लुङ (१)	
अनशत्	अनशताम्	अनशन्	प्र	अभ्रमत्	अभ्रमताम्	अभ्रमन्
अनशः	अनशतम्	अनशत	म	अभ्रमः	अभ्रमतम्	अभ्रमत
अनशम्	अनशाव	अनशाम	उ	अभ्रमम्	अभ्रमाव	अभ्रमाम

सूचना—भ्रम् स्वादिगणी भी है, अतः भ्रमति भ्रमतु, अभ्रमत्, भ्रमेत् वाले रूप भी बनेंगे।

(६०) श्रम् (परिश्रम करना) (दि॰ अ॰ ४) (६१) सिव् (सीना) (दि॰ अ॰ ४)

लट्					लट्	
श्राम्यति	श्राम्यतः	श्राम्यन्ति	प्र	सीव्यति	सीव्यतः	सीव्यन्ति
श्राम्यसि	श्राम्यथः	श्राम्यथ	म	सीव्यसि	सीव्यथः	सीव्यथ
श्राम्यामि	श्राम्यावः	श्राम्यामः	उ	सीव्यामि	सीव्यावः	सीव्यामः
लोट्					लोट्	
श्राम्यतु	श्राम्यताम्	श्राम्यन्तु	प्र	सीव्यतु	सीव्यताम्	सीव्यन्तु
श्राम्य	श्राम्यतम्	श्राम्यत	म	सीव्य	सीव्यतम्	सीव्यत
श्राम्याणि	श्राम्याव	श्राम्याम	उ	सीव्यानि	सीव्याव	सीव्याम
लङ्					लङ्	
अश्राम्यत्	अश्राम्यताम्	अश्राम्यन्	प्र	असीव्यत्	असीव्यताम्	असीव्यन्
अश्राम्यः	अश्राम्यतम्	अश्राम्यत	म	असीव्यः	असीव्यतम्	असीव्यत
अश्राम्यम्	अश्राम्याव	अश्राम्याम	उ	असीव्यम्	असीव्याव	असीव्याम
विधिलिङ्					विधिलिङ्	
श्राम्येत्	श्राम्येताम्	श्राम्येयुः	प्र	सीव्येत्	सीव्येताम्	सीव्येयुः
श्राम्येः	श्राम्येतम्	श्राम्येत	म	सीव्येः	सीव्येतम्	सीव्येत
श्राम्येयम्	श्राम्येव	श्राम्येम	उ	सीव्येयम्	सीव्येव	सीव्येम
—					—	
अभिष्यति	अभिष्यतः	अभिष्यन्ति	लृट्	सेविष्यति	सेविष्यतः	सेविष्यन्ति
अभिता	अभितारौ	अभितारः	लुट्	सविता	सेवितारौ	सेवितारः
श्राम्यात्	श्राम्यास्ताम्	श्राम्यासुः	आ शिष्	सीव्यात्	सीव्यास्ताम्	सीव्यासुः
अश्रमिष्यत्	अश्रमिष्यताम्		लृङ्	असेविष्यत्	असेविष्यताम्	
शिष्					शिष्	
शश्राम	शश्रमतुः	शश्रमुः	प्र	सिषेव	सिषिवतुः	सिषिवुः
शश्रमिथ	शश्रमथुः	शश्रम	म	सिषेविथ	सिषिवथुः	सिषिव
शश्राम, शश्रम	शश्रमिव	शश्रमिम	उ	सिषेव	सिषिविव	सिषिविम
लुङ् (२)					लुङ् (५)	
अश्रमत्	अश्रमताम्	अश्रमन्	प्र	असेवीत्	असेविष्टाम्	असेविषुः
अश्रमः	अश्रमतम्	अश्रमत	म	असेवीः	असेविष्टम्	असेविष्ट
अश्रमम्	अश्रमाव	अश्रमाम	उ॰	असेविषम्	असेविष्व	असेविष्म

(६२) सो (नष्ट होना) (दि॰ प॰ अ॰)

					लट्
स्यति	स्यतः	स्यन्ति	प्र	स्यति	स्यतः स्यन्ति
स्यसि	स्यथः	स्यथ	म	स्यसि	स्यथः स्यथ
स्यामि	स्यावः	स्यामः	उ	स्यामि	स्यावः स्यामः
					लोट्
स्यतु	स्यताम्	स्यन्तु	प्र	स्यतु	स्यताम् स्यन्तु
स्य	स्यतम्	स्यत	म	स्य	स्यतम् स्यत
स्यानि	स्याव	स्याम	उ	स्यानि	स्याव स्याम
					लङ्
अस्यत्	अस्यताम्	अस्यन्	प्र	अस्यत्	अस्यताम् अस्यन्
अस्यः	अस्यतम्	अस्यत	म	अस्यः	अस्यतम् अस्यत
अस्यम्	अस्याव	अस्याम	उ	अस्यम्	अस्याव अस्याम
					विधिलिङ्
स्येत्	स्येताम्	स्येयुः	प्र	स्येत्	स्येताम् स्येयुः
स्येः	स्येतम्	स्येत	म	स्येः	स्येतम् स्येत
स्येयम्	स्येव	स्येम	उ	स्येयम्	स्येव स्येम
					—
शस्यति	शस्यतः	शस्यन्ति	लृट्	शस्यति	शस्यतः शस्यन्ति
शाता	शातारौ	शातारः	लुट्	शाता	शातारौ शातारः
शेषात्	शेषास्ताम्	शेषासु	आशिष्	शीयात्	शीयास्ताम् शीयासु
अशस्यत्	अशस्यताम्	अशस्यन्	लुङ्	अशस्यत्	अशस्यताम् अशस्यन्
					लिट्
शशौ	शश्यतु	शश्युः	प्र	शशौ	शश्यतु शश्युः
शशिथ,शशाथ	शश्यथुः	शश्य	म	शशिथ,शशाथ	शश्यथुः शश्य
शश्यौ	शशिव	शशिम	उ	शश्यौ	शशिव शशिम
					लुङ् (क) (१)
अशात्	अशाताम्	अशुः	प्र	अशात्	अशाताम् अशुः
अशाः	अशातम्	अशात	म	अशाः	अशातम् अशात
अशाम्	अशाव	अशाम	उ	अशाम्	अशाव अशाम
					लुङ् (ख) (१)
अशासीत्	अशासिष्टाम्	अशासिषुः	प्र	अशासीत्	अशासिष्टाम् अशासिषुः
शासीः	अशासिष्टम्	अशासिष्ट	म	अशासीः	अशासिष्टम् अशासिष्ट
शासिषम्	अशासिष्व	अशासिष्म	उ	अशासिषम्	अशासिष्व अशासिष्म

(६३) शो (उत्तेजना) (दि॰ प॰ अ॰)

					लट्
श्यति	श्यतः	श्यन्ति	प्र	श्यति	श्यतः श्यन्ति
श्यसि	श्यथः	श्यथ	म	श्यसि	श्यथः श्यथ
श्यामि	श्यावः	श्यामः	उ	श्यामि	श्यावः श्यामः
					लोट्
श्यतु	श्यताम्	श्यन्तु	प्र	श्यतु	श्यताम् श्यन्तु
श्य	श्यतम्	श्यत	म	श्य	श्यतम् श्यत
श्यानि	श्याव	श्याम	उ	श्यानि	श्याव श्याम
					लङ्
अश्यत्	अश्यताम्	अश्यन्	प्र	अश्यत्	अश्यताम् अश्यन्
अश्यः	अश्यतम्	अश्यत	म	अश्यः	अश्यतम् अश्यत
अश्यम्	अश्याव	अश्याम	उ	अश्यम्	अश्याव अश्याम
					विधिलिङ्
श्येत्	श्येताम्	श्येयुः	प्र	श्येत्	श्येताम् श्येयुः
श्येः	श्येतम्	श्येत	म	श्येः	श्येतम् श्येत
श्येयम्	श्येव	श्येम	उ	श्येयम्	श्येव श्येम
					—
शास्यति	शास्यतः	शास्यन्ति	लृट्	शास्यति	शास्यतः शास्यन्ति
शाता	शातारौ	शातारः	लुट्	शाता	शातारौ शातारः
शायात्	शायास्ताम्	शायासु	आशिष्	शीयात्	शीयास्ताम् शीयासु
अशास्यत्	अशास्यताम्	अशास्यन्	लुङ्	अशास्यत्	अशास्यताम् अशास्यन्
					लिट्
शशौ	शश्यतु	शश्युः	प्र	शशौ	शश्यतु शश्युः
शशिथ,शशाथ	शश्यथुः	शश्य	म	शशिथ,शशाथ	शश्यथुः शश्य
शश्यौ	शशिव	शशिम	उ	शश्यौ	शशिव शशिम
					लुङ् (क) (१)
अशात्	अशाताम्	अशुः	प्र	अशात्	अशाताम् अशुः
अशाः	अशातम्	अशात	म	अशाः	अशातम् अशात
अशाम्	अशाव	अशाम	उ	अशाम्	अशाव अशाम
					लुङ् (ख) (१)
अशासीत्	अशासिष्टाम्	अशासिषुः	प्र	अशासीत्	अशासिष्टाम् अशासिषुः
शासीः	अशासिष्टम्	अशासिष्ट	म	अशासीः	अशासिष्टम् अशासिष्ट
शासिषम्	अशासिष्व	अशासिष्म	उ	अशासिषम्	अशासिष्व अशासिष्म

(६४) कुप् (क्रुद्ध होना) (दि. अ ४२)

परस्मैपदी

लट्

कुप्यति	कुप्यतः	कुप्यन्ति
कुप्यसि	कुप्यथः	कुप्यथ
कुप्यामि	कुप्यावः	कुप्यामः

लोट्

कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु
कुप्य	कुप्यतम्	कुप्यत
कुप्यानि	कुप्याव	कुप्याम

लङ्

अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्
अकुप्याः	अकुप्यतम्	अकुप्यत
अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम

विधिलिङ्

कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयुः
कुप्येः	कुप्येतम्	कुप्येत
कुप्येयम्	कुप्येव	कुप्येम

—

कोपिष्यति	कोपिष्यतः	कोपिष्यन्ति
कोपिता	कोपितारौ	कोपितारः
कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासुः
अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्	अकोपिष्यन्

लिट्

चुकोप	चुकुप्तुः	चुकुपुः
चुकोपिथ	चुकुप्थुः	चुकुप
चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम

लुङ् (२)

अकुपत्	अकुप्ताम्	अकुपन्
अकुपः	अकुप्तम्	अकुप्त
अकुपम्	अकुप्याव	अकुप्याम

आत्मनेपदी

लट्

पद्यते	पद्येते	पद्यन्ते
पद्यसे	पद्येथे	पद्यध्वे
पद्ये	पद्यावहे	पद्यामहे

लोट्

पद्यताम्	पद्येताम्	पद्यन्ताम्
पद्यस्व	पद्येथाम्	पद्यध्वम्
पद्यै	पद्यावहै	पद्यामहै

लङ्

अपद्यत	अपद्येताम्	अपद्यन्त
अपद्यथाः	अपद्येथाम्	अपद्यध्वम्
अपद्ये	अपद्यावहि	अपद्यामहि

विधिलिङ्

पद्येत	पद्येयाताम्	पद्येरन्
पद्येथाः	पद्येयाथाम्	पद्येध्वम्
पद्येय	पद्येवहि	पद्येमहि

—

पत्स्यते	पत्स्येते	पत्स्यन्ते
पत्तासे	पत्तासाथे	पत्तारः
पत्सीष्ट	पत्सीयास्ताम्	पत्सीरन्

लुङ् अपत्सत अपत्साताम्

लिट्

पेदे	पेदाते	पेदिरे
पेदिषे	पेदाथे	पेदिध्वे
पेदे	पेदिवहे	पेदिमहे

लुङ् (४)

अपादि	अपत्साताम्	अपत्सत
अपाथाः	अपत्साथाम्	अपद्ध्वम्
अपादि	अपत्स्वहि	अपत्स्महि

आत्मनेपदी—धातुएँ

(६६) युष् (छड़ना) (१ अ ४१) (६७) जन् (उत्पन्न होना) (१ अ ४१)

सूचना—व्रश्च् आदि में जन् को जा होगा।

	लट्				लट् (जन् को जा)		
पुष्यते	पुष्येते	पुष्यन्ते	प्र	जायते	जायेते	जायन्ते
पुष्यसे	पुष्येथे	पुष्यध्वे	म	जायसे	जायेथे	जायध्वे
पुष्ये	पुष्यावहे	पुष्यामहे	उ०	जाये	जायावहे	जायामहे
	लोट्				लोट् (जन् को जा)	
पुष्यताम्	पुष्येताम्	पुष्यन्ताम्	प्र	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
पुष्यस्व	पुष्येथाम्	पुष्यध्वम्	म	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
पुष्यै	पुष्यावहै	पुष्यामहै	उ	जायै	जायावहै	जायामहै
	लङ्				लङ् (जन् को जा)	
अपुष्यत	अपुष्येताम्	अपुष्यन्त	प्र	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
अपुष्यथाः	अपुष्येथाम्	अपुष्यध्वम्	म	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
अपुष्ये	अपुष्यावहि	अपुष्यामहि	उ	अजाये	अजायावहि	अजायामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ् (जन् को जा)	
पुष्येत	पुष्येयाताम्	पुष्येरन्	प्र	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन
पुष्येथाः	पुष्येयाथाम्	पुष्येध्वम्	म	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
पुष्येय	पुष्येवहि	पुष्येमहि	उ	जायेय	जायेवहि	जायेमहि
	—				—	
पोस्यते	पोस्येते	पोस्यन्ते	लृट्	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
पोष्टा	पोष्टारौ	पोष्टारः	लुट्	जनिता	जनितारौ	जनितारः
पुषीष्ट	पुषीयास्ताम्		आ लिङ्	जनिषीष्ट	जनिषीयास्ताम्	
अपोस्यत	अपोस्येताम्		लृङ्	अजनिष्यत	अजनिष्येताम्	
	क्विप्				क्विप्	
पुपुषे	पुपुषाते	पुपुषिरे	प्र	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
पुपुषिषे	पुपुषाथे	पुपुषिध्वे	म	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
पुपुषे	पुपुषिवहे	पुपुषिमहे	उ	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे
	व्रश्च् (४)				व्रश्च् (४)	
अपुक्त	अपुक्षाताम्	अपुक्षत	प्र	अजनि अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
अपुक्षाः	अपुक्षाथाम्	अपुड्ढ्वम्	म	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिढ्वम्
अपुक्षि	अपुक्ष्वहि	अपुक्ष्महि	उ	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

(५) स्वादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु सु (रस निकालना) है, अतः गण का नाम स्वादिगण पड़ा। (स्वादिभ्यः सुः) स्वादिगण की धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में शप् शप् श्लु और यिचिक्लिप् में सु (नु) विकरण आता है और धातु को गुण नहीं होता।

(२) (क) नु को परस्मैपद में लट् लोट् (म पु एक को छोड़कर) व लङ् में एकवचन में गुण होता है। (ख) (लोपोऽभ्यस्तस्यापि क्यो) यदि कोई स्वर पहले न हो तो नु के उ का लोप विकल्प से होता है, बाद में व या म हो तो। अर्थात् लट् आदि में उ पु द्विवचन और बहुवचन में दो रूप बनेंगे।

(३) इस गण में १५ धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त रूप निम्नांकित बनेंगे। लट्, लुट्, व्यधीलिङ् और लङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही बनेंगे। लट् आदि में सेट् धातुओं में संक्षिप्त रूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् में नहीं।

परस्मैपद (सु रूप)

लट्

नोति	नुतः	न्वन्ति, नुवन्ति	म नुते नुवाते न्वाते नुध्वे, न्वते
नोषि	नुथः	नुथ	म नुषे नुवाथे न्वाथे नुध्वे
नोमि	नुवः न	नुमः, न्मः	उ नवे नुवहे, न्वहे नुमहे, न्महे

लोट्

नोतु	नुताम्	न्वन्तु, नुवन्तु	लोट्
नुहि, नुतात्	नुतम्	नुत	म नुताम् नुवाताम्, न्वाताम् नुवताम्, न्वताम्
नवानि	नवाव	नवाम	म नुष्व नुवाथाम्, न्वाथाम् नुध्वम्
			उ नवै नवावहै नवामहै

लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)

नोत्	नुताम्	न्वन्, नुवन्	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)
नोः	नुतम्	नुत	म नुथाः नुवाताम्, न्वाताम् नुवत, न्वत
नवम्	नुव, न्व	नुम न्म	म नुथाः नुवाथाम्, न्वाथाम् नुध्वम्
			उ नुवि नि नुवहि, न्वहि नुमहि, न्महि

यिचिक्लिप्

नुयात्	नुयाताम्	नुयुः	यिचिक्लिप्
नुयाः	नुयातम्	नुयात	म स्नीत स्नीयाताम् स्नीरन्
नुयाम्	नुयाव	नुयाम	म स्नीथाः स्नीयाथाम् स्नीध्वम्
			उ स्नीय स्नीवहि स्नीमहि

सूचना—अर्थों को सं रूप दिए हैं उनमें से एक या दोनों रूप इना धातु र निभर है।

स्वादिगण—परस्मैपदी धातुरूप

(९८) आप् (पाना) (ट् अ ४४)				(९९) शक् (सकना) (ट् अ ४४)		
लट्				लट्		
आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति	प्र	शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति
आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ	म	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः	उ	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः
लोट्				लोट्		
आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु	प्र	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत	म	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम	उ	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम
लङ्				लङ्		
आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्	प्र	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत	म	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम	उ	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः	प्र	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयुः
आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात	म	शक्नुयाः	शक्नुयातम्	शक्नुयात
आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम	उ	शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम
—				—		
आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति	लृट्	शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति
आप्सि	आप्सीयौ	आप्सीय	लृङ्	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासुः
आप्यात्	आप्यास्ताम्	आप्यासुः	आ० लिङ्	शक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्*	
आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्	लृङ्	अशक्ष्यत		
लिट्				लिट्		
आप	आपतुः	आपुः	प्र	शशाक	शेकतुः	शेकुः
आपिथ	आपथुः	आप	म	शेकिथ शशक्थ	शेकथुः	शेक
आप	आपिव	आपिम	उ०	शशाक,शशक	शेकिव	शेकिम
लुङ्(१)				लुङ्(१)		
आपत्	आपताम्	आपन्	प्र	अशकत्	अशकताम्	अशकन्
आपः	आपतम्	आपत	म	अशकः	अशकतम्	अशकत
आपम्	आपाव	आपाम	उ	अशकम्	अशकाव	अशकाम

(७०) चि (इकट्ठा करना)(दे म ४५) (७१) अप् (व्याप्त होना)(दे म ८५)

सूचना—उभय है, केवल परस्म के रूप दिए हैं। आत्मनेपदी

लट्

चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति	प्र	अनुते	अनुवाते	अनुवते
चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ	म	अनुषे	अनुवाथे	अनुध्वे
चिनोमि	चिनुवः, -नवः	चिनुमः, -नमः	उ	अनुवे	अनुवहे	अनुमहे

लोट्

चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु	प्र	अनुताम्	अनुवाताम्	अनुवताम्
चिनु	चिनुतम्	चिनुत	म	अनुष्व	अनुवाथाम्	अनुध्वम्
चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम	उ	अनवै	अनवावहै	अनवामहै

लङ्

अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्	प्र	आनुत	आनुवाताम्	आनुवत
अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत	म	आनुथाः	आनुवाथाम्	आनुध्वम्
अचिनवम्	अचिनुव	अचिनुम	उ	आनुवि	आनुवहि	आनुमहि

विधिलिङ्

चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः	प्र	अनुवीत	अनुवीयाताम्	अनुवीरन्
चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात	म०	अनुवीथाः	अनुवीयाथाम्	अनुवीध्वम्
चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम	उ	अनुवीय	अनुवीवहि	अनुवीमहि

—

चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति	लृट्	अचिष्यते, अक्ष्यते	(दोनों प्रकार से)
चेता	चेतारौ	चेतारः	लुट्	अचिता, अता	(,,)
चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासुः आ क्रिया		अचिषीष्ट अक्षीष्ट	(,,)
अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्	लृङ्	अचिष्यत, अक्ष्यत	(,,)

चिञ् (क)

चिचाय	चिच्यतुः	चिच्युः	प्र	आनये	आनयाते	आनयिरे
चिचयिथ, चिचेथ	चिच्यथुः	चिच्य	म	आनयिषे	आनयाथे	आनयिध्वे
चिचाय, चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम	उ०	आनये	आनयिवहे	आनयिमहे

(ख) चिकाय चिक्यतुः आदि।

चुरादि (४)

अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः	प्र०	अचिष्ट	अचिषाताम्	अचिषत
अचैषीः	अचैष्टम्	अचैष्ट	म	अचिष्ठाः	अचिषाथाम्	अचिढ्वम्
अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म	उ०	अचिषि	अचिष्वहि	अचिष्महि

सूचना—आत्मने में सु (७०) आ० के तुल्य। (ख) आद आक्षाताम् इत्यादि

उभयपदी धातु

(७२) षुञ् (रस निकालना) (दि. अ ४६)

परस्मैपद–कर्				आत्मनेपद–कर्		
सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति	प्र	सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते
सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ	म	सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे
सुनोमि	सुनुवः	सुनुमः	उ	सुन्वे	सुनुवहे	सुनुमहे

लोट्				लोट्		
सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु	प्र	सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्
सुनु	सुनुतम्	सुनुत	म	सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्
सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम	उ	सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै

लङ्				लङ्		
असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्	प्र	असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत
असुनोः	असुनुतम्	असुनुत	म	असुनुषाः	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्
असुनवम्	असुनुव	असुनुम	उ	असुन्वि	असुनुवहि	असुनुमहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयुः	प्र	सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्
सुनुयाः	सुनुयातम्	सुनुयात	म	सुन्वीथाः	सुन्वीयाथाम्	सुन्वीध्वम्
सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम	उ	सुन्वीय	सुन्वीयहि	सुन्वीमहि

सोष्यति	सोष्यतः	सोष्यन्ति	लृट्	सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते
सोता	सोतारौ	सोतारः	लुट्	सोता	सोतारौ	सोतारः
सूयात्	सूयास्ताम्	सूयासुः	आ लिङ्	सोषीष्ट	सोषीयास्ताम्	
असोष्यत्	असोष्यताम्		लृङ्	असोष्यत	असोष्येताम्	

लिट्				लिट्		
सुषाव	सुषुवतुः	सुषुवुः	प्र	सुषुवे	सुषुवाते	सुषुविरे
सुषविथ,सुषोथ	सुषुवथुः	सुषुव	म	सुषुविषे	सुषुवाथे	सुषुविध्वे
सुषाव,सुषव	सुषुविव	सुषुविम	उ	सुषुवे	सुषुविवहे	सुषुविमहे

लुङ् (५)				लुङ् (४)		
असावीत्	असाविष्टाम्	असाविषुः	प्र	असोष्ट	असोषाताम्	असोषत
असावीः	असाविष्टम्	असाविष्ट	म	असोष्ठाः	असोषाथाम्	असोढ्वम्
असाविषम्	असाविष्व	असाविष्म	उ०	असोषि	असोष्वहि	असोष्महि

(६) तुदादिगण

(१) इस गणकी प्रथम धातु तुद् (दुःख देना) है, अतः गण का नाम तुदादि गण पड़ा। (तुदादिभ्यः शः) तुदादिगण की धातुओं में तुद्, तोद् आदि और विधिलिङ् में श (अ) विकरण लगता है। भ्वादिगण में भी 'अ' विकरण लगता है। अन्तर यह है कि भ्वादिगण में तुद् आदि में धातु को गुण होता है, परन्तु तुदादि में धातु को गुण नहीं होगा।

(२) (क) तुद् आदि में धातु के अन्तिम इ और ई को इय् होगा, उ और ऊ को उव् ऋ को रिय् और ॠ को ईर् होगा। जैसे—लि>लियति लू>लुवति, भृ>भिरते गृ>गिरति। (ख) (ये मुचादीनाम्) मुच् आदि धातुओं में बीच में न् आ जाता है। मुच्>मुञ्चति, लिप्>लिम्पति विद्>विन्दति, छिद्>छिन्दति, क्षुद्>क्षुन्दति।

(३) इस गण में १५७ धातुएँ हैं।

(४) तुद् आदि में संक्षिप्त रूप निम्नलिखित लगेंगे। परस्मैपद में भू के तुल्य और आत्मनेपद में सेव् के तुल्य रूप बनावें। तुद्, तुद् आशीर्लिङ् और तुद् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट से रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (स रूप)			आत्मनेपद (स रूप)		
तुद्			तुद्		
अति	अतः	अन्ति	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	ए	आवहे	आमहे
तोट			तोद्		
अतु	अताम्	अन्तु	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै
सद् (धातु से पूर्व अ या आ)			सद् (धातु से पूर्व अ या आ)		
अत्	अताम्	अन्	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	ए	आवहि	आमहि
विधिलिङ्			विधिलिङ्		
एत्	एताम्	एयुः	इत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	एय	एवहि	एमहि

परस्मैपदी-धातुएँ

(७३) इष् (चाहना) (रे अ ४७) (७४) प्रच्छ् (पूछना) (रे अ ४७)

सूचना—ङ् आदि में इष् को इच्छ् होगा। सूचना—ङ् आदि में प्रच्छ् को पृच्छ्।

	ङ्				ङ्	
इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति	प्र	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
इच्छसि	इच्छथ	इच्छथ	म	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः	उ०	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः
	ञोद्				ञोद्	
इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु	प्र	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
इच्छ	इच्छतम्	इच्छत	म	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम	उ	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम
	ङ				ङ्	
ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्	प्र	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत	म	अपृच्छ	अपृच्छतम्	अपृच्छत
ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम	उ	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः	प्र	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत	म	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम	उ०	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम
—				—		
एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति	लृट्	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
एषिता, एष्टा (दोनों प्रकारसे)			लुट्	प्रष्टा	प्रष्टारौ	प्रष्टारः
इषात्	इषास्ताम्	इषासुः आ	शिष्	पृच्छयात्	पृच्छयास्ताम्	
ऐषिष्यत्	ऐषिष्यताम्	ऐषिष्यन्	लृङ्	अप्रक्ष्यत्	अप्रक्ष्यताम्	
	ष्टिद्				ष्टिद्	
देष	ईषथुः	ईषुः	प्र०	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः
देषिथ	ईषथुः	ईष	म०	पप्रष्ठ, पप्रच्छ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ
देष	ईषिव	ईषिम	उ०	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम
	ङ् (५)				ङ् (४)	
पीत्	ऐप्सताम्	ऐप्सुः	प्र	अप्राक्षीत्	अप्राक्षताम्	अप्राक्षुः
पीः	ऐप्सम्	ऐप्स	म	अप्राक्षीः	अप्राक्षम्	अप्राक्ष
पिषम्	ऐप्स्व	ऐप्स्म	उ	अप्राक्षम्	अप्राक्ष्व	अप्राक्ष्म

(७५) लिख् (लिखना) (दे० अ ४८)

लट्

लिखति	लिखतः	लिखन्ति	प्र	स्तृणति	स्तृणतः	स्तृणन्ति
लिखसि	लिखथः	लिखथ	म	स्तृणासि	स्तृणथः	स्तृणथ
लिखामि	लिखावः	लिखामः	उ०	स्तृणामि	स्तृणावः	स्तृणामः

लोट्

लिखतु	लिखताम्	लिखन्तु	प्र०	स्तृणातु	स्तृणीताम्	स्तृण्वन्तु
लिख	लिखतम्	लिखत	म०	स्तृणीहि	स्तृणीतम्	स्तृणीत
लिखानि	लिखाव	लिखाम	उ	स्तृणानि	स्तृणाव	स्तृणाम

लङ्

अलिखत्	अलिखताम्	अलिखन्	प्र	अस्तृणात्	अस्तृणीताम्	अस्तृण्वन्
अलिखः	अलिखतम्	अलिखत	म०	अस्तृणाः	अस्तृणीतम्	अस्तृणीत
अलिखम्	अलिखाव	अलिखाम	उ	अस्तृणाम्	अस्तृणाव	अस्तृणाम

विधिलिङ्

लिखेत्	लिखेताम्	लिखेयुः	प्र	स्तृणीयात्	स्तृणीयाताम्	स्तृणीयुः
लिखेः	लिखेतम्	लिखेत	म	स्तृणीयाः	स्तृणीयातम्	स्तृणीयात
लिखेयम्	लिखेव	लिखेम	उ	स्तृणीयाम्	स्तृणीयाव	स्तृणीयाम

—

लेखिष्यति	लेखिष्यतः	लेखिष्यन्ति	स्तृ	स्तरीति,	स्तरीष्यति (दोनों प्रकार से)
लेखिता	लेखितारौ	लेखितारः	स्तृ	स्तर्ता,	स्तरिता ,, ,,
लिख्यात्	लिख्यास्ताम्	लिख्यासुः	आ लिङ्	स्तीर्यात्	स्तीर्यास्ताम् •
अलेखिष्यत्	अलेखिष्यताम्		स्तृ	अस्तरीत्	अस्तरिष्यत् (दोनों प्रकार से)

लिट्

लिलेख	लिलिखतुः	लिलिखुः	प्र	तस्तार	तस्तरतुः	तस्तरुः
लिलेखिथ	लिलिखथुः	लिलिख	म	तस्तरिथ	तस्तरथुः	तस्तर
लिलेख	लिलिखिव	लिलिखिम	उ	तस्तर	तस्तरिव	तस्तरिम

लुट्(५)

अलेखीत्	अलेखिष्टाम्	अलेखिषुः	प्र	अस्तारीत्	अस्तर्टाम्	अस्तर्रु
अलेखीः	अलेखिष्टम्	अलेखिष्ट	म०	अस्तरीः	अस्तर्ष्टम्	अस्तर्ढ
अलेखिषम्	अलेखिष्व	अलेखिष्म	उ	अस्तरम्	अस्तार्व	अस्तार्म

लुङ्(ग) (४) अख्यासीत् अख्यासाम् (पूर्ववत्)

लुङ् (ग) (७) अस्तृक्षत् अस्तृक्षताम् अस्तृक्षन्

अस्तृक्षः अस्तृक्षतम् अस्तृक्षत

अस्तृक्षम् अस्तृक्षाव अस्तृक्षाम

(७६) स्तृञ् (छुना) (दे० अ० ४८)

लट्

स्तृणोति	स्तृणुतः	स्तृण्वन्ति	प्र	स्तृणाति	स्तृणीतः	स्तृण्वन्ति
स्तृणोषि	स्तृणुथः	स्तृणुथ	म	स्तृणासि	स्तृणीथः	स्तृणीथ
स्तृणोमि	स्तृणुवः	स्तृणुमः	उ०	स्तृणामि	स्तृणीवः	स्तृणीमः

लोट्

स्तृणोतु	स्तृणुताम्	स्तृण्वन्तु	प्र०	स्तृणातु	स्तृणीताम्	स्तृण्वन्तु
स्तृणु	स्तृणुतम्	स्तृणुत	म०	स्तृणीहि	स्तृणीतम्	स्तृणीत
स्तृणवानि	स्तृणवाव	स्तृणवाम	उ	स्तृणानि	स्तृणाव	स्तृणाम

लङ्

अस्तृणोत्	अस्तृणुताम्	अस्तृण्वन्	प्र	अस्तृणात्	अस्तृणीताम्	अस्तृण्वन्
अस्तृणोः	अस्तृणुतम्	अस्तृणुत	म०	अस्तृणाः	अस्तृणीतम्	अस्तृणीत
अस्तृणवम्	अस्तृणुव	अस्तृणुम	उ	अस्तृणाम्	अस्तृणाव	अस्तृणाम

विधिलिङ्

स्तृणुयात्	स्तृणुयाताम्	स्तृणुयुः	प्र	स्तृणीयात्	स्तृणीयाताम्	स्तृणीयुः
स्तृणुयाः	स्तृणुयातम्	स्तृणुयात	म	स्तृणीयाः	स्तृणीयातम्	स्तृणीयात
स्तृणुयाम्	स्तृणुयाव	स्तृणुयाम	उ	स्तृणीयाम्	स्तृणीयाव	स्तृणीयाम

—

स्तरिष्यति	स्तरिष्यतः	स्तरिष्यन्ति	स्तृ	स्तरीति,	स्तरीष्यति (दोनों प्रकार से)
स्तरिता	स्तरितारौ	स्तरितारः	स्तृ	स्तर्ता,	स्तरिता ,, ,,
स्तीर्यात्	स्तीर्यास्ताम्	स्तीर्यासुः	आ लिङ्	स्तृषीष्ट	स्तृषीयास्ताम् •
अस्तरिष्यत्	अस्तरिष्यताम्		स्तृ	अस्तरीत्	अस्तरिष्यत् (दोनों प्रकार से)

लिट्

तस्तार	तस्तरतुः	तस्तरुः	प्र	तस्तर्य	तस्तृयतुः	तस्तृयुः
तस्तरिथ	तस्तरथुः	तस्तर	म	तस्तरिथ	तस्तृयथुः	तस्तृय
तस्तार	तस्तरिव	तस्तरिम	उ	तस्तर	तस्तृयिव	तस्तृयिम

लुट्(क) (४)

अस्तारीत्	अस्तर्टाम्	अस्तर्रु	प्र	अस्तार्षीत्	अस्तर्षाम्	अस्तर्षुः
अस्तरीः	अस्तर्ष्टम्	अस्तर्ढ	म०	अस्तार्षीः	अस्तर्ष्टम्	अस्तार्ढ
अस्तरम्	अस्तार्व	अस्तार्म	उ	अस्तार्षम्	अस्तार्ष्व	अस्तार्ष्म

लुङ् (ग) (७) अस्तृक्षत् अस्तृक्षताम् अस्तृक्षन्

अस्तृक्षः अस्तृक्षतम् अस्तृक्षत

अस्तृक्षम् अस्तृक्षाव अस्तृक्षाम

(७७) कृ (फैलाना) (उ० अ० ४९)

	लट्				लट्	
किरति	किरतः	किरन्ति	प्र	गिरति	गिरतः	गिरन्ति
किरसि	किरथः	किरथ	म	गिरसि	गिरथः	गिरथ
किरामि	किरावः	किरामः	उ०	गिरामि	गिरावः	गिरामः
	लोट्				लोट्	
किरतु	किरताम्	किरन्तु	प्र०	गिरतु	गिरताम्	गिरन्तु
किर	किरतम्	किरत	म०	गिर	गिरतम्	गिरत
किराणि	किराव	किराम	उ	गिराणि	गिराव	गिराम
	लङ्				लङ्	
अकिरत्	अकिरताम्	अकिरन्	प्र	अगिरत्	अगिरताम्	अगिरन्
अकिरः	अकिरतम्	अकिरत	म०	अगिरः	अगिरतम्	अगिरत
अकिरम्	अकिराव	अकिराम	उ	अगिरम्	अगिराव	अगिराम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
किरेत्	किरेताम्	किरेयुः	प्र०	गिरेत्	गिरेताम्	गिरेयुः
किरेः	किरेतम्	किरेत	म	गिरेः	गिरेतम्	गिरेत
किरेयम्	किरेव	किरेम	उ	गिरेयम्	गिरेव	गिरेम

—

करिष्यति करीष्यति (दोनों प्रकार से) लृट् गरिष्यति गरीष्यति (दोनों प्रकार से)
करिता करीता (,) लुट् गरिता, गरीता (,,)
कीर्यात् कीर्यास्ताम् कीर्यासुः आ क्रिङ् गीर्यात् गीर्यास्ताम् गीर्यासुः
अकरिष्यत्, अकरीष्यत् (दोनों प्रकार से) लृङ् अगरिष्यत् अगरीष्यत् (दोनों प्रकार से)

	लिट्				लिट्	
चकार	चक्रतुः	चक्रुः	प्र	अगार	अगरतु	अगरुः
चकरिथ	चक्रथुः	चक्र	म	अगरिथ	अगरथु	अगर
चकार,चकर	चकरिव	चकरिम	उ	अगार, अगर	अगरिव	अगरिम
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अकारीत्	अकारिष्टाम्	अकारिषुः	प्र	अगारीत्	अगरिष्टाम्	अगरिषुः
अकरीः	अकारिष्टम्	अकारिष्ट	म	अगरीः	अगरिष्टम्	अगरिष्ट
अकारिषम्	अकारिष्व	अकारिष्म	उ	अगरिषम्	अगरिष्व	अगरिष्म

सूचना—(अचि विभाषा) गृ धातु के र् को ल् होता है, स्वर बाद में हो तो। अतः आशीर्लिङ् को छोड़कर उपान्त्य र के स्थान पर ल भाले भी रूप बनेंगे। जैसे—गिलति, गिल्यात्, अगिलत् गिलेत्, गलिष्यति गलिता अगलिष्यत्, जगाल, जगालीत्।

(७९) क्षिप् (फेंकना) (दि अ ५)

सूचना—धातु उभयपदी है। यहाँ परस्मैपद के ही रूप दिए हैं। आत्मनेपद में तुद् (८१) के तुल्य।

	लट्				लट्	
क्षिपति	क्षिप्तः	क्षिपन्ति	प्र	क्षिप्यते	क्षिप्येते	क्षिप्यन्ते
क्षिपसि	क्षिप्थः	क्षिप्थ	म	क्षिप्यसे	क्षिप्येथे	क्षिप्यध्वे
क्षिपामि	क्षिप्वः	क्षिप्मः	उ	क्षिप्ये	क्षिप्यावहे	क्षिप्यामहे
	लोट्				लोट्	
क्षिपतु	क्षिप्ताम्	क्षिपन्तु	प्र	क्षिप्यताम्	क्षिप्येताम्	क्षिप्यन्ताम्
क्षिप	क्षिप्तम्	क्षिप्त	म	क्षिप्यस्व	क्षिप्येथाम्	क्षिप्यध्वम्
क्षिपानि	क्षिपाव	क्षिपाम	उ	क्षिप्ये	क्षिप्यावहै	क्षिप्यामहै
	लङ्				लङ्	
अक्षिपम्	अक्षिप्ताम्	अक्षिपन्	प्र	अक्षिप्यत	अक्षिप्येताम्	अक्षिप्यन्त
अक्षिपः	अक्षिप्तम्	अक्षिप्त	म	अक्षिप्यथाः	अक्षिप्येथाम्	अक्षिप्यध्वम्
अक्षिपम्	अक्षिप्व	अक्षिप्याम	उ	अक्षिप्ये	अक्षिप्यावहि	अक्षिप्यामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
क्षिप्येत्	क्षिप्येताम्	क्षिप्युः	प्र	क्षिप्येत	क्षिप्येयाताम्	क्षिप्येरन्
क्षिप्येः	क्षिप्येतम्	क्षिप्येत	म	क्षिप्येथाः	क्षिप्येयाथाम्	क्षिप्येध्वम्
क्षिप्येयम्	क्षिप्येव	क्षिप्येम	उ	क्षिप्येय	क्षिप्येवहि	क्षिप्येमहि
	—				—	
क्षेप्स्यति	क्षेप्स्यतः	क्षेप्स्यन्ति	लृट्	मरिष्यति	मरिष्यतः	मरिष्यन्ति
क्षेप्ता	क्षेप्तारौ	क्षेप्तारः	तुट्	मर्ता	मर्तारौ	मर्तारः
क्षिप्यात्	क्षिप्यास्ताम्	क्षिप्यासुः	आ	शिङ् मृषीष्ट	मृषीयास्ताम्	
अक्षेप्स्यत्	अक्षेप्स्यताम्	अक्षेप्स्यन्	लृङ्	अमरिष्यत्	अमरिष्यताम्	•
	लिट्				लिट्	
चिक्षेप	चिक्षिपतुः	चिक्षिपुः	प	ममार	मम्रतुः	मम्रुः
चिक्षेपिथ	चिक्षिपथुः	चिक्षिप	म	ममर्थ	मम्रथुः	मम्र
चिक्षेप	चिक्षिप्व	चिक्षिप्म	उ•	ममार, ममर	मम्रिव	मम्रिम
	लुङ् (४)				लुङ् (८)	
अक्षैप्सीत्	अक्षैप्ताम्	अक्षैप्सुः	प्र	अमृत	अमृषाताम्	अमृषत
अक्षैप्सीः	अक्षैप्तम्	अक्षैप्त	म	अमृथाः	अमृषाथाम्	अमृढ्वम्
अक्षैप्सम्	अक्षैप्स्व	अक्षैप्स्म	उ	अमृषि	अमृष्वहि	अमृष्महि

(८०) मृ (मरना) (दि म ५)

सूचना—यह स्वर्, तुद्, खुद् और किद् में परस्मै है अन्यत्र आत्मनेपदी।

	लट्				लट्	
म्रियति	म्रियतः	म्रियन्ति	प्र	म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते
म्रियसि	म्रियथः	म्रियथ	म	म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे
म्रियामि	म्रियावः	म्रियामः	उ	म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे
	लोट्				लोट्	
म्रियतु	म्रियताम्	म्रियन्तु	प्र	म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्
म्रिय	म्रियतम्	म्रियत	म	म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्
म्रियाणि	म्रियाव	म्रियाम	उ	म्रिये	म्रियावहै	म्रियामहै
	लङ्				लङ्	
अम्रियम्	अम्रियताम्	अम्रियन्	प्र	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त
अम्रियः	अम्रियतम्	अम्रियत	म	अम्रियथाः	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्
अम्रियम्	अम्रियाव	अम्रियाम	उ	अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
म्रियेत्	म्रियेताम्	म्रियेयुः	प्र	म्रियेत	म्रियेयाताम्	म्रियेरन्
म्रियेः	म्रियेतम्	म्रियेत	म	म्रियेथाः	म्रियेयाथाम्	म्रियेध्वम्
म्रियेयम्	म्रियेव	म्रियेम	उ	म्रियेय	म्रियेवहि	म्रियेमहि
	—				—	
मरिष्यति	मरिष्यतः	मरिष्यन्ति	लृट्	मरिष्यति	मरिष्यतः	मरिष्यन्ति
मर्ता	मर्तारौ	मर्तारः	तुट्	मर्ता	मर्तारौ	मर्तारः
म्रियात्	म्रियास्ताम्	म्रियासुः	आ	शिङ् मृषीष्ट	मृषीयास्ताम्	
अमरिष्यत्	अमरिष्यताम्	अमरिष्यन्	लृङ्	अमरिष्यत्	अमरिष्यताम्	•
	लिट्				लिट्	
ममार	मम्रतुः	मम्रुः	प	ममार	मम्रतुः	मम्रुः
ममर्थ	मम्रथुः	मम्र	म	ममर्थ	मम्रथुः	मम्र
ममार, ममर	मम्रिव	मम्रिम	उ•	ममार, ममर	मम्रिव	मम्रिम
	लुङ् (४)				लुङ् (८)	
अमार्षीत्	अमार्ष्टाम्	अमार्षुः	प्र	अमृत	अमृषाताम्	अमृषत
अमार्षीः	अमार्ष्टम्	अमार्ष्ट	म	अमृथाः	अमृषाथाम्	अमृढ्वम्
अमार्षम्	अमार्ष्व	अमार्ष्म	उ	अमृषि	अमृष्वहि	अमृष्महि

तुदादिगण, उभयपदी धातुएँ

(८१) तुद् (दुःख देना) (दे अ० ५१)

परस्मैपद—अट				आत्मनेपद—अट		
तुदति	तुदतः	तुदन्ति	प्र	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
तुदसि	तुदथः	तुदथ	म	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
तुदामि	तुदावः	तुदामः	उ०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे

लोट्				लेट्		
तुदतु	तुदताम्	तुदन्तु	प्र	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
तुद	तुदतम्	तुदत	म०	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
तुदानि	तुदाव	तुदाम	उ	तुदै	तुदावहै	तुदामहै

लङ्				लङ्		
अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्	प्र	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
अतुदः	अतुदतम्	अतुदत	म	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम	उ०	अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः	प्र०	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
तुदेः	तुदेतम्	तुदेत	म	तुदेथाः	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
तुदेयम्	तुदेव	तुदेम	उ	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि

—				—		
तोस्यति	तोस्यतः	तोस्यन्ति	लृट्	तोस्यते	तोस्येते	तोस्यन्ते
तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः	लुट्	तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः
तुद्यात्	तुद्यास्ताम्	तुद्यासुः	आ० लिङ्	तुत्सीष्ट	तुत्सीयास्ताम्	
अतोत्स्यत्	अतोत्स्यताम्		लृङ्	अतोत्स्यत	अतोत्स्येताम्	

लिट्				लिट्		
तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः	प्र	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद	म	तुतुदिषे	तुतुदाथे	तुतुदिध्वे
तुतोद	तुतुदिव	तुतुदिम	उ०	तुतुदे	तुतुदिवहे	तुतुदिमहे

लुङ् (४)				लुङ् (४)		
अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	अतौत्सुः	प्र	अतुत्त	अतुत्साताम्	अतुत्सत
अतौत्सीः	अतौत्तम्	अतौत्त	म	अतुत्थाः	अतुत्साथाम्	अतुद्ध्वम्
अतौत्सम्	अतौत्स्व	अतौत्स्म	उ	अतुत्सि	अतुत्स्वहि	अतुत्स्महि

(८२) मुच (छोड़ना) (६ अ० ५१)

परस्मैपद—मुच्				आत्मनेपद—मुच्		
मुञ्चति	मुञ्चतः	मुञ्चन्ति	प्र	मुञ्चते	मुञ्चेते	मुञ्चन्ते
मुञ्चसि	मुञ्चथः	मुञ्चथ	म	मुञ्चसे	मुञ्चेथे	मुञ्चध्वे
मुञ्चामि	मुञ्चावः	मुञ्चामः	उ	मुञ्चे	मुञ्चावहे	मुञ्चामहे
लोट्				लोट्		
मुञ्चतु	मुञ्चताम्	मुञ्चन्तु	प्र	मुञ्चताम्	मुञ्चेताम्	मुञ्चन्ताम्
मुञ्च	मुञ्चतम्	मुञ्चत	म	मुञ्चस्व	मुञ्चेथाम्	मुञ्चध्वम्
मुञ्चानि	मुञ्चाव	मुञ्चाम	उ	मुञ्चै	मुञ्चावहै	मुञ्चामहै
लङ्				लङ्		
अमुञ्चत्	अमुञ्चताम्	अमुञ्चन्	प्र	अमुञ्चत	अमुञ्चेताम्	अमुञ्चन्त
अमुञ्चः	अमुञ्चतम्	अमुञ्चत	म०	अमुञ्चथाः	अमुञ्चेथाम्	अमुञ्चध्वम्
अमुञ्चम्	अमुञ्चाव	अमुञ्चाम	उ	अमुञ्चे	अमुञ्चावहि	अमुञ्चामहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
मुञ्चेत्	मुञ्चेताम्	मुञ्चेयुः	प्र	मुञ्चेत	मुञ्चेयाताम्	मुञ्चेरन्
मुञ्चेः	मुञ्चेतम्	मुञ्चेत	म	मुञ्चेथाः	मुञ्चेयाथाम्	मुञ्चेध्वम्
मुञ्चेयम्	मुञ्चेव	मुञ्चेम	उ	मुञ्चेय	मुञ्चेवहि	मुञ्चेमहि
—				—		
मोक्ष्यति	मोक्ष्यतः	मोक्ष्यन्ति	लृट्	मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते
मोक्ष्य	मोक्तारौ	मोक्तारः	लुट्	मोक्ष्य	मोक्तारौ	मोक्तारः
मुच्यात्	मुच्यास्ताम्	मुच्यासुः	आ०लिङ्	मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	
अमोक्ष्यत्	अमोक्ष्यताम्	अमोक्ष्यन्	लृङ्	अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	
लिट्				लिट्		
मुमोच	मुमुचतुः	मुमुचुः	प्र	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
मुमोचिथ	मुमुचथुः	मुमुच	म	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
मुमोच	मुमुचिव	मुमुचिम	उ	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे
लुङ् (१)				लुङ् (४)		
अमुचत्	अमुक्ताम्	अमुचन्	प्र	अमुक्त	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
अमुचः	अमुक्तम्	अमुक्त	म	अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
अमुचम्	अमुक्ष्व	अमुक्ष्म	उ	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि

(७) रुधादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु रुध् (रोकना) है अतः गण का नाम रुधादिगण पड़ा। (रुधादिभ्यः श्नम्) रुधादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु के प्रथम स्वर के बाद श्नम् (न) विकरण लगता है। यह श्नम् न् हो जाता है। लट आदि में धातु को गुण नहीं होता।

(२) (क) सन्धि-नियमों के अनुसार यथास्थान धातु के ध् को द् या त्, द् को त्, ज् को ग् या क् होते हैं। (ख) विकरण के न को परस्मैपद के लट्, लोट् और लङ् के एकवचन में प्रायः न रहेगा, अन्यत्र न् होगा। (ग) विकरण के न् को सन्धि-नियमानुसार ञ् और म् भी होता है। "न" का विशेष विवरण सं रूप से समझें।

(३) इस गण में २५ धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे। न या न् धातु के प्रथम स्वर के बाद लगावें। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लुङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही लगेंगे। सेट् में सं रूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् में नहीं।।

परस्मैपद (सं रूप)				आत्मनेपद (सं रूप)			
लट्				**लट्**			
(न) ति	(न्) तः	(न्) अन्ति	प्र०	(न्) ते	(न्) आते	(न्) अन्ते	
(न) सि	(न्) थः	(न्) थ	म	(न्) से	(न्) आथे	(न्) ध्वे	
(न) मि	(न्) वः	(न्) मः	उ	(न्) ए	(न्) वहे	(न्) महे	
लोट्				**लोट्**			
(न) तु	(न्) ताम्	(न्) अन्तु	प्र	(न्) ताम्	(न्) आताम्	(न्) अताम्	
(न्) हि	(न्) तम्	(न्) त	म	(न्) स्व	(न्) आथाम्	(न्) ध्वम्	
(न) आनि	(न) आव	(न) आम	उ	(न) ऐ	(न) आवहै	(न) आमहै	
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				**लङ्** (धातु से पूर्व अ या आ)			
(न) त्	(न्) ताम्	(न्) अन्	प्र	(न्) त	(न्) आताम्	(न्) अत	
(न) ः	(न्) तम्	(न्) त	म	(न्) थाः	(न्) आथाम्	(न्) ध्वम्	
(न) अम्	(न्) व	(न्) म	उ	(न्) इ	(न्) वहि	(न्) महि	
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**			
(न्) यात्	(न्) याताम्	(न्) युः	प्र	(न्) इत	(न्) ईयाताम्	(न्) ईरन्	
(न्) याः	(न्) यातम्	(न्) यात	म	(न्) ईथाः	(न्) ईयाथाम्	(न्) ईध्वम्	
(न्) याम्	(न्) याव	(न्) याम	उ	(न्) ईय	(न्) ईवहि	(न्) ईमहि	

(८३) छिद् (काटना) (रु स ५२)

सूचना—केवल परस्मै के रूप दिए हैं।

लट्

छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति	प्र
छिनत्सि	छिन्त्थ	छिन्त्थ	म
छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः	उ

लोट्

छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु	प्र
छिन्धि	छिन्तम्	छिन्त	म
छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम	उ

लङ्

अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्	प्र
अच्छिनः	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त	म
अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म	उ

विधिलिङ्

छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः	प्र
छिन्द्याः	छिन्द्यातम्	छिन्द्यात	म
छिन्द्याम्	छिन्द्याव	छिन्द्याम	उ

—

छेत्स्यति	छेत्स्यतः	छेत्स्यन्ति	लृट्
छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः	लुट्
छिद्यात्	छिद्यास्ताम्	छिद्यासुः	आ
अच्छेत्स्यत्	अच्छेत्स्यताम्		लृङ्

छिद्

चिच्छेद	चिच्छिदतुः	चिच्छिदुः	प्र
चिच्छेदिथ	चिच्छिदथुः	चिच्छिद	म
चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिम	उ

लुङ् (क) (४)

अच्छैत्सीत्	अच्छैत्ताम्	अच्छैत्सुः	प्र
अच्छैत्सीः	अच्छैत्तम्	अच्छैत्त	म
अच्छैत्सम्	अच्छैत्स्व	अच्छैत्स्म	उ

(ग) (२) अच्छिदत् अच्छिन्ताम् आदि

(८४) भिद् (तोड़ना) (रु स ५२)

सूचना—केवल परस्मै के रूप दिए हैं।

लट्

भिनत्ति	भिन्तः	भिन्दन्ति	प्र
भिनत्सि	भिन्त्थ	भिन्त्थ	म
भिनद्मि	भिन्द्वः	भिन्द्मः	उ

लोट्

भिनत्तु	भिन्ताम्	भिन्दन्तु	प्र
भिन्धि	भिन्तम्	भिन्त	म
भिनदानि	भिनदाव	भिनदाम	उ

लङ्

अभिनत्	अभिन्ताम्	अभिन्दन्	प्र
अभिनः	अभिन्तम्	अभिन्त	म
अभिनदम्	अभिन्द्व	अभिन्द्म	उ

विधिलिङ्

भिन्द्यात्	भिन्द्याताम्	भिन्द्युः	प्र
भिन्द्याः	भिन्द्यातम्	भिन्द्यात	म
भिन्द्याम्	भिन्द्याव	भिन्द्याम	उ

—

भेत्स्यति	भेत्स्यतः	भेत्स्यन्ति	लृट्
भेत्ता	भेत्तारौ	भेत्तारः	लुट्
भिद्यात्	भिद्यास्ताम्	भिद्यासुः	आ
अभेत्स्यत्	अभेत्स्यताम्		लृङ्

भिद्

बिभेद	बिभिदतुः	बिभिदुः	प्र
बिभेदिथ	बिभिदथुः	बिभिद	म
बिभेद	बिभिदिव	बिभिदिम	उ

लुङ् (क) (४)

अभैत्सीत्	अभैत्ताम्	अभैत्सुः	प्र
अभैत्सीः	अभैत्तम्	अभैत्त	म
अभैत्सम्	अभैत्स्व	अभैत्स्म	उ

(ग) (२) अभिदत् अभिन्ताम् आदि

(८५) हिंस् (हिंसा करना) (१ स ५१) (८६) भंज् (तोड़ना) (१ अ ५१)

परस्मैपदी				परस्मैपदी		
लट्				लट्		
हिनस्ति	हिंसतः	हिंसन्ति	प्र	भनक्ति	भङ्क्तः	भञ्जन्ति
हिनस्ति	हिंस्थः	हिंस्थ	म	भनक्षि	भङ्क्थः	भङ्क्थ
हिनस्मि	हिंस्वः	हिंस्मः	उ०	भनज्मि	भञ्ज्वः	भञ्ज्मः
लोट्				लोट		
हिनस्तु	हिंसताम्	हिंसन्तु	प्र	भनक्तु	भङ्क्ताम्	भञ्जन्तु
हिंधि	हिंसतम्	हिंसत	म	भङ्ग्धि	भङ्क्तम्	भङ्क्त
हिनसानि	हिनसाव	हिनसाम	उ	भनजानि	भनजाव	भनजाम
लङ्				लङ्		
अहिनत्	अहिंसताम्	अहिंसन्	प्र	अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्
अहिनः	अहिंसतम्	अहिंसत	म	अभनक्	अभङ्क्तम्	अभङ्क्त
अहिनवम्	अहिंस्व	अहिंस्म	उ	अभनजम्	अभञ्ज्व	अभञ्ज्म
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
हिंस्यात्	हिंस्यताम्	हिंस्युः	प्र	भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्युः
हिंस्याः	हिंस्यातम्	हिंस्यात	म	भञ्ज्याः	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात
हिंस्याम्	हिंस्याव	हिंस्याम	उ	भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम
—				—		
हिंसिष्यति	हिंसिष्यतः	हिंसिष्यन्ति	लृट्	भङ्क्ष्यति	भङ्क्ष्यतः	भङ्क्ष्यन्ति
हिंसिता	हिंसितारौ	हिंसितारः	लुट्	भङ्क्ता	भङ्क्तारौ	भङ्क्तारः
हिंस्यात्	हिंस्यास्ताम्	हिंस्यासुः	आ लिङ्	भज्यात्	भज्यास्ताम्	भज्यासुः
अहिंसिष्यत्	अहिंसिष्यताम्		लृङ्	अभङ्क्ष्यत्	अभङ्क्ष्यताम्	
लिट्				लिट्		
जिहिंस	जिहिंसतुः	जिहिंसुः	प्र	बभञ्ज	बभञ्जतुः	बभञ्जुः
जिहिंसिथ	जिहिंसथुः	जिहिंस	म	बभञ्जिथ, बभङ्क्थ	बभञ्जथुः	बभञ्ज
जिहिंस	जिहिंस्व	जिहिंस्म	उ	बभञ्ज	बभञ्जिव	बभञ्जिम
लुङ् (५)				लुङ् (४)		
अहिंसीत्	अहिंसिष्टाम्	अहिंसिषुः	प्र	अभाङ्क्षीत्	अभाङ्क्षाम्	अभाङ्क्षुः
अहिंसीः	अहिंसिष्टम्	अहिंसिष्ट	म	अभाङ्क्षीः	अभाङ्क्षम्	अभाङ्क्ष
अहिंसिषम्	अहिंसिष्व	अहिंसिष्म	उ	अभाङ्क्षम्	अभाङ्क्ष्व	अभाङ्क्ष्म

रुधादिगण । उभयपदी धातुएँ

(८७) रुध् (रोकना अड़ना) (इ अ ५४)

	परस्मैपद—रुद्			आत्मनेपद—रुद्	
	रुणद्धि रुन्धः रुन्धन्ति	प्र	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
	रुणत्सि रुन्धः रुन्ध	म	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
	रुणध्मि रुन्ध्वः रुन्ध्मः	उ	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे
	लोट्			लोट्	
	रुणद्धु रुन्धाम् रुन्धन्तु	प्र	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
	रुन्धि रुन्धम् रुन्ध	म	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
	रुणधानि रुणधाव रुणधाम	उ	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै
	लङ्			लङ्	
	अरुणत् अरुन्धाम् अरुन्धन्	प्र	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
	अरुणः अरुन्धम् अरुन्ध	म	अरुन्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्ध्वम्
	अरुणम् अरुन्ध अरुन्ध्व	उ	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि
	विधिलिङ्			विधिलिङ्	
	रुन्ध्यात् रुन्ध्याताम् रुन्ध्युः	प्र	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
	रुन्ध्याः रुन्ध्यातम् रुन्ध्यात	म	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
	रुन्ध्याम् रुन्ध्याव रुन्ध्याम	उ	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि
	—			—	
	रोत्स्यति रोत्स्यतः रोत्स्यन्ति	स्रद्	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
	रोत्स्यसि रोत्स्यथः रोत्स्यथ	स्रद्	रोत्स्यसे	रोत्स्येथे	रोत्स्यध्वे
	रोत्स्यामि रोत्स्यावः रोत्स्यामः	उ	रोत्स्ये	रोत्स्यावहे	रोत्स्यामहे
	रुध्यात् रुध्यास्ताम् रुध्यासुः	आ	क्रिद्—रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्	
	अरोत्स्यत् अरोत्स्यताम् •	स्रद्	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	
		क्रिद्		क्रिद्	
	अरोध् अरुद्धाम् अरुधन्	प्र	अरुधत्	अरुद्धाताम्	अरुधत
	अरोधीः अरुद्धम् अरुद्ध	म	अरुद्धाः	अरुधाथाम्	अरुद्ध्वम्
	अरोधम् अरुध्व अरुन्ध्म	उ	अरुधि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि
	लुङ्—(क) (४)			लुङ्—(४)	
	अरौत्सीत् अरौद्धाम् अरौत्सुः	प्र	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
	अरौत्सीः अरौद्धम् अरौद्ध	म	अरुद्धाः	अरुत्साथाम्	अरुद्ध्वम्
	अरौत्सम् अरौत्स्व अरौत्स्म	उ	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि
	(ग) (२) अरुधत् अरुधताम् अरुधन्	प्र			
	अरुधः अरुधतम् अरुधत	म			
	अरुधम् अरुधाव अरुधाम	उ			

(८८) भुज् (पालन करना) (रु अ ५४) (८८) भुज् (खाना) (रु अ ५४)

भुनक्ति—पालन करना अर्थ में परस्मै पदी है।

भुनक्ति भुङ्क्तः भुञ्जन्ति प्र
भुनक्षि भुङ्क्थः भुङ्क्थ म
भुनज्मि भुञ्ज्वः भुञ्ज्मः उ

लोट्

भुनक्तु भुङ्क्ताम् भुञ्जन्तु प्र
भुङ्ग्धि भुङ्क्तम् भुङ्क्त म
भुनजानि भुनजाव भुनजाम उ

लङ्

अभुनक् अभुङ्क्ताम् अभुञ्जन् प्र
अभुनक् अभुङ्क्तम् अभुङ्क्त म
अभुनजम् अभुञ्ज्व अभुञ्ज्म उ

विधिलिङ्

भुञ्ज्यात् भुञ्ज्याताम् भुञ्ज्युः प्र
भुञ्ज्याः भुञ्ज्यातम् भुञ्ज्यात म
भुञ्ज्याम् भुञ्ज्याव भुञ्ज्याम उ

—

भोक्ष्यति भोक्ष्यतः भोक्ष्यन्ति लृट्
भोक्ता भोक्तारौ भोक्तारः लृट्
भुक्षीष्ट भुक्षीयास्ताम् आ॰लिङ्
अभोक्ष्यत् अभोक्ष्यताम् लृङ्

लिट्

बुभोज बुभुजतुः बुभुजुः प्र
बुभोजिथ बुभुजथुः बुभुज म
बुभोज बुभुजिव बुभुजिम उ

लुङ् (४)

अभौक्षीत् अभौक्ष्टाम् अभौक्षुः प्र
अभौक्षीः अभौक्ष्टम् अभौक्ष्ट म
अभौक्षम् अभौक्ष्व अभौक्ष्म उ

भुनक्ते—खाना उपभोग अर्थ में आत्मनेपदी है।

भुङ्क्ते भुञ्जाते भुञ्जते
भुङ्क्षे भुञ्जाथे भुङ्ग्ध्वे
भुञ्जे भुञ्ज्वहे भुञ्ज्महे

लोट्

भुङ्क्ताम् भुञ्जाताम् भुञ्जताम्
भुङ्क्ष्व भुञ्जाथाम् भुङ्ग्ध्वम्
भुनजै भुनजावहै भुनजामहै

लङ्

अभुङ्क्त अभुञ्जाताम् अभुञ्जत
अभुङ्क्थाः अभुञ्जाथाम् अभुङ्ग्ध्वम्
अभुञ्जि अभुञ्ज्वहि अभुञ्ज्महि

विधिलिङ्

भुञ्जीत भुञ्जीयाताम् भुञ्जीरन्
भुञ्जीथाः भुञ्जीयाथाम् भुञ्जीध्वम्
भुञ्जीय भुञ्जीवहि भुञ्जीमहि

—

भोक्ष्यते भोक्ष्येते भोक्ष्यन्ते
भोक्षसे भोक्ष्येथे भोक्ष्यध्वे
भोक्ष्ये भोक्ष्यावहे भोक्ष्यामहे

आशीर्लिङ्

भुक्षीष्ट भुक्षीयास्ताम्

लृङ्

अभोक्ष्यत अभोक्ष्येताम्

लिट्

बुभुजे बुभुजाते बुभुजिरे
बुभुजिषे बुभुजाथे बुभुजिध्वे
बुभुजे बुभुजिवहे बुभुजिमहे

लुङ् (५)

अभुक्त अभुक्षाताम् अभुक्षत
अभुक्थाः अभुक्षाथाम् अभुग्ध्वम्
अभुक्षि अभुक्ष्वहि अभुक्ष्महि

(८०) युज् (लगना जोड़ना, मिलाना नियुक्त करना) (रु अ ५५)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
युनक्ति	युङ्क्तः	युञ्जन्ति	प्र	युङ्क्ते	युञ्जाते	युञ्जते
युनक्षि	युङ्क्थः	युङ्क्थ	म	युङ्क्षे	युञ्जाथे	युङ्ध्वे
युनज्मि	युञ्ज्वः	युञ्ज्मः	उ	युञ्जे	युञ्ज्वहे	युञ्ज्महे
	लोट्				लोट्	
युनक्तु	युङ्क्ताम्	युञ्जन्तु	प्र	युङ्क्ताम्	युञ्जाताम्	युञ्जताम्
युङ्धि	युङ्क्तम्	युङ्क्त	म	युङ्क्ष्व	युञ्जाथाम्	युङ्ध्वम्
युनजानि	युनजाव	युनजाम	उ	युनजै	युनजावहै	युनजामहै
	लङ्				लङ्	
अयुनक्	अयुङ्क्ताम्	अयुञ्जन्	प्र	अयुङ्क्त	अयुञ्जाताम्	अयुञ्जत
अयुनक्	अयुङ्क्तम्	अयुङ्क्त	म	अयुङ्क्थाः	अयुञ्जाथाम्	अयुङ्ध्वम्
अयुनजम्	अयुञ्ज्व	अयुञ्ज्म	उ	अयुञ्जि	अयुञ्ज्वहि	अयुञ्ज्महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
युञ्ज्यात्	युञ्ज्याताम्	युञ्ज्युः	प्र	युञ्जीत	युञ्जीयाताम्	युञ्जीरन्
युञ्ज्याः	युञ्ज्यातम्	युञ्ज्यात	म	युञ्जीथाः	युञ्जीयाथाम्	युञ्जीध्वम्
युञ्ज्याम्	युञ्ज्याव	युञ्ज्याम	उ	युञ्जीय	युञ्जीवहि	युञ्जीमहि
	—				—	
योक्ष्यति	योक्ष्यतः	योक्ष्यन्ति	लृट्	योक्ष्यते	योक्ष्येते	योक्ष्यन्ते
योक्ष्यसि	योक्ष्यथः	योक्ष्यथ	लृट्	योक्ष्यसे	योक्ष्येथे	योक्ष्यध्वे
युज्यात्	युज्यास्ताम्	युज्यासुः	आ लिङ्	युक्षीष्ट	युक्षीयास्ताम्	
अयोक्ष्यत्	अयोक्ष्यताम्		लृङ्	अयोक्ष्यत	अयोक्ष्येताम्	
	लिट्				लिट्	
युयोज	युयुजतुः	युयुजुः	प्र	युयुजे	युयुजाते	युयुजिरे
युयोजिथ	युयुजथुः	युयुज	म	युयुजिषे	युयुजाथे	युयुजिध्वे
युयोज	युयुजिव	युयुजिम	उ	युयुजे	युयुजिवहे	युयुजिमहे
	लुङ् (क) (४)				लुङ् (४)	
अयौक्षीत्	अयौक्ष्टाम्	अयौक्षुः	प्र	अयुक्त	अयुक्षाताम्	अयुक्षत
अयौक्षीः	अयौक्ष्टम्	अयौक्ष्ट	म	अयुक्थाः	अयुक्षाथाम्	अयुग्ध्वम्
अयौक्षम्	अयौक्ष्व	अयौक्ष्म	उ	अयुक्षि	अयुक्ष्वहि	अयुक्ष्महि
	लुङ् (ल) (२)				—	
अयुक्त्	अयुक्ताम्	अयुजन् आदि				

(८) तनादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु तन् (फैलाना) है, अतः गण का नाम तनादि गण पड़ा। (तनादिकृभ्भ्य उः) तनादिगण की धातुओं में तन्, क्षण्, कृ और षिषिक्लि में धातु और प्रत्यय के बीच में 'उ' विकरण लगता है।

(२) (क) धातुओं के उपधा के उ और ऋ को तन् आदि में विकल्प से गुण होता है। अतः उनके तन् आदि में दो रूप बनेंगे। क्षिप्>क्षिणोति, क्षेपोति। (ख) (अत उत्सार्वधातुके) कृ धातु के ऋ को उर् हो जाता है, किन्तु किन् वाले स्थानों पर। अतः परस्मैपद में तन् क्षण्, कृ षिषिक्लि में द्विवचन और बहुवचन में ऋ को उर् होता है। आत्मनेपद में तन् आदि में सर्वत्र उर्। क्षण् उत्तमपुरुष में दोनों पदों में गुण ही होता है। (ग) उ विकरण को परस्मै तन् आदि के एक में गुण होता है। परस्मै० षिषिक्लि और आत्मने में उ ही रहता है। क्षण् उ पु में गुण होगा।

(३) इस गण में १ धातुएँ हैं।

(४) तन् आदि में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित बनेंगे। तन्, क्षण्, षिषिक्लि और कृ में पृ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही बनेंगे।

परस्मैपद (सं रूप)				आत्मनेपद (सं रूप)		
तन्				तन्		
तोति	उतः	वन्ति	प्र	उते	वाते	वते
तोषि	उथः	उथ	म	उषे	वाथे	उध्वे
तोमि	उवः, वः	उमः, मः	उ	वे	उवहे, वहे	उमहे, महे
क्षण्				क्षण्		
क्षोतु	उताम्	वन्तु	प्र	उताम्	वाताम्	वताम्
उ	उतम्	उत	म	उष्व	वाथाम्	उध्वम्
क्षणानि	क्षणाव	क्षणाम	उ	अवै	क्षणावहै	क्षणामहै
कृ (धातु से पूर्व अ या आ)				कृ (धातु से पूर्व अ या आ)		
क्रोत्	उताम्	वन्	प्र	उत	वाताम्	वत
क्रोः	उतम्	उत	म	उषाः	वाथाम्	उध्वम्
अवम्	उव, व	उम, म	उ	वि	उवहि, वहि	उमहि, महि
षिषिक्लि				षिषिक्लि		
उषात्	उषास्ताम्	उषुः	प्र०	षीत	षीयास्ताम्	षीरन्
उषाः	उषास्तम्	उषास्त	म	षीष्याः	षीयास्थाम्	षीध्वम्
उषाम्	उषास्व	उषास्म	उ	षीय	षीवहि	षीमहि

तनादिगण । उभयपदी धातुएँ

(१०) तन् (फैलाना) (से म ५५)

परस्मैपद—कर्				आत्मनेपद—कर्		
तनोति	तनुतः	तन्वन्ति	प्र०	तनुते	तन्वाते	तन्वते
तनोषि	तनुथः	तनुथ	म	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
तनोमि	तनुवः	तनुमः	उ	तन्वे	तनुवहे	तनुमहे
	लोट्				लोट्	
तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु	प्र०	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
तनु	तनुतम्	तनुत	म	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
तनवानि	तनवाव	तनवाम	उ	तनवै	तनवावहै	तनवामहै
	लङ्				लङ्	
अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्	प्र	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
अतनोः	अतनुतम्	अतनुत	म	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
अतनवम्	अतनुव	अतनुम	उ	अतन्वि	अतनुवहि	अतनुमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः	प्र	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात	म०	तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम	उ	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि
	—				—	
तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति	लृट्	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
तनिता	तनितारौ	तनितारः	लृट्	तनिता	तनितारौ	तनितारः
तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासुः	आ लिङ्	तनिषीष्ट	तनिषीयास्ताम्	
अतनिष्यत्	अतनिष्यताम्		लृङ्	अतनिष्यत	अतनिष्येताम्	
	किर्				किर्	
ततान	तेनतुः	तेनुः	प्र	तेने	तेनाते	तेनिरे
तेनिथ	तेनथुः	तेन	म	तेनिषे	तेनाथे	तेनिध्वे
तत्वान,तत्वन	तेनिव	तेनिम	उ	तेने	तेनिवहे	तेनिमहे
	लुङ् (क) (५)				लुङ् (५)	
अतनीत्	अतनिष्टाम्	अतनिषुः	प्र	अतनिष्ट,अतनिष्ठ	अतनिषाताम्	अतनिषत
अतनीः	अतनिष्टम्	अतनिष्ट	म	अतनिथाः	अतनिषाथाम्	अतनिढ्वम्
अतनिषम्	अतनिष्व	अतनिष्म	उ	अतनिषि	अतनिष्वहि	अतनिष्महि
	लुङ् (ख) (५)				—	
अत्यनीत्	अत्यनिष्टाम्	आदि (पूर्ववत्)				

(९१) डु (करना) (ई. अ २१ २८)

परस्मैपद—कृ				आत्मनेपद—कृ		
करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	प्र	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
करोषि	कुरुथः	कुरुथ	म	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
करोमि	कुर्वः	कुर्मः	उ	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे
लोट्				लोट्		
करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु	प्र	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
कुरु	कुरुतम्	कुरुत	म	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
करवाणि	करवाव	करवाम	उ	करवै	करवावहै	करवामहै
लङ्				लङ्		
अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	प्र	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत	म	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	उ	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः	प्र	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात	म	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम	उ	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि
—				—		
करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति	लृट्	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	लुट्	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः	आ शिष्	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	
अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्		लृङ्	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	
लिट्				लिट		
चकार	चक्रतुः	चक्रुः	प्र	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
चकर्थ	चक्रथुः	चक्र	म	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
चकार,चकर	चकृव	चकृम	उ	चकृवे	चकृवहे	चकृमहे
लुङ् (४)				लुङ् (४)		
अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः	प्र	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट	म	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म	उ	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि
—				—		

(९) क्र्यादिगण

१ इस गण की प्रथम धातु क्री (मोल लेना) है, अतः गण का नाम क्र्यादिगण पड़ा। (क्रयादिभ्यः श्ना) क्र्यादिगण की धातुओं से छट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में श्ना (ना) विकरण होता है।

२ (क) छट् आदि में धातु को गुण नहीं होता। (ख) 'ना' विकरण परस्मै० के छट्, लोट्, लङ् के एक० में ना रहता है। दोनों पदों में लोट् उ पु० में नि होगा। अन्यत्र ना को नी होता है। यहाँ बाद में स्वर होता है यहाँ ना का न् रहता है। परस्मै लोट म पु एक० में ना को नी होता है या आन होता है। (ग) धातु की उपधा में न् होगा तो छट् आदि में न् का लोप हो जाएगा। (घ) (इक: यणचि) अजन्त धातुओं के बाद परस्मै लोट् म पु० एक० में हि को धान हो जाएगा और हि का लोप होगा। अतः 'धान' शेष रहेगा। वन्द् > वधान, ग्रह् > गृहाण। (ङ) (आदीनां ह्रस्वः) पू आदि धातुओं को छट् आदि में ह्रस्व होगा। पू > पुनाति। ग्रह् > गृनाति। (च) (ग्रहोऽलिटि दीर्घः) ग्रह् धातु के बाद इ को ई हो जाएगा, लिट् को छोड़कर। ग्रहीष्यति, ग्रहीता।

३ इस गण में ६१ धातुएँ हैं।

४ छट् आदि में धातु के बाद में संक्षिप्तरूप लगेंगे। तृट्, छट्, आशीर्लिङ् और लुट् में पृ० १४४ पर निर्दिष्ट से रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप)					आत्मनेपद (सं० रूप)	
	छट्				छट्	
नाति	नीतः	नन्ति	प्र	नीते	नाते	नते
नाषि	नीथः	नीथ	म०	नीषे	नाषे	नीध्वे
नामि	नीवः	नीमः	उ०	ने	नामहे	नीमहे
	लोट्				लोट्	
नातु	नीताम्	नन्तु	प्र०	नीताम्	नाताम्	नताम्
नीहि (धान)	नीतम्	नीत	म	नीष्व	नाषाम्	नीध्वम्
नानि	नाव	नाम	उ०	नै	नावै	नामै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)	
नात्	नीताम्	नन्	प्र०	नीताम्	नाताम्	नत
नाः	नीतम्	नीत	म०	नीथाः	नाथाम्	नीध्वम्
नाम्	नीव	नीम	उ०	नि	नावहि	नामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
नीयात्	नीयाताम्	नीयुः	प्र०	नीत	नीयाताम्	नीरन्
नीयाः	नीयातम्	नीयात	म	नीयाः	नीयाथाम्	नीध्वम्
नीयाम्	नीयाव	नीयाम	उ	नीय	नीयावहि	नीमहि

क्र्यादिगण । परस्मैपदी धातुएँ

(९२) बन्ध् (बाँधना) (से० अ ५७)

		बन्ध्		
बध्नाति	बध्नीतः	बध्नन्ति	प्र	
बध्नासि	बध्नीथः	बध्नीथ	म	
बध्नामि	बध्नीवः	बध्नीमः	उ०	
		लोट्		
बध्नातु	बध्नीताम्	बध्नन्तु	प्र	
बधान	बध्नीतम्	बध्नीत	म	
बध्नानि	बध्नाव	बध्नाम	उ०	
		लङ्		
अबध्नात्	अबध्नीताम्	अबध्नन्	प्र	
अबध्नाः	अबध्नीतम्	अबध्नीत	म	
अबध्नाम्	अबध्नीव	अबध्नीम	उ	
		विधिलिङ्		
बध्नीयात्	बध्नीयाताम्	बध्नीयुः	प्र	
बध्नीयाः	बध्नीयातम्	बध्नीयात	म	
बध्नीयाम्	बध्नीयाव	बध्नीयाम	उ	
		—		
भन्त्स्यति	भन्त्स्यतः	भन्त्स्यन्ति	लृट्	
बन्द्धा	बन्द्धारौ	बन्द्धारः	लुट्	
बध्यात्	बध्यास्ताम्	बध्यासुः	आ लिङ्	
अभन्त्स्यत्	अभन्त्स्यताम्		लुङ्	
		सिच्		
बबन्ध	बबन्धतुः	बबन्धुः	प०	
बबन्धिथ	बबन्धथुः	बबन्ध	म	
बबन्ध	बबन्धिव	बबन्धिम	उ	
		सिच् (४)		
अभान्त्सीत्	अभान्द्धाम्	अभान्त्सुः	प्र	
अभान्त्सीः	अभान्द्धम्	अभान्द्ध	म	
अभान्त्सम्	अभान्त्स्व	अभान्त्स्म	उ	

(९३) मन्थ् (मथना) (से अ ५७)

		मन्थ्		
मन्थाति	मन्थीतः	मन्थन्ति	प्र	
मन्थासि	मन्थीथः	मन्थीथ	म	
मन्थामि	मन्थीवः	मन्थीमः	उ०	
		लोट्		
मन्थातु	मन्थीताम्	मन्थन्तु	प्र	
मन्थान	मन्थीतम्	मन्थीत	म	
मन्थानि	मन्थाव	मन्थाम	उ०	
		लङ्		
अमन्थात्	अमन्थीताम्	अमन्थन्	प्र	
अमन्थाः	अमन्थीतम्	अमन्थीत	म	
अमन्थाम्	अमन्थीव	अमन्थीम	उ	
		विधिलिङ्		
मन्थीयात्	मन्थीयाताम्	मन्थीयुः	प्र	
मन्थीयाः	मन्थीयातम्	मन्थीयात	म	
मन्थीयाम्	मन्थीयाव	मन्थीयाम	उ	
		—		
मन्थिष्यति	मन्थिष्यतः	मन्थिष्यन्ति	लृट्	
मन्थिता	मन्थितारौ	मन्थितारः	लुट्	
मथ्यात्	मथ्यास्ताम्	मथ्यासुः	आ लिङ्	
अमन्थिष्यत्	अमन्थिष्यताम्		लुङ्	
		सिच्		
ममन्थ	ममन्थतुः	ममन्थुः	प०	
ममन्थिथ	ममन्थथुः	ममन्थ	म	
ममन्थ	ममन्थिव	ममन्थिम	उ	
		सिच् (५)		
अमन्थीत्	अमन्थिष्टाम्	अमन्थिषुः	प्र	
अमन्थीः	अमन्थिष्टम्	अमन्थिष्ट	म	
अमन्थिषम्	अमन्थिष्व	अमन्थिष्म	उ	

उभयपदी धातुएँ

(९४) श्री (मोल लेना) (३० अ० ५८)

परस्मैपद—सर्व				आत्मनेपद—सर्व		
क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति	प्र	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ	म	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः	उ०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे
	लोट्				लोट्	
क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	प्र	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत	म	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	उ०	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै
	लङ्				लङ्	
अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्	प्र०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत	म	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम	उ	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः	प्र	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात	म	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम	उ	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि
	—				—	
क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति	लृट्	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः	लुट्	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
क्रीयात्	क्रीयास्ताम्	क्रीयासुः	आ० लिङ्	क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्	
अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्		लृङ्	अक्रेष्यत	अक्रेष्येताम्	
	लिट्				लिट्	
चिक्राय	चिक्रियतुः	चिक्रियुः	प्र	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
चिक्रयिथ, चिक्रेथ	चिक्रियथुः	चिक्रिय	म	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिध्वे
चिक्राय, चिक्राय	चिक्रियिव	चिक्रियिम	उ	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अक्रैषीत्	अक्रेष्टाम्	अक्रेषुः	प्र	अक्रेष्ट	अक्रेषाताम्	अक्रेषत
अक्रैषीः	अक्रेष्टम्	अक्रेष्ट	म	अक्रेष्ठाः	अक्रेषाथाम्	अक्रेढ्वम्
अक्रैषम्	अक्रेष्व	अक्रेष्म	उ	अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेष्महि

(९५) ग्रह् (पकड़ना) (रि अ० ५८)

सूचना—कर्त्र आदि में ग्रह् को गृह् होगा। सूचना—कर्त्र आदि में ग्रह् को गृह्।

परस्मैपद—कर्त्र				आत्मनेपद—कर्त्र		
गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति	प्र	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ	म	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः	उ	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे
	लोट्				लोट्	
गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु	प्र	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत	म	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम	उ	गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै
	लङ्				लङ्	
अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्	प्र	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत
अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत	म	अगृह्णीथाः	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
अगृह्णम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम	उ	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः	प्र०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात	म	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम	उ	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि
	—				—	
ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यतः	ग्रहीष्यन्ति	लृट्	ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः	लुट्	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
ग्रह्यात्	ग्रह्यास्ताम्	ग्रह्यासुः	आ० लिङ्	ग्रहीषीष्ट	ग्रहीषीयास्ताम्	
अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्	•	लृङ्	अग्रहीष्यत	अग्रहीष्येताम्	
	लिट्				लिट्	
जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः	प्र	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
जगृहिथ	जगृहथुः	जगृह	म	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृढ्वे
जग्राह,जग्रह	जगृहिव	जगृहिम	उ	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषुः	प्र	अग्रहीष्ट	अग्रहीषाताम्	अग्रहीषत
अग्रहीः	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट	म	अग्रहीष्ठाः	अग्रहीषाथाम्	अग्रहीढ्वम्
अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म	उ	अग्रहीषि	अग्रहीष्वहि	अग्रहीष्महि

(९६) ज्ञा (जानना) (९ अ ५६)

सूचना—ग्रह् आदि में ज्ञ को 'ज्ञा' होगा। सूचना—ग्रह् आदि में ज्ञ को ज्ञा होगा।

परस्मैपद—ग्रह्

जानाति	जानीतः	जानन्ति	प्र	जानीते	जानाते	जानते
जानासि	जानीथः	जानीथ	म	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
जानामि	जानीवः	जानीमः	उ	जाने	जानीवहे	जानीमहे

लोट्

जानातु	जानीताम्	जानन्तु	प्र	जानीताम्	जानाताम्	जानन्ताम्
जानीहि	जानीतम्	जानीत	म०	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
जानानि	जानाव	जानाम	उ	जानै	जानावहै	जानामहै

लङ्

अजानात्	अजानीताम्	अजानन्	प्र	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
अजानाः	अजानीतम्	अजानीत	म०	अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
अजानाम्	अजानीव	अजानीम	उ०	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि

विधिलिङ्

जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः	प्र	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात	म	जानीयाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम	उ०	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

—

शास्ति	शास्तः	शासति	लट्	शास्ते	शासाते	शासते
शाधि	शासथः	शास्थ	लट्	शाधे	शासाथे	शाध्वे
शासानि	शासिवः	शासिमः	लिट्	शशासे	शशासाते	शशासिरे
अशात्	अशास्ताम्	अशासुः	लुङ्	अशास्त	अशासाताम्	अशासत
अशाः	अशास्तम्	अशास्त		अशास्थाः	अशासाथाम्	अशाध्वम्
अशासम्	अशास्व	अशास्म		अशासि	अशास्वहि	अशास्महि

शास् (२)

अशासीत्	अशासिष्टाम्	अशासिषुः	प्र	अशासिष्ट	अशासिषाताम्	अशासिषत
अशासीः	अशासिष्टम्	अशासिष्ट	म	अशासिष्ठाः	अशासिषाथाम्	अशासिढ्वम्
अशासिषम्	अशासिष्व	अशासिष्म	उ	अशासिषि	अशासिष्वहि	अशासिष्महि

(१०) तुदादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु तुद् (दुखाना) है अतः गण का नाम तुदादिगण पड़ा। (स्वरूप तुदादिभ्यः शप्) तुदादिगण में दसों लकारों में धातु से शप् (अ) प्रत्यय होता है। लट् आदि में शप् (अ) और जुड़ जाने से धातु और प्रत्यय के बीच में 'अ' विकरण हो जाता है।

(२) सूचना—हेरफेरवाले धातुओं में भी 'हेतुमति च' सूत्र से णिच् प्रत्यय करने पर तुदादिगण की धातुओं के तुल्य ही दसों लकारों में रूप चलेंगे।

(३) (क) णिच् (अय) करने पर धातु के अन्तिम इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ को क्रमशः ऐ, औ, आर् आदि होगी। पू>पारयति, चि>चाययति। (ख) उपधा में अ, इ, उ ऋ हों तो उन्हें क्रमशः आ ए, ओ, आर् होगा। कम्, गम् रम् आदि कुछ धातुओं में अ को आ नहीं होता है। (ग) लट् में परस्मै में इच्छति प्रयोग और आत्मने में इच्छते आदि। (घ) (अर्तिह्री 'भातां पुङ् भी) व्यञ्जनान्त धातुओं में आ के बाद प् और जुड़ जाता है। आ + क्त>व्याप्तमति।

(४) इस गण में ४११ धातुएँ हैं। तुदादिगण तक पूरी धातुसंख्या १९७ है।

(५) तुदादिगणी धातुओं के रूप चलाने का सरल उपाय यह है कि धातु के अन्त में 'अय' जुड़ाकर परस्मै में भू के तुल्य और आत्मने में सेव् के तुल्य रूप चलावें। लट्, लोट्, आशीर्लिङ् और लङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सं० रूप ही आवेंगे।

	परस्मैपद (सं० रूप)			आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट् (धातु + अय्)			लट् (धातु + अय्)		
अति	अतः	अन्ति	प्र	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे
	लोट् (धातु + अय्)			लोट् (धातु + अय्)		
अतु	अताम्	अन्तु	प्र	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म	असे	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
	लङ् (धातु + अय्)			लङ् (धातु + अय्)		
अत्	अताम्	अन्	प्र०	ए	अताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म			
अम्	आव	आम	उ			
	विधिलिङ् (धातु + अय्)					
एत्	एताम्	एयुः	प्र			
एः	एतम्	एत	म			
एयम्	एव	एम	उ			

चुरादिगण । उभयपदी धातुएँ

(९७) चुर् (चुराना) (दि अ ५१)

परस्मैपद—चुर्				आत्मनेपद—चुर्		
चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति	प्र	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ	म०	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः	उ	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे
	लोट्				लोट्	
चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु	प्र	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
चोरय	चोरयतम्	चोरयत	म०	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम	उ०	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै
	लङ्				लङ्	
अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्	प्र	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत	म	अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम	उ०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः	प्र	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत	म०	चोरयेथाः	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम	उ	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि
	—				—	
चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति	लृट्	चोरयिष्यते	चोरयिष्येते	•
चोरयिता	चोरयितारौ	चोरयितारः	लुट्	चोरयिता	चोरयितारौ	•
चोर्यात्	चोर्यास्ताम्	चोर्यासुः	आ लिङ्	चोरयिषीष्ट	चोरयिषीयास्ताम्	
अचोरयिष्यत्	अचोरयिष्यताम्		लृङ्	अचोरयिष्यत	अचोरयिष्येताम्	•

णिच् (क) (चोरय + क)				णिच् (क) (चोरय + क)		
चोरयांचकार	—चक्रतुः	—चक्रुः	प्र	चोरयांचक्रे	—चक्राते	—चक्रिरे
—चकर्थ	—चक्रथुः	—चक्र	म	—चक्रुषे	—चक्राथे	—चकृढ्वे
—चकार, चकर	—चकृव	—चकृम	उ	—चक्रे	—चकृवहे	—चकृमहे

(ग) (चोरय + भू) चोरयांबभूव आदि (ख) (चोरय + भू) चोरयांबभूव आदि
(ग) (चोरयाम् + अस्) चोरयामास आदि (ग) (चोरयाम् + अस्) चोरयामास आदि

भ्वादि (१)				भ्वादि (१)		
अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्	प्र	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
अचूचुरः	अचूचुरतम्	अचूचुरत	म	अचूचुरथाः	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम	उ	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि

(९८) चिन्त् (सोचना) (१० अ ५९) (दोनों पदों में चुर् के तुल्य)

परस्मैपद—कर्तृ				आत्मनेपद—कर्तृ		
चिन्तयति	चिन्तयतः	चिन्तयन्ति	प्र	चिन्तयते	चिन्तयेते	चिन्तयन्ते
चिन्तयसि	चिन्तयथः	चिन्तयथ	म	चिन्तयसे	चिन्तयेथे	चिन्तयध्वे
चिन्तयामि	चिन्तयावः	चिन्तयामः	उ०	चिन्तये	चिन्तयावहे	चिन्तयामहे
	लोट्				लोट्	
चिन्तयतु	चिन्तयताम्	चिन्तयन्तु	प्र०	चिन्तयताम्	चिन्तयेताम्	चिन्तयन्ताम्
चिन्तय	चिन्तयतम्	चिन्तयत	म०	चिन्तयस्व	चिन्तयेथाम्	चिन्तयध्वम्
चिन्तयानि	चिन्तयाव	चिन्तयाम	उ	चिन्तये	चिन्तयावहै	चिन्तयामहै
	लङ्				लङ्	
अचिन्तयत्	अचिन्तयताम्	अचिन्तयन्	प्र	अचिन्तयत	अचिन्तयेताम्	अचिन्तयन्त
अचिन्तयः	अचिन्तयतम्	अचिन्तयत	म	अचिन्तयथाः	अचिन्तयेथाम्	अचिन्तयध्वम्
अचिन्तयम्	अचिन्तयाव	अचिन्तयाम	उ	अचिन्तये	अचिन्तयावहि	अचिन्तयामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
चिन्तयेत्	चिन्तयेताम्	चिन्तयेयुः	प्र	चिन्तयेत	चिन्तयेयाताम्	चिन्तयेरन्
चिन्तयेः	चिन्तयेतम्	चिन्तयेत	म	चिन्तयेथाः	चिन्तयेयाथाम्	चिन्तयेध्वम्
चिन्तयेयम्	चिन्तयेव	चिन्तयेम	उ	चिन्तयेय	चिन्तयेवहि	चिन्तयेमहि
	—				—	
चिन्तयिष्यति	चिन्तयिष्यतः		लृट्	चिन्तयिष्यते	चिन्तयिष्येते	
चिन्तयिता	चिन्तयितारौ		लुट्	चिन्तयिता	चिन्तयितारौ	•
चिन्तयात्	चिन्तयास्ताम्		आ शिष्	चिन्तयिषीष्ट	चिन्तयिषीयास्ताम्	•
अचिन्तयिष्यत्	अचिन्तयिष्यतम्		लृङ्	अचिन्तयिष्यत	अचिन्तयिष्येताम्	•

णिच् (क) (चिन्तया + कृ)				णिच् (क) (चिन्तया + कृ)		
चिन्तयांचकार–चक्रतुः		–चक्रुः	प्र	चिन्तयांचक्रे	–चक्राते	–चक्रिरे
–चकर्थ	–चक्रथुः	–चक्र	म	–चकृषे	–चक्राथे	–चकृढ्वे
–चकार,चकर	–चकृव	–चकृम	उ	–चक्रे	–चकृवहे	–चकृमहे

(ल) (चिन्तया + भू) चिन्तयांबभूव आदि (ल) (चिन्तया + भू) चिन्तयांबभूव आदि

(म) (चिन्ताम् + अस्) चिन्तयामास आदि (म) (चिन्ताम् + अस्) चिन्तयामास आदि

सन् (१)				सन्		
अचिचिन्तयिषति	अचिचिन्तयिषतः	अचिचिन्तयिषन्ति	प्र	अचिचिन्तयिषते	अचिचिन्तयिषेताम्	अचिचिन्तयिषन्त
अचिचिन्तयिषसि	अचिचिन्तयिषथः	अचिचिन्तयिषथ	म	अचिचिन्तयिषसे	अचिचिन्तयिषेथाम्	अचिचिन्तयिषध्वम्
अचिचिन्तयिषम्	अचिचिन्तयिषावः	अचिचिन्तयिषामः	उ	अचिचिन्तयिषे	अचिचिन्तयिषावहि	अचिचिन्तयिषामहि

(९९) कथ् (कहना) (१ ग ६)

सूचना—दोनों पदों में पूरे रूप चुर् के तुल्य ।

परस्मैपद—कट

कथयति	कथयतः	कथयन्ति	प्र	
कथयसि	कथयथः	कथयथ	म	
कथयामि	कथयावः	कथयामः	उ	
कथयतु	कथयताम्	कथयन्तु	लोट्	
अकथयत्	अकथयताम्	अकथयन्	लङ्	
कथयेत्	कथयेताम्	कथयेयुः	वि लिङ्	
कथयिष्यति	कथयिष्यतः		लृट्	
कथयिता	कथयितारौ		लुट्	
कथ्यात्	कथ्यास्ताम्		आ लिङ्	
अकथयिष्यत्	अकथयिष्यताम्		लृङ्	
(क) कथयांचकार	—चक्रतुः	—चक्रुः	लिट्	
(ख) कथयांबभूव	(ग) कथयामास		,,	
अचकथत्	अचकथताम्		लुङ्	

आत्मनेपद

कथयते	कथयेते	कथयन्ते	लट्	
कथयताम्	कथयेताम्	कथयन्ताम्	लोट्	
अकथयत	अकथयेताम्	अकथयन्त	लङ्	
कथयेत	कथयेयाताम्	कथयेरन्	वि लिङ्	
कथयिष्यते	कथयिष्येते	कथयिष्यन्ते	लृट्	
कथयिता	कथयितारौ		लुट्	
कथयिषीष्ट	कथयिषीयास्ताम्		आ लिङ्	
अकथयिष्यत	अकथयिष्येताम्		लृङ्	
(क) कथयांचक्रे	—चक्रते	—चक्रिरे	लिट्	
(ख) कथयांबभूव	(ग) कथयामास		,,	
अचकथत	अचकथेताम्		लुङ्	

(१००) मक्ष (खाना) (१ ग० ६)

सूचना—दोनों पदों में पूरे रूप चुर के तुल्य ।

परस्मैपद—कट्

मक्षयति	मक्षयतः	मक्षयन्ति	प्र	
मक्षयसि	मक्षयथः	मक्षयथ	म	
मक्षयामि	मक्षयावः	मक्षयामः	उ	
मक्षयतु	मक्षयताम्	मक्षयन्तु	लोट्	
अमक्षयत्	अमक्षयताम्	अमक्षयन्	लङ्	
मक्षयेत्	मक्षयेताम्	मक्षयेयुः	वि लिङ्	
मक्षयिष्यति	मक्षयिष्यतः		लृट्	
मक्षयिता	मक्षयितारौ		लुट्	
मक्ष्यात्	मक्ष्यास्ताम्		आ लिङ्	
अमक्षयिष्यत्	अमक्षयिष्यताम्		लृङ्	
(क) मक्षयांचकार	—चक्रतुः	—चक्रुः	लिट्	
(ख) मक्षयांबभूव	(ग) मक्षयामास		,,	
अममक्षत्	अममक्षताम्		लुङ्	

आत्मनेपद

मक्षयते	मक्षयेते	मक्षयन्ते	लट्	
मक्षयताम्	मक्षयेताम्	मक्षयन्ताम्	लोट्	
अमक्षयत	अमक्षयेताम्	अमक्षयन्त	लङ्	
मक्षयेत	मक्षयेयाताम्	मक्षयेरन्	वि लिङ्	
मक्षयिष्यते	मक्षयिष्येते		लृट्	
मक्षयिता	मक्षयितारौ		लुट्	
मक्षयिषीष्ट	मक्षयिषीयास्ताम्		आ लिङ्	
अमक्षयिष्यत	अमक्षयिष्येताम्		लृङ्	
(क) मक्षयांचक्रे	—चक्रते	—चक्रिरे	लिट्	
(ख) मक्षयांबभूव	(ग) मक्षयामास		,,	
अममक्षत	अममक्षेताम्		लुङ्	

(क) णिजन्त (प्रेरणार्थक) धातु

(१०१) कारि (करवाना) (व्याकरणादि के लिए देखो अभ्यास ११-१४)

सूचना—परस्मै० और आत्मने० दोनों पदों में कम चुर् (९७) धातु के तुल्य चलेंगे।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
कारयति	कारयतः	कारयन्ति	प्र०	कारयते	कारयेते	कारयन्ते
कारयसि	कारयथः	कारयथ	म	कारयसे	कारयेथे	कारयध्वे
कारयामि	कारयावः	कारयामः	उ०	कारये	कारयावहे	कारयामहे
		लोट्				लोट्
कारयतु	कारयताम्	कारयन्तु	प्र	कारयताम्	कारयेताम्	कारयन्ताम्
कारय	कारयतम्	कारयत	म	कारयस्व	कारयेथाम्	कारयध्वम्
कारयाणि	कारयाव	कारयाम	उ	कारयै	कारयावहै	कारयामहै
		लङ्				लङ्
अकारयत्	अकारयताम्	अकारयन्	प्र	अकारयत	अकारयेताम्	अकारयन्त
अकारयः	अकारयतम्	अकारयत	म	अकारयथाः	अकारयेथाम्	अकारयध्वम्
अकारयम्	अकारयाव	अकारयाम	उ	अकारये	अकारयावहि	अकारयामहि
		विधिलिङ्				विधिलिङ्
कारयेत्	कारयेताम्	कारयेयुः	प्र	कारयेत	कारयेयाताम्	कारयेरन्
कारयेः	कारयेतम्	कारयेत	म	कारयेथाः	कारयेयाथाम्	कारयेध्वम्
कारयेयम्	कारयेव	कारयेम	उ०	कारयेय	कारयेवहि	कारयेमहि
		—				—
कारयिष्यति	कारयिष्यतः		लृट्	कारयिष्यते	कारयिष्येते	
कारयिता	कारयितारौ		लुट्	कारयिता	कारयितारौ	
कार्यात्	कार्यास्ताम्		आशिर्लिङ्	कारयिषीष्ट	कारयिषीयास्ताम्	
अकारयिष्यत्	अकारयिष्यताम्		लृङ्	अकारयिष्यत	अकारयिष्येताम्	

णिच् (क) (कारया + कृ)

कारयांचकार -चक्रतुः	-चक्रुः	प्र०	कारयांचक्रे	-चक्राते	-चक्रिरे
-चकर्थ	-चक्रथुः	-चक्र	म	-चकृषे	-चक्राथे	-चकृढ्वे
-चकार,चकर	-चकृव	-चकृम	उ	-चक्रे	-चकृवहे	-चकृमहे

(ख) (कारया + भू) कारयांबभूव आदि

(ग) (कारयाम् + अस्) कारयामास आदि

अस् (१)

अचीकरत्	अचीकरताम्	अचीकरन्	प्र	अचीकरत	अचीकरेताम्	अचीकरन्त
अचीकरः	अचीकरतम्	अचीकरत	म	अचीकरथाः	अचीकरेथाम्	अचीकरध्वम्
अचीकरम्	अचीकराव	अचीकराम	उ	अचीकरे	अचीकरावहि	अचीकरामहि

(ख) सन्नन्त (इच्छार्थक) धातुएँ (देखो अभ्यास १५)

(१०२) पिपठिष (पठ + सन्) (पढ़ना चाहना)

सूचना—परस्मै में भू के तुल्य।

परस्मैपद—कर्तृ

पिपठिषति	पिपठिषतः	पिपठिषन्ति	प्र०
पिपठिषसि	पिपठिषथः	पिपठिषथ	म
पिपठिषामि	पिपठिषावः	पिपठिषामः	उ

लोट्

पिपठिषतु	पिपठिषताम्	पिपठिषन्तु	प्र०
पिपठिष	पिपठिषतम्	पिपठिषत	म
पिपठिषाणि	पिपठिषाव	पिपठिषाम	उ

लङ्

अपिपठिषत्	अपिपठिषताम्	अपिपठिषन्	प्र
अपिपठिषः	अपिपठिषतम्	अपिपठिषत	म
अपिपठिषम्	अपिपठिषाव	अपिपठिषाम	उ

विधिलिङ्

पिपठिषेत्	पिपठिषेताम्	पिपठिषेयुः	प्र
पिपठिषेः	पिपठिषेतम्	पिपठिषेत	म
पिपठिषेयम्	पिपठिषेव	पिपठिषेम	उ

पिपठिषिष्यति	पिपठिषिष्यतः	पिपठिषिष्यन्ति	लृट्
पिपठिषिता	पिपठिषितारौ	पिपठिषितारः	लुट्
पिपठिष्यात्	पिपठिष्यास्ताम्	पिपठिष्यासुः	आशिर्लिङ्
अपिपठिषिष्यत्	अपिपठिषिष्यताम्	अपिपठिषिष्यन्	लृङ्

लिट् (पिपठिष् + आम् + कृ, भू, अस्)

(क) पिपठिषाञ्चकार	—चक्रतुः	आदि
(ख) पिपठिषांबभूव	—बभूवतुः	आदि
(ग) पिपठिषामास	—आसतुः	—आसुः प्र०
—आसिथ	—आसथुः	—आस म
—आस	—आसिव	—आसिम उ

लुङ् (५)

अपिपठिषीत्	—ठिषिष्टाम्	—ठिषिषुः	प्र०
—ठिषीः	—ठिषिष्टम्	—ठिषिष्ट	म
—ठिषिषम्	—ठिषिष्व	—ठिषिष्म	उ

(१०३) जिज्ञास (ज्ञा + सन्) (जिज्ञासा करना)

सूचना—आत्मने में सेव् के तुल्य

आत्मनेपद—कर्तृ

जिज्ञासते	जिज्ञासेते	जिज्ञासन्ते	प्र०
जिज्ञाससे	जिज्ञासेथे	जिज्ञासध्वे	म
जिज्ञासे	जिज्ञासावहे	जिज्ञासामहे	उ

लोट्

जिज्ञासताम्	जिज्ञासेताम्	जिज्ञासन्ताम्	प्र०
जिज्ञासस्व	जिज्ञासेथाम्	जिज्ञासध्वम्	म
जिज्ञासै	जिज्ञासावहै	जिज्ञासामहै	उ

लङ्

अजिज्ञासत	—सेताम्	—सन्त	प्र
—सथाः	—सेथाम्	—ध्वम्	म
—से	—सावहि	—सामहि	उ

विधिलिङ्

जिज्ञासेत	—सेयाताम्	—सेरन्	प्र
—सेथाः	—सेयाथाम्	—सेध्वम्	म
—सेय	—सेवहि	—सेमहि	उ

जिज्ञासिष्यते	जिज्ञासिष्येते	जिज्ञासिष्यन्ते	लृट्
जिज्ञासिता	जिज्ञासितारौ	जिज्ञासितारः	लुट्
जिज्ञासिषीष्ट	जिज्ञासिषीयास्ताम्	जिज्ञासिषीरन्	आशिर्लिङ्
अजिज्ञासिष्यत	अजिज्ञासिष्येताम्	अजिज्ञासिष्यन्त	लृङ्

लिट् (जिज्ञास् + आम् + कृ भू अस्)

(क) जिज्ञासाञ्चक्रे	—चक्राते	आदि
(ख) जिज्ञासांबभूव	—बभूवतुः	आदि
(ग) जिज्ञासामास	—आसतुः	—आसुः
—आसिथ	—आसथुः	—आस
—आस	—आसिव	—आसिम

लुङ् (५)

अजिज्ञासिष्ट	—सिषाताम्	—सिषत	प्र०
—सिष्ठाः	—सिषाथाम्	—सिढ्वम्	म
—सिषि	—सिष्वहि	—सिष्महि	उ

(ग) भाव-कर्म-वाच्य

(१०४) कृ (करना) (उ० अ० ११ १२) (१०५) दा (देना) (उ० अ० ११ १२)

सूचना—भाववाच्य में प्र० पु० एक ही रहेगा। सूचना—भाववाच्य में प्र० पु० एक ही रहेगा।

कर्मवाच्य—कृ				कर्मवाच्य—कृ		
क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते	प्र	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे	म	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे	उ	दीये	दीयावहे	दीयामहे
	लोट्				लोट्	
क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्	प्र	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्	म	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै	उ	दीयै	दीयावहै	दीयामहै
	लङ्				लङ्	
अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त	प्र	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
अक्रियथाः	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्	म	अदीयथाः	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि	उ	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्	प्र०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
क्रियेथाः	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्	म	दीयेथाः	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि	उ०	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि
	—				—	
करिष्यते,	कारिष्यते (दोनों प्रकार से)		लृट्	दास्यते,	दायिष्यते	(दोनों प्रकार से)
कर्ता,	कारिता (,, ,,)		लृट्	दाता,	दायिता	(,, ,,)
कृषीष्ट,	कारिषीष्ट (,, ,,)		आ०लिङ्	दासीष्ट,	दायिषीष्ट	(,,)
अकरिष्यत,	अकारिष्यत (,, ,,)		लृङ्	अदास्यत,	अदायिष्यत	(,, ,,)
	लिट्				लिट्	
चक्रे	चक्राते	चक्रिरे	प्र	ददे	ददाते	ददिरे
चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे	म	ददिषे	ददाथे	ददिढ्वे
चक्रे	चकृवहे	चकृमहे	उ	ददे	ददिवहे	ददिमहे
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अकारि	अकारिषाताम्	अकारिषत	प्र	अदायि	अदायिषाताम्	अदायिषत
अकारिष्ठाः	अकारिषाथाम्	अकारिढ्वम्	म	अदायिष्ठाः	अदायिषाथाम्	अदायिढ्वम्
अकारिषि	अकारिष्वहि	अकारिष्महि	उ	अदायिषि	अदायिष्वहि	अदायिष्महि

(४) धातुरूप-कोष

(सिद्धान्तकौमुदी की सभी प्रसिद्ध धातुओं के रूपों का संग्रह)

आवश्यक-निर्देश

१ सिद्धान्तकौमुदी में जितनी भी प्रसिद्ध धातुएँ हैं और जिनका संस्कृत-साहित्य में विशेषरूप से प्रयोग हुआ है, उन सभी धातुओं का यहाँ पर अकारादिक्रम से संग्रह किया गया है। प्रत्येक धातु के पूरे १० लकारों के प्रारम्भिक रूप (प्र पु एकवचन) यहाँ पर दिए गए हैं। साथ ही प्रत्येक धातु के भिष् प्रत्यय और कर्मवाच्य के रूप भी दिए गए हैं। इस कोष में ४६५ धातुएँ दी गई हैं।

२. जो धातु जिस गण की है, उस धातु के रूप उस गण की धातुओं के तुल्य ही चलेंगे। धातुरूप-संग्रह में प्रत्येक गण के प्रारम्भ में उस गण की विशेषताएँ दी हुई हैं और साथ ही संक्षिप्त-रूप भी दिए हुए हैं। जो धातु जिस गण की हो और जिस पद (परस्मै , आत्मने या उभयपद) की हो, उसके रूप उस गण में निर्दिष्ट संक्षिप्त-रूप बनाकर बनावें। जो उभयपदी धातुएँ परस्मैपद में ही अधिक प्रचलित हैं, उनके परस्मैपद के ही रूप यहाँ दिए गए हैं। जिनके दोनों पदों में रूप प्रचलित हैं, उनके दोनों पदों के रूप दिए हैं। जिन उभयपदी धातुओं के रूप यहाँ आत्मनेपद में नहीं दिए हैं, उनके आत्मनेपद के रूप उस गण की अन्य आत्मनेपदी धातुओं के तुल्य चलावें।

३ सिद्धान्तकौमुदी के लकारों का प्रामाणिक क्रम निम्नलिखित है। इसी क्रम से यहाँ धातुओं के रूप दिए गए हैं। लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, आशीर्लिङ्, लुङ्, लृङ्। अन्त में भिष् प्रत्यय और भावकर्मवाच्य का प्र पु एक का रूप दिया गया है। प्रत्येक पृष्ठ पर ऊपर लकारों के नाम दिए गए हैं। उनके नीचे प्रत्येक पंक्ति में उस लकार के रूप दिए गए हैं। रूप बाएँ और बाएँ दोनों पृष्ठ पर फैले हुए हैं, अतः उस धातु के सामने के दोनों पृष्ठ देखें।

४ प्रत्येक धातु के बाद कोष्ठ में निर्देश कर दिया गया है कि वह किस गण की है और किस पद में उसके रूप चलते हैं। साथ ही धातु का हिन्दी में अर्थ भी दिया गया है। धातुओं के एक या दो ही अर्थ दिए गए हैं। संक्षेप के लिए कहीं-कहीं पर कल्पना के लिए (एस्प) दिया गया है।

५ संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग किया गया है।—प = परस्मैपदी। आ = आत्मनेपदी। उ = उभयपदी। १ = भ्वादिगण। २ = अदादि गण। ३ = जुहोत्यादिगण। ४ = दिवादिगण। ५ = स्वादिगण। ६ = तुदादिगण। ७ = रुधादिगण। ८ = तनादिगण। ९ = क्र्यादिगण। १० = चुरादिगण। ११ = कण्ड्वादिगण।

६. लट्, लुट् और लृट् में अ या आ धातु से ही पहले लगता है उपसर्ग से पूर्व कभी नहीं। अतः उपसर्गयुक्त धातुओं में लट् आदि में धातु से पहले अ या आ लगाकर उपसर्ग से मिलावें। सन्धिकार्य प्राप्त हो तो उसे भी करें। स्वर-आदिवाली धातुओं से पहले अट् लगता है और व्यञ्जन-आदिवाली धातुओं के पहले आ लगता है।

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
अप् (१ उ०, पाप करना)	अपयति-ते	अपयांचकार	अपयिता	अपयिष्यति	अपयतु
अङ्क् (१० उ०, चिह्न)	अङ्कयति-ते	अङ्कयांचकार	अङ्कयिता	अङ्कयिष्यति	अङ्कयतु
अञ्ज् (७ प , स्वच्छ)	अनक्ति	आनञ्ज	अञ्जिता	अञ्जिष्यति	अनक्तु
अट् (१ प०, घूमना)	अटति	आट	अटिता	अटिष्यति	अटतु
अत् (१ प , सदा घूमना)	अतति	आत	अतिता	अतिष्यति	अततु
अद् (२ प , खाना)	अत्ति	आद, अत्तवत	अत्ता	अत्स्यति	अत्तु
अन् (२ प , जीवित रहना)	प्र+ अनिति	आन	अनिता	अनिष्यति	अनितु
अप् (१ आ० आना)	परा+ अपते	अपांचक्रे	अपिता	अपिष्यते	अपताम्
अर्च् (१ प , पूजना)	अर्चति	आनर्च	अर्चिता	अर्चिष्यति	अर्चतु
अर्ज् (१ प , संग्रह)	अर्जति	आनर्ज	अर्जिता	अर्जिष्यति	अर्जतु
अर्ह् (१ प , योग्य होना)	अर्हति	आनर्ह	अर्हिता	अर्हिष्यति	अर्हतु
अव् (१ प , रक्षा)	अवति	आव	अविता	अविष्यति	अवतु
अश् (५ आ , व्याप्त०)	अश्नुते	आनशे	अशिता	अशिष्यते	अश्नुताम्
अष् (९ प , खाना)	अश्नाति	आश	अशिता	अशिष्यति	अश्नातु
अस् (२ प , होना)	अस्ति	बभूव	भविता	भविष्यति	अस्तु
अस् (४ प , फेंकना)	अस्यति	आस	असिता	असिष्यति	अस्यतु
असू (११ प , क्रोध)	असूयति	असूयांचकार	असूयिता	असूयिष्यति	असूयतु
आक्रोश् (१ उ , दिखाना)	आक्रोशति	आक्रोशयांचकार	आक्रोशिता	आक्रोशिष्यति	आक्रोशतु
आप् (५ प , पाना)	आप्नोति	आप	आप्ता	आप्स्यति	आप्नोतु
आप् (१ उ , पहुँचाना)	आपयति-ते	आपयांचकार	आपयिता	आपयिष्यति	आपयतु
आस् (२ आ , बैठना)	आस्ते	आसांचक्रे	आसिता	आसिष्यते	आस्ताम्
इ (२ प , जाना)	एति	इयाय	एता	एष्यति	एतु
इ (अधि+, २ आ , पढ़ना)	अधीते	अधिजगे	अध्येता	अध्येष्यते	अधीताम्
इष् (४ प , चाना)	अनु+ इष्यति	इयेष	एषिता	एषिष्यति	इष्यतु
इष् (६ प , चाहना)	इच्छति	इयेष	एषिता	एषिष्यति	इच्छतु
ईक्ष् (१ आ०, देखना)	ईक्षते	ईक्षांचक्रे	ईक्षिता	ईक्षिष्यते	ईक्षताम्
ईर् (१० उ०, प्रेरणा०)	प्र+ ईरयति-ते	ईरयांचकार	ईरयिता	ईरयिष्यति	ईरयतु
ईर्ष्य् (१ प०, ईर्ष्या)	ईर्ष्यति	ईर्ष्यांचकार	ईर्ष्यिता	ईर्ष्यिष्यति	ईर्ष्यतु
ईह् (१ आ , चाहना)	ईहते	ईहांचक्रे	ईहिता	ईहिष्यते	ईहताम्
उज्झ् (६ प , छोड़ना)	उज्झति	उज्झांचकार	उज्झिता	उज्झिष्यति	उज्झतु

अङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
अपत्	अपेत्	अप्यात्	आपिषत्	आपयिष्यत्	अप्यति	अप्यत
आह्वत्	आह्वेत्	अह्व्यात्	आह्वित	आह्वयिष्यत	आह्वयति	अह्व्यते
आनन्	अन्यात्	अन्यात्	आन्धीत्	आन्धिष्यत्	अन्धयति	अन्यते
आट्य्	अटेत्	अट्यात्	आटीत्	आटिष्यत्	आट्यति	अट्यते
आत्त्	अतेत्	अत्यात्	आतीत्	आतिष्यत्	आतयति	अत्यते
आप्त्	अपात्	अपात्	अप्सत्	आप्स्यत्	आदयति	अप्यते
आन्त्	अन्यात्	अन्यात्	आनीत्	आनिष्यत्	आनयति	अन्यते
आधत	अधेत	अधियीष्ट	आधिष्ट	आधिष्यत	आधयते	अध्यते
आर्च्त्	अर्चेत्	अर्च्यात्	आर्चीत्	आर्चिष्यत्	अर्चयति	अर्च्यते
आर्म्त्	अर्मेत्	अर्म्यात्	आर्मीत्	आर्मिष्यत्	अर्मयति	अर्म्यते
आर्ह्त्	अर्हेत्	अर्ह्यात्	आर्हीत्	आर्हिष्यत्	अर्हयति	अर्ह्यते
आध्त्	अधेत्	अध्यात्	आधीत्	आधिष्यत्	आध्यति	अध्यते
आस्तृत	अस्तृणीत	अस्तिषीष्ट	आस्तिष्ट	आस्तिष्यत	आस्तयति	अस्यते
आख्यात्	अख्यायात्	अख्यात्	आख्यीत्	आख्यिष्यत्	आख्यति	अख्यते
अभवीत्	स्यात्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
आस्यत्	असयेत्	असयात्	आसयत्	आसयिष्यत्	आसयति	असयते
आसूक्त्	असूदेत्	असूद्यात्	आसूषीत्	आसूषिष्यत्	असूषयति	असूद्यते
आन्त्रो	आन्त्रोद्येत्	आन्त्रोद्यात्	आन्त्रुद्रोक्त्	आन्त्रोदयि	आन्त्रो	आन्त्रोद्यते
अयत्				ष्यत्	ष्यति	
आप्नोत्	आप्नुयात्	आप्याात्	आपत्	आप्स्यत्	आपयति	आप्यते
आपयत्	आपयेत्	आप्याात्	आपिपत्	आपयिष्यत्	आपयति	आप्यते
आस्त	आसीत	आसिषीष्ट	आसिष्ट	आसिष्यत	आसयति	आस्यते
ऐत्	इयात्	ईयात्	अगात्	एष्यत्	गमयति	ईयते
अध्यैत	अधीयीत	अध्येषीष्ट	अध्यैष्ट	अध्यैष्यत	अध्यापयति	अधीयते
ऐष्यत्	इष्येत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐष्यत्	इष्येत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐक्षत	ईक्षेत	ईक्षिषीष्ट	ऐक्षिष्ट	ऐक्षिष्यत	ईक्षयति	ईक्ष्यते
ऐरयत्	ईरयेत्	ईर्यात्	ऐरिरत्	ऐरयिष्यत्	ईरयति	ईर्यते
ऐर्म्त्	इर्म्येत्	ईर्म्यात्	ऐर्म्षीत्	ऐर्म्यिष्यत्	इर्म्यति	इर्म्यते
ऐरत	ईरेत	ईरिषीष्ट	ऐरिष्ट	ऐरिष्यत	ईरयति	ईर्यते
औक्षत्	उक्षेत्	उक्ष्यात्	औक्षीत्	औक्षिष्यत्	उक्षयति	उक्ष्यते

अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
कन् (१ प०, मिगोना)	कनति	चकनांचकार	कनिता	कनिष्यति	कनतु
कन (१ आ , वर्ण)	कनते	कनांचक्रे	कनिता	कनिष्यते	कनताम्
कप् (१ प , व्याप्ना)	कप्यति	चकप्यं	कप्यिता	कप्यिष्यति	कप्यतु
कल् (१ प , कोंपना)	एलति	एलांचकार	एलिता	एलिष्यति	एलतु
एष् (१ आ , वदना)	एषते	एषांचक्रे	एषिता	एषिष्यते	एषताम्
कण्डू (११ उ०, खुजाना)	कण्डूयति-ते	कण्डूयांचकार	कण्डूयिता	कण्डूयिष्यति	कण्डूयतु
कथ् (१० उ०, कहना) प०	कथयति	कथयांचकार	कथयिता	कथयिष्यति	कथयतु
आ	कथयते	कथयांचक्रे	कथयिता	कथयिष्यते	कथयताम्
काम् (१ आ , चाहना)	कामयते	कामयांचक्रे	कामयिता	कामयिष्यते	काम्यताम्
कम्प् (१ आ , काँपना)	कम्पते	चकम्पे	कम्पिता	कम्पिष्यते	कम्पताम्
कांक्ष् (१ प , चाहना)	कांक्षति	चकांक्ष	कांक्षिता	कांक्षिष्यति	कांक्षतु
काण्ड् (१ आ०, चमकना)	काण्डते	चकाण्डे	काण्डिता	काण्डिष्यते	काण्डताम्
काल् (१ आ०, खोलना)	कालते	कालांचक्रे	कालिता	कालिष्यते	कालताम्
किल् (१ प , चिकित्सा)	चिकित्सति	चिकित्सांचकार	चिकित्सिता	चिकित्सिष्यते	चिकित्सतु
कीड् (१ प , गाड़ना)	कीडति	चिकीड	कीडिता	कीडिष्यति	कीडतु
कु (१ प , गूँजना)	कौति	चुकाव	कोता	कोष्यति	कौतु
कुम्ब् (१ प , कम होना)	कुम्बति	चुकुम्ब	कुम्बिता	कुम्बिष्यति	कुम्बतु
कुत्स् (१ आ , दोष देना)	कुत्सते	कुत्सयांचक्रे	कुत्सयिता	कुत्सयिष्यते	कुत्सयताम्
कुप् (४ प , क्रोध)	कुप्यति	चुकोप	कोपिता	कोपिष्यति	कुप्यतु
कुर्द् (१ आ , कूदना)	कूर्दते	चुकूर्दे	कूर्दिता	कूर्दिष्यते	कूर्दताम्
कुल् (१ प , चूँ-चूँ करना)	कूलति	चुकूल	कूलिता	कूलिष्यति	कूलतु
कृ (८ उ , करना) प	करोति	चकार	कर्ता	करिष्यति	करोतु
आ	कुरुते	चक्रे	कर्ता	करिष्यते	कुरुताम्
कृत् (६ प , काटना)	कृन्तति	चकर्त	कर्तिता	कर्तिष्यति	कृन्ततु
कृप् (१ आ , समर्थ होना)	कल्पते	चकल्पे	कल्पिता	कल्पिष्यते	कल्पताम्
कृप् (१ प , चाहना)	कर्पति	चकर्प	कर्पा	कर्पिष्यति	कर्पतु
कॄ (६ प०, बखेरना)	किरति	चकार	करिता	करिष्यति	किरतु
कॄत् (१ उ , नाश देना)	कीर्तयति-ते	कीर्तयांचकार	कीर्तयिता	कीर्तयिष्यति	कीर्तयतु
कन्द् (१ प , रोना)	क्रन्दति	चक्रन्द	क्रन्दिता	क्रन्दिष्यति	क्रन्दतु
क्रम् (१ प०, चलना)	क्रामति	चक्राम	क्रमिता	क्रमिष्यति	क्रामतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
औनत	उन्यात्	उन्यात्	औन्दीत्	औन्दिष्यत्	उन्दयति	उद्यते
औहत	ऊह्येत	ऊह्यिषीष्ट	औढि	औढिष्यत	ऊहयति	ऊह्यते
आप्नुत	आप्नुयेत्	आप्नुयात्	आप्नौत्	आप्निष्यत्	आप्नुयति	आप्नूयते
ऐजत	एजेत्	एज्यात्	ऐजीत्	ऐजिष्यत्	एजयति	एज्यते
ऐषत	एषेत	एषिषीष्ट	ऐषिष्ट	ऐषिष्यत	एषयति	एष्यते
अकण्डूयत	कण्डूयेत्	कण्डूय्यात्	अकण्डूयीत्	अकण्डूयिष्यत्	कण्डूययति	कण्डूय्यते
अकथयत्	कथयेत्	कथ्यात्	अचकथत्	अकथयिष्यत्	कथयति	कथ्यते
अकथयत	कथयेत	कथयिषीष्ट	अचकथत	अकथयिष्यत	"	"
अकामयत	कामयेत	कामयिषीष्ट	अचीकमत	अकामयिष्यत	कामयति	काम्यते
अकम्यत	कम्येत	कम्यिषीष्ट	अकम्यि	अकम्यिष्यत	कम्यति	कम्यते
अकास्यत्	कास्येत्	कास्यात्	अकासीत्	अकासिष्यत्	कासयति	कास्यते
अकाश्यत	काश्येत	काशिषीष्ट	अकाशि	अकाशिष्यत	काशयति	काश्यते
अकास्यत	कास्येत	कासिषीष्ट	अकासि	अकासिष्यत	कासयति	कास्यते
अचिकि त्सत्	चिकित्सेत्	चिकित्स्यात्	अचिकि-त्सीत्	अचिकि त्सिष्यत्	चिकित्स-यति	चिकित्स्यते
अकीर्त्यत्	कीर्त्येत्	कीर्त्यात्	अकीर्त्यीत्	अकीर्त्यिष्यत्	कीर्त्यति	कीर्त्यते
अकोत्	कुयात्	कूयात्	अकोषीत्	अकोष्यत्	कावयति	कूयते
अकुन्दत्	कुन्देत्	कुन्द्यात्	अकुन्दीत्	अकुन्दिष्यत्	कुन्दयति	कुन्द्यते
अकुत्सयत	कुत्सयेत	कुत्सयिषीष्ट	अचुकुत्सत	अकुत्सयिष्यत	कुत्सयते	कुत्स्यते
अकुप्यत्	कुप्येत्	कुप्यात्	अकुपत्	अकोपिष्यत्	कोपयति	कुप्यते
अकूदत	कूदेत	कूदिषीष्ट	अकूदिष्ट	अकूदिष्यत	कूदयति	कूद्यते
अकूजत्	कूजेत्	कूज्यात्	अकूजीत्	अकूजिष्यत्	कूजयति	कूज्यते
अकरोत्	कुर्यात्	क्रियात्	अकार्षीत्	अकरिष्यत्	कारयति	क्रियते
अकृत	कुर्वीत	कृषीष्ट	अकृत	अकरिष्यत	"	"
अकन्तत्	कन्तेत्	कन्त्यात्	अचकर्तीत्	अकर्तिष्यत्	कर्तयति	कृत्यते
अकल्पत	कल्पेत	कल्पिषीष्ट	अकल्पत्	अकल्पिष्यत	कल्पयति	कल्प्यते
अकर्षत्	कर्षेत्	कृष्यात्	अकार्क्षीत्	अकर्क्ष्यत्	कर्षयति	कृष्यते
अकिरत्	किरेत्	कीर्यात्	अकारीत्	अकरिष्यत्	कारयति	कीर्यते
अकीर्तयत्	कीर्तयेत्	कीर्त्यात्	अचिकीर्तत्	अकीर्तयिष्यत्	कीर्तयति	कीर्त्यते
अकन्दत्	कन्देत्	कन्द्यात्	अचन्दीत्	अकन्दिष्यत्	कन्दयति	कन्द्यते
अकामत्	कामत्	कम्यात्	अचमीत्	अकमिष्यत्	कमयति	कम्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
श्री (९उ०,स्वीदना) प		श्रीणाति	शिश्राय	श्रेता	श्रेष्यति	श्रीणातु
	आ०—	श्रीणीते	शिश्रिये	श्रेता	श्रेष्यते	श्रीणीताम्
श्वेड्	(१ प , खेदना)	श्वेटति	शिश्वेड	श्वेडिता	श्वेडिष्यति	श्वेटतु
श्वुम्	(४ प , सूजा होना)	श्वुम्यति	शुश्वोभ	श्वोद्धा	श्वोस्यति	श्वुम्यतु
श्वुङ्	(१ प , सोना)	श्वेयति	शुश्वोय	श्वेता	श्वोस्यति	श्वेयतु
श्वम्	(४ प थकना)	श्वाम्यति	शश्वाम	श्वमिता	श्वमिष्यति	श्वाम्यतु
श्विद्	(४ प०, गीला होना)	श्विद्यति	शिश्वेद	श्वेदिता	श्वेदिष्यति	श्विद्यतु
श्विद्य	(४ आ ,स्निग्ध होना)	श्विद्यते	शिश्विद्ये	श्वेदिता	श्वेदिष्यते	श्विद्यताम्
श्विन्	(९ प , बुरा देना)	श्विन्नाति	शिश्वेद	श्वेत्ता	श्वेत्स्यति	श्विन्नातु
श्वि	(१ प ,आनन्दकरना)	श्वयति	शश्वाय	श्वयिता	श्वयिष्यति	श्वयतु
श्वि	(१ प , पकाना)	श्वयति	शश्वाय	श्वायिता	श्वायिष्यति	श्वायतु
श्वि	(१आ ,शमा करना)	श्वयते	शश्वये	श्वयिता	श्वयिष्यते	श्वयताम्
श्वि	(४ प , शमा)	श्वाम्यति	शश्वाम	श्वमिता	श्वमिष्यति	श्वाम्यतु
श्वृ	(१ प०, बहना)	श्वरति	शश्वार	श्वरिता	श्वरिष्यति	श्वरतु
श्वि	(१ उ०,सोना) प्र+	श्वाययति-ते	शश्वापयांचकार	श्वापयिता	श्वापयिष्यति	श्वाययतु
क्षि	(१ प , नष्ट होना)	क्षयति	चिक्षाय	क्षेता	क्षेष्यति	क्षयतु
क्षिप्	(६ उ , फेंकना)	क्षिपति-ते	चिक्षेप	क्षेप्ता	क्षेप्स्यति	क्षिपतु
क्षीव्	(१ आ०,मत्त होना)	क्षीव्यते	चिक्षीवे	क्षीविता	क्षीविष्यते	क्षीव्यताम्
क्षुद्	(७ उ , पीसना)	क्षुणत्ति	चुक्षोद	क्षोत्ता	क्षोत्स्यति	क्षुणत्तु
क्षुभ्	(१आ ,क्षुब्ध होना)	क्षोभते	चुक्षुभे	क्षोभिता	क्षोभिष्यते	क्षोभताम्
क्षै	(१ प , क्षीण होना)	क्षायति	चक्षौ	क्षाता	क्षास्यति	क्षायतु
क्ष्णु	(२ प , तेज करना)	क्ष्णौति	चुक्ष्णाव	क्ष्णविता	क्ष्णविष्यति	क्ष्णौतु
क्ष्मप्	(१ उ , तोड़ना)	क्ष्मपयति-ते	क्ष्मपयांचकार	क्ष्मपयिता	क्ष्मपयिष्यति	क्ष्मपयतु
क्ष्मा	(१ उ , खोदना)	क्ष्मायति-ते	चक्ष्मान	क्ष्मायिता	क्ष्मायिष्यति	क्ष्मायतु
क्ष्माद्	(१ प क्षाना)	क्ष्मादति	चक्ष्माद	क्ष्मादिता	क्ष्मादिष्यति	क्ष्मादतु
क्ष्विद्	(४आ०,खिन्न होना)	क्ष्विद्यते	चिक्ष्विदे	क्ष्वेत्ता	क्ष्वेत्स्यते	क्ष्विद्यताम्
क्ष्वेल्	(१ प०, खेलना)	क्ष्वेलति	चिक्ष्वेल	क्ष्वेलिता	क्ष्वेलिष्यति	क्ष्वेलतु
गण्	(१०उ ,गिनना)	गणयति-ते	गणयांचकार	गणयिता	गणयिष्यति	गणयतु
गद्	(१प ,कहना)नि+	गदति	अगादत्	गदिता	गदिष्यति	गदतु
गम्	(१ प०, जाना)	गच्छति	अगच्छत्	गन्ता	गमिष्यति	गच्छतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अक्रीणात्	क्रीणीयात्	क्रीयात्	अक्रैषीत्	अक्रेष्यत्	क्रापयति-ते	क्रीयते
अक्रीणीत	क्रीणीत	क्रेषीष्ट	अक्रेष्ट	अक्रेष्यत	,,	,,
अक्रीळत्	क्रीळेत्	क्रीड्यात्	अक्रीळीत्	अक्रीळिष्यत्	क्रीडयति	क्रीड्यते
अक्रुध्यत्	क्रुध्येत्	क्रुध्यात्	अक्रुधत्	अक्रोत्स्यत्	क्रोधयति	क्रुध्यते
अक्रोक्षत्	क्रोक्षेत्	क्रुक्षात्	अक्रुक्षत्	अक्रोक्ष्यत्	क्रोक्षयति	क्रुक्ष्यते
अक्षाम्यत्	क्षाम्येत्	क्षम्यात्	अक्षमत्	अक्षमिष्यत्	क्षमयति	क्षम्यते
अक्षिप्यत	क्षिप्येत	क्षेप्सीष्ट	अक्षेप्सीष्ट	अक्षेप्स्यत	क्षेपयति	क्षिप्सते
अक्षिप्यत्	क्षिप्येत्	क्षिप्यात्	अक्षेप्सीत्	अक्षेप्स्यत्	,,	,,
अक्ष्णुत	क्ष्णुयात्	क्ष्णूयात्	अक्षौषीत्	अक्षोष्यत	क्षापयति	क्ष्णूयते
अक्ष्मत	क्ष्मयेत	क्षमिषीष्ट	अक्षमिष्ट	अक्षमिष्यत	क्षमयति	क्ष्म्यते
अक्ष्माम्यत्	क्ष्माम्येत्	क्ष्म्यात्	अक्षमत्	अक्षमिष्यत्	,,	,,
अक्षरत्	क्षरेत्	क्षर्यात्	अक्षारीत्	अक्षरिष्यत्	क्षारयति	क्षर्यते
अक्षाम्यत्	क्षाम्येत्	क्षास्यात्	अक्षिक्षत्	अक्षाक्षिष्यत्	क्षाक्षयति	क्षास्यते
अक्षायत्	क्षायेत्	क्षीयात्	अक्षैषीत्	अक्षेष्यत्	क्षापयति	क्षीयते
अक्षिपत्	क्षिपेत्	क्षिप्यात्	अक्षैप्सीत्	अक्षेप्स्यत्	क्षेपयति	क्षिप्यते
अक्षीयत	क्षीयेत	क्षीषिषीष्ट	अक्षीषिष्ट	अक्षीषिष्यत	क्षीषयति	क्षिप्यत
अक्षुध्नत्	क्षुध्नयात्	क्षुध्यात्	अक्षुधत्	अक्षोत्स्यत्	क्षोदयति	क्षुध्यते
अक्षोभ्यत	क्षोभ्येत	क्षोभिषीष्ट	अक्षुभत्	अक्षोभिष्यत	क्षोभयति	क्षुभ्यते
अक्षायत्	क्षायेत्	क्षायात्	अक्षासीत्	अक्षास्यत्	क्षपयति	क्षायते
अक्ष्णोत्	क्ष्णुयात्	क्ष्णूयात्	अक्ष्णासीत्	अक्ष्णासिष्यत्	क्ष्णापयति	क्ष्णूयते
अक्षण्ड्यत्	क्षण्ड्येत्	क्षण्ड्यात्	अक्षण्डीत्	अक्षण्डिष्यत्	क्षण्डयति	क्षण्ड्यते
अक्ष्मायत्	क्ष्मायेत्	क्ष्मेयात्	अक्षासीत्	अक्ष्मास्यत्	क्ष्मापयति	क्ष्मायते
अक्ष्वेलत्	क्ष्वेलेत्	क्ष्वेल्यात्	अक्ष्वेलीत्	अक्ष्वेलिष्यत्	क्ष्वेलयति	क्ष्वेल्यते
अक्ष्वेडत्	क्ष्वेडेत्	क्ष्वेड्यात्	अक्ष्वेडीत्	अक्ष्वेडिष्यत्	क्ष्वेडयति	क्ष्वेड्यते
अगच्यत्	गच्यत्	गम्यात्	अजीगपत्	अगन्तिष्यत	गमयति	गम्यत
अगादत्	गादेत्	गद्यात्	अगादीत्	अगर्दिष्यत्	गादयति	गद्यते
अगच्छत्	गच्छेत्	गम्यात्	अगमत्	अगमिष्यत्	गमयति	गम्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
गज् (१ प , गरजना)		गर्जति	जगर्ज	गर्जिता	गर्जिष्यति	गर्जतु
गर्ह् (१आ०,निन्दा करना)		गर्हते	जगर्हे	गर्हिता	गर्हिष्यते	गर्हताम्
गर्ह् (१ उ , ,, ,,)		गर्हयति-ते	गर्हयांचकार	गर्हयिता	गर्हयिष्यति	गर्हयतु
गवेष् (१ उ०, खोजना)		गवेषयति	गवेषयांचकार	गवेषयिता	गवेषयिष्यति	गवेषयतु
गाह् (१ आ , घुसना)		गाहते	जगाहे	गाहिता	गाहिष्यते	गाहताम्
गुम्फ (१ प०, गूँथना)		गुम्फति	जुगुम्फ	गुम्फिता	गुम्फिष्यति	गुम्फतु
गुण्ठ् (१०उ ,घेरना)	अव +	गुण्ठयति	गुण्ठयांचकार	गुण्ठयिता	गुण्ठयिष्यति	गुण्ठयतु
गुप् (१ प०, रक्षा करना)		गोपायति	जुगोप	गोपिता	गोपिष्यति	गोपायतु
गुप् (१ आ ,निन्दा करना)		जुगुप्सते	जुगुप्साचक्रे	जुगुप्सिता	जुगुप्सिष्यते	जुगुप्सताम्
गुम्फ् (६ प , गूँथना)		गुम्फति	जुगुम्फ	गुम्फिता	गुम्फिष्यति	गुम्फतु
गृह् (१ उ , छिपाना)		गूहति-ते	जुगूह	गूढिता	गूढिष्यति	गूहतु
गॄ (६ प , निगलना)		गिरति	जगार	गरिता	गरिष्यति	गिरतु
गॄ (९ प , कहना)		गृणाति	,,	,,	,,	गृणातु
गै (१ प , गाना)		गायति	जगौ	गाता	गास्यति	गायतु
ग्रन्थ् (९ प०, बांधना)		ग्रथ्नाति	जग्रन्थ	ग्रन्थिता	ग्रन्थिष्यति	ग्रथ्नातु
ग्रस् (१ आ , खाना)		ग्रसते	जग्रसे	ग्रसिता	ग्रसिष्यते	ग्रसताम्
ग्रह् (९ उ , लेना)	प०—	गृह्णाति	जग्राह	ग्रहीता	ग्रहीष्यति	गृह्णातु
	आ	गृह्णीते	जगृहे	ग्रहिता	ग्रहीष्यते	गृह्णीताम्
घट् (१ प , घटना)		घटयति	जघटौ	घटता	घटस्यति	घटयतु
घट् (१ आ , जगाना)		घटते	जघटे	घटिता	घटिष्यते	घटताम्
घुष् (१० उ , घोषणा)		घोषयति	घोषयांचकार	घोषयिता	घोषयिष्यति	घोषयतु
घूर्ण् (१ आ , घूमना)		घूर्णते	जुघूर्णे	घूर्णिता	घूर्णिष्यते	घूर्णताम्
घूर्ण् (६ प घूमना)		घूर्णति	जुघूर्ण	घूर्णिता	घूर्णिष्यति	घूर्णतु
घ्रा (१ प , सूँघना)		जिघ्रति	जघ्रौ	घ्राता	घ्रास्यति	जिघ्रतु
चकास् (२ प चमकना)		चकास्ति	चकासांचकार	चकासिता	चकासिष्यति	चकास्तु
चक्ष् (२ अ० कहना)	आ +	आचष्टे	आचक्षाते	आचक्षाता	आचक्षास्यते	आचष्टाम्
चम् (अ +, १प पीना)	आ +	आचामति	आचचाम	आचमिता	आचमिष्यति	आचामतु
चर् (१ प चलना)		चरति	चचार	चरिता	चरिष्यति	चरतु
चर्च् (१ प चबाना)		चर्चति	चर्चाञ्च	चर्चिता	चर्चिष्यति	चर्चतु
चल् (१ प , हिलना)		चलति	चचाल	चलिता	चलिष्यति	चलतु

लट्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुट्	लृट्	णिच्	कर्म०
अगर्जत्	गर्जेत्	गर्ज्यात्	अगर्जीत्	अगर्जिष्यत्	गर्जयति	गर्ज्यते
अगर्हत	गर्हेत	गर्हिषीष्ट	अगर्हिष्ट	अगर्हिष्यत	गर्हयति	गर्ह्यते
अगर्हयत्	गर्हयेत्	गर्ह्यात्	अजगर्हत्	अगर्हयिष्यत्	,,	,,
अगवेषयत्	गवेषयेत्	गवेष्यात्	अजगवेषत्	अगवेषयिष्यत्	गवेषयति	गवेष्यते
अगाहत	गाहेत	गाहिषीष्ट	अगाहिष्ट	अगाहिष्यत	गाहयति	गाह्यते
अगुम्फत्	गुम्फेत्	गुम्फ्यात्	अगुम्फीत्	अगुम्फिष्यत्	गुम्फयति	गुम्फ्यते
अगुण्ठयत्	गुण्ठयेत्	गुण्ठ्यात्	अजुगुण्ठत्	अगुण्ठयिष्यत्	गुण्ठयति	गुण्ठ्यते
अगोपायत्	गोपायेत्	गुप्यात्	अगौप्सीत्	अगोपिष्यत्	गोपयति	गुप्यते
अजुगुप्सत	जुगुप्सेत	जुगुप्सिषीष्ट	अजुगुप्सिष्ट	अजुगुप्सिष्यत	जुगुप्सयति	जुगुप्स्यते
अगुम्फत्	गुम्फेत्	गुफ्यात्	अगुम्फीत्	अगुम्फिष्यत्	गुम्फयति	गुफ्यते
अगृह्णत्	गृह्णेत्	गृह्यात्	अग्रहीत्	अग्रहिष्यत्	ग्राहयति	गृह्यते
अगिरत्	गिरेत्	गीर्यात्	अगारीत्	अगरिष्यत्	गारयति	गीर्यते
अगृह्यात्	गृह्णीयात्	,		,,	,,	,
अगायत्	गायेत्	गेयात्	अगाषीत्	अगास्यत्	गापयति	गीयते
अग्रभ्णात्	ग्रभ्णीयात्	ग्रभ्यात्	अग्रभ्णीत्	अग्रभिष्यत्	ग्रभयति	ग्रभ्यते
अग्रसत	ग्रसेत	ग्रसिषीष्ट	अग्रसिष्ट	अग्रसिष्यत	ग्रासयति	ग्रस्यते
अगृह्णात्	गृह्णीयात्	गृह्यात्	अग्रहीत्	अग्रहीष्यत्	ग्राहयति	गृह्यते
अगृह्णीत	गृह्णीत	ग्रहीषीष्ट	अग्रहीष्ट	अग्रहीष्यत	,	,,
अग्लापयत्	ग्लापयेत्	ग्लाप्यात्	अग्लापीत्	अग्लास्यत्	ग्लापयति	ग्लाप्यते
अघटत	घटेत	घटिषीष्ट	अघटिष्ट	अघटिष्यत	घटयति	घट्यते
अघोषयत्	घोषयेत्	घोष्यात्	अजुघुषत्	अघोषयिष्यत्	घोषयति	घोष्यते
अघूर्णत	घूर्णेत	घूर्णिषीष्ट	अघूर्णिष्ट	अघूर्णिष्यत	घूर्णयति	घूर्ण्यते
अघूर्णत्	घूर्णेत्	घूर्ण्यात्	अघूर्णीत्	अघूर्णिष्यत्	,,	,,
अजिघ्रत्	जिघ्रेत्	घ्रेयात्	अघ्रात्	अघ्रास्यत्	घ्रापयति	घ्रायते
अचकास्त	चकास्यात्	चकास्यात्	अचकासीत्	अचकासिष्यत्	चकासयति	चकास्य
आचष्ट	आचक्षीत	आख्यायात्	आख्यत्	आख्यास्यत्	ख्यापयति	ख्यायते
आचामत्	आचामेत्	आचाम्यात्	आचमीत्	आचमिष्यत्	आचामयति	आचाम्यते
अचरत्	चरेत्	चर्यात्	अचारीत्	अचरिष्यत्	चारयति	चर्यते
अचर्कत्	चर्केत्	चर्क्यात्	अचर्कीत्	अचर्किष्यत्	चर्कयति	चर्क्यते
अचलत्	चलेत्	चल्यात्	अचालीत्	अचलिष्यत्	चलयति	चाल्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
चि (५ उ०, चुनना) प०—	चिनोति	चिचाय	चेता	चेष्यति	चिनोतु
आ०—	चिनुते	चिच्ये	चेता	चेष्यते	चिनुताम्
चिन् (१ प , समझना)	चेतति	चिचेत	चेतिता	चेतिष्यति	चेततु
चित् (१ आ , सोचना)	चेतयते	चेतयांचक्रे	चेतयिता	चेतयिष्यते	चेतयताम्
चित्र् (१० उ ,चित्र बनाना)	चित्रयति	चित्रयांचकार	चित्रयिता	चित्रयिष्यति	चित्रयतु
चिन्त् (१ उ , सोचना)	चिन्तयति	चिन्तयांचकार	चिन्तयिता	चिन्तयिष्यति	चिन्तयतु
आ०—	—ते	—चक्रे	,	—ते	—ताम्
चिह्न् (१०उ ,चिह्न लगाना)	चिह्नयति	चिह्नयांचकार	चिह्नयिता	चिह्नयिष्यति	चिह्नयतु
चुद् (१० उ०, प्रेरणा देना)	चोदयति	चोदयांचकार	चोदयिता	चोदयिष्यति	चोदयतु
चुम्ब् (१ प , चूमना)	चुम्बति	चुचुम्ब	चुम्बिता	चुम्बिष्यति	चुम्बतु
चुर् (१ उ०, चुराना)	चोरयति	चोरयांचकार	चोरयिता	चोरयिष्यति	चोरयतु
आ०—	—ते	—चक्रे	,,	—ते	—ताम्
चूर्ण् (१ उ , चूर करना)	चूर्णयति	चूर्णयांचकार	चूर्णयिता	चूर्णयिष्यति	चूर्णयतु
चूष् (१ प चूसना)	चूषति	चुचूष	चूषिता	चूषिष्यति	चूषतु
चेष्ट् (१ आ०, चेष्टा करना)	चेष्टते	चिचेष्टे	चेष्टिता	चेष्टिष्यते	चेष्टताम्
छद् (१ उ ,ढकना)आ +	छादयति	छादयांचकार	छादयिता	छादयिष्यति	छादयतु
छिद् (७ उ , काटना)	छिनत्ति	चिच्छेद	छेत्ता	छेत्स्यति	छिनत्तु
छुर् (६ प , काटना)	छुरति	चुच्छोर	छुरिता	छुरिष्यति	छुरतु
छो (४ प , काटना)	छ्यति	चच्छौ	छाता	छास्यति	छ्यतु
जन् (४ आ पैदा होना)	जायते	जज्ञे	जनिता	जनिष्यते	जायताम्
जप् (१ प , जपना)	जपति	जजाप	जपिता	जपिष्यति	जपतु
जस्भ् (१ प , बात करना)	जस्भते	जजस्भे	जस्भिता	जस्भिष्यति	जस्भतु
जागृ (२ प , जागना)	जागर्ति	जजागार	जागरिता	जागरिष्यति	जागर्तु
जि (१ प जीतना)	जयति	जिगाय	जेता	जेष्यति	जयतु
जीव् (१ प , जीना)	जीवति	जिजीव	जीविता	जीविष्यति	जीवतु
जृष् (१ उ , प्रसन्न होना)	जोषयति	जोषयांचकार	जोषयिता	जोषयिष्यति	जोषयतु
जृम्भ् (१ आ जँभाई लेना)	जृम्भते	जजृम्भे	जृम्भिता	जृम्भिष्यते	जृम्भताम्
ज्ञ (४ प , इट होना)	जीयते	जज्ञार	जरिता	जरिष्यति	जीर्यतु
ज्ञा (९ उ , जानना) प०—	जानाति	जज्ञौ	ज्ञाता	ज्ञास्यति	जानातु
आ०—	जानीते	जज्ञे	ज्ञाता	ज्ञास्यते	जानीताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अचिनोत्	चिनुयात्	चीयात्	अचेषीत्	अचेष्यत्	चाययति	चीयते
अचिनुत	चिन्वीत	चेषीष्ट	अचेष्ट	अचेष्यत	,,	,,
अचेतत्	चेतेत्	चित्यात्	अचेतीत्	अचेतिष्यत्	चेतयति	चित्यते
अचेतयत	चेतयेत	चेतयिषीष्ट	अचीचितत	अचेतयिष्यत	,,	चेत्यते
अचिन्वयत्	चिन्वयेत्	चिन्व्यात्	अचिचिन्वत्	अचिन्वयिष्यत्	चिन्वयति	चिन्व्यते
अचिन्तयत	चिन्तयेत्	चिन्त्यात्	अचिचिन्तत	अचिन्तयिष्यत्	चिन्तयति	चिन्त्यते
—यत	—येत	चिन्तयिषीष्ट	—न्तत	—ष्यत	,,	,,
अचिह्वयत्	चिह्वयेत्	चिह्व्यात्	अचिचिह्वत्	अचिह्वयिष्यत्	चिह्वयति	चिह्व्यते
अचोदयत्	चोदयेत्	चोद्यात्	अचूचुदत्	अचोदयिष्यत्	चोदयति	चोद्यते
अचुम्बत्	चुम्बेत्	चुम्ब्यात्	अचुम्बीत्	अचुम्बिष्यत्	चुम्बयति	चुम्ब्यते
अचोरयत्	चोरयेत्	चोर्यात्	अचूचुरत्	अचोरयिष्यत्	चोरयति	चोर्यते
—त	—त	चोरयिषीष्ट	—त	—त	,,	,,
अचूर्णयत्	चूर्णयेत्	चूर्ण्यात्	अचुचूर्णत्	अचूर्णयिष्यत्	चूर्णयति	चूर्ण्यते
अचूषत्	चूषेत्	चूष्यात्	अचूषीत्	अचूषिष्यत्	चूषयति	चूष्यते
अचेष्ट	चेष्टेत	चेष्टिषीष्ट	अचेष्टिष्ट	अचेष्टिष्यत	चेष्टयति	चेष्ट्यते
अच्छादयत्	छादयेत्	छाद्यात्	अचिच्छदत्	अच्छादयिष्यत्	छादयति	छाद्यते
अच्छिनत्	छिन्द्यात्	छिद्यात्	अच्छैत्सीत्	अच्छेत्स्यत्	छेदयति	छिद्यते
अच्छुरत्	छुरेत्	छुर्यात्	अच्छुरीत्	अच्छुरिष्यत्	छोरयति	छुर्यते
अच्छृणत्	छृणेत्	छृण्यात्	अच्छार्षीत्	अच्छरिष्यत्	छारयति	छार्यते
अजागत	जागेत	जागरिषीष्ट	अजागरिष्ट	अजागरिष्यत	जागरयति	जागर्यते
अजपत्	जपेत्	जप्यात्	अजपीत्	अजपिष्यत्	जापयति	जप्यते
अजल्पत्	जल्पेत्	जल्प्यात्	अजल्पीत्	अजल्पिष्यत्	जल्पयति	जल्प्यते
अजागः	जागृयात्	जागर्यात्	अजागरीत्	अजागरिष्यत्	जागरयति	जागर्यते
अजयत्	जयेत्	जीयात्	अजैषीत्	अजेष्यत्	जापयति	जीयते
अजीवत्	जीवेत्	जीव्यात्	अजीवीत्	अजीविष्यत्	जीवयति	जीव्यते
अजोषयत्	जोषयेत्	जोष्यात्	अजूजुषत्	अजोषयिष्यत्	जोषयति	जोष्यते
अजम्भत	जम्भेत	जम्भिषीष्ट	अजम्भिष्ट	अजम्भिष्यत	जम्भयति	जम्भ्यते
अजीर्यत्	जीर्येत्	जीर्यात्	अजरीत्	अजरिष्यत्	जरयति	जीर्यते
अजानात्	जानीयात्	ज्ञेयात्	अज्ञासीत्	अज्ञास्यत्	ज्ञापयति	ज्ञायते
अजानीत	जानीत	ज्ञासीष्ट	अज्ञास्त	अज्ञास्यत	,,	

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
शा(१०उ	आज्ञादेना)	आ+शापयति	शापयांचकार	शापयिता	शापयिष्यति	शापयतु
ष्वर्	(१ प , शब्द होना)	स्वरति	सस्वार	स्वरिता	स्वरिष्यति	स्वरतु
स्वद्	(१ प , खाना)	स्वदति	सस्वाद	स्वदिता	स्वदिष्यति	स्वदतु
टंक्	(१ उ चिह्न लगाना)	टंकयति	टंकयांचकार	टंकयिता	टंकयिष्यति	टंकयतु
डी	(१आ , उड़ना)	उत्+ डयते	डिड्ये	डयिता	डयिष्यते	डयताम्
डी	(४ आ ,)	उत्+ डीयते	,	,	,	डीयताम्
ढौक्	(१ आ , पहुँचना)	ढौकते	दुढौके	ढौकिता	ढौकिष्यते	ढौकताम्
तक्ष्	(१ प , छीलना)	तक्षति	ततक्ष	तक्षिता	तक्षिष्यति	तक्षतु
ताड्	(१ उ०, पीटना)	ताडयति	ताडयांचकार	ताडयिता	ताडयिष्यति	ताडयतु
तन्	(८उ ,फैलाना)	प०–तनोति	तताान	तनिता	तनिष्यति	तनोतु
		आ तनुते	तेने	तनिता	तनिष्यते	तनुताम्
तन्त्र्	(१ आ पालन०)	तन्त्रयते	तन्त्रयांचक्रे	तन्त्रयिता	तन्त्रयिष्यते	तन्त्रयताम्
तप्	(१ प , तपना)	तपति	तताप	तप्ता	तप्स्यति	तपतु
तर्क्	(१ उ , सोचना)	तर्कयति	तर्कयांचकार	तर्कयिता	तर्कयिष्यति	तर्कयतु
तर्ज्	(१ प० डाँटना)	तर्जति	ततर्ज	तर्जिता	तर्जिष्यति	तर्जतु
तर्ज्	(१ आ डाँटना)	तर्जयते	तर्जयांचक्रे	तर्जयिता	तर्जयिष्यते	तर्जयताम्
तस्क्	(१ उ ,चलाना)	भव+ तस्करयति	तस्करयांचकार	तस्करयिता	तस्करयिष्यति	तस्करयतु
तिज्	(१आ ,क्षमाकरना)	तितिक्षते	तितिक्षांचक्रे	तितिक्षिता	तितिक्षिष्यते	तितिक्षताम्
तुद्	(६उ ,दुःख देना)	तुदति–ते	तुतोद	तोत्ता	तोत्स्यति	तुदतु
तुरण्	(११प०,शीघ्रकरना)	तुरण्यति	तुरण्यांचकार	तुरणिता	तुरणिष्यति	तुरण्यतु
तुल्	(१ उ , तोलना)	तोलयति	तोलयांचकार	तोलयिता	तोलयिष्यति	तोलयतु
तुष्	(४ प०, तुष्ट होना)	तुष्यति	तुतोष	तोष्टा	तोष्यति	तुष्यतु
तृप्	(४ प०, तृप्त होना)	तृप्यति	ततर्प	तर्पिता	तर्पिष्यति	तृप्यतु
तृप्	(४प ,प्याशहोना)	तृप्यति	ततर्प	तर्पिता	तर्पिष्यति	तृप्यतु
तॄ	(१ प , तैरना)	तरति	ततार	तरिता	तरिष्यति	तरतु
त्यज्	(१ प छोड़ना)	त्यजति	तत्याज	त्यक्ता	त्यक्ष्यति	त्यजतु
त्रप्	(१आ , लज्जाना)	त्रपते	त्रेपे	त्रपिता	त्रपिष्यते	त्रपताम्
त्रस्	(४ प डरना)	त्रस्यति	तत्रास	त्रसिता	त्रसिष्यति	त्रस्यतु
त्रुट्	(६ प , टूटना)	त्रुटति	तुत्रोट	त्रुटिता	त्रुटिष्यति	त्रुटतु
त्रुड्	(१ आ ,तोड़ना)	त्रोटयते	त्रोटयांचक्रे	त्रोटयिता	त्रोटयिष्यते	त्रोटयताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लङ्	णिच्	कर्म०
अशाप्यत्	शापयेत्	शाप्यात्	अशिश्रपत्	अशापयिष्यत्	शापयति	शाप्यते
अस्वरत्	स्वरेत्	स्वर्यात्	अस्वारीत्	अस्वरिष्यत्	स्वरयति	स्वर्यते
अस्वस्त	स्वसेत्	स्वस्यात्	अस्वासीत्	अस्वसिष्यत्	श्वासयति	श्वस्यते
अटंकयत्	टंकयेत्	टंक्यात्	अटटंकत्	अटंकयिष्यत्	टंकयति	टंक्यते
अडयत	डयेत	डयिषीष्ट	अडयिष्ट	अडयिष्यत	डावयति	डीयते
अडीयत	डीयेत		"		"	"
अडौकत	डौकेत	डौकिषीष्ट	अडौकिष्ट	अडौकिष्यत	डौकयति	डौक्यते
अतक्षत्	तक्षेत्	तक्ष्यात्	अतक्षीत्	अतक्षिष्यत्	तक्षयति	तक्ष्यते
अताडयत्	ताडयेत्	ताड्यात्	अतीतडत्	अताडयिष्यत्	ताडयति	ताड्यते
अतनोत्	तनुयात्	तन्यात्	अतानीत्	अतनिष्यत्	तानयति	तन्यते
अतनुत	तन्वीत	तनिषीष्ट	अतनिष्ट	अतनिष्यत	"	"
अतत्रपत	तत्रपेत	तत्रपिषीष्ट	अतत्रपत	अतत्रपिष्यत	तत्रपति	तत्रप्यते
अतपत्	तप्येत्	तप्यात्	अताप्सीत्	अतप्स्यत्	तापयति	तप्यते
अतर्कयत्	तर्कयेत्	तर्क्यात्	अततर्कत्	अतर्कयिष्यत्	तर्कयति	तर्क्यते
अतर्जत्	तर्जेत्	तर्ज्यात्	अतर्जीत्	अतर्जिष्यत्	तर्जयति	तर्ज्यते
अतर्जयत	तर्जयेत	तर्जयिषीष्ट	अततर्जत	अतर्जयिष्यत	"	"
अतंसयत्	तंसयेत्	तंस्यात्	अततंसत्	अतंसयिष्यत्	तंसयति	तंस्यते
अतितिक्षत	तितिक्षेत	तितिक्षिषीष्ट	अतितिक्षिष्ट	अतितिक्षिष्यत	तेजयति	तितिक्ष्यते
अतुदत्	तुदेत्	तुद्यात्	अतौत्सीत्	अतोत्स्यत्	तोदयति	तुद्यते
अतुरण्यत्	तुरण्येत्	तुरण्यात्	अतुरण्यीत्	अतुरण्यिष्यत्	तुरण्यति	तुरण्यते
अतोलयत्	तोलयेत्	तोल्यात्	अततुलत्	अतोलयिष्यत्	तोलयति	तोल्यते
अतृप्यत्	तृप्येत्	तृप्यात्	अतृपत्	अतोस्यत्	तोषयति	तृप्यते
अतृप्यत्	तृप्येत्	तृप्यात्	अतृपत्	अतर्पिष्यत्	तर्पयति	तृप्यते
अतृप्यत्	तृप्येत्	तृप्यात्	अतृपत्	अतर्पिष्यत्	तर्पयति	तृप्यते
अतरत्	तरेत्	तीर्यात्	अतारीत्	अतरिष्यत्	तारयति	तीर्यते
अत्यजत्	त्यजेत्	त्यज्यात्	अत्याक्षीत्	अत्यक्ष्यत्	त्याजयति	त्यज्यते
अत्रपत	त्रपेत	त्रपिषीष्ट	अत्रपिष्ट	अत्रपिष्यत	त्रपयति	त्रप्यते
अत्रस्यत्	त्रस्येत्	त्रस्यात्	अत्रसीत्	अत्रसिष्यत्	त्रासयति	त्रस्यते
अत्रुटत्	त्रुटेत्	त्रुट्यात्	अत्रुटीत्	अत्रुटिष्यत्	त्रोटयति	त्रुट्यते
अत्रोटयत	त्रोटयेत	त्रोटयिषीष्ट	अत्रुत्रुटत	अत्रोटयिष्यत	"	त्रोट्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
मे (१भ्वा	बचाना)	मायते	ममे	माता	मास्यते	मायताम्
स्वप् (१ प , सोना)		स्वपति	सस्वाप	स्वप्ता	स्वप्स्यति	स्वपतु
स्वर (१भ्वा ,शब्दीकरना)		स्वरते	सस्वरे	स्वरिता	स्वरिष्यते	स्वरताम्
स्विद (१द , चमकना)		स्वेदति–ते	सिस्वेद	स्वेत्ता	स्वेत्स्यति	स्वेदतु
दण्ड् (१०उ ,दण्ड देना)		दण्डयति–ते	दण्डयांचकार	दण्डयिता	दण्डयिष्यति	दण्डयतु
दम् (४प०,दमन करना)		दाम्यति	ददाम	दमिता	दमिष्यति	दाम्यतु
दम्भ्(१प धोखा देना)		दम्भोति	ददम्भ	दम्भिता	दम्भिष्यति	दम्भोतु
दय् (१भ्वा०,दयाकरना)		दयते	दयांचक्रे	दयिता	दयिष्यते	दयताम्
दंश् (१ प डँसना)		दशति	ददंश	दंष्टा	दंक्ष्यति	दशतु
दह् (१ प , जलाना)		दहति	ददाह	दग्धा	धक्ष्यति	दहतु
दा (१ प , देना)		यच्छति	ददौ	दाता	दास्यति	यच्छतु
दा (२ प , काटना)		द्यति		,,	,,	द्यतु
दा (३ उ देना) प –		ददाति	,	,,	,,	ददातु
	आ०–	दत्ते	ददे	,	दास्यते	दत्ताम्
दिव्(४प चमकनाक्रीड़ादि)		दीव्यति	दिदेव	देविता	देविष्यति	दीव्यतु
दिव् (१ भ्वा ,रक्षाना)		देवयते	देवयांचक्रे	देवयिता	देवयिष्यते	देवयताम्
दिश्(६उ देना कहना)		दिशति–ते	दिदेश	देष्टा	देक्ष्यति	दिशतु
दीक्ष्(१भ्वा दीक्षादेना)		दीक्षते	दिदीक्षे	दीक्षिता	दीक्षिष्यते	दीक्षताम्
दीप् (४भ्वा चमकना)		दीप्यते	दिदीपे	दीपिता	दीपिष्यते	दीप्यताम्
दु(५प ,दुःखित होना)		दुनोति	दुदाव	दोता	दोष्यति	दुनोतु
दुप् (४प बिगड़ना)		दुप्यति	दुदोप	दोषा	दोक्ष्यति	दुप्यतु
दुह् (२उ ,दुहना)प–		दोग्धि	दुदोह	दोग्धा	धोक्ष्यति	दोग्धु
	आ०–	दुग्धे	दुदुहे		—ते	दुग्धाम्
दू(४भ्वा दुःखितहोना)		दूयते	दुदुवे	दविता	दविष्यते	दूयताम्
द्र(६भ्वा ,आदरकरना)आ+		आद्रियते	आदृद्रे	आदर्ता	आदरिष्यते	आद्रियताम्
दृप् (४प गर्वकरना)		दृप्यति	ददर्प	दर्पिता	दर्पिष्यति	दृप्यतु
दृश् (१ प , देखना)		पश्यति	ददर्श	द्रष्टा	द्रक्ष्यति	पश्यतु
दृ (९ प , फाड़ना)		दृणाति	ददार	दरिता	दरिष्यति	दृणातु
दो (४ प , काटना)		द्यति	ददौ	दाता	दास्यति	द्यतु
द्युत्(१भ्वा चमकना)		द्योतते	दिद्युते	द्योतिता	द्योतिष्यते	द्योतताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अप्तायत	प्तायेत	प्तासीष्ट	अप्तास्त	अप्तास्यत	प्तापयति	प्तायते
अस्वक्षत्	स्वक्षेत्	स्वक्ष्यात्	अस्वक्षीत्	अस्वक्षिष्यत्	स्वक्षयति	स्वक्ष्यते
अस्वरत	स्वरेत	स्वरिषीष्ट	अस्वरिष्ट	अस्वरिष्यत	स्वरयति	स्वर्यते
अस्वेषत्	स्वेषेत्	स्विष्यात्	अस्विक्षत्	अस्वेक्ष्यत्	स्वेषयति	स्विष्यते
अदष्टक्षत्	दष्टक्षेत्	दष्ट्क्ष्यात्	अदष्टक्षत्	अदष्टक्षिष्यत्	दष्टक्षयति	दष्ट्क्ष्यते
अदाम्यत्	दाम्येत्	दम्यात्	अदमत्	अदमिष्यत्	दमयते	दम्यते
अदम्नोत्	दम्नुयात्	दम्यात्	अदम्नीत्	अदम्निष्यत्	दम्नयति	दम्यते
अदपत	दपेत	दपिषीष्ट	अदपिष्ट	अदपिष्यत	दापयति	दप्यते
अदक्षत्	दक्षेत्	दक्ष्यात्	अदाक्षीत्	अदक्ष्यत्	दंक्षयति	दक्ष्यते
अदहत्	दहेत्	दह्यात्	अधाक्षीत्	अधक्ष्यत्	दाहयति	दह्यते
अयच्छत्	यच्छेत्	देयात्	अगात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अदात्	दद्यात्	दायात्	अदासीत्	,,	,,	दायते
अददात्	दद्यात्	देयात्	अदात्	,,	,,	दीयते
अदत्त	ददीत	दासीष्ट	अदित	अदास्यत	,,	,,
अदीम्यत	दीम्येत्	दीम्यात्	अदैपीत्	अदैपिष्यत्	देपयति	दीम्यते
अदेवयत	देवयेत	देवयिषीष्ट	अदीदिवत	अदेवयिष्यत	देवयति	देव्यते
अदिक्षत्	दिक्षेत्	दिक्ष्यात्	अदिक्षत्	अदेक्ष्यत्	देक्षयति	दिक्ष्यते
अदीक्षत	दीक्षेत	दीक्षिषीष्ट	अदीक्षिष्ट	अदीक्षिष्यत	दीक्षयति	दीक्ष्यते
अदीप्यत	दीप्येत	दीपिषीष्ट	अदीपिष्ट	अदीपिष्यत	दीपयति	दीप्यते
अदुनोत्	दुनुयात्	दूयात्	अदौषीत्	अदोष्यत्	दावयति	दूयते
अदुष्यत्	दुष्येत्	दुष्यात्	अदुषत्	अदोक्ष्यत्	दूषयति	दुष्यते
अदोग्ध्	दुह्यात्	दुह्यात्	अधुक्षत्	अधोक्ष्यत्	दोहयति	दुह्यते
अदुग्ध	दुहीत	धुक्षीष्ट	अधुक्षत	—दयत	,	,
अदूयत	दूयेत	दविषीष्ट	अदविष्ट	अदविष्यत	दावयति	दूयते
आद्रियत	आद्रियेत	आदरीष्ट	आदृत	आदरिष्यत	आदारयति	आद्रियते
अदृम्यत्	दृम्येत्	दृम्यात्	अदृपत्	अदरिष्यत्	दृपयति	दृम्यते
अदरत्	दरेत्	दर्यात्	अदार्षीत्	अदरिष्यत्	दारयति	दर्यते
अदाप्त्	दाप्यात्	दीर्यात्	अदारीत्	अदरिष्यत्	दारयति	दीर्यते
अदात्	देत्	देयात्	अदात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अदोहत	दोहेत	दोहिषीष्ट	अदोहिष्ट	अदोहिष्यत	दोहयति	दुह्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट	लृट्	लोट्
द्रा (२ प , सोना) नि +	निद्राति	निद्रौ	निद्राता	निद्रास्यति	निद्रातु
द्रु (१ प , पिघलना)	द्रवति	दुद्राव	द्रोता	द्रोष्यति	द्रवतु
द्रुह् (४ प , द्रोह करना)	द्रुह्यति	दुद्रोह	द्रोहिता	द्रोहिष्यति	द्रुह्यतु
द्विष् (२ उ , द्वेष करना)	द्वेष्टि	दिद्वेष	द्वेष्टा	द्वेक्ष्यति	द्वेष्टु
धा (१ उ , धारण करना) प०	दधाति	दधौ	धाता	धास्यति	दधातु
आ०	धत्ते	दधे	,,	धास्यते	धत्ताम्
धाव् (१ उ , दौड़ना, धोना)	धावति-ते	दधाव	धाविता	धाविष्यति	धावतु
धु (५ उ० हिलाना)	धुनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धुनोतु
धुष् (१ आ०, जलना)	धुष्यते	दुधुषे	धुषिता	धुषिष्यते	धुष्यताम्
धू (५ उ , हिलाना)	धूनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धूनोतु
धूप् (१ प तपाना)	धूपयति	धूपायांचकार	धूपायिता	धूपयिष्यति	धूपयतु
धृ (१ उ , रखना)	धरति-ते	दधार	धर्ता	धरिष्यति	धरतु
धृ (१ उ , रखना)	धारयति-ते	धारयांचकार	धारयिता	धारयिष्यति	धारयतु
धूप् (१ उ०, दबाना)	धर्षयति-ते	धर्षयांचकार	धर्षयिता	धर्षयिष्यति	धर्षयतु
धे (१ प पीना, चूसना)	धयति	दध्यौ	धाता	धास्यति	धयतु
ध्मा (१ प , फूँकना)	धमति	दध्मौ	ध्माता	ध्मास्यति	धमतु
ध्यै (१ प , सोचना)	ध्यायति	दध्यौ	ध्याता	ध्यास्यति	ध्यायतु
ध्वन् (१ प शब्द करना)	ध्वनति	दध्वान	ध्वनिता	ध्वनिष्यति	ध्वनतु
ध्वंस (१ आ , नष्ट होना)	ध्वंसते	दध्वंसे	ध्वंसिता	ध्वंसिष्यते	ध्वंसताम्
नद् (१ प , नाद करना)	नदति	ननाद	नदिता	नदिष्यति	नदतु
नन्द् (१ प , प्रसन्न होना)	नन्दति	ननन्द	नन्दिता	नन्दिष्यति	नन्दतु
नम् (१ प , झुकना) प्र +	नमति	ननाम	नन्ता	नंस्यति	नमतु
नश् (४ प , नष्ट होना)	नश्यति	ननाश	नशिता	नशिष्यति	नश्यतु
नह् (४ उ , बाँधना)	नह्यति-ते	ननाह	नद्धा	नत्स्यति	नह्यतु
निज् (१ उ , धोना)	नेनेक्ति	निनेज	नेक्ता	नेक्ष्यति	नेनेक्तु
निन्द् (१ प निन्दा)	निन्दति	निनिन्द	निन्दिता	निन्दिष्यति	निन्दतु
नी (१ उ , ले जाना) प०	नयति	निनाय	नेता	नेष्यति	नयतु
आ०	नयते	निन्ये	,,	नेष्यते	नयताम्
नु (२ प०, स्तुति)	नौति	नुनाव	नविता	नविष्यति	नौतु
नुद् (६ उ , प्रेरणा देना)	नुदति-ते	नुनोद	नोत्ता	नोत्स्यति	नुदतु

लट्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लङ्	णिच्	कर्म०
स्नाति	स्नायात्	स्नेयात्	अस्नासीत्	अस्नास्यत्	स्नापयति	स्नाप्यते
स्नौति	स्नुयात्	स्नूयात्	अस्नावीत्	अस्नोष्यत्	स्नावयति	स्नूयते
स्नुते	स्नुवीत	स्नविषीष्ट	अस्नविष्ट	अस्नविष्यत	स्नावयति	स्नूयते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट
नृत् (४ प , नाचना)		नृत्यति	ननर्त	नर्तिता	नर्तिष्यति	नृत्यतु
पच् (१ उ ,पकाना)	प०—	पचति	पपाच	पक्ता	पक्ष्यति	पचतु
	आ –	पचते	पेचे	,	पक्ष्यते	पचताम्
पठ् (१ प , पढ़ना)		पठति	पपाठ	पठिता	पठिष्यति	पठतु
पत् (१ आ०, खसीदना)		पत्तते	पेदे	पत्तिता	पत्तिष्यते	पत्तताम्
पत् (१ प , गिरना)		पतति	पपात	पतिता	पतिष्यति	पततु
पद् (४ आ , जाना)		पद्यते	पेदे	पत्ता	पत्स्यते	पद्यताम्
पश् (१ उ०, बाँधना)		पाशयति-ते	पाशयांचकार	पाशयिता	पाशयिष्यति	पाशयतु
पा (१ प पीना)		पिबति	पपौ	पाता	पास्यति	पिबतु
पा (२ प , रक्षा करना)		पाति	पपौ	,	„	पातु
पाल् (१० उ , पालना)		पालयति-ते	पालयांचकार	पालयिता	पालयिष्यति	पालयतु
पिष् (७ प०, पीसना)		पिनष्टि	पिपेष	पेष्टा	पेक्ष्यति	पिनष्टु
पीड् (१ उ , दुःख देना)		पीडयति-ते	पीडयांचकार	पीडयिता	पीडयिष्यति	पीडयतु
पुष् (४ प , पुष्ट करना)		पुष्यति	पुपोष	पोष्टा	पोक्ष्यति	पुष्यतु
पुष् (९ प , „)		पुष्णाति	„	पोषिता	पोषिष्यति	पुष्णातु
पूय (१ उ०, पालना)		पोपयति-ते	पोपयांचकार	पोपयिता	पोपयिष्यति	पोपयतु
पू (१ आ , पवित्र)		पवते	पुपुवे	पविता	पविष्यते	पवताम्
पू (९ उ , पवित्र)		पुनाति	पुपाव	पविता	पविष्यति	पुनातु
पूज् (१ उ०, पूजना)		पूजयति-ते	पूजयांचकार	पूजयिता	पूजयिष्यति	पूजयतु
पूर् (१ उ , भरना)		पूरयति-ते	पूरयांचकार	पूरयिता	पूरयिष्यति	पूरयतु
पृ (१ प पालना)		पिपर्ति	पपार	परिता	परिष्यति	पिपर्तु
पृ (१० उ , पालना)		पारयति-ते	पारयांचकार	पारयिता	पारयिष्यति	पारयतु
प्ये (१ आ ,बढ़ना)	आ +	प्यायते	पप्ये	प्याता	प्यास्यते	प्यायताम्
प्रच्छ् (६ प०, पूछना)		पृच्छति	पप्रच्छ	प्रष्टा	प्रक्ष्यति	पृच्छतु
प्रथ् (१ आ , फैलना)		प्रथते	पप्रथे	प्रथिता	प्रथिष्यते	प्रथताम्
प्री (४ आ , प्रसन्न होना)		प्रीयते	पिप्रिये	प्रेता	प्रेष्यते	प्रीयताम्
प्री (९ उ , प्रसन्न करना)		प्रीणाति	पिप्राय	प्रेता	प्रेष्यति	प्रीणातु
प्री (१ उ , „)		प्रीणयति	प्रीणयांचकार	प्रीणयिता	प्रीणयिष्यति	प्रीणयतु
प्लु (१ आ , कूदना)		प्लवते	पुप्लुवे	प्लोता	प्लोष्यते	प्लवताम्
प्लुष् (१ प , जलाना)		प्लोषति	पुप्लोष	प्लोष्टा	प्लोक्ष्यति	प्लोष्टु

लट्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अनृत्यत्	नृत्येत्	नृत्यात्	अनर्तीत्	अनर्तिष्यत्	नर्तयते	नृत्यते
अपचत्	पचेत्	पच्यात्	अपाक्षीत्	अपक्ष्यत्	पाचयति	पच्यते
अपक्त	पचेत	पक्षीष्ट	अपक्त	अपक्ष्यत	,	,
अपठत	पठेत्	पठ्यात्	अपाठीत्	अपठिष्यत्	पाठयति	पठ्यते
अपणत	पण्यत	पणिषीष्ट	अपणिष्ट	अपणिष्यत	पाणयति	पण्यते
अपतत्	पतत्	पत्यात्	अपप्तत्	अपतिष्यत्	पातयति	पत्यते
अपक्त	पचेत	पक्षीष्ट	अपादि	अपक्ष्यत	पाचयति	पक्यते
अपाठयत्	पाठयेत्	पाठ्यात	अपीपठत्	अपाठयिष्यत्	पाठयति	पाठ्यते
अपिबत्	पिबेत्	पेयात्	अपात्	अपास्यत्	पाययति	पीयते
अपात्	पायात	पायात्	अपासीत्	,	पाययति	पायते
अपाठयत	पाठयेत्	पाठ्यात	अपीपठत्	अपाठयिष्यत्	,	पाठ्यते
अपिनद्	पिण्यात्	पिण्यात्	अपिणत्	अपेत्स्यत्	पेणयति	पिण्यते
अपीडयत्	पीड्येत्	पीड्यात्	अपिपीडत्	अपीडयिष्यत्	पीडयति	पीड्यते
अपुष्पत्	पुष्येत्	पुष्यात्	अपुषत्	अपोक्ष्यत्	पोषयति	पुष्यते
अपुष्यात्	पुष्यीयात्	,	अपोषीत्	अपोषिष्यत्	,	,
अपोक्ष्यत्	पोषयेत्	पोष्यात्	अपूपुषत्	अपोषयिष्यत्	,	पोष्यते
अपवत	पवेत	पविषीष्ट	अपविष्ट	अपविष्यत	पावयति	पूयते
अपुनात्	पुनीयात्	पूयात्	अपावीत्	अपविष्यत्	,	,
अपूजयत्	पूजयेत्	पूज्यात्	अपूजुषत्	अपूजयिष्यत्	पूजयति	पूज्यते
अपूरयत्	पूरयेत्	पूर्यात्	अपूपुरत्	अपूरयिष्यत्	पूरयति	पूर्यते
अपिपर	पिपूयात्	पूयात्	अपारीत्	अपरिष्यत्	पारयति	पूयते
अपारयत्	पारयेत्	पार्यात्	अपीपरत्	अपारयिष्यत्	पारयति	पार्यते
अप्यायत	प्याय्येत	प्यासीष्ट	अप्यास्त	अप्यास्यत	प्यायति	प्यायते
अपृच्छत्	पृच्छेत्	पृच्छ्यात्	अप्राक्षीत्	अप्रक्ष्यत्	प्रच्छयति	पृच्छ्यते
अप्रथत	प्रथेत	प्रथिषीष्ट	अप्रथिष्ट	अप्रथिष्यत	प्रथयति	प्रथ्यते
अप्रीयत	प्रीयेत	प्रसीष्ट	अप्रेष्ट	अप्रेष्यत	प्रावयति	प्रीयते
अप्रीयात्	प्रीयीयात्	प्रीयात्	अप्रेषीत्	अप्रेष्यत्	प्रीणयति	,
अप्रीयिषत्	प्रीयेत्	प्रीष्यात्	अप्रिप्रियत्	अप्रीयिष्यत्	,	प्रीष्यते
अप्लवत	प्लवेत	प्लोषीष्ट	अप्लोष्ट	अप्लोष्यत	प्लावयति	प्लूयते
अप्लोषत्	प्लोषेत्	प्लुष्यात्	अप्लौषीत्	अप्लोक्ष्यत्	प्लावयति	प्लुष्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
पच् (१ प०, पकाना)		पचति	पपाच	पक्ता	पक्ष्यति	पचतु
बीभ् (१ या ,भीमत्व होना)		बीभत्सते	बीभत्साञ्चक्रे	बीभत्सिता	बीभत्सिष्यते	बीभत्सताम्
बाधृ (१ उ , बांधना)		बाधयति	बाधयांचकार	बाधयिता	बाधयिष्यति	बाधयतु
बन्ध् (९ प०, बांधना)		बध्नाति	बबन्ध	बन्धा	भन्त्स्यति	बध्नातु
बाध् (१ आ०, पीडा देना)		बाधते	बबाधे	बाधिता	बाधिष्यते	बाधताम्
बुध् (१ उ , समझना)		बोधति-ते	बुबोध	बोधिता	बोधिष्यति	बोधतु
बुध् (४ आ , जानना)		बुध्यते	बुबुधे	बोद्धा	भोत्स्यते	बुध्यताम्
ब्रू (२ उ , बोलना)	प	ब्रवीति	उवाच	वक्ता	वक्ष्यति	ब्रवीतु
	आ	— ब्रूते	ऊचे	,	वक्ष्यते	ब्रुताम्
भक्ष् (१०उ ,खाना)	प	भक्षयति	भक्षयांचकार	भक्षयिता	भक्षयिष्यति	भक्षयतु
	आ	— भक्षयते	भक्षयांचक्रे	,,	—ते	—ताम्
भज् (१ उ , सेवा करना)		भजति-ते	बभाज	भक्ता	भक्ष्यति	भजतु
भञ्ज् (७ प , तोड़ना)		भनक्ति	बभञ्ज	भङ्क्ता	भङ्क्ष्यति	भनक्तु
भण् (१ प , कहना)		भणति	बभाण	भणिता	भणिष्यति	भणतु
भर्त्स् (१ आ०, डाँटना)		भर्त्सयते	भर्त्सयांचक्रे	भार्त्सयिता	भर्त्सयिष्यते	भर्त्सयताम्
भा (१ प०, चमकना)		भाति	बभौ	भाता	भास्यति	भातु
भाष् (१ आ , कहना)		भाषते	बभाषे	भाषिता	भाषिष्यते	भाषताम्
भास् (१ आ , चमकना)		भासते	बभासे	भासिता	भासिष्यते	भासताम्
भिक्ष् (१ आ , माँगना)		भिक्षते	बिभिक्षे	भिक्षिता	भिक्षिष्यते	भिक्षताम्
भिद् (७ उ , तोड़ना)		भिनत्ति	बिभेद	भेत्ता	भेत्स्यति	भिनत्तु
भी (३ प , डरना)		बिभेति	बिभाय	भेता	भेष्यति	बिभेतु
भुज् (७ प , पालना)		भुनक्ति	बुभोज	भोक्ता	भोक्ष्यति	भुनक्तु
	(७ आ , खाना)	भुङ्क्ते	बुभुजे	,,	—ते	भुङ्क्ताम्
भू (१ प , होना)		भवति	बभूव	भविता	भविष्यति	भवतु
भूष् (१ उ , सजाना)		भूषयति-ते	भूषयांचकार	भूषयिता	भूषयिष्यति	भूषयतु
मृ (१ उ पालना)		भरति-ते	बभार	भर्ता	भरिष्यति	भरतु
भृ (३ उ , पालना)		बिभर्ति	,,	,,	,,	बिभर्तु
भ्रम् (१ प , घूमना)		भ्रमति	बभ्राम	भ्रमिता	भ्रमिष्यति	भ्रमतु
भ्रम् (४ प , घूमना)		भ्राम्यति	,,	,,	,,	भ्राम्यतु
भ्रंश् (१ आ , गिरना)		भ्रंशते	बभ्रंशे	भ्रंशिता	भ्रंशिष्यते	भ्रंशताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अपचत्	पचेत्	पक्ष्यात्	अपक्षीत्	अपक्ष्यत्	पाचयति	पक्ष्यते
अबीभत्सत	बीभत्सेत	बीभत्सिषीष्ट	अबीभत्सिष्ट	अबीभत्सिष्यत	बीभत्सयति	बीभत्स्यते
अबाधत	बाधेत	बाधिषीष्ट	अबाधिष्ट	अबाधिष्यत	बाधयति	बाध्यते
अबध्नात्	बध्नीयात्	बध्यात्	अभान्त्सीत्	अभन्त्स्यत्	बन्धयति	बध्यते
अबाधत	बाधेत	बाधिषीष्ट	अबाधिष्ट	अबाधिष्यत	बाधयति	बाध्यते
अबोधत्	बोधेत्	बुध्यात्	अबुधत्	अबोधिष्यत्	बोधयति	बुध्यते
अबुध्यत	बुध्येत	भुत्सीष्ट	अबोधि	अभोत्स्यत	,,	,,
अब्रवीत्	ब्रूयात्	उच्यात्	अवोचत्	अवक्ष्यत्	वाचयति	उच्यत
अब्रूत	ब्रुवीत	वक्षीष्ट	अवोचत	अवक्ष्यत	,	,,
अभक्षयत्	भक्षयेत्	भक्ष्यात्	अबभक्षत्	अभक्षयिष्यत्	भक्षयति	भक्ष्यत
—यत	—येत	भक्षयिषीष्ट	—क्षत	—क्ष्यत	,,	,,
अभजत्	भजेत्	भज्यात्	अभाक्षीत्	अभक्ष्यत्	भाजयति	भज्यते
अभनक्ष्	भज्यात्	भज्यात्	अभाङ्क्षीत्	अभंक्ष्यत्	भञ्जयति	भज्यत
अभक्त	भजेत्	भक्ष्यात्	अभाक्षीत्	अभक्षिष्यत	भाजयति	भक्ष्यते
अभर्त्सयत	भर्त्सयेत	भर्त्सयिषीष्ट	अबभर्त्सत	अभर्त्सयिष्यत	भर्त्सयति	भर्त्स्यते
अभ्यत्	भाद्यात्	भाद्यात्	अभाक्षीत्	अभ्यस्यत्	भाद्यति	भाद्यते
अभाद्यत	भाद्येत	भादिषीष्ट	अभादिष्ट	अभादिष्यत	भाद्यति	भाद्यते
अभास्यत	भासेत	भासिषीष्ट	अभासिष्ट	अभासिष्यत	भासयति	भास्यते
अभिन्धत	भिन्धेत	भित्सीष्ट	अभित्त	अभेत्स्यत	भेदयति	भिद्यते
अभिनत्	भिन्द्यात्	भिद्यात्	अभिदत्	अभेत्स्यत्	भेदयति	भिद्यते
अभिभेत्	बिभीयात्	भीयात्	अभैषीत्	अभेष्यत्	भाषयति	भीयते
अभुनक्ष्	भुञ्ज्यात्	भुज्यात्	अभौक्षीत्	अभोक्ष्यत्	भोजयति	भुज्यते
अभुङ्क्त	भुञ्जीत	भुक्षीष्ट	अभुक्त	—क्त	,,	,
अभवत्	भवेत्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
अभूयत	भूयेत	भूयात्	अभुभूषत्	अभूयिष्यत्	भूषयति	भूष्यते
अमरत्	मरेत्	म्रियात्	अमार्षीत्	अमरिष्यत्	मारयति	म्रियते
अमिमः	मिमयात्	,,	,	,,	,,	,
अभ्रमत्	भ्रमेत्	भ्रम्यात्	अभ्रमीत्	अभ्रमिष्यत्	भ्रमयति	भ्रम्यते
अभ्राम्यत्	भ्राम्येत्	,,	अभ्रमत्	,	,,	,,
अभ्रेषत	भ्रेषेत	भ्रेषिषीष्ट	अभ्रेषिष्ट	अभ्रेषिष्यत	भ्रेषयति	भ्रेष्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
भ्रस्ज् (६ उ , भूनना)	भृज्जति-ते	बभ्रस्ज	भ्रष्टा	भ्रक्ष्यति	भृज्जतु
भ्राज् (१ आ , चमकना)	भ्राजते	बभ्राजे	भ्राजिता	भ्राजिष्यते	भ्राजताम्
मण्ड् (१० उ०, सजाना)	मण्डयति-ते	मण्डयांचकार	मण्डयिता	मण्डयिष्यति	मण्डयतु
मद् (१ प , मपना)	मदति	ममाद	मदिता	मदिष्यति	मदतु
मद् (४ प , प्रसन्न होना)	माद्यति	ममाद	मदिता	मदिष्यति	माद्यतु
मन् (४ आ , मानना)	मन्यते	मेने	मन्ता	मंस्यते	मन्यताम्
मन् (८ आ , मानना)	मनुते	,,	मनिता	मनिष्यते	मनुताम्
मन्त्र् (१ आ , मंत्रणा)	मन्त्रयते	मन्त्रयांचक्रे	मन्त्रयिता	मन्त्रयिष्यते	मन्त्रयताम्
मन्थ् (९ प , मथना)	मन्थ्नाति	ममन्थ	मन्थिता	मन्थिष्यति	मन्थ्नातु
मस्ज् (६ प , डूबना)	मज्जति	ममज्ज	मङ्क्ता	मङ्क्ष्यति	मज्जतु
मा (२ प नापना)	माति	ममौ	माता	मास्यति	मातु
मा (३ आ मापना)	मिमीते	ममे	माता	मास्यते	मिमीताम्
मान् (१ आ जिज्ञासा)	मीमांसते	मीमांसांचक्रे	मीमांसिता	मीमांसिष्यते	मीमांसताम्
मान् (१० उ०, आदर)	मानयति-ते	मानयांचकार	मानयिता	मानयिष्यति	मानयतु
मार्ग् (१० उ , ढूँढना)	मार्गयति-ते	मार्गयांचकार	मार्गयिता	मार्गयिष्यति	मार्गयतु
मार्ज् (१ उ०, साफ करना)	मार्जयति-ते	मार्जयांचकार	मार्जयिता	मार्जयिष्यति	मार्जयतु
मिद् (४ उ , भिदना)	मिद्यति-ते	मिमेद	मेदिता	मेदिष्यति	मिद्यतु
मिश्र् (१० उ मिलाना)	मिश्रयति-ते	मिश्रयांचकार	मिश्रयिता	मिश्रयिष्यति	मिश्रयतु
मिह् (१ प , पेशाब करना)	मेहति	मिमेह	मेढा	मेक्ष्यति	मेहतु
मीव् (१ प , आँख मीचना)	मीवति	मिमीव	मीविता	मीविष्यति	मीवतु
मुच् (६ उ छोड़ना) प०-	मुञ्चति	मुमोच	मोक्ता	मोक्ष्यति	मुञ्चतु
आ —	मुञ्चते	मुमुचे	,,	मोक्ष्यते	मुञ्चताम्
मुच् (१० उ०, मुक्त करना)	मोचयति-ते	मोचयांचकार	मोचयिता	मोचयिष्यति	मोचयतु
मुद् (१ आ , प्रसन्न होना)	मोदते	मुमुदे	मोदिता	मोदिष्यते	मोदताम्
मुर्च्छ् (१ प मूर्छित होना)	मूर्च्छति	मुमूर्च्छ	मूर्च्छिता	मूर्च्छिष्यति	मूर्च्छतु
मुष् (९ प०, चुराना)	मुष्णाति	मुमोष	मोष्टा	मोक्ष्यति	मुष्णातु
मुह् (४ प , मोह में पड़ना)	मुह्यति	मुमोह	मोढा	मोक्ष्यति	मुह्यतु
मृ (६ आ०, मरना)	म्रियते	ममार	मर्ता	मरिष्यति	म्रियताम्
मृग् (१ आ०, ढूँढना)	मृगयते	मृगयांचक्रे	मृगयिता	मृगयिष्यते	मृगयताम्
मृज् (२ प , साफ करना)	मार्ष्टि	ममार्ज	मर्ष्टा	मर्क्ष्यति	माष्टु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अभृजत्	भृजेत्	भृज्यात्	अभ्राक्षीत्	अभ्रक्ष्यत्	भ्राजयति	भ्रज्यते
अभ्राजत	भ्राजेत	भ्राजिषीष्ट	अभ्राजिष्ट	अभ्राजिष्यत	भ्राजयति	भ्राज्यते
अमण्डयत्	मण्डयेत्	मण्ड्यात्	अममण्डत्	अमण्डयिष्यत्	मण्डयति	मण्ड्यते
अमप्त	मप्येत्	मप्यात्	अमप्सीत्	अमप्स्यत	मापयति	मप्यते
अमाद्यत्	माद्येत्	मद्यात्	अमदीत्	अमदिष्यत्	मदयति	मद्यते
अमन्यत	मन्येत	मंसीष्ट	अमंस्त	अमंस्यत	मानयति	मन्यते
अमनुत	मन्वीत	मनिषीष्ट	अमत	अमनिष्यत	,,	,,
अमन्त्रयत	मन्त्रयेत	मन्त्रयिषीष्ट	अममन्त्रत	अमन्त्रयिष्यत	मन्त्रयति	मन्त्र्यते
अमथ्नात्	मथ्नीयात्	मथ्यात्	अमन्थीत्	अमन्थिष्यत्	मन्थयति	मथ्यते
अमज्जत्	मज्जेत्	मज्ज्यात्	अमाङ्क्षीत्	अमङ्क्ष्यत्	मज्जयति	मज्ज्यते
अमात्	मायात्	मेयात्	अमासीत्	अमास्यत्	मापयति	मीयते
अमिमीत	मिमीत	मासीष्ट	अमास्त	अमास्यत	,,	,
अमीमांसत	मीमांसेत	मीमांसिषीष्ट	अमीमांसिष्ट	अमीमांसिष्यत	मीमांसयति	मीमांस्यते
अमानयत्	मानयेत्	मान्यात्	अमीमनत्	अमानयिष्यत्	मानयति	मान्यते
अमार्गयत्	मार्गयेत्	मार्ग्यात्	अममार्गत्	अमार्गयिष्यत्	मार्गयति	मार्ग्यते
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमिनत्	मिनेत्	मिस्यात्	अमेसीत्	अमेक्ष्यत्	मेक्ष्यति	मिस्यते
अमिभयत्	मिभयेत्	मिभ्यात्	अमिमिभत्	अमिभयिष्यत्	मिभयति	मिभ्यते
अमेहत्	मेहेत्	मिह्यात्	अमिक्षत्	अमेक्ष्यत्	मेहयति	मिह्यते
अमीलत्	मीलेत्	मील्यात्	अमीलीत्	अमीलिष्यत्	मीलयति	मील्यते
अमुष्णत्	मुष्णेत्	मुष्यात्	अमुषत्	अमोक्ष्यत्	मोषयति	मुष्यते
अमुष्णत	मुष्णेत	मुक्षीष्ट	अमुक्ष	अमोक्ष्यत	,,	,,
अमोचयत्	मोचयेत्	मोच्यात्	अमूमुचत्	अमोचयिष्यत्	मोचयति	मोच्यते
अमोदत	मोदेत	मोदिषीष्ट	अमोदिष्ट	अमोदिष्यत	मोदयति	मुद्यते
अमृष्णत्	मृष्णेत्	मृष्यात्	अमृक्षीत्	अमर्क्ष्यत्	मृष्यति	मृष्यते
अमुष्णात्	मुष्णीयात्	मुष्यात्	अमोक्षीत्	अमोक्ष्यत्	मोषयति	मुष्यते
अमृषत्	मृष्येत्	मृषत्	अमृषत्	अमर्षिष्यत्	मर्षयति	मृष्यते
अमिश्रत	मिश्रेत	मृक्षीष्ट	अमृक्त	अमरिष्यत्	मारयति	मिश्र्यते
अमृगयत	मृगयेत	मृग्यासीष्ट	अममृगत	अमृगयिष्यत	मृगयति	मृग्यते
अमार्ष्ट	मृज्यात्	मृज्यात्	अमार्क्षीत्	अमार्क्ष्यत्	मार्जयति	मृज्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
मृज् (१ उ०, साफ करना)	मार्जयति-ते	मार्जयांचकार	मार्जयिता	मार्जयिष्यति	मार्जयतु
मृष् (१ उ, क्षमा करना)	मर्षयति-ते	मर्षयांचकार	मर्षयिता	मर्षयिष्यति	मर्षयतु
म्ना (१ प, मानना) आ +	मनति	मम्नौ	म्नाता	म्नास्यति	मनतु
म्ले (१ प०, मुरझाना)	म्लपयति	ममलौ	म्लाता	म्लास्यति	म्लपयतु
यज् (१ उ, पूजा करना)	यजति-ते	इयाज	यष्टा	यक्ष्यति	यजतु
यत् (१ आ० यत्न करना)	यतते	येते	यतिता	यतिष्यते	यतताम्
यप् (१ उ, निषिद्ध)	यपयति	यपयांचकार	यपयिता	यपयिष्यति	यपयतु
यम् (१ प, रोकना) नि+	यच्छति	ययाम	यन्ता	यंस्यति	यच्छतु
यस् (४ प, यत्न करना) प्र +	यस्यति	ययास	यसिता	यसिष्यति	यस्यतु
या (२ प, जाना)	याति	ययौ	याता	यास्यति	यातु
याच् (१ उ, माँगना) प०	याचति	ययाच	याचिता	याचिष्यति	याचतु
आ०—	याचते	ययाचे	,,	—ते	—ताम्
यापि (या+णिच्, बिताना)	यापयति	यापयांचकार	यापयिता	यापयिष्यति	यापयतु
युज् (४ आ०, ध्यान लगाना)	युज्यते	युयुजे	योक्ता	योक्ष्यते	युज्यताम्
युज् (७ उ, मिलाना)	युनक्ति	युयोज	,,	योक्ष्यति	युनक्तु
युध् (१० उ, लड़ना)	योधयति-ते	योधयांचकार	योधयिता	योधयिष्यति	योधयतु
युध् (४ आ लड़ना)	युध्यते	युयुधे	योद्धा	योत्स्यते	युध्यताम्
रक्ष् (१ प, रक्षा करना)	रक्षति	रराक्ष	रक्षिता	रक्षिष्यति	रक्षतु
रच् (१ उ, बनाना)	रचयति-ते	रचयांचकार	रचयिता	रचयिष्यति	रचयतु
रम्भ् (४ उ प्रसन्न होना)	रम्भति-ते	ररम्भ	रब्धा	रब्धस्यति	रम्भतु
रट् (१ प, रटना)	रटति	रराट	रटिता	रटिष्यति	रटतु
रम् (१ आ, रमना)	रमते	रेमे	रन्ता	रंस्यते	रमताम्
(वि+रम्, पर)	विरमति	विरराम	विरन्ता	विरंस्यति	विरमतु
रस् (१ उ, स्वाद लेना)	रसयति-ते	रसयांचकार	रसयिता	रसयिष्यति	रसयतु
राज् (१ उ, चमकना) प	राजति	रराज	राजिता	राजिष्यति	राजतु
आ —	राजते	रेजे	,,	—ते	—ताम्
राप् (५ प, पूरा करना) आ +	राप्नोति	रराप	राप्ता	राप्स्यति	राप्नोतु
रु (२ प, शब्द करना)	रौति	रराव	रविता	रविष्यति	रौतु
रुच (१ आ, अच्छा लगना)	रोचते	ररुचे	रोचिता	रोचिष्यते	रोचताम्
रुद् (२ प, रोना)	रोदिति	ररोद	रोदिता	रोदिष्यति	रोदितु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमर्षयत्	मर्षयेत्	मर्ष्यात्	अममर्षत्	अमर्षयिष्यत्	मर्षयति	मर्ष्यते
अम्नयत्	म्नयेत्	म्नायात्	अम्नासीत्	अम्नास्यत्	म्नापयति	म्नायते
अम्लपयत्	म्लपयेत्	म्लपयात्	अम्लासीत्	अम्लप्स्यत्	म्लापयति	म्लायते
अयजत्	यजेत्	इज्यात्	अयाक्षीत्	अयक्ष्यत्	याजयति	इज्यते
अयतत	यतेत	यतिषीष्ट	अयतिष्ट	अयतिष्यत	यातयति	यत्यते
अयन्त्रयत्	यन्त्रयेत्	यन्त्र्यात्	अययन्त्रत्	अयन्त्रयिष्यत्	यन्त्रयति	यन्त्र्यते
अयम्यत्	यम्येत्	यम्यात्	अयंसीत्	अयंस्यत्	नियमयति	नियम्यते
अयस्यत्	यस्येत्	यस्यात्	अयसत्	अयसिष्यत्	आयासयते	यस्यते
अयात्	यापयात्	यापयात्	अयापीत्	अयास्यत्	यापयति	यापयते
अयाचत्	याचेत्	याच्यात्	अयाचीत्	अयाचिष्यत्	याचयति	याच्यते
—त	याचेत	याचिषीष्ट	अयाचिष्ट	—त	,,	,,
अयापयत्	यापयेत्	याप्यात्	अयीयपत्	अयापयिष्यत्	—	याप्यते
अयुयुक्षत	युयुक्षेत	युयुक्षीष्ट	अयुयुक्ष	अयोक्ष्यत	योजयति	युज्यते
अयुनक्	युञ्ज्यात्	युज्यात्	अयुजत्	अयोक्ष्यत्	,,	,,
अयोजयत्	योजयेत्	योज्यात्	अयूयुजत्	अयोजयिष्यत्	,	योज्यते
अयुप्यत	युप्येत	युप्सीष्ट	अयुप्त	अयोप्स्यत	बोधयति	युप्यते
अरक्त्	रक्षेत्	रक्ष्यात्	अरक्षीत्	अरक्षिष्यत्	रक्षयति	रक्ष्यते
अरक्षयत्	रक्षयेत्	रक्ष्यात्	अरराक्षत्	अरक्षयिष्यत्	रक्षयति	रक्ष्यते
अरञ्जयत	रञ्जयेत्	रञ्ज्यात्	अरञ्जीत्	अरञ्जयत्	रञ्जयति	रज्यते
अरट्त	रटेत्	रट्यात्	अरटीत्	अरटिष्यत	राटयति	रट्यते
अरमत	रमेत	रंसीष्ट	अरंस्त	अरंस्यत	रमयति	रम्यते
अरमत्	विरमेत्	विरम्यात्	व्यरंसीत्	व्यरंस्यत्	विरमयति	विरम्यते
अरक्षयत्	रक्षयेत्	रक्ष्यात्	अरराक्षत्	अरक्षयिष्यत्	रक्षयति	रक्ष्यते
अराजत्	राजेत्	राज्यात्	अराजीत्	अराजिष्यत्	राजयति	राज्यते
—त	—त	राजिषीष्ट	अराजिष्ट	अराजिष्यत	,,	,
अराध्नोत्	राध्नुयात्	राध्यात्	अैराध्नोत्	अराधस्यत्	राधयति	राध्यते
अरेत्	रयात्	रयात्	अरयीत्	अरयिष्यत्	राधयति	रय्यते
अरोचयत	रोचेत	रोचिषीष्ट	अरोचिष्ट	अरोचिष्यत	रोचयते	रुच्यते
अरोदीत्	रुद्यात्	रुद्यात्	अरुदत्	अरोदिष्यत्	रोदयति	रुद्यते

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	विध्	कर्म०
अरुणत्	रुण्यात्	रुध्यात्	अरुधत्	अरोत्स्यत्	रोत्स्यति	रुध्यते
अरुन्ध	रुन्धीत	रुत्सीष्ट	अरुद्ध	—त	,,	,,
अरोत्	रौत्	रुद्यात्	अरुदत्	अरोत्स्यत्	रोत्स्यति	रुद्यते
अरुपयत्	रुपयेत्	रुप्यात्	अरुपयत्	अरूपयिष्यत्	रूपयति	रूप्यते
अरुक्षयत्	रुक्षयेत्	रुक्षयात्	अरुक्षयत्	अरूक्षयिष्यत्	रूक्षयति	रूक्ष्यते
अरुगत्	रुगेत्	रुग्यात्	अरुगीत्	अरोगिष्यत्	रोगयति	रोग्यते
अरुंधत	रुंधेत	रुंधिषीष्ट	अरुंधिष्ट	अरोंधिष्यत	रोंत्स्यति	रोंत्स्यते
अरोपयत्	रोपयेत्	रोप्यात्	अरूरुपत्	अरोपयिष्यत्	,,	,,
अरूरुक्षत्	रूरुक्षेत्	रूरुक्ष्यात्	अरीरुक्षत्	अरूक्षत् यिष्यत्	रूक्षयति	रूक्ष्यते
अरुणत्	रुणेत्	रुण्यात्	अरुणीत्	अरोणिष्यत्	रोणयति	रोण्यते
अरुणत	रुणेत	रुणीष्ट	अरुण्ण	अरोप्यत	रोप्स्यति	रोप्यते
अरुम्भत	रुम्भेत	रुम्भिषीष्ट	अरुम्भिष्ट	अरोम्भिष्यत	रोम्भयति	रोम्भ्यते
अरुणत्	रुणेत्	रुण्यात्	अरुणीत्	अरोणिष्यत्	रोणयति	रोण्यते
अरुन्धत	रुन्धेत	रुत्सीष्ट	अरुद्ध	अरोत्स्यत	रोत्स्यति	रोत्स्यते
अरुन्धत	रुन्धेत	रुन्धिषीष्ट	अरुन्धिष्ट	अरोन्धिष्यत	रोन्धयति	रोन्ध्यते
अरुणत्	रुणेत्	रुण्यात्	अरुणीत्	अरोणिष्यत्	रोणयति	रोण्यते
अरुन्धत	रुन्धेत	रुत्सीष्ट	अरुद्ध	अरोत्स्यत	रोत्स्यति	रोत्स्यते
अरिणक्	रिणेत्	रिक्षात्	अरेसीत्	अरेक्ष्यत्	रेक्ष्यति	रिक्ष्यते
आरिणम्	आरिणेत्	आरिक्षात्	आरिणीत्	आरिणिष्यत्	आरिण्य-यति	आरिण्यते
अरिणक्	रिणेत्	रिक्षात्	अरिक्त	अरेक्ष्यत्	रेक्ष्यति	रिक्ष्यते
अरेट्	रिक्षात्	रिक्षात्	अरिक्षत्	अरेक्षत्	रेक्ष्यति	रिक्षते
अरौषत	रौषेत	रौत्सीष्ट	अरोद्ध	अरोत्स्यत	रोत्स्यति	रौत्स्यते
अरोदत्	रोदेत्	रुद्यात्	अरोदीत्	अरोदिष्यत्	रोदयति	रुद्यते
अरोदत्	रोदेत्	रुद्यात्	अरोदीत्	अरोदिष्यत्	रोदयति	रुद्यते
अरुणत्	रुणेत्	रुण्यात्	अरुणत्	अरोणिष्यत्	रोणयति	रुण्यते
अरुन्त	रुन्धेत	,,	,,	अरोत्स्यत्	,,	,,
अरुन्धत्	रुन्धेत्	रुध्यात्	अरोधीत्	अरोत्स्यत्	रोत्स्यति	रुध्यते
अरुणात्	रुणीयात्	रूयात्	अरुणीत्	अरविष्यत्	रावयति	रूयते
अरोकत्	रोकेत्	रोक्यात्	अरुरोकत्	अरोकयिष्यत्	रोकयति	रोक्यते
अरोचत्	रोचेत्	रोच्यात्	अरुरोचत्	अरोचयिष्यत्	रोचयति	रोच्यते
अराधत्	राधेत्	राध्यात्	अरीरधत्	अराधयिष्यत्	राधयति	राध्यते
अरम्भत	रम्भेत	रम्भिषीष्ट	अरब्धत	अरम्भयिष्यत	रम्भयति	रभ्यते
अरदत्	रदेत्	रद्यात्	अरादीत्	अरदिष्यत्	रादयति	रद्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
वन्द् (१ आ , प्रणाम)	वन्दते	ववन्दे	वन्दिता	वन्दिष्यते	वन्दताम्
वप (१ उ० बोना)	वपति-ते	उवाप	वप्ता	वप्स्यति	वपतु
वम् (१ प , उगलना)	वमति	ववाम	वमिता	वमिष्यति	वमतु
वस् (१ प , पहना)	वसति	उवास	वस्ता	वस्स्यति	वसतु
वह् (१ उ , ढोना)	वहति-ते	उवाह	वोढा	वक्ष्यति	वहतु
वा (२ प , हवा चलना)	वाति	ववौ	वाता	वास्यति	वातु
वाञ्छ् (१ प चाहना)	वाञ्छति	ववाञ्छ	वाञ्छिता	वाञ्छिष्यति	वाञ्छतु
विद् (२ प जानना)	वेत्ति	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	वेत्तु
विद् (४ आ , होना)	विद्यते	विविदे	वेत्ता	वेत्स्यते	विद्यताम्
विद् (६ उ पाना)	विन्दति-ते	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	विन्दतु
विद् (१ आ , कहना) नि+	वेदयते	वेदयांचक्रे	वेदयिता	वेदयिष्यते	वेदयताम्
विश् (६ प , घुसना) प्र+	विशति	विवेश	वेष्टा	वेक्ष्यति	विशतु
वीज् (१ उ पंखा हिलाना)	वीजयति-ते	विजयांचकार	वीजयिता	वीजयिष्यति	वीजयतु
वृ (५ उ चुनना)	वृणोति	ववार	वरिता	वरिष्यति	वृणातु
वृ (९ आ , ओढ़ना)	वृणीते	वव्रे	वरिता	वरिष्यते	वृणीताम्
वृ (१० उ , हिंसना, ढकना)	वारयति-ते	वारयांचकार	वारयिता	वारयिष्यति	वारयतु
वृज् (१ उ०, छोड़ना)	वर्जयति-ते	वर्जयांचकार	वर्जयिता	वर्जयिष्यति	वर्जयतु
वृत् (१ आ होना)	वर्तते	ववृते	वर्तिता	वर्तिष्यते	वर्तताम्
वृध् (१ आ , बढ़ना)	वर्धते	ववृधे	वर्धिता	वर्धिष्यते	वर्धताम्
वृष् (१ प , बरसना)	वर्षति	ववर्ष	वर्षिता	वर्षिष्यति	वर्षतु
वे (१ उ बुनना)	वयति-ते	ववौ	वाता	वास्यति	वयतु
वेप् (१ आ , काँपना)	वेपते	विवेपे	वेपिता	वेपिष्यते	वेपताम्
वेष्ट् (१ आ०, घेरना)	वेष्टते	विवेष्टे	वेष्टिता	वेष्टिष्यते	वेष्टताम्
व्यथ् (१ आ , दुःखित होना)	व्यथते	विव्यथे	व्यथिता	व्यथिष्यते	व्यथताम्
व्यध् (४ प , बींधना)	विध्यति	विव्याध	व्यद्धा	व्यत्स्यति	विध्यतु
व्रज् (१ प जाना) परि+	व्रजति	वव्राज	व्रजिता	व्रजिष्यति	व्रजतु
शक् (५ प , सकना)	शक्नोति	शशाक	शक्ता	शक्ष्यति	शक्नोतु
शङ्क् (१ आ , शंका करना)	शङ्कते	शशंके	शङ्किता	शङ्किष्यते	शङ्कताम्
शप् (१ उ शाप देना)	शपति-ते	शशाप	शप्ता	शप्स्यति	शपतु
शम् (४ प , शान्त होना)	शाम्यति	शशाम	शमिता	शमिष्यति	शाम्यतु
शंस् (१ प प्रशंसा करना) प्र+	शंसति	शशंस	शंसिता	शंसिष्यति	शंसतु
शान् (१ उ , तेज करना)	शीशांसति	शीशांसांचकार	शीशांसिता	शीशांसिष्यति	शीशांसतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अवन्दत	वन्देत	वन्दिषीष्ट	अवन्दिष्ट	अवन्दिष्यत	वन्दयति	वन्द्यते
अवपत्	वपेत्	उप्यात्	अवाप्सीत्	अवप्स्यत्	वापयति	उप्यते
अवमत्	वमेत्	वम्यात्	अवमीत्	अवमिष्यत्	वमयति	वम्यते
अवसत्	वसेत्	उष्यात्	अवात्सीत्	अवत्स्यत्	वासयति	उष्यते
अवहत्	वहेत्	उह्यात्	अवाक्षीत्	अवक्ष्यत्	वाहयति	उह्यते
अवात्	वायात्	वायात्	अवासीत्	अवास्यत्	वापयति	वायते
अवाम्यत्	वाम्येत्	वाम्यासात्	अवाम्सीत्	अवाम्स्यिष्यत्	वाम्यति	वाम्यूयते
अवेत्	विद्यात्	विद्यात्	अवेदीत्	अवेदिष्यत्	वेदयति	विद्यते
अविद्यत	विद्येत	विद्लीष्ट	अविद्त	अवेत्स्यत		”
अविन्दत्	विन्देत्	विद्यात्	अवोविदत	अवेदयिष्यत		”
अवेदयत	वेदयेत	वेदयिषीष्ट	अविक्त	अवेत्स्यत्	वेदयति	वेद्यते
अविद्यत्	विद्येत्	विद्यात्	अवीविजत्	अवीजयिष्यत्	वीजयति	वीज्यते
अवीजयत्	वीजयेत्	वीज्यात्	अवारेत्	अवरिष्यत्	वारयति	वार्यते
अवृणोत्	वृणुयात्	विद्यात्	अवरिष्ट	अवरिष्यत		”
अवृणीत	वृणीत	वृषीष्ट	अवीवरत्	अवारयिष्यत्		वार्यते
अवारयत्	वारयेत्	वार्यात्	अवर्जीवत्	अवर्जयिष्यत्	वर्जयति	वर्ज्यते
अवर्जयत्	वर्जयेत्	वर्तिषीष्ट	अवर्तिष्ट	अवर्तिष्यत	वर्तयति	वृत्यते
अवर्तत	वर्तेत	वर्धिषीष्ट	अवर्धिष्ट	अवर्धिष्यत	वर्धयति	वृध्यते
अवर्धत	वर्धेत	वृध्यात्	अवर्तीत्	अवर्तिष्यत्	वर्तयति	वृध्यते
अवर्तत्	वर्तेत्	ऊर्यात्	अवात्सीत्	अवात्स्यत्	वावयति	ऊर्यते
अवपत	वपेत्	वेदिषीष्ट	अवेपिष्ट	अवेपिष्यत	वेपयति	वेप्यते
अवेपत	वेपेत	वेद्यिषीष्ट	अवेदिष्ट	अवेदिष्यत	वेदयति	वेद्यते
अव्यथत	व्यथेत	व्यथिषीष्ट	अव्यथिष्ट	अव्यथिष्यत	व्यथयति	व्यथ्यते
अविष्यत्	विष्येत्	विष्यात्	अव्यात्सीत्	अव्यत्स्यत्	व्याधयति	विध्यते
अव्रजत्	व्रजेत्	व्रज्यात्	अव्राजीत्	अव्रजिष्यत्	व्राजयति	व्रज्यते
अशक्नोत्	शक्नुयात्	शक्यात्	अशकत्	अशक्स्यत्	शाकयति	शक्यते
अशंकत	शंकेत	शंकिषीष्ट	अशंकिष्ट	अशंकिष्यत	शंकयति	शंक्यते
अशस्त	शंसेत्	शस्यात्	अशाप्सीत्	अशप्स्यत्	शापयति	शप्यते
अशाम्यत्	शाम्येत्	शाम्यात्	अशमत्	अशमिष्यत्	शमयति	शाम्यते
अशंसत्	शंसेत्	शंस्यात्	अशंसीत्	अशंसिष्यत्	शंसयति	शस्यते
अशीशंसत्	शीशंसेत्	शीशंस्यात्	अशीशंसीत्	अशीशंसिष्यत्	शीशंसयति	शीशंस्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
शास (२ प , शिक्षा देना)		शास्ति	शशास	शास्तिता	शास्तिष्यति	शास्तु
शिक्ष् (१ आ , सीखना)		शिक्षते	शिक्षिशिक्षे	शिक्षिता	शिक्षिष्यते	शिक्षताम्
शी (२ आ० सोना)		शेते	शिश्ये	शयिता	शयिष्यते	शेताम्
शुच् (१ प , शोक करना)		शोचति	शुशोच	शोचिता	शोचिष्यति	शोचतु
शुष्प् (४ प शुष्क होना)		शुष्यति	शुशोष	शोष्टा	शोक्ष्यति	शुष्यतु
शुम्भ् (१ आ , चमकना)		शोभते	शुशुभे	शोभिता	शोभिष्यते	शोभताम्
शुष् (४ प०, सूखना)		शुष्यति	शुशोष	शोष्टा	शोक्ष्यति	शुष्यतु
शॄ (९ प मार करना)		शृणाति	शशार	शरिता	शरिष्यति	शृणातु
श्रो (४ प , छीलना)		श्यति	शश्रौ	श्राता	श्रास्यति	श्यतु
श्रुष् (१ प , चूना)		श्रोषति	सुश्रोष	श्रोषिता	श्रोषिष्यति	श्रोषतु
श्रम् (४ प , श्रम करना)		श्राम्यति	शश्राम	श्रमिता	श्रमिष्यति	श्राम्यतु
श्रि (१ उ ,आश्रय लेना)	आ+	श्रयति-ते	शिश्राय	श्रयिता	श्रयिष्यति	श्रयतु
श्रु (१ प , सुनना)		शृणोति	शुश्राव	श्रोता	श्रोष्यति	शृणोतु
श्लाघ् (१ आ ,प्रशंसा करना)		श्लाघते	शश्लाघे	श्लाघिता	श्लाघिष्यते	श्लाघताम्
श्लिष् (४ प , आलिंगन)		श्लिष्यति	शिश्लेष	श्लेष्टा	श्लेक्ष्यति	श्लिष्यतु
श्वस् (२ प , साँस लेना)		श्वसिति	शश्वास	श्वसिता	श्वसिष्यति	श्वसितु
श्वित् (१ प , श्वेत होना)	नि+	श्वेतति	निश्वेत	श्वेतिता	श्वेतिष्यति	श्वेततु
श्वभ्र् (१ प , गिरना)		श्वभ्रति	शश्वम्भ्र	श्वभ्रर्त्ता	श्वभ्रस्यति	श्वभ्रतु
श्वद् (१ प बैठना)	नि+	सीदति	अशदत्	सत्ता	सत्स्यति	सीदतु
श्वह् (१ आ सहना)		सहते	सेहे	सहिता	सहिष्यते	सहताम्
साध् (५ प , पूरा करना)		साध्नोति	असाध	साद्धा	सात्स्यति	साध्नोतु
सान्त्व् (१०उ ,धैर्य बँधाना)		सान्त्वयति	सान्त्वयामासकार	सान्त्वयिता	सान्त्वयिष्यति	सान्त्वयतु
सि (५ उ बाँधना)		सिनोति	सिषाय	सेता	सेष्यति	सिनोतु
सिच् (६ उ०, सींचना)		सिञ्चति-ते	सिषेच	सेक्ता	सेक्ष्यति	सिञ्चतु
सिध् (४ प , पूरा होना)		सिध्यति	सिषेध	सेद्धा	सेत्स्यति	सिध्यतु
सिध् (४ प , सीना)		सीव्यति	सिषेव	सेविता	सेविष्यति	सीव्यतु
सु (५ उ , निचोड़ना)		सुनोति	सुषाव	सोता	सोष्यति	सुनोतु
सू (२ आ , जन्म देना)		सूते	सुषुवे	सविता	सविष्यते	सूताम्
सूच् (१० उ , सूचना देना)		सूचयति	सूचयांचकार	सूचयिता	सूचयिष्यति	सूचयतु
सूद् (१ उ संक्षिप्त करना)		सूदयति	सूदयांचकार	सूदयिता	सूदयिष्यति	सूदयतु
सृ (१ प , सरकना)		सरति	ससार	सर्ता	सरिष्यति	सरतु
सृज् (६ प , बनाना)		सृजति	ससर्ज	स्रष्टा	स्रक्ष्यति	सृजतु

लट्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अशात्	शिष्यात्	शिष्यात्	अशिषत्	अशाशिष्यत्	शासयति	शिष्यते
अशिक्षित	शिक्षेत	शिक्षिषीष्ट	अशिक्षिष्ट	अशिक्षिष्यत	शिक्षयति	शिक्ष्यते
अशेत	शयीत	शयिषीष्ट	अशयिष्ट	अशयिष्यत	शाययति	शय्यते
अशोचत्	शोचेत्	शुच्यात्	अशोचीत्	अशोचिष्यत्	शोचयति	शुच्यते
अशुच्यत्	शुच्येत्	शुच्यात्	अशुचत्	अशोक्ष्यत्	शोचयति	शुच्यते
अशोभत	शोभेत	शोभिषीष्ट	अशोभिष्ट	अशोभिष्यत	शोभयति	शुभ्यते
अशुभ्यत	शुभ्येत	शुभ्यात	अशुभत	अशोप्यत	शोभयति	शुभ्यते
अशृणात्	शृणीयात्	शीर्यात्	अशारीत्	अशरिष्यत	शारयति	शीर्यते
अश्यत्	श्येत्	श्यायात्	अशातीत्	अशास्यत्	शापयति	शायते
अश्रोषत्	श्रोषेत्	श्रुष्यात्	अश्रोषीत्	अश्रोषिष्यत	श्रोषयति	श्रुष्यते
अश्राम्यत्	श्राम्येत्	श्रम्यात्	अश्रमत्	अश्रमिष्यत	श्रमयति	श्रम्यते
अश्रयत्	श्रयेत्	श्रीयात्	अश्रिश्रियत्	अश्रयिष्यत	श्रापयति	श्रीयते
अश्रृणोत्	शृणुयात्	श्रूयात्	अश्रौषीत्	अश्रोष्यत	श्रावयति	श्रूयते
अश्लाघत	श्लाघेत	श्लाघिषीष्ट	अश्लाघिष्ट	अश्लाघिष्यत	श्लाघयति	श्लाघ्यते
अश्लिष्यत्	श्लिष्येत्	श्लिष्यात्	अश्लिक्षत्	अश्लेक्ष्यत	श्लेषयति	श्लिष्यते
अश्वसीत्	श्वस्यात्	श्वस्यात्	अश्वसीत्	अश्वसिष्यत	श्वासयति	श्वस्यते
अश्वीयत्	श्वीयेत्	श्वीय्यात्	अश्वेदीत्	अश्वेदिष्यत	श्वेदयति	श्वीय्यते
अश्वसत्	सस्येत्	सस्यात्	अस्वसद्भीत्	अस्वसद्ष्यत	सस्यसयति	सस्यते
असीदत	सीदेत	सद्यात	असदत	असत्स्यत	सादयति	सद्यते
असदत	सदेत	सदिषीष्ट	असदिष्ट	असदिष्यत	सादयति	सद्यते
असाप्नोत्	साप्नुयात्	साप्यात	असासीत्	असास्यत	साधयति	साध्यते
असास्यत	सास्यते	सास्यात	असस्रान्त	असास्यिष्यत	सास्यपति	सास्यते
असिनोत	सिनुयात	सीयात	असेषीत	असेष्यत	सापयति	सीयते
असिच्यत	सिच्येत	सिच्यात	असिक्त	असेक्ष्यत	सेचयति	सिच्यते
असिच्यत	सिच्येत	सिच्यात	असिक्त	असेक्ष्यत	साचयति	सिच्यते
असीव्यत	सीव्येत	सीव्यात	असेवीत	असेविष्यत	सेवयति	सीव्यते
असुनोत	सुनुयात	सूयात	असावीत	असोष्यत	साधयति	सूयते
असुप्त	सुप्यात	सुषीष्ट	असविष्ट	असविष्यत	,,	
असूषपत	सूषपेत	सूष्यात	असूसुषत	असूषयिष्यत	सूषयति	सूष्यते
असूषपत	सूषपेत	सूष्यात	असुस्रुवत	असूस्रविष्यत	सूषयति	सूष्यते
असरत	सरेत	सिसीयात	असारीत	असरिष्यत	सारयति	सिसीते
असुस्रुत	सुस्रुवेत	सूस्रूयात	असस्रावीत	असस्रोष्यत	स्रावयति	सूस्रूयते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
सेव् (१ आ०, सेवा करना)	सेवते	सिषेवे	सेविता	सेविष्यते	सेवताम्
सो (४ प , नष्ट होना) अव +	स्यति	स्यो	साता	सास्यति	स्यतु
स्रंस् (१ प , गिरना)	स्रंसति	पस्रंसे	स्रंसिता	स्रंसिष्यति	स्रंसतु
स्तु (२ उ० स्तुति करना)	स्तौति	तुष्टाव	स्तोता	स्तोष्यति	स्तौतु
स्तृ (९ उ , ढकना, फैलाना)	स्तृणाति	तस्तार	स्तरिता	स्तरिष्यति	स्तृणातु
स्था (१ प० रुकना)	तिष्ठति	तस्थौ	स्थाता	स्थास्यति	तिष्ठतु
स्ना (२ प०, नहाना)	स्नाति	स्नस्नौ	स्नाता	स्नास्यति	स्नातु
स्निह् (४ प , स्नेह करना)	स्निह्यति	सिष्नेह	स्नेहिता	स्नेहिष्यति	स्निह्यतु
स्पन्द् (१ आ०, फड़कना)	स्पन्दते	पस्पन्दे	स्पन्दिता	स्पन्दिष्यते	स्पन्दताम्
स्पर्ध् (१ आ , स्पर्धा करना)	स्पर्धते	पस्पर्धे	स्पर्धिता	स्पर्धिष्यते	स्पर्धताम्
स्पृश् (६ प , छूना)	स्पृशति	पस्पर्श	स्पर्शा	स्पर्क्षति	स्पृशतु
स्पृह् (१० उ०, चाहना)	स्पृहयति	स्पृहयांचकार	स्पृहयिता	स्पृहयिष्यति	स्पृहयतु
स्फुट् (६ प , खिलना)	स्फुटति	पुस्फोट	स्फुटिता	स्फुटिष्यति	स्फुटतु
स्फुर् (६ प०, फड़कना)	स्फुरति	पुस्फोर	स्फुरिता	स्फुरिष्यति	स्फुरतु
स्मि (१ आ० मुस्कराना)	स्मयते	सिस्मिये	स्मेता	स्मेष्यते	स्मयताम्
स्मृ (१ प , सोचना)	स्मरति	तस्मार	स्मर्ता	स्मरिष्यति	स्मरतु
स्यन्द् (१ आ० बहना)	स्यन्दते	तस्यन्दे	स्यन्दिता	स्यन्दिष्यते	स्यन्दताम्
संज् (१ आ०, लटकना)	संजते	सस्जे	संजिता	संजिष्यते	संजताम्
स्रु (१ प०, चूना, निकलना)	स्रवति	सुस्राव	स्रोता	स्रोष्यति	स्रवतु
स्वद्(१उ ,स्वाद लेना)आ +	स्वादयति	स्वादयांचकार	स्वादयिता	स्वादयिष्यति	स्वादयतु
स्वप् (२ प , सोना)	स्वपिति	सुष्वाप	स्वप्ता	स्वप्स्यति	स्वपितु
हन् (२ प०, मारना)	हन्ति	जघान	हन्ता	हनिष्यति	हन्तु
हस् (१ प , हँसना)	हसति	जहास	हसिता	हसिष्यति	हसतु
हा (३ प०, छोड़ना)	जहाति	जहौ	हाता	हास्यति	जहातु
हिंस् (७ प०, हिंसा करना)	हिनस्ति	जिहिंस	हिंसिता	हिंसिष्यति	हिनस्तु
हु (१ प , यज्ञ करना)	जुहोति	जुहाव	होता	होष्यति	जुहोतु
हृ (१ उ० ले जाना, चुराना)	हरति-ते	जहार	हर्ता	हरिष्यति	हरतु
हृष् (४प०, खुश होना)	हृष्यति	जहर्ष	हर्षिता	हर्षिष्यति	हृष्यतु
हे (१ आ० छिपाना) अप+	हृते	जुहृवे	होता	होष्यते	हृताम्
हव् (१ प , कम होना)	हसति	जहास	हसिता	हसिष्यति	हसतु
ह्री (१ प , लजाना)	जिह्रेति	जिह्राय	ह्रेता	ह्रेष्यति	जिह्रेतु
ह्वे (१ उ , बुलाना) आ +	आह्वयति	आजुहाव	आह्वाता	आह्वास्यति	आह्वयतु

अकोरत	सेवेत	सेविषीष्ट	असेविष्ट	असेविष्यत	असेवयति	असेवत
अक्षपत्	स्पत्	स्पात्	अस्पासीत्	अस्पास्यत्	शपयति	शप्यते
अक्षपत	स्पतेत्	स्पासीत	अस्पासिष्ट	अस्पास्यिष्यत	अस्पपयति	अस्पपत
अक्षेत्	सुपात्	सुप्यात्	अस्पासीत्	अस्पास्यत्	शपयति	शप्यते
अक्षुपात्	स्पायेत्	स्पेयात्	अस्पासीत्	अस्पास्यत्	शपयति	शप्यते
अक्षिपत्	लिखेत्	लिख्यात्	अलिखत्	अलेखीत्	लेखयति	लिख्यते
अक्षन्दत	स्पन्देत	स्पन्दिषीष्ट	अस्पन्दिष्ट	अस्पन्दिष्यत	स्पन्दयति	स्पन्दते
अक्षर्षत	स्पर्धेत	स्पर्धिषीष्ट	अस्पर्धिष्ट	अस्पर्धिष्यत	स्पर्धयति	स्पर्धते
अक्षाक्षत्	स्पृशेत्	स्पृश्यात्	अस्पार्क्षीत्	अस्पार्क्ष्यत्	स्पर्शयति	स्पृश्यते
अक्षुस्पत्	स्पृशेत्	स्पृश्यात्	अस्पृक्षत्	अस्पृक्षिष्यत्	स्पर्शयति	स्पृश्यते
अस्कुपत्	स्कुपेत्	स्कुप्यात्	अस्कुपीत्	अस्कुपिष्यत्	स्कापयति	स्कुप्यते
अस्कुपत्	स्कुपेत्	स्कुपिषीष्ट	अस्कुपिष्ट	अस्कुपिष्यत	स्कापयति	स्कुप्यते
अस्मयत	स्मयेत	स्मेषीष्ट	अस्मेष्ट	अस्मेष्यत	स्मापयति	स्मीयते
अस्मरत्	स्मरेत्	स्मर्यात्	अस्मार्षीत्	अस्मरिष्यत्	स्मारयति	स्मर्यते
अस्यन्दत	स्यन्देत	स्यन्दिषीष्ट	अस्यन्दिष्ट	अस्यन्दिष्यत	स्यन्दयति	स्यन्दते
अस्रंसत	स्रंसेत	स्रंसिषीष्ट	अस्रंसिष्ट	अस्रंसिष्यत	स्रंसयति	स्रम्यते
अस्वपत्	स्वपेत्	सुप्यात्	असुषुपत्	अस्वाप्सत	स्वापयति	सूयते
अस्वादयत	स्वादयेत	स्वादयात्	अस्वादिष्ट	अस्वादयिष्यत	स्वादयति	स्वाद्यते
अस्वापीत्	स्वप्यात्	सुप्यात्	अस्वाप्सीत्	अस्वप्स्यत	स्वापयति	सुप्यते
अहन्	हन्यात्	वध्यात्	अवधीत	अहनिष्यत	घातयति	हन्यते
अहस्त	हसेत्	हस्यात्	अहसीत्	अहसिष्यत	हासयति	हस्यते
अहासत	आस्त	हेषात्	अहासीत	अहास्यत	हेषयति	हीयते
अहिंसत	हिंस्यात्	हिंस्यात्	अहिंसीत्	अहिंसिष्यत	हिंसयति	हिंस्यते
अहुडीत	हुडेयात्	हुडेत	अहोडीत	अहोडिष्यत	हाडयति	हुड्यते
अहरत	हरेत	हियात	अहार्षीत	अहरिष्यत	हारयति	ह्रियते
अहस्यत	हस्येत	हस्यात	अहसत	अहसिष्यत	हासयति	हस्यते
अहुव	हुवीत	हाव्यात	अहोष्ट	अहाष्यत	हावयति	हूयते
अहसत	हसेत	हस्यात	अहार्षीत	अहरिष्यत	हारयति	ह्रियते
अहिंसेत	हिंसीयात	हीयात	अहरीत	अहास्यत	हेषयति	
आहसत	आहसेत	आहसात	आहस	आहास्यत		

(१) अकर्मक धातुएँ

कत्थशपत्थारिषसिध्यगरधं, वृद्धिश्वथमवजीवतिमरषम् ।
शयनक्रीडारुचिदीप्तिवर्धं धातुगणं तमकर्मकमाहुः ॥

इन अर्थों वाली धातुएँ अकर्मक (कर्म-रहित) होती हैं:—कत्थ, होना रुकना या बैठना, जागना, बढ़ना, घबड़ना, डरना, जीना मरना सोना, खेलना, चाहना, चमकना।

(२) अनिट् धातुएँ (जिनमें बीच में इ नहीं लगता)

ऊ ऋदन्त औ' थी भि वी को छोड़कर एकाच् सब।
अक् पच् यच् मुच् लिप् प्रच्छ स्वप् भक् भुज् वच् सद् भस्ज युज ॥
अद् पच् लिप् लिप् लिख ग्रह् नृत्, भिद् खन् कृप् क्षुप् क्षुभ।
वन् क्षुप् दभ् शाप् स्वप् क्षुभ् , सिच् मन्थ इन् सिच् अप् तप ॥१॥
तृप्य इष् लिप् क्षुभ् वप स्वप्, यप् सृप रभ् लभ् गम।
नभ् यभ् रभ क्षुध् दंश् विश् दृभ् मृष लिख स्वप् पुष्य तुप ॥
कम् तृप् त्रिप लिप् क्षुभ्य लिप् वस्, यह् सिह् स्निह् औ' रह वह।
धातु ये सब अनिट् हैं, परिगणन इनका है यह ॥२॥

सूचना—अक्षराक्षरों के क्रम से ये धातुएँ पठित हैं। दिवादिगणी धातुओं में, इस प्रकार की अन्य धातुओं से अन्तर के लिए, अन्त में य लगा है। पहले क् अन्तवाली अक् धातु, बाद में च् अन्तवाली, इसी प्रकार क्रमशः धातुएँ हैं। अजन्त धातुओं में अकारान्त और दीर्घ अकारान्त तथा थी भि वी धातु सेट् हैं, शेष अनिट् हैं। जैसे खि, लि, हृ, ह्, पू आदि। केवल विशेष प्रचलित धातुओं का ही संग्रह है। अप्रचलित ऐ धातुओं का संग्रह नहीं है। सेट् धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में इ लगता है। इट का अर्थ है 'इ'। सेट् का अर्थ है, स+इट् अर्थात् 'इ वाला'। इसी प्रकार अनिट् का अर्थ है अन्+इट् अर्थात् 'इ नहीं' वाली धातुएँ।

(५) प्रत्यय-विचार

(१) क्त (२) क्तवतु प्रत्यय (देखो अभ्यास १७,१८,१९)

सूचना—क्त और क्तवतु प्रत्यय भूतकाल में होते हैं। क्त का त और क्तवतु का तवत् शेष रहता है। क्त कर्मवाच्य या भाववाच्य में होता है, क्तवतु कर्तृवाच्य में। धातु को गुण या वृद्धि नहीं होती है। संप्रसारण होता है। अन्य नियमों के लिए देखो अभ्यास १७ १९। क्त प्रत्ययान्त के रूप पुल्लिंग में रामवत्, स्त्रीलिंग में आ लगाकर रमावत् और नपुंसकलिंग में फलवत् चलेंगे। यहाँ केवल पुल्लिंग के रूप ही दिए गए हैं। क्त प्रत्ययान्त का क्तवतु प्रत्ययान्त रूप बनाने का सरल प्रकार यह है कि क्त प्रत्ययान्त के बाद में 'वत्' और जोड़ दो। अभ्यास १९ में दिए नियमानुसार तीनों लिंगों में रूप चलाओ। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अत्त	कृप्	कृप्तः	ग्रा	ग्रात ग्राणः	स्पश्	स्पृष्टः
	(अक्रम्)	कॄ	कीर्णः			ज्ञे	ज्ञातः
अधि+इ	अधीतः	क्रन्द्	क्रन्दितः	चर्	चरितः	दंश्	दष्टः
अर्च्	अर्चितः	क्रम्	क्रान्त	चल्	चलितः	दण्ड्	दण्डितः
अस्	भूतः	क्री	क्रीतः	चि	चित	दम्	दान्तः
आप्	आप्तः	क्रीड	क्रीडित	चिन्त्	चिन्तितः	दय्	दयितः
आ+रभ्	आरब्धः	क्रुध्	क्रुद्धः	चुर्	चारितः	दह्	दग्धः
आक्रन्द्	आक्रन्दितः	क्षि	क्षीण	चर्	चर्षितः	दा	दत्त
आ+हे	आहूत	क्षिप्	क्षिप्तः	छिद्	छिन्न	दिव्	यूनः, यूत
इ	इतः	क्षुभ्	क्षुब्ध	जन्	जात	दिश्	दिष्टः
इष्	इष्टः	खन्	खातः	जि	जित	दीप्	दीप्त
इष्	ईषितः	खाद्	खादितः	ज्ञप्	ज्ञापितः	दुह्	दुग्धः
उद्+ही	उद्हीनः	गण्	गणितः	ज्ञा	ज्ञातः	दृप्	दृप्तः
कथ्	कथितः	गम्	गतः	ज्ञा	ज्ञातः	दो (दा)	दित्तः
कम्	कान्तः	गल्	गलितः	ज्वल्	ज्वलितः	धुर्	धारितः
कम्	कमितः	गॄ	गीर्णः	तन्	ततः	धा	हित
कुध्	कुद्धः	गै (गा)	गीतः	तप्	तप्त	धाव	धावितः
कृ	कृतः	ग्रह	ग्रहः	तुर्	तूर्णः	धू	धूत
कृ	कृत	ग्रह्	गृहीत	तृप्	तृप्तः	ध्मा	ध्मातः

भुक्तः	भुक्तः	भुक्तः	भुक्तः	भुक्तः
भिक्षा	भिक्षा	भिक्षा	भिक्षा	भिक्षा
क्षयः	क्षयः	क्षयः	क्षयः	क्षयः
क्षात	क्षात	क्षात	क्षात	क्षात
क्षोद	क्षोद	क्षोद	क्षोद	क्षोद
क्षिप्तः	क्षिप्तः	क्षिप्तः	क्षिप्तः	क्षिप्तः
क्षिप्तः	क्षिप्तः	क्षिप्तः	क्षिप्तः	क्षिप्तः
क्षिप्तः	क्षिप्तः	क्षिप्तः	क्षिप्तः	क्षिप्तः
क्षूतः	क्षूतः	क्षूतः	क्षूतः	क्षूतः
क्षेपः	क्षेपः	क्षेपः	क्षेपः	क्षेपः
क्षेपित	क्षेपित	क्षेपित	क्षेपित	क्षेपित
क्षेपितः	क्षेपितः	क्षेपितः	क्षेपितः	क्षेपितः

(३) शतृ प्रत्यय (देखो अभ्यास ४०)

सूचना—परस्मैपदी धातुओं को लट् के स्थान पर शतृ होता है। शतृ का अत् शेष रहता है। पुंलिंग में पठत् के तुल्य, स्त्रीलिंग में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुंसकलिंग में जगत् के तुल्य रूप चलेंगे। यहाँ पर केवल पुंलिंग के रूप दिए हैं। रूप बनाने के नियमों के लिए देखो अभ्यास ४ । धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अदत्	चल्	चलत्	पत्	पतत्	स्पश्	स्पृशत्
अर्च्	अर्चत्	चि	चिन्वत्	पा (१प)	पिबत्	स्मृ	स्मरत्
अस्	सत्	छिद्	छिन्दत्	पाल्	पालयत्	स्था	तिष्ठत्
आप्	आप्नुवत्	जप्	जपत्	पूज्	पूजयत्	स्नुष्	स्नुषत्
आ+रुह्	आरोहत्	जि	जयत्	प्रच्छ्	पृच्छत्	स्वप्	स्वपत्
आ+हे	आह्वयत्	जीव्	जीवत्	प्रेर्	प्रेरयत्	हन्	घ्नत्
इ	यत्	ज्वल्	ज्वलत्	बन्ध्	बध्नत्	हस	हसत्
इष्	इच्छत्	तप्	तपत्	भक्ष्	भक्षयत्	हा (३प)	जहत्
कृप्	कृपयत्	तुद्	तुदत्	भज्	भजत्	हिंस्	हिंसत्
कम्	कामयत्	तृप्	तृप्यत्	भिद्	भिन्दत्	हु	जुह्वत्
कृ	किरत्	त	तरत्	भ	भरत्	ह	हरत्
क्रन्द्	क्रन्दत्	त्यज्	त्यजत्	भू	भवत्	हृष्	हृष्यत्
क्रम्	क्रामत्	दण्ड्	दण्डयत्	भ्रम्	भ्रमत् भ्रामयत्	हे	हयत्
क्षीर्	क्षीरत्	दह्	दहत्				
क्षुभ्	क्षुभ्यत्	दिव्	दीव्यत्	मिल्	मिलत्		
खन्	खानयत्	दिश्	दिशत्	रक्ष्	रक्षत्		
क्षिप्	क्षिपत्	दुह्	दुहत्	रच्	रचयत्		
खन्	खनत्	दृश्	पश्यत्	रुद्	रुदत्		
खाद्	खादत्	धाव्	धावत्	रुध्	रुन्धत्		
गण्	गणयत्	धृ	धरत्	लिख्	लिखत्		
गम्	गच्छत्	ध्यै	ध्यायत्	लिह्	लिहत्		
गर्ज्	गर्जत्	नम्	नमत्	वद्	वदत्		
गृ	गिरत्	नश्	नश्यत्	वस्	वसत्		
गै	गायत्	निन्द्	निन्दत्	वह्	वहत्		
ग्रा	गिरत्	नृत्	नृत्यत्	विश्	विशत्		
घर्	घरत्	पठ्	पठत्	शृ	शृणत्		

(४) शानच् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४१)

सूचना—आत्मनेपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शानच् होता है। उभयपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शतृ और शानच् दोनों होते हैं। शानच् का आन शेष रहता है। शानच् प्रत्ययान्त के रूप पुं में रामवत्, स्त्री में आ लगाकर रमावत् और नपुं में फलवत् चलेंगे। यहाँ पर पुंलिंग के ही रूप दिए हैं। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

आत्मनेपदी धातुएँ

अधि+इ	अधीयानः	मन्	मन्यमानः	कथ्	कथयन् कथ्यमानः
आ+रभ्	आरभमाणः	मुद्	मोदमानः	कृ	कुर्वन् कुर्वाणः
आ+कम्प्	आकम्पमानः	मृ	म्रियमाणः	क्री	क्रीणन् क्रीयानः
आस्	आसीनः	यत्	यतमानः	ग्रह्	गृह्णन् गृह्यानः
ईक्ष्	ईक्षमाणः	याच्	याचमानः	चि	चिन्वन् चिन्वानः
ईह्	ईहमानः	युध्	युध्यमानः	चिन्त्	चिन्तयन् चिन्त्यमानः
उद्+ही	उद्हयमानः	रुच्	रोचमानः	चुर्	चोरयन् चोर्यमाणः
कम्प्	कम्पमानः	लभ्	लभमानः	ज्ञा	जानन् जानानः
कूज्	कूजमानः	वन्द्	वन्दमानः	तन्	तन्वन् तन्वानः
गाह्	गाहमानः	वि+राज्	विराजमानः	दा	ददत् दद्यानः
प्रथ्	प्रथमानः	वृत्	वर्तमानः	धा	दधत् दध्यानः
भेष्	भेषमाणः	वृध्	वर्धमानः	नी	नयन् नयमानः
भ्रम्	भ्रममाणः	स्पर्ध्	स्पर्धमानः	पच्	पचन् पच्यमानः
मे	मायमाणः	शंस्	शंसमानः	भू	भवन् भूयमानः
स्मर्	स्मरमाणः	शिक्ष्	शिक्षमाणः	मुच्	मुञ्चन् मुञ्चमानः
रभ्	रभमाणः	श्री	श्रयमाणः	मुच्	मुञ्चन् मुच्यमानः
रुच्	रोचमानः	श्रुच्	शोचमानः	यज्	यजन् यज्यमानः
ध्वंस्	ध्वंसमानः	श्रम्	श्राम्यमानः	युज्	युञ्जन् युज्यमानः
पक्षय्	पक्षयमाणः	श्लाघ्	श्लाघमानः	रुध्	रुन्धन् रुध्यमानः
प्रथ्	प्रथमानः	सं+पद्	संपद्यमानः	वह्	वहन् वह्यमानः
वाध्	बाधमानः	सह्	सहमानः	शि	शयन् श्यमाणः
भ्रास्	भासमानः	सेव्	सेवमानः	सु	सुन्वन् सुन्वानः
मिल्	मिलमाणः	सिव्	स्यमानः	हृ	हरन् ह्रियमाणः

(५) तुमुन्, (६) तव्यत्, (७) तृच् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४२, ४५, ४८)

सूचना—(क) तुमुन् प्रत्यय 'को' 'के लिए' अर्थ में होता है। तुमुन् का तुम् शेष रहता है। तुमुन् प्रत्ययान्त अव्यय होता है, अतः रूप नहीं चलते। धातु को गुण होता है। विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ४२। (ख) तव्यत् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुम् प्रत्ययवाले रूप में तुम् के स्थान पर तव्य लगा दो। तव्यत् प्रत्यय 'चाहिये' अर्थ में होता है। तव्यत् का तव्य शेष रहता है। पुं में तव्य प्रत्ययान्त के रूप रामवत्, स्त्री में आ लगाकर रमावत्, नपुं में फलवत् चलेंगे। विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ४५। (ग) तृच् प्रत्यय कर्ता या 'वाला' अर्थ में होता है। तृच् का तृ शेष रहता है। तृच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुम् प्रत्ययवाले रूप में तुम् के स्थान पर तृ लगा दो। तृच् प्रत्ययान्त के रूप पुं० में कर्तृ के तुल्य, स्त्री में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुं० में कर्तृ नपुं के तुल्य चलेंगे। तृच् प्रत्यय के विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ४८। उदाहरणार्थ—तुम्, तव्य, तृ लगाकर इन धातुओं के ये रूप होंगे। कृ-कर्तुम्, कर्तव्य, कर्तृ। हृ-हर्तुम्, हर्तव्य, हर्तृ। लिख्-लेखितुम्, लेखितव्य लेखितृ। तव्य और तृच् में तुम् के तुव्य ही सन्धि के कार्य होंगे। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अत्तुम्	ईक्ष्	ईक्षितुम्	कथ्	कथयितुम्	कृ	कर्तुम्
अधि+इ	अध्येतुम्	कृष्	कर्षितुम्	कीर्त्	कीर्तयितुम्	कृत्	कर्तितुम्
अर्च्	अर्चितुम्	कृ	कर्तुम्	कुप्	कोपितुम्	कृष्	कर्षितुम्
अस्	भवितुम्	कृ	कर्तुम्	कुर्द्	कूर्दितुम्	कॄ	कर्तुम्
आप्	आप्तुम्	कुप्	कोपितुम्	क्षिप्	क्षेप्तुम्	कॄत्	कर्तितुम्
आ+रभ्	आरब्धुम्	कूर्द्	कूर्दितुम्	क्षुभ्	क्षोभितुम्	कॄष्	कर्षितुम्
आ+रुह्	आरोढुम्	कॄ	कर्तुम्	खाद्	खादितुम्	क्री	क्रेतुम्
आ+लप्	आलपितुम्	कॄत्	कर्तितुम्	गण्	गणयितुम्	क्रीड्	क्रीडितुम्
आस्	आसितुम्	कॄष्	कर्षितुम्	गम्	गन्तुम्	क्रुध्	क्रोद्धुम्
आ+हे	आहातुम्	कॄ	करितुम्	गर्ज्	गर्जितुम्	क्रम्	क्रमितुम्
इ	एतुम्	क्रन्द्	क्रन्दितुम्	गॄ	गरितुम्	क्रम्	क्रमितुम्
इष्	एषितुम्	क्रम्	क्रमितुम्	गै	गातुम्	क्री	क्रेतुम्
ईक्ष्	ईक्षितुम्	क्री	क्रेतुम्	ग्रह्	ग्रहीतुम्	क्षम्	क्षमितुम्
ईड्	ईडितुम्	क्रीड्	क्रीडितुम्	घ्रा	घ्रातुम्	क्षर्	क्षरितुम्
उक्ष्	उक्षितुम्	क्रुध्	क्रोद्धुम्	चर्	चरितुम्	क्षल्	क्षालितुम्
ऊह्	ऊहितुम्	क्रम्	क्रमितुम्	चल्	चलितुम्	क्षि	क्षेतुम्
ऋ	अर्तुम्	क्रम्	क्रमितुम्	चि	चेतुम्	क्षिप्	क्षेप्तुम्
एध्	एधितुम्	क्री	क्रेतुम्	चिन्त्	चिन्तयितुम्	क्षुद्	क्षोत्तुम्
कथ्	कथयितुम्	क्रीड्	क्रीडितुम्	चुर्	चोरयितुम्	क्षुभ्	क्षोभितुम्
कम्	कमितुम्	क्रुध्	क्रोद्धुम्	चेष्ट्	चेष्टितुम्	क्षुर्	क्षोरितुम्
कम्	कमितुम्	क्रम्	क्रमितुम्	छिद्	छेत्तुम्	क्षै	क्षातुम्
कुप्	कोपितुम्	क्रम्	क्रमितुम्	जन्	जनितुम्	खन्	खनितुम्
कूर्द्	कूर्दितुम्	क्री	क्रेतुम्	जॄ	जरितुम्	खाद्	खादितुम्

जि	जेतुम्	पद्	पत्तुम्	पाच्	पाचयितुम्	शप्	शप्तुम्
जीव्	जीवितुम्	पत्यव्	पत्यवितुम्	पुष्	पोषुम्	शम्	शमितुम्
ज्ञा	ज्ञातुम्	पा	पातुम्	पुष्	पोषुम्	शिष्	शिक्षितुम्
त्वर्	त्वरितुम्	पाल्	पालयितुम्	रक्ष्	रक्षितुम्	श्री	श्रयितुम्
दी	दयितुम्	पुर्	पोषितुम्	रच्	रचयितुम्	श्रुत्	श्रोतुम्
तप्	तप्तुम्	पूज्	पूजयितुम्	रम्	रन्तुम्	श्रुष्	श्रोषितुम्
तृप्	तर्पितुम्	प्रच्छ	प्रष्टुम्	राज्	राजितुम्	मि	श्रयितुम्
तृ	तरितुम्	प्रेर्	प्रेरयितुम्	रुच्	रोचितुम्	श्रु	श्रोतुम्
त्यज्	त्यक्तुम्	बन्ध्	बन्धुम्	रुद्	रोदितुम्	श्लिष्	श्लेष्टुम्
दे	दातुम्	बाध्	बाधितुम्	रुध्	रोद्धुम्	श्वस्	श्वसितुम्
दंश्	दष्टुम्	बुध्	बोद्धुम्	लभ्	लब्धुम्	सिच्	सेक्तुम्
दह्	दग्धुम्	भू	भवितुम्	लम्ब्	लम्बितुम्	सिध्	सेद्धुम्
दा	दातुम्	मद्	मर्दयितुम्	लभ्	लभितुम्	सिव्	सेवितुम्
दिव्	देवितुम्	मन्	मन्तुम्	लिख्	लेखितुम्	सु	सोतुम्
दीव्	दीवितुम्	माप्	मापयितुम्	लिह्	लेढुम्	सद्	सत्तुम्
दुह्	दोग्धुम्	मिद्	मेदितुम्	लुभ्	लोभितुम्	सद्	सत्तुम्
द्युत्	द्योतितुम्	मी	मेतुम्	वच्	वक्तुम्	सप्	स्प्तुम्
द्रुह्	द्रोग्धुम्	मुच्	मोक्तुम्	वद्	वदितुम्	सेव्	सेवितुम्
धा	धातुम्	भू	भवितुम्	वन्द्	वन्दितुम्	स्तु	स्तोतुम्
धाव्	धावितुम्	मृ	मर्तुम्	वप्	वप्तुम्	स्ना	स्नातुम्
धृ	धर्तुम्	भ्रम्	भ्रमितुम्	वस्	वस्तुम्	स्ना	स्नातुम्
ध्ये	ध्यातुम्	मन्	मन्तुम्	वह्	वोढुम्	स्पर्ध्	स्पर्धितुम्
ध्वंस्	ध्वंसितुम्	मा	मातुम्	विद्(४ १ ७)	वेत्तुम्	स्पृह्	स्पृहयितुम्
नम्	नन्तुम्	मिल्	मेलितुम्	विश्	वेष्टुम्	स्मृ	स्मर्तुम्
नश्	नष्टुम्	मुच्	मोक्तुम्	वृ (१)	वारयितुम्	हन्	हन्तुम्
निन्द्	निन्दितुम्	मुद्	मोदितुम्	वृत्	वर्तितुम्	हस्	हसितुम्
नी	नेतुम्	मृ	मर्तुम्	वृध्	वर्धितुम्	हा	हातुम्
नृत्	नर्तितुम्	यज्	यष्टुम्	वृ	वर्षितुम्	हिंस्	हिंसितुम्
पच्	पक्तुम्	यत्	पतितुम्	वे	वातुम्	हृ	हर्तुम्
पठ्	पठितुम्	यम्	यन्तुम्	शक्	शक्तिुम्	ह	हर्तुम्
पत्	पतितुम्	या	यातुम्	शक्	शक्तुम्	हृष्	हर्षितुम्

(८) क्त्वा, (९) ल्यप् प्रत्यय (देखो सम्बाद ४१, ४४)

सूचना—'कर' या 'करके' अर्थ में क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय होते हैं। क्त्वा का त्वा और ल्यप् का य शेष रहता है। धातु से पहले उपसर्ग नहीं होगा तो क्त्वा होगा। यदि उपसर्ग पहले होगा तो ल्यप् होगा। दोनों प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते हैं, अतः इनके रूप नहीं चलते। दोनों प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के नियमों के लिए देखो सम्बाद ४१ ४४। जिन उपसर्गों के साथ ल्यप् वाला रूप अधिक प्रचलित है, वही यहाँ दिए गए हैं। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अत्त्वा	प्रजग्ध्य
अधि+इ	—	अधीत्य
अर्च्	अर्चित्वा	समर्च्य
अस् (२ प)	भूत्वा	सम्भूय
अस् (४ प)	असित्वा	प्रास्य
आ+इ—	—	आदाय
आप्	आप्त्वा	प्राप्य
आस्	आसित्वा	उपास्य
इ	इत्वा	प्रेत्य
इष्	इष्ट्वा	समिष्य
इष्	इषित्वा	समीक्ष्य
उत्+डी	—	उड्डीय
कम्	कमित्वा	संक्रम्य
कॄ	कीर्त्वा	प्रकीर्य
कृ	कृत्वा	उपकृत्य
कृष्	कृष्ट्वा	आकृष्य
क	कीर्त्वा	विकीर्य
कन्द्	क्वन्दित्वा	आक्रन्द्य
क्रम्	क्रमित्वा / क्रान्त्वा	संक्रम्य
क्री	क्रीत्वा	विक्रीय
क्रीड्	क्रीडित्वा	प्रक्रीड्य
क्षुद्	क्षुद्त्वा	संक्षुद्य
क्षम्	क्षमित्वा	संक्षम्य
क्षिप्	क्षिप्त्वा	प्रक्षिप्य
क्षुभ्	क्षुभित्वा	प्रक्षुभ्य
खन्	खनित्वा / खात्वा	उत्खन्य / उत्खाय
गण्	गणयित्वा	विगणय्य
गम्	गत्वा	आगम्य / आगत्य
गै	गीत्वा	प्रगाय
ग्रस्	ग्रसित्वा	संग्रस्य
ग्रह्	गृहीत्वा	संगृह्य
घ्रा	घ्रात्वा	आघ्राय
चर्	चरित्वा	आचर्य
चल्	चलित्वा	प्रचल्य
चि	चित्वा	संचित्य
चिन्त्	चिन्तयित्वा	संचिन्त्य
चुर्	चोरयित्वा	संचोर्य
छिद्	छित्वा	उच्छिद्य
जन्	जनित्वा	संजन्य
जप्	जपित्वा	संजप्य
जि	जित्वा	विजित्य
जीव्	जीवित्वा	संजीव्य

ज्ञा	ज्ञात्वा	विज्ञाय
ज्वल्	ज्वलित्वा	प्रज्वल्य
तन्	तनित्वा	वितत्य
तप्	तप्त्वा	संतप्य
तृप्	तृप्त्वा	संतृप्य
तृ	तीर्त्वा	उत्तीर्य
त्यज्	त्यक्त्वा	परित्यज्य
दंश्	दष्ट्वा	संदश्य
दह्	दग्ध्वा	संदह्य
दा	दत्त्वा	व्यादाय
दिव्	देवित्वा	संदीव्य
दिश्	दिष्ट्वा	उपदिश्य
दीप्	दीपित्वा	संदीप्य
दुह्	दुग्ध्वा	संदुह्य
दृप्	दृप्त्वा	संदृप्य
द्युत्	द्योतित्वा	विद्युत्य
धा	हित्वा	विधाय
ध्मा	ध्मात्वा	प्रधाम्य
ध्रु	ध्रुत्वा	व्याकुल्य
ध्मा	ध्मात्वा	व्याध्माय
ध्मै	ध्मात्वा	संध्माय
नम्	नत्वा	प्रणम्य
नश्	नष्ट्वा	विनश्य
नि + इ	—	निरेत्य
नी	नीत्वा	व्यानीय
नृत्	नर्तित्वा	प्रनृत्य
पच्	पक्त्वा	संपच्य
पठ्	पठित्वा	संपठ्य
पत्	पतित्वा	निपत्य
पद्	पत्त्वा	संपद्य
पल्पूल्	—	पल्पूल्य
पा	पीत्वा	विपाय
पाठ्	पाठयित्वा	संपाठ्य
पुष्प	पुष्पित्वा	संपुष्प्य
पूज्	पूजयित्वा	संपूज्य
पॄ	पूर्त्वा	आपूर्य
प्रच्छ्	पृष्ट्वा	संपृच्छ्य
बन्ध्	बद्ध्वा	आबध्य
बुध्	बुद्ध्वा	प्रबुध्य
ब्रू	उक्त्वा	प्रोच्य
मद्	मादयित्वा	संमद्य
मद्	मत्त्वा	विमद्य
मन्द्	मन्दित्वा	विमन्द्य
माङ्	मात्वा	संमाय
मिद्	मित्वा	प्रमिद्य
मी	मीत्वा	संमीय
मुच्	मुक्त्वा	उपमुच्य
भू	भूत्वा	संभूय
मृ	मृत्वा	संमृत्य
भ्रंश्	भ्रष्ट्वा	प्रभ्रश्य
भ्रम्	भ्रमित्वा / भ्रान्त्वा	संभ्रम्य
मद्	मदित्वा	विमद्य
मन्	मत्वा	अवमत्य
मा	मित्वा	प्रमाय
मिल्	मिलित्वा	संमिल्य
मुच्	मुक्त्वा	विमुच्य
मुह्	मुग्ध्वा	संमुह्य
यज्	इष्ट्वा	संयज्य
यम्	यत्वा	संयम्य
या	यात्वा	प्रयाय

याच्	याचित्वा	अनुयाच्य
युज्	युक्त्वा	प्रयुज्य
युध्	युद्ध्वा	प्रयुध्य
रक्ष्	रक्षित्वा	संरक्ष्य
रच्	रचयित्वा	विरचय्य
रभ्	रब्ध्वा	आरभ्य
रम्	रत्वा	विरम्य
रद्	रदित्वा	विरद्य
रध्	रद्ध्वा	विरद्य
रह्	रढ्वा	आरह्य
लप्	लपित्वा	विलप्य
लभ्	लब्ध्वा	उपलभ्य
लम्ब्	लम्बित्वा	आलम्ब्य
लष्	लषित्वा	अभिलष्य
लिख्	लिखित्वा	आलिख्य
लिह्	लीढ्वा	व्यालिह्य
ली	लीत्वा	निलीय
लुभ्	लुब्ध्वा	प्रलुभ्य
वद्	उदित्वा	अनूद्य
वन्द्	वन्दित्वा	अभिवन्द्य
वप्	उप्त्वा	समुप्य
वस	उषित्वा	उपोष्य
वह्	ऊढ्वा	प्रोह्य
विद् (२ प)	विदित्वा	संविद्य
विद् (१)	वेदयित्वा	निवेद्य
विश्	विश्य	प्रविश्य
वृत्	वर्तित्वा	निवृत्य
वृध्	वर्धित्वा	संवृध्य
वृ	वरित्वा	प्रवृत्य
व्यध्	विद्ध्वा	आविध्य
शप्	शप्त्वा	अभिशप्य

शम्	शान्त्वा	निशम्य
शास	शिष्ट्वा	अनुशिष्य
श्री	श्रयित्वा	संश्रय्य
श्रु	श्रुत्वा	परिश्रुत्य
श्लि	श्लित्वा	आश्लिष्य
श्वि	श्वित्वा	संश्वित्य
श्लिष्	श्लिष्ट्वा	आश्लिष्य
श्वस्	श्वसित्वा	विश्वस्य
सद्	सत्वा	निषद्य
सद्	सदित्वा	संसद्य
साध्	साद्ध्वा	प्रसाध्य
सिच्	सिक्त्वा	अभिषिच्य
सिध्	सिद्ध्वा	निषिध्य
सिव्	सेवित्वा	संसीव्य
सृज्	सृष्ट्वा	विसृज्य
सेव	सेवित्वा	निषेव्य
सो	सित्वा	अवसाय
स्तु	स्तुत्वा	प्रस्तुत्य
स्था	स्थित्वा	प्रस्थाय
स्था	आत्वा	प्रस्थाय
स्निह्	स्निग्ध्वा	उपस्निह्य
स्पृश्	स्पृष्ट्वा	संस्पृश्य
स्मृ	स्मृत्वा	विस्मृत्य
स्वप्	सुप्त्वा	संसुप्य
हन्	हत्वा	निहत्य
हस्	हसित्वा	विहस्य
हा	हित्वा	विहाय
हु	हुत्वा	आहुय
ह	हृत्वा	प्रहृत्य
हृष्	हर्षित्वा	प्रहृष्य
ह्वे	हूत्वा	आहूय

(१०) ल्युट्, (११) अनीयर् प्रत्यय (देखो अष्टाध्यायी ४५, ४८)

सूचना—(क) ल्युट् प्रत्यय भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातु से लगता है। ल्युट् का 'अन' शेष रहता है। धातु को गुण होता है। ल्युट् प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक लिंग होता है। अन्य नियमों के लिए देखो अष्टाध्यायी ४। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अनीयर् प्रत्यय होता है। अनीयर् का 'अनीय' शेष रहता है। अनीयर प्रत्यय वाला रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि ल्युट् के अन के स्थान पर अनीय लगा दो। अन्य नियमों के लिए देखो अष्टाध्यायी ४५। जैसे—कृ का करण करणीय। दा-दान, दानीय। पठ्-पठन, पठनीय। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अदनम्	कूर्द्	कूर्दनम्	ग्रस्	ग्रसनम्	त्रै	त्रायम्
अधि+इ	अध्ययनम्	कृ	करणम्	ग्रह्	ग्रहणम्	दंश्	दंशनम्
अनिषिध्	अनिषेधनम्	कृप्	कल्पनम्	घ्रा	घ्राणम्	दण्ड्	दण्डनम्
अर्च्	अर्चनम्	कृष्	कर्षणम्	चर्	चरणम्	दम्	दमनम्
अर्ज्	अर्जनम्	कॄ	करणम्	चक्ष्	चक्षणम्	दह्	दहनम्
अस् (२)	भवनम्	क्रन्द्	क्रन्दनम्	चि	चयनम्	दा	दानम्
अस् (४)	असनम्	क्रम्	क्रमणम्	चिन्त्	चिन्तनम्	दिव्	देवनम्
आ+क्रम्	आक्रमणम्	क्री	क्रयणम्	चुर्	चोरणम्	दिश्	देशनम्
आ+चर्	आचरणम्	क्रीड्	क्रीडनम्	चेष्ट्	चेष्टनम्	दीप्	दीपनम्
आ+रभ्	आरम्भणम्	क्रुध्	क्रोधनम्	छिद्	छेदनम्	दुह्	दोहनम्
आ+रह्	आरोहणम्	क्लिश्	क्लेशनम्	जन्	जननम्	दृश्	दर्शनम्
आ+लप	आलपनम्	क्षम्	क्षमणम्	जप्	जपनम्	द्युत्	द्योतनम्
आस्	आसनम्	क्षिप्	क्षेपणम्	जि	जयनम्	द्रुह्	द्रोहनम्
आ+हे	आह्वानम्	खन्	खननम्	जीव्	जीवनम्	धा	धानम्
इ	अयनम्	खाद्	खादनम्	ज्ञा	ज्ञानम्	धाव्	धावनम्
इष्	एषणम्	गण्	गणनम्	ज्वल्	ज्वलनम्	धृ	धरणम्
ईक्ष्	ईक्षणम्	गम्	गमनम्	डी	डयनम्	ध्यै	ध्यानम्
उद्+डी	उड्डयनम्	गर्ज्	गर्जनम्	तप्	तपनम्	ध्वंस्	ध्वंसनम्
कप्	कम्पनम्	गाह्	गाहनम्	तुष्	तोषणम्	नन्द्	नन्दनम्
कम्	कमनम्	गॄ	गरणम्	तृप्	तर्पणम्	नम्	नमनम्
कम्प्	कम्पनम्	गै	गानम्	त्व	तरणम्	नश्	नशनम्
कुप्	कोपनम्	ग्रन्थ्	ग्रन्थनम्	त्यज्	त्यजनम्	नि+ग	निगरणम्

निन्द्	निन्दनम्	भुज्	भोजनम्	कम्	कमनम्	शम्	शमनम्
नि+यम्	नियमनम्	भू	भवनम्	कम्प्	कम्पनम्	शास्	शासनम्
नि+वस्	निवसनम्	मृ	मरणम्	कथ्	कथनम्	शिष्	शिक्षणम्
नि+विद्	निवेदनम्	भ्रंश्	भ्रंशनम्	कस्	कसनम्	शी	शयनम्
नि+सिच्	निषेचनम्	भ्रम्	भ्रमणम्	क्षिप्	क्षेपणम्	शुभ्	शोभनम्
नी	नयनम्	मद्	मदनम्	क्षिप्	क्षेपनम्	शुष्	शोषणम्
नृत्	नर्तनम्	मन्	मननम्	क्षी	क्षयनम्	श्रि	श्रयणम्
पच्	पचनम्	मन्थ्	मन्थनम्	क्षुट	क्षोटनम्	श्रु	श्रवणम्
पठ्	पठनम्	मा	मानम्	क्षुप्	क्षोपनम्	सं+मिल्	संमेलनम्
पत्	पतनम्	मिल	मेलनम्	क्षुभ्	क्षोभनम्	सद्	सदनम्
पत्थय्	पत्थापनम्	मुच्	मोचनम्	क्षोद्	क्षोदनम्	सह्	सहनम्
पा	पानम्	मुद्	मोदनम्	क्षोष्	क्षोषनम्	साध्	साधनम्
पाक्	पाकनम्	मुष्	मोषणम्	खन्	खननम्	सिच्	सेचनम्
पुष्	पोषणम्	मुह	मोहनम्	खन्द्	खन्दनम्	सिध्	सेधनम्
पूज्	पूजनम्	मृ	मरणम्	खद्	खदनम्	सु	सवनम्
प्र+काश्	प्रकाशनम्	यज्	यजनम्	खन्द्	खन्दनम्	सृ	सरणम्
प्रच्छ्	प्रच्छनम्	यत्	यतनम्	खप्	खपनम्	सृज्	सर्जनम्
प्र+आप्	प्रापणम्	यम्	यमनम्	खर्ज्	खर्जनम्	सृप्	सर्पणम्
प्र+विश्	प्रवेशनम्	या	यानम्	खह्	खहनम्	सेव्	सेवनम्
प्र+हृष्	प्रहर्षणम्	याच्	याचनम्	वि+कस्	विकसनम्	सो	सवनम्
प्रेर्	प्रेरणम्	युज्	योजनम्	विद्	वेदनम्	स्था	स्थानम्
प्रेष्	प्रेषणम्	युध्	योधनम्	वि+धा	विधानम्	स्ना	स्नानम्
बन्ध्	बन्धनम्	रंज्	रंजनम्	वि+नश्	विनशनम्	स्निह्	स्नेहनम्
बाध्	बाधनम्	रक्ष्	रक्षणम्	वि+लप्	विलपनम्	स्पृश्	स्पर्शनम्
बुध्	बोधनम्	रच्	रचनम्	वि+वद्	विवदनम्	स्मृ	स्मरणम्
ब्रू	वचनम्	रम्	रमणम्	वृ	वरणम्	स्रंस्	संस्रंसनम्
भंज्	भंजनम्	राज्	राजनम्	वृत्	वर्तनम्	स्वप्	स्वपनम्
भक्ष्	भक्षणम्	रिच्	रेचनम्	वृध्	वर्धनम्	हन्	हननम्
भज्	भजनम्	रुद्	रोदनम्	वृष्	वर्षणम्	हु	हवनम्
भाष्	भाषणम्	रुध्	रोधनम्	वेप्	वेपनम्	हृ	हरणम्
भिद्	भेदनम्	रुष्	रोषणम्	शप्	शपनम्	हृष्	हर्षणम्

(१२) घञ् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४७)

सूचना—भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है। घञ् का 'अ' शेष रहता है। धातु शब्द पुंलिंग होता है। घञ् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के नियमों के लिए देखो अभ्यास ४७। घञ् प्रत्ययान्त शब्द उपसर्गों के साथ बहुत प्रचलित हैं। स्वयं उपसर्ग लगाकर अन्य रूप बनावें। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अधि+इ	अध्यायः	चर्	चारः	प्र+भू	प्रभावः	वि+कल्प्	विकल्पः
अभि+लष	अभिलाषः	चक्ष्	चाक्षः	प्र+विश्	प्रवेशः	वि+वह्	विवाहः
अव+तॄ	अवतारः	चि	कायः	प्र+वद्	प्रवादः	वि+श्रम्	विश्रमः
अव+शिष्	अवशेषः	चुर्	चोरः	प्र+स	प्रसारः	वि+श्वस्	विश्वासः
अस्	भावः	छिद्	छेदः	प्र+स्था	प्रस्थानः	वि+सृज्	विसर्गः
आ+क्षिप्	आक्षेपः	जप्	जापः	प्र+हृ	प्रहारः	वृध्	वधः
आ+गम्	आगमः	तप्	तापः	बुध्	बोधः	शप्	शापः
आ+चर्	आचारः	त्यज्	त्यागः	भज्	भागः	श्रम्	श्रमः
आ+दृ	आदरः	दह्	दाहः	भिद्	भेदः	शुच	शोकः
आ+धृ	आधारः	दा	दायः	भुज्	भोगः	शुष्	शोषः
आ+मुद्	आमोदः	दिव्	देवः	भिल्	भेलः	श्रि	श्रायः
आ+रुह	आरोहः	दुह्	दोहः	मुह्	मोहः	श्रु	श्रावः
आ+वृत्	आवर्तः	द्रुह्	द्रोहः	मृज्	मार्गः	श्लिष्	श्लेषः
आ+हन्	आघातः	धा	धायः	यज्	यागः	सं+कृ	संस्कारः
उत्+पद्	उत्पादः	नश्	नाशः	युज्	योगः	स+तन्	सन्तानः
उत्+स्था	उत्थानः	नि+ह	न्यायः	युध्	योधः	सं+तुष्	सन्तोषः
उप+दिश्	उपदेशः	नि+वस्	निवासः	रञ्ज्	रागः	सं+मन्	संमानः
कम्	कामः	नि+षिध्	निषेधः	रम्	रामः	सं+यम्	संयमः
क्रुध्	क्रोधः	पच्	पाकः	रुध्	रोधः	सिच्	सेकः
कृ	कारः	पठ्	पाठः	लभ्	लाभः	सृज्	सर्गः
कृष्	कर्षः	पत्	पातः	लिख्	लेखः	स्निह्	स्नेहः
क्षिप	क्षेपः	पुष्	पोषः	क्षुभ्	क्षोभः	स्पृश्	स्पर्शः
क्षुभ्	क्षोभः	प्र+काश्	प्रकाशः	वद्	वादः	स्वप्	स्वापः
गम्	गमः	प्र+कृ	प्रकारः	वि+कल्	विकलः	हस्	हासः
ग्रह्	ग्राहः	प्र+कृष्	प्रकर्षः	वि+कृ	विकारः	हृ	हारः
ग्रह्	ग्राहः	प्र+नम्	प्रणामः	विद्	वेदः	हृष्	हर्षः

(१३) ण्वुल् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४९)

सूचना—कर्ता या 'वाला' अर्थ में ण्वुल् प्रत्यय होता है। ण्वुल् के स्थान पर 'अक' शेष रहता है। धातु को गुण या वृद्धि होगी। कर्ता के अनुसार तीनों लिंग होते हैं। विशेष नियम के लिए देखो अभ्यास ४९। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अध्यापि	अध्यापकः	हिंस्	हेपक	प्र+विश्	प्रवेशकः	रुप्	रोषक
अभिषु	अभिषेकः	धा	धायकः	प्र+सृ	प्रसारक	लिख्	लेखकः
उत्+पद्	उत्पादक	धाव्	धावकः	प्र+स्तु	प्रस्तावक	वच्	वाचकः
उद्+हृ	उद्धारकः	धृ	धारकः	प्रेर्	प्रेरकः	वह्	वाहकः
उद्+मद्	उन्मादकः	ध्यै	ध्यायक	बन्ध्	बन्धकः	वि+कस्	विकासकः
उप+दिश्	उपदेशकः	ध्वंस्	ध्वंसक	बाध	बाधक	वि+आप्	व्यापकः
उप+आस्	उपासकः	नश्	नाशक	बुध्	बोधकः	वि+धा	विधायकः
कृ	कारकः	निन्द्	निन्दकः	भू	भावकः	वि+भज्	विभाजकः
कृप्	कर्षकः	नि+विद्	निवेदकः	मद्	मदकः	वि+कम्म	विकम्मकः
क्रीड्	क्रीडक	नि+हृ	निवारकः	मज्ज्	माजक	वृष्	वर्षक
खाद्	खादकः	नि+विष्	निषेधकः	माप्	मापक	वृ	वर्षकः
गण्	गणकः	नी	नायक	भिद्	भेदक	शास्	शासकः
गम्	गमकः	नृत्	नर्तकः	भुज्	भोजकः	शिक्ष्	शिक्षक
गै	गायक	पच्	पाचक	भू	भावक	शुष्	शोषकः
ग्रह्	ग्राहकः	पठ्	पाठक	मुच्	मोचक	शु	श्रावकः
घ्रा	घ्रायकः	पत्	पातक	मुद्	मोदकः	सं+चल	संचालकः
चिन्त्	चिन्तकः	परि+इष्	परीक्षकः	मुह्	मोहक	सं+तप्	संतापकः
छिद्	छेदक	पा	पायकः	मृ	मारकः	सं+युज्	संयोजकः
जन्	जनकः	पाल्	पालकः	यज्	याजक	सं+हृ	संहारकः
तृ	तारकः	पुष्	पोषकः	यम्	यमक	साध्	साधकः
दह्	दाहकः	पूज्	पूजकः	याच्	याचक	सिच्	सेचकः
दीप्	दीपक	प्र+काश्	प्रकाशकः	युज्	योजक	सेव्	सेवक
दुह्	दोहकः	प्र+क्षिप्	प्रक्षेपकः	वप्	वापकः	स्था	स्थापकः
दृश्	दर्शकः	प्र+चर्	प्रचारकः	रंज्	रंजकः	स्मृ	स्मारकः
द्युत्	द्योतकः	प्रच्छ्	प्रष्टकः	रक्ष्	रक्षक	हन्	घातक
द्रु	द्रोहकः	प्र+था	प्रथायकः	रुष्	रोषक	हृ	हारक

(१४) क्तिन्, (१५) यत् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४६, ५१)

सूचना—(क) भावबोधक संज्ञा बनाने के लिए धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है। क्तिन् का 'ति' शेष रहता है। 'ति' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ५१। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अकर्मक धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। यत् का 'य' शेष रहता है। तीनों लिंगों में रूप चलते हैं। विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ४६। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

	क्तिन् प्रत्यय				यत् प्रत्यय
अधि+इ	अधीतिः	सृप्	सृप्तिः	यम्	यतिः	आधि+इ	आधेयम्
अस् (१प.)	भूतिः	दीप्	दीप्तिः	युज्	युक्तिः	आ+क्षप्	आक्षेपयम्
आप्	आप्तिः	हृष्	हृष्टिः	रम्	रतिः	उप+मा	उपमेयम्
आ+ईक्ष्	आकाङ्क्षितः	धृ	धृतिः	वह्	वहिः	ही	हेयम्
आ+ईक्ष्	आकाङ्क्षा	नम्	नतिः	वि+आप्	व्याप्तिः	धि	धेयम्
आ+दृ	आदृतिः	नी	नीतिः	वि+नश्	विनष्टिः	गै (गा)	गेयम्
इष्	इष्टिः	पच्	पक्तिः	वि+भ्रम्	विभ्रान्तिः	मा	मेयम्
उप+कम्	उपक्रान्तिः	पा	पीतिः	वृ	वृत्तिः	चि	चेयम्
कप्	कम्पितः	पुष्	पुष्टिः	वृष्	वृष्टिः	जि	जेयम्
कम्	कान्तिः	पृ	पूर्तिः	वृध्	वृद्धिः	हा	हेयम्
कृ	कृतिः	प्र+आप्	प्राप्तिः	शक्	शक्तिः	दा	देयम्
कृष्	कृष्टिः	प्री	प्रीतिः	शम्	शान्तिः	धा	धेयम्
क्रु	क्रोशितः	बुध्	बुद्धिः	श्रथ्	श्रथिः	ध्यै (ध्या)	ध्येयम्
क्रुश्	क्रोशितः	भू	भक्तिः	श्रु	श्रुतिः	नी	नेयम्
क्लम्	क्लान्तिः	मन्थ्	मथितः	सं+पद्	संपत्तिः	पा	पेयम्
क्षम्	क्षान्तिः	मी	मीतिः	सं+सृ	संसृतिः	भू	भव्यम्
गम्	गतिः	मुच्	मुक्तिः	सं+हृ	संहृतिः	मा	मेयम्
गै	गीतिः	भू	भूतिः	सिच्	सिक्तिः	वि+धा	विधेयम्
चि	चितिः	भ्रम्	भ्रान्तिः	सृज्	सृष्टिः	भू	भव्यम्
छिद्	छित्तिः	मन्	मतिः	स्तु	स्तुतिः	शु	शस्यम्
जन्	जातिः	या	यातिः	स्था	स्थितिः	स्था	स्थेयम्
ज्ञा	ज्ञातिः	युध्	युद्धिः	स्मृ	स्मृतिः	हा	हेयम्
ठक्	ठक्तिः	यज्	इष्टिः	स्वप्	सुप्तिः	हु	हव्यम्

(६) सन्धि विचार

(क) स्वर-सन्धि

(१) (इको यणचि) इ ई को य्, उ ऊ को व्, ऋ ॠ को र्, ऌ को ल् हो जाता है, यदि बाद में कोई स्वर हो तो। सवर्ण (वैसा ही) स्वर हो तो नहीं। जैसे—

(१) प्रति+एक = प्रत्येक	(२) पटु+एकः=पटवेक	(३) पितृ+आ = पित्रा
इति+अत्र = इत्यत्र	अनु+अयः=अन्वय	मातृ+ए = मात्रे
इति+आह = इत्याह	मधु+अरिः=मध्वरि	पितृ+अंश=पित्रंश
यदि+अपि = यद्यपि	गुरु+आज्ञा=गुर्वाज्ञा	कर्तृ+आ =कर्त्रा
सुधी+उपास्य= सुध्युपास्य	पटु+अत्र =पटवत्र	कर्तृ+ई = कर्त्री
	वधू+औ = वध्वौ	(४) लृ+आकृतिः=लाकृतिः

(२) (एचोऽयवायावः) ए को अय्, ओ को अव् ऐ को आय् औ को आव् हो जाता है बाद में कोई स्वर हो तो। (पदान्त ए या ओ के बाद अ होगा तो नहीं)। जैसे—

(१) हरे+ए=हरये	(२) भो+अति=भवति	(३) ने+अकः = नायकः
कवे+ए=कवये	पो+अन=पवनः	गै+अकः = गायकः
ने+अयम्=नयनम्	विष्णो+ए=विष्णवे	गै+अति = गायति
जे+अः = जयः	भानो+ए=भानवे	(४) पो+अकः = पावकः
चेत्रे+अ=चेत्रय	मो+अनम्=भवनम्	नौ+एतौ=नावेतौ

(३) (क) (आन्तो यि प्रत्यये) ओ को अव्, ऐ को आव् हो जाता है, बाद में य से प्रारम्भ होने वाला कोई प्रत्यय हो तो। (ख) (गोयूतौ अध्वपरिमाणे च) गो शब्द के ओ को अव् होता है बाद में यूति शब्द हो तो मार्ग की लम्बाई के अर्थ में। (ग) (धातोस्तन्निमित्तस्यैव) धातु के ओ अव् और औ का आव् होता है यकारादि प्रत्यय बाद में हो तो। यह सभी होगा जब ओ या औ प्रत्यय के कारण हुआ हो। जैसे—

(क) गो+यम्=गव्यम्	(ख) गो+यूतिः=गव्यूति	(ग) नौ+यम्=नाव्यम्
नौ+यम्=नाव्यम्		भौ+यम्=भाव्यम्

(४) (वाद्गुणः) (१) अ या आ के बाद इ या ई हो तो दोनों को 'ए' होगा। (२) अ या आ के बाद उ या ऊ हो तो दोनों को 'ओ' होगा। (३) अ या आ के बाद ऋ या ॠ हो तो दोनों को 'अर्' होगा। (४) अ या आ के बाद ऌ होगा तो दोनों को 'अल्' होगा। जैसे—

(१) महा+ईशः = महेशः	(२) पर+उपकारः=परोपकारः	(३) महा+ऋषिः=महर्षिः
गण+ईशः=गणेशः	महा+उत्सवः=महोत्सव	राज+ऋषिः=राजर्षिः
उप+इन्द्रः=उपेन्द्र	गंगा+उदकम्=गंगोदकम्	धीर्य+ऋतुः=धैर्यर्तुः
रमा+ईशः=रमेश	हित+उपदेशः = हितोपदेशः	(४) तव+ऌकारः=तवल्कारः

(५) (वृद्धिरेचि) (१) अ या आ के बाद ए या ऐ हो तो दोनों को 'ऐ' होगा। (२) अ या आ के बाद ओ या औ हो तो दोनों को 'औ' होगा।

(१) अत्र + एकः = अत्रैकः	(२) तण्डुल+ओदनम् = तण्डुलौदनम्
कृष्ण + एकत्वम् = कृष्णैकत्वम्	गंगा + ओघः = गंगौघः
सा + एषा = सैषा	देव + औदार्यम् = देवौदार्यम्
देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्	कृष्ण+औत्कण्ठ्यम्=कृष्णौत्कण्ठ्यम्

(६) (क) (एत्येधत्यूठ्सु) अ या आ के बाद एकारादि इ धातु या एठ् धातु हो या ऊठ् (ऊ) हो तो दोनों को मिलकर एक वृद्धि आकार (ऐ या औ) होता है। अ या आ+एजादे। अ या आ+ओ या ऊ = औ। उप + एति = उपैति। अप+एति=अपैति। उप+एधते=उपैधते। प्र + ऊहः = प्रौहः। विश्व + ऊढ = विश्वौढः। (ख) (अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्) अक्ष + ऊहिनी में वृद्धि होकर 'अक्षौहिणी' रूप बनता है। (ग) (स्वादीरेरिण्योः) सु के बाद ईर या ईरिन् होगा तो वृद्धि होगी। सु + ईरः = सौरः। सु+ईरिन्=सौरिन्, सौरी। सु + ईरिणी=सौरिणी। (घ) (प्रादूहोढोढ्येषेष्येषु) प्र के बाद ऊह, ऊढ आदि, एष और एष्य हों तो वृद्धि होती है। प्र+ऊहः = प्रौहः। प्र + ऊढः=प्रौढः। प्र + ऊढिः = प्रौढिः। प्र+एषः = प्रैषः। प्र + एष्यः = प्रैष्यः।

(७)(एङः पदान्तादति) पद (अर्थात् सुबन्त या तिङन्त) के अन्तिम ए या ओ के बाद अ हो तो उसको पूर्वरूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। (अ रहा है, इस बात के सूचनार्थ ऽ(अवग्रहचिह्न) लगा दिया जाता है। जैसे—

(१) हरे + अव = हरेऽव	(२) विष्णो + अव = विष्णोऽव
कोके + अत्रिमन् = कोकेऽत्रिमन्	रामो + अवुना = रामोऽवुना
विद्याक्वे+अत्रिमन् = विद्याक्वेऽत्रिमन्	लोको + अयम् = लोकोऽयम्

(८) (शकि परूपम्) उपसर्ग के अ के बाद धातु का ए या ओ हो तो दोनों के स्थान पर पररूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। अर्थात् (१) अ+ए=ए, (२) अ + ओ=ओ। जैसे—

(१) प्र+एजते=प्रेजते | (२) उप+ओषति=उपोषति

(९) (शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) शकन्धु आदि शब्दों में टि (अर्थात् अन्तिम स्वर-सहित अवयव अंश) को पररूप हो जाता है। कर्क + अन्धुः=कर्कन्धुः। कर्क + अन्धुः=कर्कन्धुः। मनस् + ईषा=मनीषा। कुल + अटा=कुलटा। पतत्+अञ्जलिः=पतञ्जलिः। मार्त + अण्ड = मार्तण्डः। (क) (सीमन्तः केशवेशे) सीम+अन्तः = सीमन्तः (बालों में माँग)। अन्यत्र सीमान्तः (हद)। (ख) (सारङ्गः पशुपक्षिणोः) सार + अङ्गः = सारङ्गः (पशु पक्षी)। अन्यत्र सारङ्ग। (ग) (आत्वाद्गुणः समासे वा) समास में विकल्प से ओतु ओत् को पररूप। स्थूल+ओतुः=स्थुलोतुः, स्थूलोतुः। बिम्ब+ओष्ठः = बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठ।

(१०) (उपसर्गादति धातौ) अकारान्त उपसर्ग के बाद कोई ऋ से प्रारम्भ होनेवाली धातु हो तो दोनों का आर् वृद्धि हो जाएगी। अ + ऋ = आर्। उप + ऋच्छति = उपार्च्छति। प्र + ऋच्छति = प्रार्च्छति।

(११) (अचो रहाभ्यां द्वे) किसी स्वर के बाद र् या ह् हो और उनके बाद कोई यर् (ह् को छोड़कर कोई व्यंजन) हो तो उसे विकल्प से द्वित्व हो जाता है। जैसे—कार् + य = कार्य्य, काय। कर् + तव्य = कर्त्तव्य कर्तव्य। कर् + म = कर्म्म, कर्म।

(१२) (ओमाङोश्च) अ के बाद ओम् या आट् (आ) हो तो परस्प अर्थात् दोनों को ओम् वा आ होता है। शिवाय + ओं नमः = शिवायों नमः। शिव + एहि (आ + इहि) = शिवेहि।

(१३) (अकः सवर्णे दीर्घः) अ इ उ ऋ के बाद कोई सवर्ण (सदृश) अक्षर हो तो दोनों के स्थान पर उसी वर्ण का दीर्घ अक्षर हो जाता है। अर्थात् (१) अ या आ + अ या आ = आ। (२) इ या ई + इ या ई = ई। (३) उ या ऊ + उ या ऊ = ऊ। (४) ऋ + ऋ = ॠ।

(१) हिम + आलयः = हिमालयः	(२) गिरि + ईशः = गिरीशः	(३) गुरु + उपदेशः = गुरूपदेशः
विद्या + आलयः = विद्यालयः	श्री + ईशः = श्रीशः	विष्णु + उदयः = विष्णूदयः
देव + ऋषिः = देवर्षिः	इति + इदम् = इतीदम्	(४) होतृ + ऋकारः = होतॄकारः

(१४) (सर्वत्र विभाषा गोः) गो शब्द के बाद अ हो तो विकल्प से उसे प्रकृतिभाव (वैसा ही रहना) होता है। गो + अग्रम् = गोअग्रम्, गोऽग्रम्।

(१५) (अवङ् स्फोटायनस्य) स्वर बाद में हो तो गो शब्द के ओ को अवङ् (अव) हो जाता है विकल्प से। गो + अग्रम् = गवाग्रम्। गो + अक्षः = गवाक्षः।

(१६) (इन्द्रे च) गो के ओ को अवङ् (अव) होगा, इन्द्र बाद में हो तो। गो + इन्द्रः = गवेन्द्रः।

(१७) (ह्रस्वः) ह्रस्व या दीर्घ अ इ उ के बाद क हो तो विकल्प से प्रकृति भाव होगा। जहाँ सन्धि नहीं होगी वहाँ यदि शब्द का अन्तिम अक्षर दीर्घ होगा तो वह ह्रस्व हो जाएगा। ब्रह्मा + ऋषिः = ब्रह्मर्षिः, ब्रह्मऋषिः। अस्त्र + ऋष्टीनाम् = अस्त्रर्ष्टीनाम्, अस्त्रऋष्टीनाम्।

(१८) (प्रत्यभिवादेऽशूद्रे) अभिवादन के प्रत्युत्तर में वाक्य के अन्तिम अक्षर को प्लुत (३) हो जाता है और वह उदात्त होता है। आयुष्मानेधि देवदत्त३।

(१९) (दूराद्धूते च) दूर से सम्बोधन में वाक्य के अन्तिम अक्षर को प्लुत होगा। आगच्छ देवदत्त३।

(२०) (इदुदेद्विवचनं प्रगृह्यम्) शब्द या धातु के द्विवचन के इ, ऊ और ए के साथ कोई सन्धि नहीं होती। हरी + एतौ = हरी एतौ। विष्णू + इमौ = विष्णू इमौ। गङ्गे + अम् = गङ्गे अम्। पचेते + इमौ = पचेते इमौ।

(२१) (मदसो मात्) अहम् शब्द के म् के बाद इ या ऊ होंगे तो उनके साथ कोई सन्धि नहीं होगी। अमी + इमाः = अमी इमाः। अमू + आसाते = अमू आसाते।

(ख) हल्-सन्धि (व्यञ्जन-सन्धि)

(२२) (स्तोः श्चुना श्चुः) स् या तवर्ग से पहले या बादमें श् या चवर्ग कोई भी हो तो स् को श् और तवर्गको चवर्ग होगा। त>च्, द>ज्, न>ञ्, स्>श। जैसे—

रामस् + च = रामश्च	सत् + चित् = सच्चित्	उद् + जन = उज्जनः
कम् + चित् = कञ्चित्	सत् + चरित्रः = सच्चरित्रः	उद् + ज्वल = उज्ज्वलः
हरिण् + शेते = हरिञ्शेते	उत् + चारणम् = उच्चारणम्	शार्ङ्गिन् + जय = शार्ङ्गिञ्जय

(२३) (शात्) श् के बाद तवर्ग का चवर्ग नहीं होगा। (नियम २२ का अपवाद तुल)। मृज् + न = मृष्टः। विश् + ना = विष्टः।

(२४) (ष्टुना ष्टुः) स् या तवर्ग से पहले या बाद में ष् या टवर्ग कोई भी हो तो स् को ष् और तवर्ग को टवर्ग होगा। त>ट, द>ड, न>ण्, स्>ष्। जैसे—

रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः	इष् + तः = इष्टः	उद् + डीनः = उड्डीनः
रामस् + टीकते = रामष्टीकते	दुष् + तः = दुष्टः	विष् + नुः = विष्णुः
पेष् + ता = पेष्टा	उत् + डीनः = उड्डीनः	कृष् + नः = कृष्णः

(२५) (क) (न पदान्ताट्टोरनाम्) पद के अन्तिम टवर्ग के बाद स् और तवर्ग को ष् और टवर्ग नहीं होता, नाम् को छोड़कर। (नियम २४ का अपवाद)। षट् + स्तम्भाः = षट् स्तम्भाः। षट् + ते = षट् ते।

(ख) (अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्) टवर्ग के बाद नाम्, नवति, नगरी हों तो नियम २४ के अनुसार इनके न को ण होगा। (बाद में नियम २९ के अनुसार ट् को ष् होगा)। षट् + नाम् = षण्णाम्। षट् + नवतिः = षण्णवतिः। षट् + नगर्यः = षण्णगर्यः।

(२६) (तोः पि) तवर्ग के बाद प हो तो तवर्ग का टवर्ग नहीं होगा। सन् + पद्मः = सन् पद्मः।

(२७) (झलां जशोऽन्ते) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और ऊष्म) को जश् (१ अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) होते हैं, पद् पद के अन्तिम अक्षर हों तो। (पद का अर्थ है सुबन्त शब्द या तिङन्त धातुरूप)। जैसे—

दिक् + अम्बरः = दिगम्बर	चित् + आनन्दः = चिदानन्दः	पद् + एव = पदेव
दिक् + नागः = दिग्नागः	जगत् + ईशः = जगदीशः	पद् + आननः = पदाननः
अप् + अन्त = अबन्तः	उत् + दैश्यम् = उद्दैश्यम्	सुप् + अन्त = सुबन्त

(२८) (झलां जश् झशि) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और ऊष्म) को जश् (१ अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) होते हैं, बाद में झश् (वर्ग के १, ४) हों तो। (विशेष—यह नियम पद के बीच में लगता है और नियम २७ पद के अन्त में। यही दोनों में भेद है।) जैसे—

वप् + क्त = उप्तः	दुष् + धिः = दुग्धिः	लभ् + धः = लब्धः
दुष् + धम् = दुग्धम्	सिध् + धिः = सिद्धिः	लुभ् + धः = लुब्धः
क्रोप् + क्त = क्रोप्तः	बुध् + धिः = बुद्धिः	आरभ् + धम् = आरब्धम्

(२९) (क) (यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा) पदान्त यर् (ह के अतिरिक्त सभी व्यंजन) के बाद अनुनासिक (वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो यर् को अपने वर्ग का पंचम अक्षर हो जाएगा। यह नियम ऐच्छिक है। (ख) (प्रत्यये भाषायां नित्यम्) यदि प्रत्यय का म आदि बाद में होगा तो यह नियम ऐच्छिक नहीं होगा अपि तु नित्य होगा।

दिक् + नाग = दिङ्नाग	उद् + यमः = उद्यमः
तत् + मः = तन्मः	पद् + नगः = पद्मगः
एतत्+मुरारिः= एतन्मुरारिः	पद् + मुखः = पद्मुखः
तत् + मात्रम् = तन्मात्रम्	वाक् + मयम् = वाङ्मयम्
तत् + मयम् = तन्मयम्	

(३०) (तोर्लि) तवर्ग के बाद ल हो तो तवर्ग को भी ल हो जाता है। अर्थात् (१) त् या द् + ल = ल्ल, (२) न् + ल = ल्ल। जैसे—

उद् + लेख = उल्लेख	
विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति	
तत् + लयः = तल्लयः	
तत् + लीनः = तल्लीनः	

(३१) (उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य) उद् के बाद स्था या स्तम्भ् धातु हो तो उसे पूर्वरूप होता है अर्थात् स्था और स्तम्भ् के स का द् होगा। बाद में नियम ११ के अनुसार द् का लोप हो जाएगा। उद् + स्थानम् = उत्थानम्। उद् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम्। द् को नियम १४ से त्।

(३२) (झयो झरि सवर्णे) व्यंजन के बाद झर् (वर्ग के १, २, ३ और ४ व ष ह) का विकल्प से लोप होता है बाद में सवर्ण (वैसा ही) झर् हो तो। उद् + थ् थानम् = उत्थानम्। रूप् + प = रूप्प। इच्वर् + घृणिः = इच्वर्घृणिः।

(३३) (झयो होऽन्यतरस्याम्) झर् (वर्ग के १, २, ३ ४) के बाद ह् हो तो उसे विकल्प से पूर्वरूप होता है अर्थात् पूर्व अक्षर के वर्ग का चतुर्थ अक्षर हो जाता है। ह् या ग् + ह = ग्घ, ए या द् + ह = द्ध। वाग् + हरि = वाग्घरिः, वाग्हरिः।

(३४) (खरि च) झर्रें (१ २ ३ ४ क्रम) को चर् (१ उसी वर्ग के प्रथम अक्षर) होते हैं, बाद में खर् (१ २ श, ष स) हों तो। ग् > क्, ब् > प्, द् > त्।

उद् + कारः = उत्कारः	उद् + पदः = उत्पदः
उद् + पदः = उत्पदः	उद् + तापः = उत्तापः
वाक् + छलः = वाक्छलः	दिग् + पालः = दिक्पालः

(३५) (क) (शश्छोऽटि) पदान्त झर् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद श हो तो उसको छ् हो जाता है यदि उस श् के बाद अट् (स्वर, ह्, य्, व्, र्) हो तो। श् को छ होने पर पूर्ववर्ती द् को नियम २१ से च् और त को नियम १४ से च्।

पूर्ववर्ती त् हो तो नियम २१ से च्।

एतद् (त्) + शिवः = एतच्छिवः	तत् + छात्रः = तच्छात्रः
" + शिवः = एतच्छिवः	उद् + छायः = उच्छायः

(ख) (झलां जशोऽन्ते पदस्य) पदान्त झल् (स्वर, ह् अन्तस्थ, ऊष्म ऊ) हो तो भी श् को विकल्प से छ् होगा। तत् + श्लोकेन = तच्छ्लोकेन, तच्श्लोकेन।

(३६) (मोऽनुस्वारः) पदान्त म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है, बाद में कोई हल् (व्यंजन) हो तो। बाद में स्वर होगा तो अनुस्वार कदापि नहीं होगा। जैसे—

हरिम्+वन्दे = हरिं वन्दे	सत्यम्+वद = सत्यं वद
कार्यम्+कुरु = कार्यं कुरु	धर्मम्+चर = धर्मं चर

(३७) (नश्चापदान्तस्य झलि) अपदान्त न् और म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है, बाद में झल् (वर्ग के १,२,३,४, ऊष्म) हो तो। जैसे—यशान्+सि = यशांसि। पयान्+सि = पयांसि। नम्+स्यति = नंस्यति। आक्रम्+स्यते = आक्रंस्यते। यह नियम पद के बीच में आता है।

(३८) (अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) अनुस्वार के बाद यय् (ह, य, व, र को छोड़कर सभी व्यंजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण (अगले वर्ण का पंचम अक्षर) हो जाता है। जैसे—

शं+का = शङ्का	अं+चित = अञ्चितः	शां+तः = शान्तः
टं+का = टङ्का	कुं+ठितः = कुण्ठितः	गुं+फित = गुम्फित

(३९) (वा पदान्तस्य) पद के अन्तिम अनुस्वार के बाद यय् (ह, य, व, र को छोड़कर सभी व्यंजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण विकल्प से होगा। यह नियम पदान्त में आता है। अं+करोषि = अङ्करोषि, अं करोषि। सम्+गच्छध्वम् = सङ्गच्छध्वम्, संगच्छध्वम्।

(४०) (मो राजि समः क्वौ) सम् के बाद राज् शब्द हो तो सम् के म् को म् ही रहता है। उसको अनुस्वार नहीं होता। सम्+राट् = सम्राट्। सम्राजौ, सम्राजः।

(४१) (ङ्णोः कुक्टुक्शरि) ङ् या ण् के बाद शर् (श, ष, स) हो तो विकल्प से बीच में क् या ट् जुड़ जाते हैं। ङ् के बाद क् और ण् के बाद ट्। प्राङ्+षष्ठः = प्राङ्क्षष्ठः प्राङ्षष्ठः। सुगण्+षष्ठः = सुगण्ट्षष्ठः, सुगण्षष्ठः।

(४२) (डः सि धुट्) ड् के बाद स हो तो बीच में ध् विकल्प से जुड़ जाता है। नियम १४ से ध् को त् और पूर्ववर्ती ड् को ड्। षड्+सन्तः = षट्त्सन्तः, षड्सन्तः।

(४३) (नश्च) न् के बाद स हो तो बीच में विकल्प से ध् जुड़ जाता है। नियम १४ से ध् को त्। सन्+सः = सन्त्सः, सन्सः।

(४४) (शि तुक्) पदान्त न् के बाद श हो तो विकल्प से बीच में त् जुड़ जाता है। नियम १५ से त् को च्। सन्+शम्भुः = सञ्च्छम्भुः, सञ्छम्भुः।

(४५) (ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्) ह्रस्व स्वर के बाद ङ् ण् न् हों और बाद में कोई स्वर हो तो बीच में एक ङ्, ण् न् और जुड़ जाता है। जैसे—प्रत्यङ्+आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्+ईशः = सुगण्णीशः। सन्+अभ्युतः = सन्नभ्युतः।

(४६) (क) (रात्सस्य) र्, ष् या ऋ ॠ के बाद स् को ष् हो जाता है। जैसे—कीर्+सः = कीर्षः, पूर्+सः = पूर्षः। पूष्+सा = पूष्षा। पितृ+सुम् = पितृषुम्। (ख) (अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि) र् और ष् के बाद स को ष् होगा बीच में स्वर, ह्, अन्तःस्थ, कवर्ग, पवर्ग आ न् हों तो भी। रामेण = रामेण। (ग) (पदान्तस्य) पद के अन्तिम न् को ण् नहीं होता। रामान् का रामान् ही रहेगा।

(४७) (क) (अपदान्तस्य मूर्धन्यः, इण्कोः, आदेशप्रत्यययोः) अ आ को छोड़कर सभी स्वर, ह, अन्तस्थ और कवर्ग के बाद स् को ष् होता है, यदि वह किसी के स्थान पर आदेश हुआ हो या प्रत्यय का स् हो। पद के अन्तिम स् को प नहीं होगा। जैसे—रामे + सु = रामेषु, हरि + सु = हरिषु। अनुष्ट् + स्त् = अनुष्टुभ्। (ख) (सुमःपिसजभीयशाय्यबायेऽपि) इण् (अ आ से भिन्न स्वर, ह अन्तस्थ और कवर्ग के बाद स् को ष् होता है, यदि बीच में नुम् (न्) विसर्ग (:) और ष् ष् में से कोई एक हो तो भी। धनुस् + सि = धनूंषि। पितृष् + सु = पितृषु। पितृष् + सु = पितृषु।

(४८) (समः सुटि संपुंकानां सो वक्तव्यः) सम् + स्कर्ता में म् के स्थान पर र् होकर स हो जाता है और उससे पहले अनुस्वार (ं) या अनुनासिक ँ आ जाता है। बीच के एक स् का लोप भी हो जाएगा। सम् + स्कर्ता = संस्कर्ता संस्कर्ता। सम् + स्कृत होने पर इसी प्रकार ं स् लगाकर सन्धि होगी। संस्करोति संस्कृतम्, संस्कार आदि।

(४९) (पुमः खय्यम्परे) पुम् के म् को र् होकर नियम ४८ के अनुसार स् हो जाएगा, बाद में कोकिलः पुत्र आदि शब्द हों तो। स् से पहले ं या ँ आ जाएँगे। पुम् + कोकिल = पुंस्कोकिलः। पुम् + पुत्र = पुंस्पुत्रः।

(५०) (नश्चापदान्तस्य झलि) पद के अन्तिम न् को ं (ं, ँ) होता है, यदि उसके बाद झल् (क्, ख्, ग्, घ्, त्, थ्, द्, ध्, प्, फ्, ब्, भ्, श्, ष्, स्, ह्) वर्ग के पंचम अक्षर (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) हों तो। प्रधान् शब्द में नियम नहीं लगेगा। न् को ं होने पर उसके पहले ं या ँ आ जाएँगे। इस नियम का रूप होगा—न् + झल् = ं + झल्। इसके अनुसार प्राप्त होगा तो होगा।

कस्मिन् + चित् = कस्मिंश्चित्	धार्ष्टिन् + जिष्णु = धार्ष्टिंजिष्णु
भीमान् + च = भीमांश्च	कपिन् + त्रायस्व = कपिंस्त्रायस्व
तस्मिन् + तथा = तस्मिंस्तथा	

(५१) (अनाम्नवतिनगरीणाम्) कान् + कान् में पहले कान् के न् को ं होकर ं होगा और उससे पहले आ ं होगा। काम् + कान् = काँस्कान्, कांस्कान्।

(५२) (क) (छे च) ह्रस्व स्वर के बाद छ हो तो बीच में त् आ जाता है। नियम २२ से त् को च् हो जाएगा। स्व + छाया = स्वच्छाया। शिव + छाया = शिवच्छाया। स्व + छन्दः = स्वच्छन्दः। (ख) (दीर्घात्) दीर्घ स्वर के बाद छ हो तो भी बीच में त् होगा। त् को च् पूर्ववत्। ये + छिष्यते = येच्छिष्यते। (ग) (पदा स्वाद् वा) पद के अन्तिम दीर्घ अक्षर के बाद छ हो तो विकल्प से त् लगेगा। लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया। (घ) (आङ्माङोश्च) आ और मा के बाद छ होगा तो नित्य त् लगेगा। त् को च् पूर्ववत्। आ + छादयति = आच्छादयति। मा + छित्त् = माच्छित्त्।

(ग) विसर्ग-सन्धि (सादि-सन्धि)

(५३) (ससजुषो रु:) पद के अन्तिम स् को र (ऱ्) होता है। सजुष् शब्द के ष् को भी र होता है। (सूचना—इस र को साधारणतया नियम ५४ से विसर्ग होकर विसर्ग : ही शेष रहता है। जैसे—राम + स् = रामः, कृष्ण + स् = कृष्णः। इसको दो नियम ६६, ६७ ६८ से उ या य् होता है। जहाँ उ या य् नहीं होगा, वहाँ र् शेष रहता है। अतः अ आ के अतिरिक्त अन्य स्वरों के बाद स् या विसर्ग का र् शेष रहता है, बाद में कोई स्वर या व्यंजन (वर्ग के ३, ४ ५) हो तो)। जैसे—

हरिः + अवदत् = हरिरवदत्	वधूः + एषा = वधूरेषा
शिशुः + आयच्छत् = शिशुरायच्छत्	गुरोः + आज्ञाम् = गुरोराज्ञाम्
पितुः + इच्छा = पितुरिच्छा	हरेः + ध्यानम् = हरेर्ध्यानम्

(५४) (खरवसानयोर्विसर्जनीयः) र् को विसर्ग होता है, बाद में खर् (वर्ग के १ २, श ष स) हो या कुछ न हो तो। पुनर् + पूजयति = पुनः पूजयति। राम + र् (ऱ्) = रामः। (सूचना—पुं शब्दों के प्रथमा एक० में जो विसर्ग होता है, वह स् का ही विसर्ग है। उसको नियम ५१ से र (ऱ्) होता है और नियम ५४ से र् को विसर्ग (:) ।)

(५५) (विसर्जनीयस्य सः) विसर्ग के बाद खर् (वर्ग के १ २, श ष स) हो तो विसर्ग को स् हो जाता है। (श् या चवर्ग बाद में हो तो नियम २२ से श्चुत्व सन्धि भी)। जैसे—

हरिः + शेते = हरिश्शेते	विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता
रामः + तिष्ठति = रामस्तिष्ठति	बालः + पठति = बालस्पठति
कः + चित् = कश्चित्	जनाः + तिष्ठन्ति = जनास्तिष्ठन्ति।

(५६) (वा शरि) विसर्ग के बाद शर् (श, ष, स) हो तो विसर्ग को विकल्प से श् ष् दोनों होते हैं। श्चुत्व या ष्टुत्व (नियम २२, २४) यदि आप होंगे तो करेंगे। जैसे—

हरिः + शेते = हरिश्शेते हरिश्छेते	रामः + षष्ठः = रामष्षष्ठः
रामः + शेते = रामश्शेते, रामश्छेते	बालः + स्थापिति = बालस्स्थापिति

(५७) (कस्कादिषु च) कस्क आदि शब्दों में विसर्ग से पहले अ या आ होगा तो विसर्ग को स् होगा, यदि इण् (इ, उ) होगा तो ष् होगा। कः + कः = कस्कः। कौत + कुत = कौतस्कुत। सर्पिः + कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका। धनुः + कपालम् = धनुष्कपालम्। मा + कर = मास्करः।

(५८) (सोऽपदादौ पाप्यकस्यकाम्येष्विति०) पाप, कस्य, क और काम्य प्रत्यय बाद में हों तो विसर्ग को स् हो जाएगा। पयः + पाशम् = पयस्पाशम्। यशः + कस्यम् = यशस्कस्यम्। वयः + कम् = वयस्कम्। यशस्काम्यति।

(५९) (इणः षः) यदि कस क काम्य प्रत्यय बाद में हों तो विसर्ग को ष् हो जाएगा, यदि वह विसर्ग इ, उ के बाद होगा तो। सर्पिष्पाशम्, सर्पिष्कस्यम्, सर्पिष्कम्।

(५०) (नमस्पुरसोर्गत्योः) गतिसंज्ञक नमस् और पुरस् के विसर्ग को ष् होता है बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो। (कृ धातु बाद में होती है तो नमस्, पुरस् गतिसंज्ञक होते हैं) । नमः + करोति = नमस्करोति। पुरः + करोति = पुरस्करोति।

(५१) (इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य) उपधा (अन्तिम से पूर्ववर्ण) में इ या उ हो तो उसके विसर्ग को ष् होता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो। यह विसर्ग प्रत्यय का नहीं होना चाहिए। निः + प्रभूतम् = निष्प्रभूतम्। निः + कान्तः = निष्कान्तः। आविः + कृतम् = आविष्कृतम्। दुः + कृतम् = दुष्कृतम्।

(५२) (तिरसोऽन्यतरस्याम्) तिरस् के विसर्ग को ष् विकल्प से होता है, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। तिरः + करोति = तिरस्करोति, तिरःकरोति। तिरः + कृतम् = तिरस्कृतम्।

(५३) (इदुसोः सामर्थ्ये) इस् और उस् के विसर्ग को विकल्प से ष् होता है, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। दोनों पदों में मिलने की सामर्थ्य होनी चाहिए, तभी ष् होगा। सर्पिः + करोति = सर्पिष्करोति सर्पिःकरोति। धनुः + करोति = धनुष्करोति, धनुःकरोति।

(५४) (नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य) समास होने पर इस् और उस् के विसर्ग को नित्य ष् होता कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। इस् और उस् वाला शब्द उत्तरपद (बाद के पद) में नहीं होना चाहिए। सर्पिः + कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका।

(५५) (अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य) अ के बाद विसर्ग को ष् नित्य होता है, समास में, बाद में कृ कम् आदि हों तो। यह विसर्ग अव्यय का नहीं होना चाहिए और उत्तर पद में न हो। अवः + कारः = अवस्कारः। अव + कामः = अवस्कामः। इसी प्रकार अवस्करः, अवस्कुम्भः, अवस्पात्रम्, अवस्कुण्डः अवस्कर्णी।

(५६) (अतो रोरप्लुतादप्लुते) ह्रस्व अ के बाद र (ए के र् वा :) को उ हो जाता है, बाद में ह्रस्व अ हो तो। (सूचना—इस उ को पूर्ववर्ती अ के साथ सन्धि-नियम ४ से गुण करके आ हो जाता है और बाद के अ को सन्धि-नियम ७ से पूर्वरूप संधि होती है। अतएव अः + अ = आ होता है।) जैसे—

शिवः + अर्च्य = शिवोऽर्च्यः	कः + अपम् = कोऽपम्
रामः + अस्ति = रामोऽस्ति	रामः + अवदत् = रामोऽवदत्
कः + अपि = कोऽपि	देवः + अयम् = देवोऽयम्

(५७) (हशि च) ह्रस्व अ के बाद र (ए के र् वा :) को उ हो जाता है, बाद में हश् (वर्ग के १, ४, ५ ह अन्तस्थ) हो तो। (सूचना—सन्धिनियम ५६ बाद में अ हो तब लगता है, यह बाद में हश् हो तो। उ करने के बाद सन्धिनियम ४ से अ + उ को गुण होकर ओ होगा। अतः अः + हश् = ओ + हश् होगा, अर्थात् अः को ओ होगा।)

शिवः + वन्द्यः = शिवो वन्द्यः	देवः + गच्छति = देवो गच्छति
रामः + वदति = रामो वदति	बालः + हसति = बालो हसति

(२८) (मामगोमधोमपूर्वस्य योमशि) मो, मगोः, अधोः शब्द और अ या आ के बाद ह (ह् का ह् या ः) को ध् होता है यदि बाद में अच् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के १, ४, ५) हो तो। सूचना—इसके उदाहरण आगे नियम ७० में देखें।

(२९) (इति सर्वेषाम्) मोः, मगोः अधोः और अ या आ के बाद ह् का लोप अवश्य हो जाता है, बाद में व्यंजन हो तो। सूचना—इसके उदाहरण आगे नियम ७ में देखें।

(७०) (लोपः शाकल्यस्य) अ या आ पहले हो तो पश्चात् ह् और ह् का लोप विकल्प से होता है, बाद में अच् (स्वर, ह अन्तःस्थ, वर्ग के १, ४, ५) हो तो। (सूचना—नियम ६८ के ह् के बाद व्यंजन होगा तो नियम ६९ से ह् का लोप अवश्य होगा। ह् के बाद यदि कोई स्वर आदि होगा तो नियम ७० से ह् का लोप ऐच्छिक होगा। ह् का लोप होने पर कोई दीर्घ गुण इत्यादि आदि सन्धि नहीं होगी। अ या आ + अच् = अ या आ + अच्।)

मोः + देवाः = मो देवाः
देवाः + नम्याः = देवा नम्याः
देवाः + वान्ति = देवा वान्ति

नरः + हसन्ति = नरा हसन्ति
देवाः + इह = देवा इह, देवायिह
पुत्राः + आगच्छन्ति = पुत्र आगच्छन्ति

(७१) (क) (रोऽसुपि) अहन् के न् को र् होता है बाद में कोई सु (विभक्ति) न हो तो। अहन् + अहः = अहरहः। अहन् + गणः = अहर्गणः। (ख) (रूप उभिरप्यन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्) रूप, रात्रि शब्दान्तर बाद में हो तो अहन् के न् को र् होगा। उसको नियम ६७ से उ होगा और नियम ४ से गुण होकर ओ होगा। अहन् + रूपम् = अहोरूपम् अहन् + रात्रः = अहोरात्रः। इसी प्रकार अहोरात्रान्तरम्। (अहरादीनां पत्यादिषु वा रुत्वम्) अहर् आदि के र् के बाद पति आदि हों तो र् को र् विकल्प से रहता है। अहर् + पतिः = अहरपतिः। इसी प्रकार गीर्पतिः, धीः। अन्यत्र विसर्ग।

(७२) (रो रि) र् के बाद र् हो तो पहले र् का लोप हो जाता है।

(७३) (हशोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः) ह् या र् का लोप हुआ हो तो उससे पहले अ, इ उ को दीर्घ हो जाता है। उद + हासः = उदासः खिद + घः = खेदः।

पुनर् + रमते = पुना रमते
हरिर् + रम्यः = हरी रम्यः

शम्भुर् + राजते = शम्भू राजते
अन्तर् + धानम् = अन्तर्धानम्

(७४) (एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि) एतः और एषः के विसर्ग का लोप होता है, बाद में कोई व्यंजन हो तो। (एकः एकः अस्मः, अनेपः के विसर्ग का लोप नहीं होगा।)(सूचना—एतः, एषः के बाद अ होगा तो सन्धिनियम ६८ से 'ओऽ' होगा। अन्य स्वर बाद में होंगे तो सन्धिनियम ६८ और ७ से विसर्ग का लोप होगा)।

(१) एतः + पठति = एत पठति
एषः + विष्णुः = एष विष्णुः

(२) एतः + अयम् = एतोऽयम्
एतः + इच्छति = एत इच्छति

(७५) (लोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्) एतः के विसर्ग का लोप हो जाता है, यदि बाद में स्वर हो और लोप करने से श्लोक के पाद की पूर्ति हो। एतः + एषः = एत एषः रामः।

(७) पत्रादि-लेखन-प्रकार

आवश्यक-निर्देश

पत्रों के लेखन में निम्नलिखित बातों का अवश्य ध्यान रक्खें :—

(१) पत्र-लेखन बहुत सरल और स्पष्ट भाषा में होना चाहिए। इसमें प्रायः वर्तमान रूप में व्यवहृत भाषा का ही रूप अपनाया जाता है, जिससे पत्र का भाव सरलता से हृदयंगम हो सके।

(२) पत्रों में अनावश्यक विशेषणों का परित्याग करना चाहिए। पाण्डित्य प्रदर्शन का प्रयत्न पत्र में अनुचित है, यह निबन्ध आदि में कुछ अंश तक चित्त-सम्मत है।

(३) जिस उद्देश से पत्र लिखा गया है, उसका स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए।

(४) पत्र यथातथ्य संक्षिप्त होना चाहिए। उसमें आवश्यक बातों का ही उल्लेख करना चाहिए। अनावश्यक बातों का उल्लेख और विस्तार उचित नहीं है।

(५) व्यवहारतया पत्रों को ४ श्रेणी में बाँट सकते हैं। वदनुसार ही उनका लेखन होता है। (क) अतिपरिचित व्यक्तियों को। (ख) सामान्य-परिचित व्यक्तियों को। (ग) अपरिचित व्यक्तियों को। (घ) केवल व्यावहारिक पत्र।

(क) (१) पिता, पुत्र माता मित्र, पत्नी पति आदि के लिए ऐसे पत्र होते हैं। इसमें प्रारम्भ में ऊपर दाहिनी ओर स्व-स्थान-नाम तथा तिथि या दिनांक देना चाहिए। (२) उससे नीचे सम्बोधनपूर्वक अपने से बड़ों को प्रणाम, नमस्कार नमस्ते आदि लिखें। समान आयुवालों को नमस्ते छोटों को स्वस्ति आशीर्वाद आदि। (३) पत्र के अन्त में बड़ों के लिए 'आज्ञाकांक्षी' 'चरणसेवक' आदि, समान आयुवालों को 'भवदीय', 'भावदीय' आदि, छोटों को 'शुभाकांक्षी' शुभचिन्तक आदि लिखना चाहिए। (४) पत्र का पता लिखने में पहली पंक्ति में व्यक्ति का नाम लिखना चाहिए। उसके नीचे उपाधि आदि। दूसरी पंक्ति में ग्राम-नाम मुहल्ला या सड़क आदि का नाम। तीसरी पंक्ति में पोस्ट आफिस (डाकखाना) का नाम। चौथी पंक्ति में जिले का नाम। यदि दूसरे प्रान्त या देश के लिए हो तो अन्त में प्रान्त या देश का नाम लिखें।

(ख) सामान्य-परिचित में सम्बोधन में व्यक्ति का नाम-निर्देश करें। शेष पूर्ववत्।

(ग) अपरिचितों को सम्बोधन में 'श्रीमन्' 'महोदय' आदि लिखें। अन्त में 'भवदीय' या 'भावदीय'। शेष पूर्ववत्। इसमें काम की बात ही सुसंस्कृत से लिखें।

(घ) केवल व्यावहारिक पत्रों में—(१) प्रारम्भ में अधिकारी, व्यक्ति या कम्पनी आदि का नाम एवं कार्यालय-सम्बन्धी पता लिखें। (२) तदनन्तर सम्बोधन में 'श्रीमन्' या 'महोदय'। (३) प्रणाम, नमस्ते आदि न लिखें। (४) अन्त में 'भवदीय'। (५) केवल कार्य-सम्बन्धी बात लिखें। पारिवारिक या वैयक्तिक नहीं।

(१) पितरं पत्रम्

प्रयाग-विश्वविद्यालयतः
दिनाङ्कः—आश्विन-शुक्ला १, २ १९ वि

भीमतां माननीयस्य पितृचरणस्य चरणारविन्दयोः । सादरं प्रणतिस्तवः ।

अत्र सं तत्रास्तु । समधिगतं मया भवदीयं कृपापत्रम् । अवगतं च विस्तरेण वृत्तम् । अद्यत्वेऽप्यवनकर्मण्येव निरतां स्वापृतोऽस्मि । एम ए संस्कृतविषये प्रवेशमाप्तावितरां मुदमावहे । वेदानां गुणगरिमा उपनिषदां हृदयाकर्षकत्वम् कालिदासादि महाकवीनां कमनीयम्, भारतीपर्यालोचनेः साधिष्ठवा आधुनिकानस्य वैज्ञानिकी तत्त्वमिमनोज्ञता च स्वान्तं मे प्रतिपलं प्रलोभयति । आशासे कृतभूरिपरिश्रमः सन्न एव क्रमेष्वपि विषयेषु साधिष्ठमासादयिष्यामि । मान्यायां मातुश्चरणयोः प्रणतिराख्या ।

भवदाज्ञाकारी सुतः—रमेशचन्द्रः

(२) सुहृदे पत्रम्

नैनीताक्षेत्रतः
दिनाङ्कः २१।६ ईस्वीयः

प्रियमित्र श्यामसुन्दर यादव ! सस्नेहं नमस्ते ।

अत्र कुशलं तत्रास्तु । भवत्प्रेमपत्रं प्राप्य मानसं मेऽतीव मोदमावहति । परिवारे सर्वेषामपि कुशलत्वामवगत्य हृष्टोऽस्मि । ऐगमस्तने संवत्सरे ग्रीष्मर्तौ उपरिवारं नैनीताक्षेत्रं गमनाय मतिर्विचेया । नगराभेतत् प्राकृतिकसुषमायाः सर्वस्वम् पर्वतमालापरिवृतम्, शीतलस्वच्छोदसंपूरितसरसं सनाथम् वनस्थलीकलितालिकम् इतिमाकृत्रिमामलोपकरणसंकुलम् सततप्रीतजनसंचारगतिमनोहरं रमणीयं च । आशासेऽत्रागमनेनानुग्रहीष्यन्ति माम् । कुशलमन्यत् । वयोवृद्धेभ्यो नमः, कनिष्ठेभ्यश्च स्नेहः । पत्रोत्तरदानेनानुग्रहोत्तरम् ।

भवद्बन्धुः—सुरेन्द्रनाथो दीक्षितः

(३) भ्रात्रे पत्रम्

गुरुकुल-महाविद्यालय—ज्वालापुरतः
दिनाङ्कः २-८-१ ई

प्रिय बन्धुवर विजयकुमार ! सस्नेहं नमस्ते ।

अत्र सं तत्रास्तु । एतद्वत्तस्य भवान्नूनं हर्षमनुभविष्यति यदहं संवत्सरेऽस्मिन् शास्त्रिपरीक्षामुत्तीर्णः । तत्र च प्रथमां श्रेणिः संप्राप्ता । साम्प्रतमहं संस्कृतविषये एम ए० परीक्षां दित्सामि । आशासे योग्यतावात् तत्रापि साफल्यमाप्स्यामि । सर्वेऽपि गुरवो मयि कृपावन्तः । शिवं शिवाय स्वाः । परिचितेभ्यो नमः ।

भवद्बन्धुः—रामचन्द्रः शर्मा

(४) अध्यक्षाचार्ये प्रार्थनापत्रम्

श्रीमन्त प्रधानाचार्यमहोदयाः,

राजकीय-महाविद्यालयः, नैनीताल ।

मान्यवर !

अहमद्य दिनद्वयाद् धीतम्बरेण पीडितोऽस्मि । ज्वरकृत्तवापेन भृशं कार्श्यमुपगतोऽस्मि । अतो विद्यालयमागन्तुं न क्षमोऽस्मि । कृपया दिवसद्वयस्यावकाशं स्वीकृत्य मामनुगृह्णन्तु भीमन्तः ।

भवतामाज्ञाकारी शिष्य—हरगोविन्दो बोधी

(५) पुस्तकप्रेषणार्थं प्रकाशकाय आदेशः

श्रीप्रकाशकमहोदयाः

विद्याविलास प्रकाशनम् गोरखपुरम् (गोरखपुर)

श्रीमन्तः,

इदानीमनुपागतं मे भवत्प्रकाशितं "प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी" नामकं पुस्तकम् । ग्रन्थस्यास्योपयोगितां समीक्ष्य नितरां हृष्टहृदयोऽस्मि । कृपया पुस्तकपञ्चकम् अधोनिर्दिष्टस्थाने वी पी पी० द्वारा शीघ्रं प्रेषयितुमनुग्रहीतव्यम् ।

दिनाङ्कः—१ -७-६ ई

भवदीय —मुरेन्द्रनाथ-दीक्षितो व्याकरणाचार्यः, एम ए ,

हिन्दी-प्राध्यापकः एल एल कालेजः, मुजफ्फरपुरम् ।

(६) निमन्त्रणपत्रम्

श्रीमन्महोदय !

एतद् विज्ञाय नूनं भवन्तो इयमनुग्रहिष्यन्ति यत् पोषस्य महत्याऽनुकम्पया मम कन्यायाः शुभिविवाहोत्सवः शुभमुहूर्तेऽस्मिन्नस्मिन्मासे भारतवर्षीय-वास्तव्यस्य श्रीमतो रामचन्द्रप्रसादगुप्तस्य ज्येष्ठपुत्रेण एम ए इत्युपाधिविभूषितेन श्रीमुरेन्द्रप्रसादगुप्तेन सह दिनाङ्के १३ १ ६ इतीये रात्रौ दशवादने सम्पत्स्यते । सर्वेऽपि भवन्तः सादरं सविनयं च प्रार्थ्यन्ते यत् सपरिवारं निर्दिष्टसमये समागत्य वरवधूयुगलं स्वाशीर्वादप्रदानेनानुग्रहीतवन्तमकुर्वन्तु ।

६ ६ मुट्ठीगंजः, भवदीयनामिकायी—

प्रयागः धेनुनाथप्रसादगुप्तः

दिनाङ्कः—५ ११ ६

(स्वीकृति-सूचनपत्रानुग्रहः)

(७) परिषदः सूचनम्

श्रीमन्तो मान्याः,

सविनयमेवद् निवेदयते यद् आम्याकोनाया महाविद्याल्यीयपर्यवेक्षकपरिषदः साप्ताहिकमधिवेशनम् आगामिनि शुक्रवासरे (दिनांकः—२९-७-९० ई०) सायंकाले चतुर्वादने महाविद्याल्यस्य महाकक्षे भविष्यति। सर्वेषामपि विद्यार्थिनामुपाध्यायानां चोपस्थितिः सादरं सविनयं प्रार्थ्यते।

दिनांकः—१८-७-९ ई

निवेदिका—

(कु) माया त्रिपाठी (मन्त्रिणी)

(८) प्रस्तावस्य अनुमोदनम्, समर्थनं च।

(१) (क) आदरणीयाः सभासदः, तथा विद्यार्थिबान्धवाश्च!

सोमाम्बरेतरस्याः पदस्य (कनपुरतः बी ए वी कॉलेज-संस्थायाः सेवृत्त विभागाध्यक्षवर्यः श्रीमन्तो हरिदत्तशास्त्रिणः, नवतीर्थाः, व्याकरणवेदान्ताचार्यः, एम ए, पी-एच डी० आदि—विविधोपाधिविभूषिताः) अत्र समागताः सन्ति। अतः प्रस्तौमि यत् श्रीमन्तो मान्या विद्वद्वरेण्या आचार्यवर्या अत्रत्याः सभायाः सभापतित्वं स्वीकुर्वन्तु मनुगृह्णन्तीति। अवसरे एतेषां सभापतित्वे सर्वेऽपि कार्यकलापं सुचारुतया समाप्स्यते इति। आशासे अन्येऽपि सभासदः प्रस्तावस्य स्वानुमोदनं समर्थनं च करिष्यन्ति।

(२) (क) मान्याः सभासदः!

अस्मेतरस्याः सभायाः मन्त्रिवरायै (सभापतिपदाय, उपसभापतिपदाय, कोषाध्यक्षपदाय) श्रीमत्यै " नाम प्रस्तावयामि।

(ख) अहं प्रस्तावस्यास्य हृदयेनानुमोदनं करोमि।

(ग) अहं प्रस्तावस्यास्य हार्दिकं समर्थनं करोमि।

(९) पुरस्कार-वितरणम्

श्रीकुमाय " (एमबद्धवर्गाय) (एम ए) कक्षायाः (द्वितीय)" वर्षस्थाय (स्नातकान-प्रतियोगिताया वर्षप्रथमस्थानप्राप्तये) निमित्तं " (प्रथम) पारितोषिकमिदं प्रदीयते।

मन्त्री

सभासंचालकः (सभाध्यक्षः, प्रधानः)

(१०) जयन्ती-समारोहः

एतत् संसूचयता मया भूयान् महदौत्सुक्यमनुभूयते यदागामिनि शुक्रवासरे गुरुपूर्णिमा रिक्षे (आषाढ पूर्णिमा वि० २ १७) दिनाङ्के ८-७-६ इस्वीये महाविद्यालयस्य महाकक्षे अपराह्णे चतुर्वादने व्यास-जयन्ती-समारोहः संयोजयिष्यते। समेषामपि संस्कृत ज्ञानां संस्कृतप्रेमिणां च समुपस्थितिः प्रार्थ्यते। आशासे यत् सर्वैरपि यथासमयं समागत्य महाकवये श्रीमते व्यासाय श्रद्धाञ्जलिं समर्प्य, तद्गुणग्रामं समाकर्ण्य, तद्विरचितानि इमानि पद्यानि निशम्य, गुरुमाहात्म्यविभूषितां तदीयामाध्यात्मिकवियां च आत्मं आत्मं स्वान्तःसुखमनुभविष्यत इति।

दिनाङ्क ६-७-६ ई॰ (ह०) रमेश-कोचर
समा-संयोजिका

(११) दर्शनार्थं समय-याचना

श्रीमत्यो मुख्यमन्त्रिमहोदयाः वा सम्पूर्णानन्दमहाभागाः,
उत्तर प्रदेशः, लक्ष्मणपुरम् (लखनऊ)

श्रीमन्तः परमसंमाननीयाः,

अहं कालिदास-जयन्ती-समारोहविषयमाश्रित्यात्रभवद्भिः सह किञ्चिदालपितुं कामोऽस्मि। आशासे भवन्तो दशकक्षामात्रसमयप्रदानेन मामनुग्रहीष्यन्ति। भवद्भिर्दत्ते समये भवतां सन्निधे समागत्य भवद्दर्शनेन भवदरणमर्शेन चात्मानं कृतकृत्यं मंस्ये।

दिनाङ्क ६-७-६ ई॰ भवद्दर्शनाभिलाषी—
प्रेमनाथः

(१२) व्याख्यानम्

श्रीमन्तः परमसंमाननीयाः परिषत्सदस्याः ! आदरणीयाः समागताश्च !

अद्याहं भवतां समक्षे (विद्या अहिंसा देश-सेवा समाज-सुधार) विषयमधृत्य किञ्चिद् वक्तुकामोऽस्मि। संस्कृतभाषामाधृत्यस्थानस्थातस्थाद् न संभाव्यते साधी यस्या स्वभाषाभिमतया स्मरितुम्। पदे पदे स्खलनमपि च संभाव्यते। 'सर्वेऽत्र स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः। हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः'। अतः प्रमाद प्रभृतादुदयो मे भवद्भिः सन्तरणाः परिमर्जनीयाश्च। '(तदनन्तरं व्याख्यानस्य प्रारम्भः)।

(८) निबन्ध-माला

आवश्यक-निर्देश

(१) किसी विषय पर अपने विचारों और भावों को सुन्दर, सुगठित, सुबोध एवं क्रमबद्ध भाषा में लिखने को निबन्ध कहते हैं। निबन्ध के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है —१ निबन्ध की सामग्री। २ निबन्ध की शैली।

निबन्ध की सामग्री एकत्र करने के ३ साधन हैं:—१ निरीक्षण अर्थात् प्रकृति को स्वयं देखना और ज्ञान एकत्र करना। २. अध्ययन अर्थात् पुस्तकों आदि से उस विषय का ज्ञान प्राप्त करना। ३. मनन अर्थात् स्वयं उस विषय पर विचार या चिन्तन करना।

(२) निबन्ध-लेखन में इन बातों का उचित ध्यान रक्खें—(क) प्रस्तावना या आरम्भ—आरम्भ में विषय का निर्देश, उसका महत्त्व आदि रक्खें। (ख) विवेचन—बीच में विषय का विस्तृत विवेचन करें। उस वस्तु के लाभ, हानि, गुण, अवगुण, उपयोगिता, अनुपयोगिता आदि का विस्तृत विचार करें। अपने कथन की पुष्टि में सूक्ति, पद्य या श्लोक उदाहरणरूप में दे सकते हैं। (ग) उपसंहार—अन्त में अपने कथन का सारांश संक्षेप में दें। प्रस्तावना और उपसंहार एक या दो सन्दर्भ (पैराग्राफ) में ही हों। अधिक ध्यान विवेचन में दें।

(३) निबन्ध की शैली के विषय में इन बातों का ध्यान रक्खें —१ भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हो। २ भाषा प्रारम्भ से अन्त तक एक-सी हो। ३ भाषा में प्रवाह हो। स्वाभाविकता हो। ४ उपयुक्त और सर्वविदित शब्दों का प्रयोग करें। ५. भाषा सरल, सरस, सुबोध और आकर्षक हो। ६ लोकोक्ति और अलंकारों को भी स्थान दें। ७ अनावश्यक विस्तार, पुनरुक्ति, अधिक पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा क्लिष्टता का त्याग करें।

(४) निबन्ध के मुख्यतया तीन भेद हैं :—

(क) वर्णनात्मक निबन्ध—इसमें पशु, पक्षी, नदी ग्राम, नगर, पर्वत, समुद्र, ऋतु-वर्णन वाद्य, पर्व, रेल, तार, विमान आदि का स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन होता है।

(ख) विवरणात्मक निबन्ध—इनमें ऐतिह्य घटनाओं, पुराने प्राचीन कथाओं, ऐतिहासिक वर्णनों, जीवन-चरितों आदि का संग्रह होता है।

(ग) विचारात्मक निबन्ध—इनमें आध्यात्मिक मनोविज्ञान-सम्बन्धी सामाजिक, राजनीतिक तथा अमूर्त विषयों जिज्ञासा क्रोध अहिंसा, सत्य, परोपकार आदि का संग्रह होता है। इन निबन्धों में इन विषयों के गुण, दोष, लाभ, हानि आदि का विचार होता है।

उदाहरण के लिए २० निबन्ध अतिरिक्त विषयों पर प्रौढ संस्कृत में दिए हैं।

१ वेदानां महत्त्वम्

ज्ञानार्थकाद् विद्धातोरपि वेद इति रूपं निष्पद्यते। सत्तार्थकाद् विचारणार्थकात् प्राप्त्यर्थकाद् विद् धातोरपि रूपमेतद् निष्पद्यते। ज्ञानग्रन्थिर्वेद इति मुखरं वक्तुम्। किं वेदस्य वेदत्वम्? कति वेदाः? किं तेषां महत्त्वम्? किं तत्र विहितं ज्ञानमित्यादयो बहवोऽनुयोगाः पुरतोऽवतिष्ठन्ते। एतदेवात्र समासतः उपस्थाप्यते। वेदा हि विविध अनविज्ञानराशयः, संस्कृतेराधारस्थाः, कर्तव्याकर्तव्यावबोधकाः, शुभाशुभनिदर्शकाः, सत्पथापा सरणयः, जीवनस्रोतावहाः, विश्वहितसम्पादकाः, आचारसंचारकाः, सुखशान्तिप्रदायकाः, ज्ञानालोकप्रसारकाः, कर्त्तव्यकर्मप्रेरकाः नैराश्यनाशकाः, आशायाः आगमयाः, चतुर्वर्गावाप्तिसोपानस्वरूपाश्च। चतुष्टयी वेदानाम् कम्पसूत्रामार्ग्वमेदेन।

वेदानां महत्त्वं, तत्र प्रतिपादितं विधिं ज्ञानं च समासतोऽत्रोपस्थाप्यते। विवृतिस्तु तस्य स्वयमेवाम्नूया। (१) भाषायाः प्राचीनतमत्वम्—विश्ववाङ्मये प्राचीनतमा अन्या वेदा इत्यत्र न कस्यापि विप्रतिपत्तिः। वैदिकसाहित्यस्य प्राचीनतमं रूपमत्रोपलभ्यते। भाषाविज्ञानदृष्ट्या वेदानामतीव महत्त्वम्। वैदिकलौकिक संस्कृतयोस्तुलनया गुरुनानकभाषाधारस्य अनिरमूत्। भाषा कथं परिवर्तते प्रजायते, प्रलयति चेत्यादिप्रमाणमुपलभ्यते। (२) प्रथमा संस्कृतिः—प्राचीनतमायाः संस्कृतेः स्वरूपमिहोपलभ्यते। काऽऽसीच्चेदा समाजदशा? कासीत् जनानामार्यिकी धार्मिकी राजनीतिकी सामाजिकी च स्थितिः? कीदृशमासीत्तेषां जीवनम्? किं क्रियाकलापमन्वतिष्ठन् जना इति सर्वं वेदाध्ययनेन वेषु पर्यते। वैदिकी संस्कृतिः प्रथमा संस्कृतिरासीत् (मनु ७-१४)। धार्मिकक्षेत्रेषु यज्ञस्य विशिष्टं महत्त्वमासीत् (मनु १ १, १-२ १ १, अथर्व ७ १७ १९ १)। ऋतस्य सत्यस्य च विश्लेषणम्, ऋतं च सत्यं वा (ऋग् १०-१९ १)। ऋत्वमेधपाजसेयसौत्रामण्यादियागानां वर्णनम्। यमायज्ञयोर्विवेचनम्, इष्ट्वा रूपे व्याकरोत् (मनु० १९-७७)। (३) समाजचित्रणम्—प्राचीन समाजस्य वास्तविकं चित्रणं वेदेष्वेवोपलभ्यते। यथा—ब्रह्मचर्यादिवर्णने तत्कालव्यवस्थानं च। अथर्ववेदेऽध्ययनसूक्तेषु पञ्चविधपर्व विवरणमुपलभ्यते। ब्रह्मचर्यम्(अ ११-५), मेधा (अ १९ ४), वाक् (अ ७-४१), वेदमाता (अ १९-७१), अतिथिसत्कारः (अ ९ ६) आयाहामना (अ ९-८१) दम्पतिसुप्रजावना (अ ६-७८) गार्हपत्य निर्माणम् (अ ७-६ ९ १) विवाहः (अ १४ १-२), व्रात्यवर्णनम् (अ १५ १-८)। सूर्याविवाहः (ऋग १ ८५-६ १६), मुखबोधसूक्तवर्णनम् (ऋग् १ २८ ५ ८)। यजुर्वेदस्य विशेषाभ्यासे विविधानां व्यक्तीनां व्यवसायानां च विस्तरशो वर्णनमाप्यते। (मनु० १ ५ २२)। (४) अध्यात्मवर्णनम्—आत्मस्वरूपादिविचारोऽत्र प्राप्यते। तद्यथा—अध्यात्मम् (अथर्व ११-८, ११ १ १), आत्मा (अ ५ १, ७-१ १०-५१), आत्मविद्या (अ ४ १), ब्रह्म (अ ७-५६), ब्रह्मविद्या (अ ४ १, ५-६), विराट् (अ ८ १ १)। (५) दार्शनिक-विचाराः—तत्त्वज्ञानमीमांसा मात्रित्य विषयविवेचनम्। तद्यथा—सदुत्पत्तिः (ऋग् १ १२९ ११), कर्म-मीमांसा (अ ११ ५१ ५४, ऋग् १ १६४ ४८), अमावस्या (अ ७-७१) पूर्णिमा (अ ७-८), रात्रिः (अ १९ ४७) अद्वैतवेदान्तप्रतिपादितो मायां 'ब्रह्म'

इति (यजु० २-२८,४० १०), वाग्ब्रह्मवर्धनम् (ऋग् १० १२५ १-८), अन्ना(ऋग्० १० १५१ १५)। (६) राजनीतिः—राज्ञो वरणं तत्कर्तव्यादिकं चात्र वर्ण्यते। राष्ट्रम् (यजु ९ २१, १० २४), प्रजातन्त्रराज्यम्, महते क्षत्राय० (यजु० ९ ४), साम्राज्यम् (यजु १०-२७), राष्ट्रम् (अथर्व १९-२४), राष्ट्रसभा (अ ७-१२), राज्ञ राजकृतत्व (अ ३-५), राज्ञो वरणम् (अ ३ ८७), राज्याभिषेक (अ ४-८), प्रजाः (अ ७-१९), राष्ट्ररक्षा (अ २ १६ १९ १७), विशवः (अ ७-५०, १०-५), धनुर्वेदानाख्यानम् (अ ७-९), तक्षकनाशनम् (ऋग् १० १६९ १—५), सेनानिरीक्षणम् (अ० ४ १२) सेनाऽवलोकनम् (अ० ४ १२), आसुरी माया (यजु ११-६०, २३-४४), इक्षाग्नयोगः (यजु ५ २१, २५)। (७) विविधविद्यानिधानत्वम्—(क) आयुर्वेदः—आयुर्वर्धनम् (अ १९-६१), कुष्ठौषधिः (अ० ६ ९५), वाजीकरणम् (अ ४ ४), विषनाशनम् (अ ४-७), अग्निचिकित्सा (अ० ६-५७, यजु० ६ १२, ९-१, ११ १८), ज्वरनाशनम् (अ १-२५, ७-११६), यक्ष्मनाशनम् (अ १ १२, १-७)। (ख) कामशास्त्रम्—कामः (अ० ९-२ १९-५९), रतिः (ऋग् १ १७९ १-६)। (ग) गणितविज्ञानम्—संख्याः (यजु १७-२, १८ २४ १५)। (घ) मनोविज्ञानम् (यजु ३४ १-६)। (ङ) निर्वचनशास्त्रम्—पूषा इनति पूषणा (यजु ११ ९६)। (८) कलातत्त्वम्—सामवेदो गीतात्मकः संगीतस्य च अत्र पूर्वमं प्राप्यते। उद्गात्रादिस्वरूपं वेदेषु संगीतमेव द्योतयति। 'वृत्राय वज्रं गीत्यव शैवृधं (यजु १०-६), महते वीणावादं 'पाणिघ्नं तूणवघ्नं' तलवम् (यजु० १ २) इत्यादिभ्यो वाद्यगीतगाद्यादीनां प्रचारो द्योतते। शिल्पवर्धनम्(यजु०४ ९)। (९) आर्थिकी स्थिति—कौटुम्बीयेष्वेकानामार्थिकी स्थितिरित्यपि प्राप्यते। आदान-प्रदानस्य महत्त्वम्, देहि मे ददामि ते० (यजु० १-५), अन्नम्(अ १-७१, ७-५८), अन्नसमृद्धिः (अ० ६-१४१), धान्यः (अ ७-१७), कृषिः (अ १-१७; ऋग्०४-५७ १-८), (यजु ४ १०, १२-६८ ७१) वाणिज्यम् (अ० १-१५) पशवः (अ० २ १४), क्षत्रम् (अ ९ ४), यौः (ऋग् ६ २८ १-३, अ ६ ११), मृत्यवाणि (यजु० ११-५१)। (१०) नाट्यशास्त्रम्—नाट्यशास्त्रस्य मूलं स्थाद ऋग्वेदे मौलं सामवेदेऽभिनयो यजुर्वेदे रस अथर्ववेदे च प्राप्यते। ऋग्वेदे संवादसूक्तानि यथा—यमयमीसूक्तम् (ऋ० १० १), पुरूरवउर्वशीसंवाद (ऋ १०-९५), सरमा-पणि-संवाद (ऋ० १०-१०८)। (११) ऐतिह्यैतिह्यस्य सामग्री—नद्य—नदीनामानि (ऋ १-३२, १०-७५), समुद्रम् (ऋ० १०-१४), द्यावापृथिवी (ऋ० १०-७६, १०-९४), पशु-पक्षि-नामानि (यजु १४ २ ४), व्रतिनामानि (यजु० १० ५-२५)। (१२) छन्दःशास्त्रम्—वेदेष्वनेकेऽनुष्टुभादयः छन्दोवर्णने च प्राप्यते। तत्रापि—अनुष्टुप्(ऋ १० १४५. १, १० १५१-५)। उष्णिक् (ऋ १ १ ३ १,१ १८ २; अथर्व० १ १ ३, १ ३ ७-५, १ १४ १, १-२४-४, २ ५९ १-२, २ ९२ ९), छन्दोनामानि (यजु १२७ १४ ५, १० १८), पर्णवाचिन—रथ गोनामानि (यजु० ८-४३), अश्वपर्यायाः (यजु० २२ २९)। एवं यावते पद् वेदेषु प्राचीनस्थितिपरिज्ञानाय सर्वमावश्यकं वस्तु प्राप्यते। ऐतिह्यादिरूपा वेदानां महत्त्वं सर्वातिशायि भवति।

२. वेदाङ्गानि, तेषां वेदार्थबोधोपयोगिता

वेदार्थावबोधाय तत्स्वरावबोधाय तद्विनियोगज्ञानाय चादौ महर्षिभिरुपकृता वैयाकरणसम्प्रदायानाम्। एतदभावपूर्वमेव अनिरूपवद् वेदाङ्गानाम्। पठ्यन्ते वेदाङ्गानि। १ शिक्षा, २ व्याकरणम्, ३ छन्दः, ४ निरुक्तम्, ५ ज्योतिषम्, ६ कल्पः। तथा चोच्यते—"शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः। ज्योतिषामयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु"। षडिमान्यङ्गानि वेदार्थबोधादिविधौ उपकुर्वन्तीति निरूप्यतेऽत्र। पञ्चानामेतेषां महत्त्वं निरीक्ष्यैव प्रतिपद्यते पाणिनीयशिक्षायाम् —"छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥ शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते"॥ (श्लो ४१ ४२)।

वेदाङ्गानामेतेषां विवरणं तेषां वेदार्थबोधोपयोगिता च तमाक्रोऽत्र प्रस्तूयते। (१) शिक्षा—शिक्षाग्रन्था वर्णोच्चारणविधिं विशेषतो वर्णयन्ति। कथं वर्णा उच्चारणीयाः, किं तेषां स्थानम्, कथं तत्र यत्नः कण्ठ्यौष्ठ्यादीनामुच्चारणे किं महत्त्वम्, कति वर्णाः, कथं कालभास्ता वर्णसंज्ञेन विपरिणमन्ते कति स्थानानि, कति स्वराः, कथं च ते प्रयोज्या इत्यादयो विषयाः शिक्षाग्रन्थेषु विविच्यन्ते। वर्णोच्चारणादिविधिज्ञानमन्तरेण न खलु वेदानां विशुद्धः पाठोऽधिगमरक्षेति शिक्षाग्रन्थानां विशिष्टं महत्त्वम्। साम्प्रतं कैश्चन शिक्षाग्रन्था उपलभ्यन्ते। तेषां तत्तद्वेदैश्चिद् विशिष्टेन वेदेन वर्तते। तद्यथा—ऋग्वेदादे पाणिनीयशिक्षा, शुक्लयजुर्वेदस्य याज्ञवल्क्यशिक्षा, कृष्णयजुर्वेदस्य व्यासशिक्षा, सामवेदस्य नारदशिक्षा, अथर्ववेदस्य च माण्डूकीशिक्षा। ऋग्वेदेऽपि कैश्चन शिक्षाग्रन्थाः सन्ति। यथा—भरद्वाजशिक्षा, वसिष्ठशिक्षादयः। (२) व्याकरणम्—व्याकरणे प्रकृति-प्रत्ययस्य विचारः, उदात्तादिस्वरविचारः, उदात्तादिस्वरसंचारनियमाः, सन्धि-नियमाः, शब्दस्वरूपनिष्पादिनियमनियमाः, प्रकृतेः प्रत्ययस्य च स्वरूपावधारणं तदर्थनिर्धारणं चेति विविधा विषया विविच्यन्ते। वेदेषु प्रकृति-प्रत्ययविचारस्य स्वरस्य च महन्महार्थमिति तत्र व्याकरणमेव साङ्गत्वमनुतिष्ठतीति पक्षेषु व्याकरणमेव प्रधानम्। अतस्तद्व्याकरणं प्रातिशाख्यमूलकमेव। वेदानां प्रातिशाख्यानामाधित्य व्याकरणग्रन्था आसन्, ते च प्रातिशाख्यग्रन्था इति पण्डिताः। कैश्चन एव प्रातिशाख्यग्रन्थाः साम्प्रतमुपलभ्यन्ते। ते क्रमशः वेदमाश्रित्य वर्तन्ते। तद्यथा—ऋग्वेदस्य शाकल्यप्रणीतः शौनकप्रणीतश्च ऋक्प्रातिशाख्यम्। अत्रैव पार्षदसूत्रमित्यप्यभिधीयते। शुक्लयजुर्वेदस्य याज्ञवल्क्य-प्रणीतायाः कात्यायनविरचितं शुक्लयजुःप्रातिशाख्यम्। कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीय-शाखायाः तैत्तिरीयप्रातिशाख्यम्। सामवेदस्य सामप्रातिशाख्यं (पुष्पसूत्रं वा), पञ्च विधसूत्रं च। अथर्ववेदस्य अथर्वप्रातिशाख्यं (चातुरध्यायिकं वा)। [illegible]

बोधायन च पार्श्वनेरद्याप्यायी चर्चाप्रमुखा। अन्ये प्राचीना आकरग्रन्था इतरशाखा एव। (३) छन्दः—वेदेषु मन्त्रा प्रायशश्छन्दोबद्धा एव। अतो वृत्तज्ञानाय छन्दःशास्त्रं निधार्यम्। छन्दःशास्त्रविषयको मुख्यो ग्रन्थः पिंगलप्रणीतं छन्दःसूत्रमेवोपलभ्यते। प्रातिशाख्यग्रन्थेष्वपि वृत्तविचारः प्राप्यते। (४) निरुक्तम्—निरुक्ते निघण्टुवैदिकशब्दानां निर्वचनं प्राप्यते। विषयेऽस्मिन् यास्कप्रणीतं निरुक्तमेव प्रमुखो ग्रन्थः। अत्र मन्त्राणां निर्वचनसूत्राणां व्याख्यानां प्रथमः प्रपाठ उपलभ्यते। वैदिकशब्दानां संग्रहात्मको ग्रन्थो निघण्टुरिति कथ्यते। तस्यैव व्याख्यानभूतं निरुक्तमेतत्। यास्को निरुक्ते स्वपूर्ववर्तिनः शाकपूणि निरुक्तकारान् परिगणयति। निरुक्ते काण्डत्रयं नैघण्टुककाण्डं नैगमकाण्डं दैवतकाण्डं चेति। (५) ज्यौतिषम्—यज्ञं मुहूर्तमाश्रित्यैव विधिविधानेष्वधिकारः प्राप्यतेऽतो यज्ञमुहूर्तज्ञानाय ज्यौतिषस्योदयोऽभूत्। अत्र सूर्यचन्द्रमसोर्ग्रहाणां नक्षत्राणां च गतिर्निरूप्यते परीक्ष्यते विधिध्यते च। सौरमासश्चान्द्रमासश्चोभयं परिगण्यतेऽत्र। अतस्तुहूर्तनिर्धारणे चान्द्रमासस्य प्रधानत्वं परिलक्ष्यते। विषयेऽस्मिन् आचार्यलगधप्रणीतं 'वेदाङ्गज्योतिषम्' इति ग्रन्थ एव समधिकमुपलभ्यते। (६) कल्पः—कल्पसूत्रेषु विविधाध्वराणां संस्कारादीनां च वर्णनं प्राप्यते। मन्त्राणां विविधकर्मसु विनियोगस्तत्र प्रतिपाद्यते। कल्पसूत्राणि चतुरः विभज्यन्ते—(क) श्रौतसूत्रम्, (ख) गृह्यसूत्रम्, (ग) धर्मसूत्रम्, (घ) शुल्बसूत्रं च। (क) श्रौतसूत्रम्—श्रौतसूत्रेषु श्रुतिप्रतिपादितानां सप्त हविर्यज्ञानां सप्त सोमयज्ञानामेषां चतुरध्वयज्ञानां विधानं विधिविनियोगादिकं च प्रतिपाद्यते। तत्र प्रमुखानि श्रौतसूत्राणि सन्ति—आश्वलायनश्रौतसूत्रम् शाखायनश्रौतसूत्रम्, बौधायन, आपस्तम्ब०, कात्यायन, मानव हिरण्यकेशी आत्रेयायन, द्राह्यायण, वैखान श्रौतसूत्रं च। श्रौतसूत्रान्यपीमानि कल्पत्वेन वेदव्याख्यित्व वर्तन्ते। (ख) गृह्यसूत्रम्—गृह्यसूत्रेषु गौरवसंस्काराणां पञ्चमहायज्ञानां सप्तपाकयज्ञानामन्येषां च गृह्यकर्मणां विधिवैधं वर्णनमाप्यते। गृह्यसूत्राण्यपि कल्पत्वेन वेदव्याख्यित्व वर्तन्ते। तत्र प्रमुखानि सन्ति—आश्वलायनगृह्यसूत्रम् पारस्कर०, शाखायन, बौधायन आपस्तम्ब०, मानव, हिरण्यकेशी० भारद्वाज, वाराह०, काठक, वैखानस मौनिक, द्राह्यायण, वैजवापीय०, खादिरगृह्यसूत्रं च। (ग) धर्मसूत्रम्—धर्मसूत्रेषु मानवानां कृतस्य नीतिधर्मस्य वैदपरम्परं तुर्याश्रमाणां कर्तव्यादिकमन्यच्च सामाजिकनियमादिकं वर्ण्यते। तत्र प्रमुखा ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनधर्मसूत्रम्, आपस्तम्ब हिरण्यकेशी० वसिष्ठ, मानव, गौतमधर्मसूत्रं च। (घ) शुल्बसूत्रम्—शुल्बसूत्रेषु यज्ञवेद्या मानादिकं वेदीनिर्माणविध्यादिकं च वर्ण्यते। तत्र मुख्या ग्रन्थ सन्ति—बौधायनशुल्बसूत्रम्, आपस्तम्ब, कात्यायन०, मानवशुल्बसूत्रं च। एवं पञ्चमानि वेदाङ्गानि वेदार्थबोधे सक्रियाकलापबन्धने बोध कुशलानि सन्ति।

२ सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

कस्य न विदितं विपश्चितो भगवद्गीतायाः गुणगौरवम् । गीतेयं न केवलं प्रस्थानत्रयीति प्रसिद्धमुपनिषदां सारभागम्, अपि तु भुक्तिसारमपि प्रस्तौतितराम् । सांख्ययोगदर्शनयोः सिद्धान्तानां वेदार्थेन विवेचनात् प्रतिपादनाच्च दर्शनसारसंग्रहोऽप्यत्रोपकम्यते । वेदान्त दर्शनप्रतिपादितस्य तत्त्वमसीति महावाक्यस्याप्यत्रोपकम्भात् वेदान्तावगाहितमप्यस्य कथ्यते । सेयं सरलया भावाभिव्यक्तिभङ्गिमया, मधिष्ठयाऽनगारसया प्रेढया पद्धत्या, श्रेढया विदुषितरम्या साधिद्रया योगसाधनादीक्षया चरिष्णयाऽऽध्यात्मविद्याविधिसिद्धया सर्वस्यापि लोकस्यादरणीयमनुभवति । एतदेवात्र समासेन दर्शयाप्यते विविच्यते च ।

(१) निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं महत्या विदुष्या समुपकम्यते गीतायाम् । तद्यथा—कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन । (गीता २ ४७) । विद्यासक्ति फलप्रेप्सामनादाय कर्माणि प्रवर्तितव्यम् । निष्कामकर्मयोगप्रतिपादकाः केचन श्लोका अत्र दिग्मात्रं निर्दिश्यन्ते । योगस्थः कुरु कर्माणि (२ ४८) कर्मयोगेन योगिनाम् (३ ३), न कर्मणामनारम्भात् (३ ४), कार्यते ह्यवशः कर्म (३ ५) यस्त्विन्द्रियाणि मनसा० (३-७) नियतं कुरु कर्म त्वं (३-८) तदर्थं कर्म (३ ९) कर्मजं हि संसिद्धिम् (३ २०), तस्मादसक्तः सततं (३ १९) कर्मैव हि संसिद्धिम् (३ २०), लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् (३ २५), कुरु कर्मैव तस्मात् त्वं (४ १५), कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं (४ १७), कर्मण्यकर्म (४ १८) त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं (४ २०), कर्मयोगो विशिष्यते (५ २) । निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं मूलरूपेण यजुर्वेदे चत्वारिंशत्तमेऽध्याये ईशोपनिषदि च समासाद्यते । तद्यथा—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे (यजु ४०-२, ईश २) ।

(२) गीतायां यज्ञस्य महत्त्वं तत्त्वाकर्तव्यता च निरूप्यते । तद्यथा—सहयज्ञाः प्रजाः (३ १०), देवान् भावयतानेन (३ ११) इष्टान् भोगान् (३ १२), यज्ञशिष्टाशिनः (३ १३), अन्नाद् भवन्ति भूतानि (३ १४, १५), एवं प्रवर्तितं चक्रं (३ १६), दैवमेवापरे यज्ञं (४ २५-३०), द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा (४ २८), यज्ञशिष्टामृतभुजो (४ ३१–३३) । यतिनाऽपि नोज्झितव्यो यागः । यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् (१८-५) । यज्ञस्य महत्त्वं तदुपयोगिता तत्त्वज्ञादिकं च यत्रतत्रो मन्त्रेषु यजुर्वेदे कथ्यते । तद् दिग्मात्रमिह निर्दिश्यते—त्राहि यज्ञं त्राहि यज्ञपतिं (यजु० २ ६), क्षेमायास्मै पुरुषत्रत (यजु १ १-५), देवान् दिवमगान् यज्ञः (यजु ८-६), आपूर्णयज्ञेन कल्पन्तां (यजु ९ २१), यज्ञो नो अग्निरादहतो (१५ १८ ३९) उदयुष्यस्वाग्ने (यजु १५ ५४-५५) अग्नेर्वितोमा० (यजु २१-५८) अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजु २१-६२), तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः (३१ ६ ९), यज्ञेनोऽयजन्त देवाः (३१ १४), यज्ञेन यज्ञमयजन्त (३१ १६)। यज्ञमहत्त्वप्रतिपादकानि मन्त्राण्यन्यानि—(यजु १ २५, ८-३१, ९ १, ११-८, १२ ४४ १७-५१ १७-७१, १८ १९, १९ ११, २१ ११)।

(३) कर्मकाण्डस्य प्रज्ञानापेक्षया गौणत्वं प्रतिपाद्यते गीतायाम् । यामिमां पुष्पितां वाचं० (२ ४२ ४३)। विषयोऽयं विस्तरशो वर्ण्यते मुण्डकोपनिषदि । तद्यथा—[illegible] ब्रह्म वेदे आदौ

बोधायन च पार्थिनेरप्याप्यायी सर्वप्रमुखा। अन्ये प्राचीना व्याकरणग्रन्था लुप्तप्राया एव। (३) छन्दः—वेदेषु मन्त्राः प्रायशश्छन्दोबद्धा एव। अतो वृत्तज्ञानाय छन्दःशास्त्रमनिवार्यम्। छन्दःशास्त्रविषयको मुख्यो ग्रन्थः पिङ्गलप्रणीतं छन्द सूत्रमेवोपलभ्यते। प्रातिशाख्यग्रन्थेष्वपि वृत्तविचारः प्राप्यते। (४) निरुक्तम्—निरुक्तं विश्वस्यैदिकशब्दानां निर्वचनं प्राप्यते। विषयेऽस्मिन् यास्कप्रणीतं निरुक्तमेव प्रमुखो ग्रन्थः। अत्र मन्त्राणां निर्वचनमूलाया व्याख्यायाः प्रथमः प्रयासः समासाद्यते। वैदिकशब्दानां संग्रहात्मको ग्रन्थो निघण्टुरिति कथ्यते। तस्यैव व्याख्यानभूतं निरुक्तमेतत्। यास्को निरुक्ते स्वपूर्ववर्तिनः सप्तदश निरुक्तकारान् परिगणयति। निरुक्ते काण्डत्रयं नैघण्टुककाण्डं नैगमकाण्डं दैवतकाण्डं चेति। (५) ज्यौतिषम्—शुभं मुहूर्तमाश्रित्यैव विधिर्योऽध्वरः प्राक्तदेतीति शुभमुहूर्तार्थकत्वाच्च ज्यौतिषस्योद्भवोऽभूत्। अत्र सूर्यचन्द्रमसोर्ग्रहाणां नक्षत्राणां च गतिर्निरीक्ष्यते परीक्ष्यते विविच्यते च। सौरमासस्चान्द्रमासश्चोभयं परिगण्यतेऽत्र। शुभमुहूर्तनिर्धारणे चान्द्रमासस्य प्रधानत्वं परिलक्ष्यते। विषयेऽस्मिन् आचार्यलगधप्रणीतं 'वेदाङ्गज्योतिषम्' इति ग्रन्थ एव साम्प्रतमुपलभ्यते। (६) कल्पः—कल्पसूत्रेषु विविधाध्वराणां संस्कारादीनां च वर्णनं प्राप्यते। मन्त्राणां विविधकर्मसु विनियोगश्च तत्र प्रतिपाद्यते। कल्पसूत्राणि चतुर्धा विभज्यन्ते—(क) श्रौतसूत्रम्, (ख) गृह्यसूत्रम्, (ग) धर्मसूत्रम्, (घ) शुल्वसूत्रं च। (क) श्रौतसूत्रम्—श्रौतसूत्रेषु श्रुतिप्रतिपादितानां सप्त हविर्यज्ञानां सप्त सोमयज्ञानामेषां चतुर्दशयज्ञानां विधानं विधिर्विनियोगादिकं च प्रतिपाद्यते। तत्र प्रमुखाणि श्रौतसूत्राणि सन्ति—आश्वलायनश्रौतसूत्रम्, शांखायनश्रौतसूत्रम्, बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन, मानव, हिरण्यकेशी, भरद्वाजीय, द्राह्यायण, वैखानश्रौतसूत्रं च। श्रौतसूत्राण्येतानि कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते। (ख) गृह्यसूत्रम्—गृह्यसूत्रेषु षोडशसंस्काराणां पञ्चमहायज्ञानां सप्तपाकयज्ञानामन्येषां च गृहकर्मणां सविस्तरं वर्णनमाप्यते। गृह्यसूत्राण्यपि कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते। तत्र प्रमुखाणि सन्ति—आश्वलायनगृह्यसूत्रम्, पारस्कर, कात्यायन, बौधायन, आपस्तम्ब, मानव, हिरण्यकेशी, भारद्वाज, वाराह, काठक, वैखानस, गौभिल, द्राह्यायण, जैमिनीय, खदिरगृह्यसूत्रं च। (ग) धर्मसूत्रम्—धर्मसूत्रेषु मानवानां कर्तव्यं नीतिर्धर्मो रीतयश्च तुर्वर्णाश्रमाणां कर्तव्यादिकमन्यच्च सामाजिकनियमादिकं वर्ण्यते। तत्र प्रमुखा ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनधर्मसूत्रम्, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वसिष्ठ, मानव, गौतमधर्मसूत्रं च। (घ) शुल्वसूत्रम्—शुल्वसूत्रेषु यज्ञवेद्या मानादिकं वेदीनिर्माणक्रियादिकं च वर्ण्यते। तत्र गुरवो ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनशुल्वसूत्रम्, आपस्तम्ब, कात्यायन, मानवशुल्वसूत्रं च। एवं पञ्चमानि वेदाङ्गानि यज्ञार्थत्वाय तत्क्रियाकलापज्ञानाय चोपयुक्तानि सन्ति।

३ सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

कस्य न विदितं विपश्चितो भगवद्गीताया गुणगौरवम् । गीतेयं न केवलं प्रस्थानत्रयीति रूढासामप्युपनिषदां सारमागम् अपि तु श्रुतिसारमपि प्रस्तौति स्म । सांख्ययोगदर्शनयोः सिद्धान्तानां वैदुष्येन विवेचनात् प्रतिपादनाच्च दर्शनसारसंग्रहोऽप्यत्रोपकल्प्यते । वेदान्त दर्शनप्रतिपादितस्य तत्त्वमसीति महावाक्यस्याप्यत्रोपबृंहणाद् वेदान्तावगाहित्वमप्यस्य कथ्यते । सेयं सरलया भाषाभिव्यक्तिप्रक्रियया, भूयिष्ठपाठ्यंगभीरतया, प्रेढया पदरचनया, भेदया विश्लेषितया साधिष्ठया योगसाधनाबोधया वरिष्ठयाऽऽत्मविशुद्धिशिक्षया सर्वस्यापि लोकस्याद्यतिमनुभवति । एतदेवात्र समाख्ततयाप्यते विविच्यते च ।

(१) निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं महत्या विश्लेषया समुपकल्प्यते गीतायाम् । तद्यथा—कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन । (गीता २ ४७) । विहायासक्तिं फलप्रेप्सामनास्थां च कर्मणि प्रवर्तितव्यम् । निष्कामकर्मयोगप्रतिपादकाः केचन श्लोका अत्र दिङ्मात्रं निर्दिश्यन्ते । योगस्थः कुरु कर्माणि (२ ४८) कर्मयोगेन योगिनाम् (३ ३), न कर्मणामनारम्भात्• (३ ४) कार्यते ह्यवशः कर्म (३ ५) यस्त्विन्द्रियाणि मनसा (३-७), नियतं कुरु कर्म त्वं (३-८), तदर्थं कर्म कौन्तेय (३ ९) कर्मैव हि संसिद्धिम् (३-२) तस्मात् कर्मण्यविद्वांसो (३ २५) कुरु कर्मैव तस्मात् त्वं (४ १५), कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं (४ १७), कर्मण्यकर्म (४ १८), त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं (४ २), कर्मयोगो विशिष्यते (५ २) । निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं मूलरूपेण यजुर्वेदे चत्वारिंशत्तमेऽध्याये ईशोपनिषदि च समासाद्यते । तद्यथा—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे (यजु ४ २, ईश० २) । (२) गीतायां यज्ञस्य महत्त्वं तस्यावश्यकर्तव्यता च निरूप्यते । तद्यथा—सहयज्ञाः प्रजाः (३ १), देवान् भावयतानेन (३ ११) इष्टान् भोगान् (३ १२), यज्ञशिष्टाशिनः (३ १३), अन्नाद् भवन्ति भूतानि (३ १४, १५) एवं प्रवर्तितं चक्रं (३ १६), दैवमेवापरे यज्ञं (४ २५ २७), द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा (४ २८), यज्ञशिष्टामृतभुजो (४ ३१–३३) । यतिनाऽपि नोज्झितव्यो यागः । यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् (१८-५) । यज्ञस्य महत्त्वं समुपयोगिता तत्त्वादिकं च श्रुतयो मन्त्रेषु यजुर्वेदे वर्ण्यते । तद् दिङ्मात्रमिह निर्दिश्यते—पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं (यजु २-३) समिधामि दुवस्यत (यजु ३ १-५), देवान् हविषागन् यजः (यजु ८-३०), आयुर्यज्ञेन कल्पतां (यजु ९ २१) मधो नो अग्निराहुतो (१५ १८ १९) उद्बुध्यस्वाग्ने (यजु १५ ५४-५५), अग्नीतिहोत्रमाः (यजु २१-५८), अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजु २१-६२), तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः (३१ ६ ९), यज्ञस्ताऽस्यासीदाज्यं (३१ १४), यज्ञेन यज्ञमयजन्त (३१ १६)। यज्ञमहत्त्वप्रतिपादकानि मन्त्राण्यन्यानि—(यजु १-२५, ८-३१, ९ १, ११-८, १२ ४४, १७-५२ १७-७ ,, १८ २९, १९ ११, १२ ११)। (३) कर्मकाण्डस्य ब्रह्मज्ञानापेक्षया गौणत्वं प्रतिपाद्यते गीतायाम् । यामिमां पुष्पितां वाचं (२ ४२ ४३) । विषयोऽयं विस्तरशो वर्ण्यते मुण्डकोपनिषदि । तद्यथा—द्वा ह्येते अदृढा

यज्ञकर्मा० (मुण्डक० १.७-१०)। (४) आत्मनोऽजरत्वममरत्वमनादित्वादिकं च मरता विस्तरेण गीतायां सम्प्राप्यते। तथथा—अन्तवन्त इमे देहा (२.१८), य एनं वेत्ति० (२.१९), न जायते म्रियते० (२.२०) वासांसि जीर्णानि० (२-२२), नैनं छिन्दन्ति० (२.२३), अच्छेद्योऽ० (२.२४), सदा नित्य (२.३)। आत्मनो नित्यत्वमीशोपनिषदि कठे च विस्तरतो वर्ण्यते तत्र। तथथा—स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण० (ईश ८), अनेजदेक० (ईश० ४), तदेजति तन्नैजति० (ईश ५), अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे (कठ १.२.१८.११)। (५) गीतायां द्वितीये चतुर्थे चाध्याये ज्ञानयोगस्य विस्तरतो वर्णनमाप्यते। मुण्डकेशेनोपनिषदि लभ्यते—विद्या चाविद्या च यस्तद्वेदोभय ् सह । (ईश १.११)। मन्त्रवर्णेऽस्मिन् विद्यामार्गेण ज्ञानमार्गोऽविद्या मार्गेण च कर्ममार्गो गम्यते। तयस्तामिमतोऽत्र पन्थाः सोपनिषदनि विशेषतो विभिन्नते। (६) पञ्चमाध्याये षष्ठाध्याये च गीतायां योगो वर्ण्यते। तस्य स्वरूपं साधनादिप्रकारं च तत्र प्राप्यते। वर्णनमेतद् वेदान्तदर्शने योगदर्शने चाधिक्य वर्तते। मुण्डकोपनिषदि माण्डूक्योपनिषदि चायं विषय उपलभ्यते। तथथा—धनुर्गृहीत्वौपनिषदं (मु० २.१), प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा० (मु २.४), मा सर्वज्ञः०(मु० २-७) सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा० (मु० ३-५), यदा सुप्तो न कंचन कामं कामयते (मा ५)। (७) अक्षर ब्रह्मणो वर्णनं तदनुध्यानेन मोक्षाधिगमस्याप्यध्याये गीतायां वर्ण्यते। मुण्डकोपनिषदि छान्दोग्ये, बृहदारण्यके च ब्रह्मणो वर्णनं प्रणवानुध्यानेन मोक्षावाप्तेश्च वर्णनं विस्तरतो उपलभ्यते।(८) सप्तमेऽध्याये गीतायामीश्वरपर्यवसायित्वाधनत्वेनोपदिश्यते। माण्डोऽयं मुण्डकोपनिषदि मुख्यत्वेनोपलभ्यते। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम् (मु ३-२)। (९) गीतायां दशमेऽध्याये विभोर्विभूतीनां वर्णनमाप्यते। कठोपनिषदि विस्तरतो विभोर्विभूतिवर्णनं निरीक्ष्यते। तथथा—सर्वं तदा प्रतिरूपो बभूव (कठ २.५ ८.१०), तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति (कठ २.५.१५) भयादस्याग्निस्तपति (कठ २.६.३)। (१०) गीतायामेकादशेऽध्याये विराट्रूपदर्शनमुपलभ्यते। विभोर्विराट्रूपस्य वर्णनं मनुर्वेदे पुरुषसूक्ते ११ मन्त्रायें प्राप्यते। तथथा—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्०। (यजु० ३१ १-११)। (११) द्वादशेऽध्याये भक्तियोगवर्णनं गीतायाम्। कैवल्योपनिषदं भक्तियोगो ध्यानयोगश्च वर्ण्यते। तथथा—अथात्मानिष्ठ्यानयोगादवैहि (कैव १.१)। (१२) त्रयोदशेऽध्याये क्षेत्रक्षेत्रज्ञवर्णने सांख्यदर्शनानुसृतिः लक्ष्यते। सांख्यानामिमं प्रकृतिपुरुषवर्णनमीक्षा-लभ्यते। (१३) चतुर्दशेऽध्याये गुणत्रयवर्णनमपि सांख्यदर्शनानुसर्पेण बोद्धव्यम्। श्वेताश्वतरोपनिषदपि गुणत्रयवर्णनमुपलभ्यते। तथथा—अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां (श्वेता० ४-५), स त्रिवृत्कर्मगुणः (श्वेता ५-७)। सप्तदशेऽक्षरो चाध्याये ब्रह्मणो ध्यानादिकस्य च सात्त्विकादिभेदो वर्ण्यते। तदपि सांख्यानुसर्पेणावगन्तव्यम्। (१४) पञ्चदशेऽध्यायेऽश्वत्थवर्णनं कठोपनिषदधिक्य वर्तते। तथथा—ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाख एषोऽश्वत्थः सनातन (कठ २.६.१)। तत्र वर्णिता अश्वत्थवृक्षो श्वेताश्वतरे प्राप्यते। तथथा—अरं प्रधानममृताक्षरं हर (श्वेता० १.१)। विद्याविद्यास्वीकृत्यात् गीतेय वर्णनानुसर्पेण श्वेता दर्शनानां श्रुतीनां च सारं सरल्या सरण्या प्रस्तपीतीति।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्—अङ्कचतुष्टयम्। उदयनस्य वासवदत्तया सह प्रथमः परिचयस्तेन वर्ण्यते। यौगन्धरायणप्रयत्नतः प्रद्योतप्रासादादुदयनस्य मोक्षः। (२) स्वप्न वासवदत्तम्—अङ्कषट्कम्। वासवदत्ताग्निदाहेन दग्धेति प्रवादं प्रचार्य यौगन्धरायण प्रयत्नात् पद्मावती सहोदयनस्योपयमोऽपहृतराज्यावाप्तिश्च वर्ण्यते। (३) ऊरुभङ्गम्—नाटकमेतदेकाङ्कि। पाञ्चालीपरिभवप्रतिक्रियाय भीमेन गदायुद्धे दुर्योधनोरुभञ्जनं वस्तु प्रतिपाद्यते। निखिलेऽपि संस्कृतवाङ्मये दुरन्तान्तमेतदेव नाटकम्। (४) दूतवाक्यम्—एकाङ्कि नाटकम्। महाभारताद्धृतम्। प्राक् पाण्डवार्थं दुर्योधनसंसदि श्रीकृष्णस्य दूतत्वेन गमनं प्रपञ्चतैश्वर्यं च वर्ण्यते। (५) पञ्चरात्रम्—अङ्कत्रयम्। कल्पान्ते द्रोणो दक्षिणास्वरूपं पाञ्चालेभ्यो राज्यार्धं पणीते दुर्योधनम्। पञ्चरात्रान्तरे पाण्डवानां मुहृन्त उपक्रम्यन्ते येनाराज्यार्धं दास्यते मयेति दुर्योधनोक्तिः। पञ्चरात्रान्तरे पाण्डवानां प्रतिदुर्योधनकृतराज्यार्धप्रदानं च। (६) बालचरितम्—अङ्कद्वादशकम्। बालस्य श्रीकृष्णस्य कंसवधान्तं चरितमिह वर्ण्यते। (७) दूतघटोत्कचम्—एकाङ्कि नाटकमेतत्। अभिमन्युविवाहानन्तरं श्रीकृष्णप्रेरणया घटोत्कचस्य दौत्यमभिनीय दूतवाक्यानिकं गतवतम्। दुर्योधनकृतराज्यावमानः। दुर्योधनोक्तिम—'प्रतिदत्तो दास्यामि ते नावकैरिति'। (८) कर्णभारम्—नाटकमिदमेकाङ्कि। ब्राह्मणवेषधारिणे सहसा कर्णस्य कवचकुण्डल दानम्। (९) मध्यमव्यायोगः—नाटकमिदमेकाङ्कि। मध्यमः पाण्डवो भीमो मध्यम नामानं व्यायच्छतुमेक घटोत्कचात् आपते। अन्यपदवर्तेन भीमस्यानन्दावाप्ति पत्या दिरूपेण च समागम। (१०) प्रतिमानाटकम्—अङ्कसप्तकमिदं। रामवनवासादा रभ्य रावणवधान्ता कथाऽत्र वर्णिता। दशरथप्रतिमां प्रेक्ष्य भरतः पितुर्निधनमवगच्छति। (११) अभिषेकनाटकम्—अङ्कषट्कमत्र। किष्किन्धाकाण्डादारभ्य पुष्पकाण्डान्ता रामकथाऽत्र वर्णिता। रावणवधानन्तरं रामस्य राज्येऽभिषेकः। (१२) अविमारकम्—अङ्कषट्कमत्र। राजकुमारस्याविमारकस्य राज्ञः कुन्तिभोजस्य दुहित्रा कुरङ्गया सह प्रथमपरिचयोऽत्र वर्णितः। (१३) चारुदत्तम्—अङ्कनवकमिदं। द्वितीयद्विपुष्पदत्तेनो दारचरितेन चारुदत्तेन सह वसन्तसेनाया मदनिकायाश्च प्रथमपरिचयोऽत्र वर्णितः।

नाटकनामैतेषां प्रवेता भास एवास्तीति निश्चेतुं विप्रतिपत्तिरहितेन प्रमाणेन। भास एवैतेषां नाटकानां प्रणेतेति विद्वद्भिरधिकैरभीष्यते। एक एवैतेषां प्रणेतेत्यवगम्यतेऽन्तःसाक्ष्यादिना। (१) नाटकानि सर्वाण्यपि सूत्रधारप्रयोगेणारभ्यन्ते। 'नाट्यन्ते ख्याः प्रविशति सूत्रधारः' इति वाक्येन सर्वत्र। (२) नाटकप्रस्तावनायां प्रस्तावना शब्दस्थाने 'स्थापना'शब्दप्रयोगः। (३) प्रयोजनाभावाच्च नाटकप्रस्तावनायामेव स्थापनायाम्। (४) नाटकारम्भे (स्थापनायां प्रतिज्ञा प्रतिमा० पंच अङ्क) मुद्रा लंकारप्रयोगश्च। प्रथमनाटकीयपद्यायां मालोपमेयः। (५) भरतवाक्यं प्रायशः समानमेव वर्णयति। 'इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।' (६) भूमिका प्रविशतमा। उपोद्घातारम्भेऽपि प्रायः समानमेव। यथा—एवमार्यमिश्राणां विज्ञापयामि।'

पञ्चकमाः० (मुण्डक० १-७-१)। (४) आत्मनोऽजरत्वममरत्वमनादित्वादिकं च मा विस्तरेण गीतायां सम्प्राप्यते। तद्यथा—अन्तवन्त इमे देहा (२ १८), न एनं वेत्ति (२ १९), न जायते म्रियते (२ २) जीर्णानि जीर्णानि (२ २२), नैनं छिन्दन्ति (२-२३), अच्छेद्यो (२ २४), देही नित्य (२ ३)। आत्मनो नित्यत्वमौद्योपनिष कठे च विस्तरतो वर्णितमस्ति। तद्यथा—स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण (ईश ८ अनेजदेकं (ईश ४), तदेजति तन्नैजति० (ईश० ५), अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुरा न हन्यते हन्यमाने शरीरे (कठ १ २ १८ २१)। (५) गीतायां द्वितीये चतुर्थे चाध्या ज्ञानयोगस्य विस्तरतो वर्णनमाप्यते। मूण्डकोपनिषदि कथ्यते—विद्यां चाविद्यां यस्तद्वेदोभय ् सह । (ईश ९ ११)। मन्त्रयोरस्मिन् विद्यामार्गेण ज्ञानमार्गोऽविद्य मार्गेण च कर्ममार्गो गम्यते। सांख्याभिमतौऽयं पन्थाः सांख्यदर्शने विशेषतो विभिन्नते (६) पञ्चमाध्याये षष्ठाध्याये च गीतायां योगो वर्ण्यते। तस्य स्वरूपं साधनादिप्रकारः तत्र प्राप्यते। वर्णनमेतद् यद्यप्यस्मदर्शने योगदर्शने चाधिरूप वर्तते। मुण्डकोपनिषदां माण्डूक्योपनिषदि चायं विषय उपलभ्यते। तद्यथा—धनुर्गृहीत्वौपनिषद० (मु० २ १ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा० (मु २ ४), या सर्वज्ञः०(मु १-७), सम्पेन सम्पद्यतया हो आत्मा (मु० १-८) यदा मुनो न कुरुते कामं कामयते (मा ५)। (७) अक्ष ब्रह्मणो वर्णनं तदनुध्यानेन मोक्षाधिगमश्चाष्टमाध्याये गीतायां वर्ण्यते। मुण्डकोपनिषदि छान्दोग्ये, बृहदारण्यके च ब्रह्मणो वर्णनं प्रणवानुध्यानेन मोक्षावाप्तेश्च वर्णनं विस्तरत उपलभ्यते।(८) नवमेऽध्याये गीतायामीश्वरार्पणमीश्वरप्राप्तिसाधनत्वेनोपदिश्यते। माण्डोऽ मुण्डकोपनिषदि मुख्यत्वेनोपलभ्यते। अमेवैष पृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते त स्वाम् (मु १ १)। (९) गीतायां दशमेऽध्याये विभोर्विभूतीनां वर्णनमाप्यते कठोपनिषदि विस्तरतो विभोर्विभूतिवर्णनं निरीक्ष्यते। तद्यथा—सर्व खल्विदं ब्रह्म (कठ २ ५ ८ ११), तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति (कठ २ ५ १५) अणोरणीयान्महतो महीयान् (कठ २.६ १)। (१०) गीतायामेकादशेऽध्याये विराड्रूपदर्शनमुपलभ्यते। विभोर्विराड्रूपस्य वर्णनं यजुर्वेदे पुरुषसूक्ते ११ अध्याये प्राप्यते। तद्यथा—सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्षः सहस्रपात् । (यजु ३१ १-११)। (११) द्वादशेऽध्याये भक्तियोगवर्णनं गीतायाम्। कैवल्योपनिषदि भक्तियोगो ज्ञानयोगश्च वर्ण्यते। तद्यथा—ब्रह्मविद्याज्ञानयोगादथैव (कैव १ १)। (१२) त्रयोदशेऽध्यायेऽ क्षेत्रक्षेत्रज्ञवर्णनं सांख्यदर्शनानुसारि ज्ञातव्यम्। सांख्याभिमतं प्रकृतिपुरुषस्वरूपमभिधाय क्रम्यते। (१३) चतुर्दशेऽध्याये गुणत्रयवर्णनमपि सांख्यदर्शनानुसार्येव बोद्धव्यम्। श्वेताश्वतरोपनिषदि गुणत्रयवर्णनमुपलभ्यते। तद्यथा—अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां (श्वेता ४-५), त विश्वकर्मविगुणः (श्वेता ५-७)। पञ्चदशेऽध्याये चाध्याये ब्रह्मणो ज्ञानादिरूपस्य च क्षरात्क्षरोत्तमस्य वर्णनं वर्तते। तदपि सांख्यानुसारेणावगन्तव्यम्। (१५) षोडशेऽध्यायेऽध्यात्मवर्णनं कठोपनिषदमाश्रित्य वर्तते। तद्यथा—ऊर्ध्वमूलोऽवाङ् शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः (कठ २.६ १)। तत्र वर्णिता यथाक्षरात्परो श्वेताश्वतरे प्राप्यते। तद्यथा—क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः (श्वेता १ १०)। विशदीभवत्येतस्माच्च गीतेयं सर्वागमुपनिषदां सम्मेलनं दर्शनानां श्रुतीनां च सारं सरलया सरण्या प्रस्तौतीति।

४ भासनाटकचक्रम्

महाकवेर्भासस्य इष्टिप्रेम्णा त्रयोदश नाटकरत्नानि समुल्लस्यन्ते। 'भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्' इति राजशेखरमणितिमन्त्रिम्यैव भासनाटकचक्रमिति तत्प्रथमनाटकस्य नाम व्यवहियते। नाटकत्रयोदशस्य परिचयः समासोऽत्र प्रस्तूयते। (१) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्—अङ्कचतुष्टयम्। उदयनस्य वासवदत्तया सह प्रथमपरिणयोऽत्र वर्ण्यते। यौगन्धरायणप्रयत्नतः प्रद्योतप्रार्थनया दुष्टगजस्य मोक्षः। (२) स्वप्नवासवदत्तम्—अङ्कषट्कम्। वासवदत्ताग्निसंस्कारेण दग्धेति प्रवादं प्रचार्य यौगन्धरायणप्रयत्नात् पद्मावत्या सहोदयनस्योपयमोऽङ्गराजप्रार्थनातिरेण वर्ण्यते। (३) ऊरुभङ्गम्—नाटकमेकाङ्कि। पाञ्चालीपरिभवप्रतिज्ञापूर्वं भीमेन गदायुद्धे दुर्योधनोरुभञ्जनं वस्तु प्रतिपाद्यते। निखिलेऽपि संस्कृतवाङ्मये दुःखान्तमेतदेव नाटकम्। (४) दूतवाक्यम्—एकाङ्कि नाटकम्। महाभारताहवात् प्राक् पाण्डवार्थे दुर्योधनसंनिधौ श्रीकृष्णस्य दूतत्वेन गमनं प्रकरणैकदेशं यावत् वर्ण्यते। (५) पञ्चरात्रम्—अङ्कपञ्चकम्। वक्ष्यते द्रोणो दक्षिणास्तकर्मं पाञ्चवेभ्यो राज्यार्धे प्रदाय दुर्योधनम्। पञ्चरात्रान्तरम्यते पाण्डवानां मुख्य उपक्रम्यते वेदाध्ययनार्थं वासयते प्रवेशि दुर्योधनोक्तिः। पञ्चरात्रान्तरे पाण्डवानां प्रतिदुर्योधनदूतप्रत्याख्यानदानं च। (६) बालचरितम्—अङ्कद्वादशकम्। बाल्यस्य श्रीकृष्णस्य कंसवधान्तं चरित्रमिह वर्ण्यते। (७) दूतघटोत्कचम्—एकाङ्कि नाटकमेव। अभिमन्युविवाहानन्तरं श्रीकृष्णप्रेरणया घटोत्कचस्य कौरवसभायां दूतत्वेन गमनम्। दुर्योधनकृतसत्कारतामात्रः। दुर्योधनोक्तिम्—'प्रतिवचो वासुदेव ते सापकैरिति'। (८) कर्णभारम्—नाटकमिदमेकाङ्कि। द्रोणवधोपरान्ते एकस्य कर्णस्य कवचकुण्डलयोः पतनम्। (९) मध्यमव्यायोगः—नाटकमिदमेकाङ्कि। मध्यमः पाण्डवो भीमो मध्यमनामानं अलक्षसमुत्पेक्ष घटोत्कचात् यापते। अलम्बुषवधेन भीमस्यानन्दावाप्ति पत्या हिडिम्बया च समागमः। (१०) प्रतिमानाटकम्—अङ्कसप्तकमिदं। रामवनवासादारभ्य रावणवधान्तो कथाऽत्र वर्णिता। दशरथप्रतिमां प्रेक्ष्य भरतः पितुर्निधनमवगच्छति। (११) अभिषेकनाटकम्—अङ्कषट्कमत्र। किष्किन्धाकाण्डादारभ्य युद्धकाण्डान्तो रामकथाऽत्र वर्णिता। रावणवधानन्तरं रामस्य राज्येऽभिषेकः। (१२) अविमारकम्—अङ्कषट्कमत्र। राजकुमारस्याविमारकस्य सह कुन्तिभोजस्य दुहित्रा कुरङ्गया सह प्रथमपरिणयोऽत्र वर्णितः। (१३) चारुदत्तम्—अङ्कनवकमिदं। विदूषकविटचरितेनोदात्तचरितेन चारुदत्तेन सह वसन्तसेनाप्रणयप्रणायां प्रणयविवाहोऽत्र वर्णितः।

नाटकानामेतेषां प्रणेता भास एवान्यो वेति विविधा विप्रतिपत्तिर्विद्वत्सु प्रसिद्धा। भास एवैतेषां नाटकानां प्रणेतेति विप्रतिपत्तिविधैर्यावलम्बिते। एव एवैतेषां प्रणेतेत्यवगम्यतेऽन्तरङ्गबहिरङ्गसाधनाभ्यां। (१) नाटकानि सर्वाण्यपि सूत्रधारप्रयोगेणारभ्यन्ते। 'नाट्यन्ते तत्र अभिनयन्ति सूत्रधारः' इति भावेन प्रस्तावनाः सर्वत्र। (२) नाटकभूमिकार्थे प्रस्तावनाशब्दस्थाने 'स्थापना'शब्दप्रयोगः। (३) प्रयोजनाभावोऽत्र्यात् नाटकेष्वस्तरिवयप्रस्तावः स्थाप्यताम्। (४) नाटकपद्धतिः (स्थाप०, प्रविश्य प्रतिमा०, पंच, ऊरु) मुद्रालंकारप्रयोगोपेतान् प्रथमकोके प्रमुखनाटकीयपद्धतिर्या नामास्तेषु। (५) प्रस्तावनायां प्रायः समेत्य सूत्रधारः। 'इदमपि मही कृत्स्ना सप्तद्वीपा प्रशास्तु नः।' (६) भूमिका संक्षिप्ततमा। संवादारम्भेऽपि प्रायः शास्त्रमेव। यथा—एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि।'

(७) पात्रनामसाम्यमपि । यथा—कांचुकीयो वाहरायणः, प्रतीहारी विजया च सर्वासेषु नाटकेषु । (८) अप्रयोक्तव्यानां प्रयोगो यथा—मुखदना दण्डकारदः । (९) बहुषु नाटकेषु पताकास्थानकप्रयोगः । (१०) नाटकेषु सर्वेषु मायाद्यूतं पैशुन्यं च । (११) अपनिनीषाप्रयोगाश्च सर्वेष्वेव नाटकेषु । (१२) अन्योन्यसंकलानि नाटकानि । यथा—स्वप्न प्रतिज्ञायौगन्धरायणस्योक्तमार्ग एव । प्रतिमाऽभिषेकनाटके च तथा ।

बाणो हर्षचरिते 'सूत्रधारकृतारम्भै ०' इति भासनाटकवैचित्र्यमाचष्टे । तस्य सर्वमेतदुपपद्यते । एकदेशदर्शनेऽपि केचिद् दोषा दिशे परीक्षितुम् । स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।' यतस्मात् भासकृतनाटकबहुत्वस्य स्वप्न वासवदत्तस्य च सकृत्प्रतिसंधानावगतिर्भवति । भोजदेवो एवमनुपपन्नो च स्वप्नवासवदत्तं भासकृतिमामनन्ति । अतो भास एव सर्वेषां प्रणेतेत्यवगम्यते ।

भासस्य अग्निकालस्य ४५ ई पूर्वादनन्तरं १७ ई पूर्वाब्दाद् च स्थीक्रियते ।

स्वप्नवासदत्तं बाणदृष्टस्यं संस्कृतसाहित्यं परीक्ष्यते चेद् भास एव नाटकचक्रवर्ती-रिति शक्यं वक्तुम् । अवोदशनाटकानां प्रणेता स इति प्रतिपादितमेव । नाटकानां बाहुल्येन विषयवैविध्येनाभिनयोपयोगित्वेन च तस्य नाट्यनेपुण्यं नाटकनिर्मितौ वैचारुयं चावधार्यते । नाटकेषु तस्य मुख्या विशेषताः सन्त्येताः—भाषायां सरलता, अकृत्रिमा शैली, वर्णनेषु यथार्थता चरित्रचित्रणे वैयक्तिकत्वं, घटनाऽयोजने कौशलं, कथाप्रवाहस्या विच्छिन्नत्व प्रवाहः । सर्वाण्येव नाटकान्यभिनयोपयोगीनीति तस्य महनीयतामभिवर्धयन्ति । नाटकेषु मौलिकता कल्पनावैचित्र्यं च विशेषत उपलभ्यते । त एव सर्वाग्रणी-रेकाङ्किनाटकप्रणयने । नाटकप्रारम्भस्यैकाङ्के । पताकास्थानकमपि मधुरं प्रतीयते । शैली चेद् विचिन्त्यते तस्य तर्हि प्रसादमाधुर्योक्तां सर्वासामपि गुणानां समन्वयस्तत्र वेक्ष्यते । भाषा तस्य सरला, सुबोधा, तरला, नैसर्गिकी, सप्राणा च । उपम्यरूपकोत्प्रेक्षा र्थान्तरन्यासाक्षेपाणां प्रयोगो विशेषतोऽवाप्यते तस्य कृतिषु । अनुप्रासादिकं विशेषतः प्रियं तस्य । यथा—हा बत राम जगतां नयनाभिराम (प्रतिमा १४) । मनोवैज्ञानिक-विश्लेषणे नितरां निपुणः सः । यथा—दुःखं खलु वदमूलेऽनुपगः० (स्वप्न० ४-६), प्रहेयो बहुमानो वा० (स्वप्न १७), शरीरिणि प्रहरति० (प्रतिमा १११)। भारतीया भावाः सविशेषं शोभन्ते तस्मै । यथा—पितृभक्तिः पातिव्रत्यं भ्रातृप्रेमादिकम् । 'भर्तृनाशा हि नार्यः' (प्रतिमा १२५), कुत्र क्रोधो विनीतानाम् (प्रतिमा १९), अनुक्तं परपुरुषसंकीर्तनेन शोभते (स्वप्न अंक १) । भाषायां सरलता रम्यता च लोकप्रियतायाः कारणं तस्य । रसभावानुकूलं शैल्या परिवर्तनमपि प्राप्यते । यथा—मद्मुखकृत (प्रतिमा ५-१२), पद्माभ्यां परिभूय (प्रतिमा ६-१) । विस्तरभयान्नाटकस्य समग्रं स्वरूपमाप्नुमो । क्रमप्राप्तं 'अनुक्तमेव वर्णं गताः (प्रतिमा १-१०) । चित्रयति तथा भावान् यथा मूर्तयत्ते उपस्थितन्ति । व्यङ्ग्यप्रयोगस्तस्याश्चारुतो मार्मिकश्च । यथा—अनलपत्रा० (प्रतिमा २८) । उपमाप्रयोगोऽपि दक्षः । यथा—सूर्य इव गतो दूरम् (प्रतिमा १-७), विषेणेवामृतं (प्रतिमा ६-२) । व्याकरणादिवेदाङ्गमपि प्रदर्शयति यथावसरम् । यथा—स्वरपद० (प्रतिमा ५-७) अनः स्वरो वीर० (प्रतिमा ४-७) । विविधरसवर्णने, छन्दःप्रयोगे, अर्थान्तरन्यासप्रयोगे च प्रभूतं पाटिव्यमुपलभ्यते तस्य ।

५ कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्

महाकवेः कालिदासस्य अनिकाक्षमनुरुध्य कतिपयानि मयाप्युपस्थाप्यन्ते मतिमतां परिषदे । मतद्वयं च मुख्यतः प्रधरिष्यु । (१) विक्रमसंवत्सरसंस्थापकस्य विक्रमादित्यस्य राज्यकाले खिस्ताब्दात्पूर्वं प्रथमशताब्दाम्, (२) ईसवीयचतुर्थशताब्दां गुप्तकाले । प्रथमं मतं भारतीयैरधिकं स्वीक्रियते द्वितीयं च पाश्चात्यैः । कृतयस्तस्य प्राधान्यतः त्रयोऽत्र स्वीक्रियन्ते । (क) नाट्यप्रभवाः—(१) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (२) विक्रमोर्वशीयम्, (३) मालविकाग्निमित्रम् । (ख) काव्यद्वयम्—(४) रघुवंशम् (५) कुमारसम्भवम् । (ग) गीतिकाव्यद्वयम्—(६) मेघदूतम्, (७) ऋतुसंहारम् । कृतिष्वेतासु शाकुन्तलमेव कवेः प्रतिभायाः परिपाकेन रचनाकौशलेन प्रकृतिचित्रणे पाटवेन, रसपरिपाकेन, नीरसस्थाने सरसताऽऽधानेन, मूलकथापरिवर्तने वैचारुचेन, करुणादिरससंचारेण च सर्वातिशायीति तदेव कालिदासस्य सर्वस्वमभिमन्यते । अतो निगदितं केनापि—'काव्येषु नाटकं रम्यं नाटकेषु शकुन्तला । तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्' । एतदेवात्र विविच्यते विविच्यते च । विषयोऽयं महता विस्तरेण वर्णितो विवादीकृतश्च मत्कृतशाकुन्तलभूमिकायाम् । विस्तरस्तत्र एवावगन्तव्यः । श्लोकाङ्कादिकं मत्संपादितशाकुन्तलसंस्करणानुसारि ।

कालिदासस्य नाट्यकलाकौशले सन्त्येव विप्रतिपत्तयः । घटनासंयोजने सौष्ठवं, वर्णनानां वर्णकता स्वाभाविकता अन्वयात्मकता च चरित्रचित्रणे वैयक्तिकत्वं, कवित्वं, रसपरिपाकश्चेति । अभिनयार्हतया चैतेषां नाटकानां महत्त्वं निरवमभिधीयते । घटना संयोजने सौष्ठवं यथा—द्वितीयेऽङ्के आश्रमं प्रवेष्टुकामे सति दुष्यन्ते ऋषिकुमारद्वयस्य नृपहानार्थं प्रवेशः । पञ्चमे ईसवदिकागीतम्, षष्ठेऽङ्के जैयकोपलब्धिः, सप्तमे पुत्रदर्शनं शाकुन्तलसमाप्तिश्च । वर्णनेषु स्वाभाविकता यथा—प्रथमेऽङ्के मृगयाप्रविवरणं, द्वितीयेऽङ्के विदूषकसंलापः चतुर्थे शाकुन्तलविप्रयोगवर्णनं पञ्चमे शाकुन्तलाप्रत्याख्यानं सप्तमेऽपत्य प्रीढावर्णनं च । वर्णनानां अन्वयात्मकता यथा—'दिवसा परिणामरमणीया' (१ १) नाटकस्य सुखावसायित्वं सूचयति । सूत्रधारवचनम्—'अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया' (पृ १५) नाटके विस्मरणस्य महिमानं द्योतयति । 'आस्येकतोऽस्त ' (४ २) मुनिदुःखक्रमस्यानिवार्यत्वम्, ईसवदिकागीतम्—'अभिनवमधु (५ १) राज्ञो विस्मरणम् । चरित्रचित्रणे वैयक्तिकता यथा—ऋषिवरे कण्वः सापूर्णमनुर्निर्मितः शकुन्तलायां पितृवत्सलहृदयः, मयीचो वीतरागः दुष्यन्तश्च रोमन्थनैः ।

रसनिरूपणेऽपि महती विप्रतिपत्तिरुपजायते । शृङ्गारवीरौ विहाय प्रायः सर्वेऽपि रसाः समुपलभ्यन्तेऽत्र । शृङ्गाररसस्य सर्वातिशयोक्तिः—अहो मधुरमाकृतिदर्शनम् (पृ ४५), मुग्धाक्षरुक्ममिदम् (१ १७) । शकुन्तलालावण्यवर्णनम्—इदं किलाव्याज (१ १८) मनोरमनुविद्धं (१ २०), अधरः किसलयरागः (१-२१), चलापाङ्गां दृष्टिम् (१ २४) । शकुन्तलाया मुखेन वृत्तोक्तिः—इदमनन्यपरायणम् (१ १९), किं वा तेन (१ १८) अपरिक्षत (१-२१) उपरागान्ते (७-२१) । (ख) विप्रलम्भशृङ्गारो यथा—द्वितीयेऽङ्के शकुन्तलास्मरणं तत्रैवोत्कण्ठावर्धनं च—कामं प्रिया न (१ १), स्निग्धं वीक्षितम् (१-२), चित्ते निवेश्य (२ १) अनाघ्रातं पुष्पं (१ १), अभिमुखे मयि (१ ११), दमाद्भोत्र (२ १२) । चक्षुरादीनां वाचेतृत्वं—तव कुसुमशयनम् (१ १) । विरहशोकावस्थाः

शकुन्तलाया वर्णनम्—स्तनन्धयोपरि० (१ ६), श्यामश्यामकपोल (१-७)। राज्ञो निरहङ्कारत्वावर्णनम्—इदमधिशिरे (१ १)। (ग) करुणरसो यथा—शकुन्तलाप्रस्थान-समये आश्रमवासिनां—वास्यस्यद्य० (४-६) पातुं न (४ ९), उद्गलितदर्भ (४ १२), यस्य त्वया (४ १४), अभिजनवतो (४ १९), अयमेवमपि (४-२१)। (घ) वीररसो यथा—अभ्याक्रान्ता (२ १४), नैतच्चित्रं० (२ १५), का कथा (३ १), कुसुमायैव (५-२८)।(ङ) अद्भुतरसो यथा—दुष्यन्तेनाहितं (४-४), क्षौमं केनचिद् (४-५), दैवेनाम् (७-४), वस्तीकार्षं (७-११), प्राप्यनाम् (७-१२)। (च) हास्यरसो यथा—अत्र पयोधर (पृ० ५२), किं मोदक (पृ ११), यथा कस्यापि० (पृ १२४), निर्वर्तुरिव (पृ १४२), एष मां कोऽपि (पृ ४१), विदाञ्चकृद्भो (पृ ४१३)। (छ)शान्तरसो यथा—स्वर्गादधिक (पृ ४४), प्राणानाम् (७-१२)।

काव्यसौन्दर्यविवेचनप्रथम इयत्ते भेदमात्रमेव शाकुन्तले सौन्दर्यपरीतम्। (क) करुणरसप्राधान्यात्प्रस्तावाच्चानुपौनरुक्त्यप्रतिपादनायो। तत्र च श्लोकचतुष्टयं मन्यमाना वर्णयति—वास्यस्यद्य (४-६), द्रुमूलस्य (४-१८), पातुं न (४ ९), अस्यान् शाखा० (४ १७)। (ख) अन्तःप्रकृतेर्वाह्यप्रकृत्या समन्वयो दृश्यते। स्त्रिया शकुन्तलम् कुमुदिनी च भर्तृ वियोगेन। अन्तर्हिते (४ १), पातुं न प्रथमं० (४ ९), उद्गलितदर्भ (४ १२)। (ग) वाह्यप्रकृत्या ऽऽन्तरीयकम्—अस्ति मे सोदर (पृ ४८), व्यवसायाय (पृ ५६), न नमयितुम्० (२ ३), क्षौमं (४-५) उद्गलित० (४ १२)। (घ) प्रेमचित्रणं काव्यस्य वर्णनं च। मतमेतन्महाकवेर्बत् सौन्दर्यं नाहार्यं गुणमपेक्षत। अतस्तेनोच्यते—इदं किल्म ब्याज (१ १८), तपस्विजनसुलभं० (१ २०) अहो सर्वावस्थासु (पृ १५७)। नैसर्गिकत्वादेव निर्दोषत्वं शकुन्तलाप्रेमवर्णनस्य। इदमुपनत (५ ११)। पुष्पितां लतेव काव्यकन्यां शकुन्तलम्। अपरः किलाह (१ २१)। तस्य मतमेतद् 'यथाकृतिस्तथा गुणा भवन्ति'। सुन्दरीसौन्दर्यं अपरैव, नान्यथा। अतो ब्राह्यिवते तेन—कार्यं न विनयति (१ ११), अभिमुखे मयि० (२ ११)। क्षीणसौन्दर्यं सञ्चारिभावेन तपसा च। यथा—द्रुमूलस्य (४ १८) इत्येष सा कर्तुमनन्यरूपतां तपोभिरात्मनः (कुमार ५-२)। तपःपूतमेव प्रेम प्रशस्यते च। तपःपूतेव शकुन्तला प्रियमनुविन्दति।

कालिदासस्य शैली—वैदर्भीरीत्याः सर्वाग्रणीः कविरित्यत्र न कापि विप्रतिपत्तिः। (क) तस्य शैल्याः प्रसादमाधुर्योक्तयो अन्यासामपि गुणानां समन्वयः समीक्ष्यते। यथा—अस्य हृदय (१-२८), क्व वयं (२ १८) अयं स ते (३ ११), अहो हि कन्या (४-२२), मातुः सकृद् (५ ४)। (ख) शब्दकोषेऽप्रयोगाद्योऽप्रचारस्तस्य। यथा—अनवरत (२ ४), अनाघ्रातं (३ १०) अस्मात् शाखु (४ १७), विस्रोतस० (७-६)। (ग) वर्णने व्यञ्जनात्मकता। यथा—अये अयं मेत्रनिर्वाणम् (पृ १५२), तव न जाने (३ ११), किं श्रोतसि (३ १८)। (घ) वचनकौशलम्। यथा—विरह खिन्नयोर्दुष्यन्तशकुन्तलयोर्वर्णनम्। चतुर्थेऽङ्के शकुन्तलाविरोगखिन्नस्याश्रमस्य वर्णनम्। (ङ) संक्षेपे सर्वत्र शैलेऽसौ रम्यता पोषकायते। (च) अलंकारप्रयोगः। प्रायमलंकारशिरः शेखरायते प्रयुक्तः। (छ) उपमा कालिदासस्य। वर्णितमेतदस्मत्र। (ज) चतुर्विधाभि रसव्यक्तिः प्रयुक्तानि तेन शाकुन्तले।

६ उपमा कालिदासस्य

कविताकामिनीकान्तं कालिदासः कस्य नाबध्नाति चेतः सचेतसः। तस्य काव्यसौन्दर्यं प्रशंसन्ति सहृदयाः मुखिपत्रस्य कलाकौशलम्। कालिदासोऽविद्वेते सर्वानपि महाकवीनतिशेते। अतः साधूच्यते—'उपमा कालिदासस्य'। एतेनैव विविच्यते।

का नामोपमा ? कथं वैशेषिकधर्मो काव्यस्य ? विश्वनाथानुसारं 'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः' (सा दर्पण १०-१४)। वस्तुद्वयस्य वैधर्म्ये सति साम्य मात्रं यदुच्यते वाक्यैक्ये सति सोपमा। उपमैव सौदामिनीव विशालेऽपि विपुले वाङ्मये। काव्यक्षेत्रे समादधाति महतीं सम्भावनाम्। कालिदासस्योपमाप्रयोगोऽपूर्व वैशारद्यम्। उपमासु न केवलं रम्यता,यथार्थता, पूर्णता,श्लिष्टता वैधापि तु सर्वत्रैव श्लिष्टसाम्यमौचित्यं च। श्लिष्टसाम्यस्यौचित्यस्य च समावेशने कापिदृष्टा समस्यते वास्तोपम्यासु। ततश्च तस्योपमाप्रयोगवैशिष्ट्यानि तस्य काव्यादिषु। दृश्यते तूपमाप्रयोग स्वातिशयी।

शास्त्रीया उपमास्तावत् प्राङ्निर्दिश्यन्ते। (१) शास्त्रीया उपमाः—(क) वेदविषयकाः—मनुस्तयैव नृपाणामग्निरोऽग्नयथय मन्त्राणामोंकारः। व्याख्यान्ही-त्तिहासाय प्रथमस्तन्त्रस्यामिव' (रघुवंश १ ११)। मुदक्षिणा नन्दिन्या मार्गे तथैवात्व गच्छतया स्मृति श्रुतेरर्थम्। 'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्' (रघु० २ २)। (ख) दर्शनविषयकाः—यथा मुद्रे कारणमव्यक्तं मूल्यकृतिर्वा तथा परस्मा नथा कारणं मानसं तदः। 'आत्म तद. कारणमात्मवाधो मुद्रेरिवाम्बस्तदुपादत्तमित्व' (रघु० १२-६)। दिलीपस्य हृतिविशेषाः प्राक्तना संस्कारा इव फलमुभेदा आसन्। 'फलानुमेया प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव' (र १-२०)। गम्भीरत्वा नथाः पयो निर्मलं मानसस्थिव वर्तते, मेघप छायायेव। 'चेतसीव प्रसन्ने, छायायामपि० (मेघ १ ४१)। बलिर्वेयेन्द्रियाणीव बाधते तथा रघुः परस्वीकान् वैतु प्रसरसे। 'इन्द्रियाणामनिव रिपूंस्तत्वज्ञानेन संयमी' (रघु० ४-६)। (ग) यज्ञविषयकाः—मुनो दुग्धस्य यज्ञस्तस्य मरतौ पात्रं च यथेतम् क्रमशः विधिः श्रद्धा चित्तं चेति यथाना समन्वयो वर्तते। 'श्रद्धा चित्तं विधिरयेति त्रितयं तत् समागतम्' (रघु ७-२१)। यज्ञस्तस्याऽनुरूपं मर्तारं गता यथा धूमाहुतस्योज्झनस्य यजमानस्य महाबाहुति। 'स्निग्धा धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता'। (रघु अंक ४)। यज्ञस्य दक्षिणेव सुदक्षिणा दिलीपमार्गाऽभूत्। 'अध्वरस्येव क्रतुभिः' (र १ ११)। स्वाहया युक्ताग्निरिव वह्निशोऽन्यका समेतो भूत्। 'स्वाहयेव हविर्भुजम् (र० १-५६)। दिलीपानुगता नन्दिनी विधियुक्ता क्रतोरिव गभी। 'क्रतोरिव सप्तार् विधिनोपपन्ना' (र० २ १६)। रामादिभ्रातृचतुष्टयस्य विनीतत्व तथैवावर्तत यथा हविषाग्निम् 'हविषेव हविर्भुजम् (र० १ ७९)। (घ) विद्याविषयकाः—विद्या स्नातेन यथा यशस्विता तथा नन्दिनी धेनुषा प्रशस्यतीया। 'विद्यासम्यग्ग्रहणेनेव प्रशस्यविनुमर्हसि' (र १-८८)। दुग्धस्तरीणीया यशस्तस्या मुखिप्रसरता विवेचयोचनीया भूत्। 'मुखिप्रसरिणस्तस्या विद्यायोचनीयाश्रिता सेतुता' (रघु० अंक ४)। (ङ) स्नातरूप विषयकाः—अवगाहनियमो यथास्नाता वाचते तथा रघुमे रूपमासुरं वपाये। 'अस्नाद् इवोत्तमं स्नातवर्तविनुमीश्वरः' (र १६ ७)। अवभृथस्नानावसरेऽपतो प्राक् अधिरूपतयो यथा दोमाहृत् स्नर्यश्च तथा रघुजन्म समे सेना। 'पश्चादवभृथस्नानपूर्वस्य वातोर्यपरिवासनम्'-

(र १५ ९)। (च) राजनीतिविषयका—प्रभावपवित्रमन्त्रशक्तिसत्याहुतिभिरिति वर्म यथाऽर्थमक्षयं सूते तथा सुदक्षिणा पुत्र रघुमसूत। 'त्रिताग्नय इवाहिताग्नेरार्यमक्षयम्' (र १ ११)। (छ) ज्योतिर्विषयका—चन्द्रग्रहणानन्तरं यथा रोहिणी शशिनमुपैति तथा वसुन्धरा पुष्यन्तमुपगता। 'उपरागान्ते शशिन समुपगता रोहिणी योगम्'(शा ७-२२)।

(२) मूर्तस्यामूर्तरूपेण—दिलीप क्षात्रधर्म इवाशीत्। 'क्षात्रो धर्म इवाश्रित' (र० १ ११)। धवलं क्षीरं यशसोपमिमीते—'शुभ्रं यशो मूर्तमिवातितृष्ण' (र० २-५९)। एवं मनोरथेनोपमिमीते—'स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन' (र २-७२)। रामादय सत्यादनुर्वेगं इवाशोभन्त। 'धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवाङ्गवान्' (र० १०-८४)।

(३) प्रकृतिविषयका—रघुनाम्नावादत्र संकेतमात्रं निर्दिश्यत्व उपमा, सा मयापपं विवेच्या। (क) सूर्यविषयका—सूर्यमिव तेजोमयं सूतं जनय। 'तनयमधिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनम्' (शा ४ १९)। रामसदृशमो अधिविधाकरमिवा द्योमेत्याम्। 'पार्वणो अधिविधाकरमिव' (र० ११-८२)। (ख) चन्द्रविषयका—शोक-विकल्प वसुधा विपुलश्रेवाभवत्। 'प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः (मे २ २९)। पावती दिवा विपुलश्रेवाभवत्। 'शशाङ्कश्रेखामिव पश्चतो दिवा' (कुमार० ५ ४८)। सन्ध्या शशिनमिव मलिनी श्वेतयोगाङ्ग रवे। 'सन्ध्येव शशिनं नवम्' (र १-८२)। अन्याचन्द्रविषयका उपमा यथा—'इन्दुः क्षीरनिधाविव' (र १ १२), 'हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव' (र १ ४६)। चन्द्रविषयकाश्चन्या:—रघु २ २९, २-७१ ३-१२, १४-८ । (ग) कृशादिविषयका:—शकुन्तलमा कमनीयं कलेवरं व्यामिवानुचकार। अपरः किसलयरागः कोमलविष्यनुकारिणौ बाहू। कुसुम-मिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्' (शा १-२१)। सरलप्रांशुता शकुन्तलम यौवनप्राप्तं कमनीयमिव वस्तुमाश्रितः पुष्पाद्धरिवाधोमत। 'तदिदमनुविद्धं यौवनेनापि रम्यम्' (शा १-२)। कृशादिविषयकाश्चान्या उपमा—शाकुन्तले १-७ ४ ४, ५ ११ २० १४-५४। (घ) पुष्पविषयका:—किन्ना यशस्वी खाग्रे दिवसे स्वकर्मलिनीव स्नाना म्भूत्। 'शाखेप्रहीव। स्वकर्मलिनीं न प्रमृष्टां न सुप्ताम् (मे २ १)। मृगा पुष्पराशि दिवाशे न च बध्य। 'न खलु मुकुलि मृगारिरि पुष्पराशविधामि' (शा० १ १)। पुष्पविषयकाश्चान्या उपमा—कुमार ५ ४, ५ ९, ५-२७ रघु ४ ९; शाकु १-१९, २-८, २ १०, ७-२४। स्नानानन्तरवन्या उपमा: संकेतमात्रमुपलभ्यन्ते। (ङ) पशु विषयका:—मेघ १ १९, २ ११ रघु १-७१ २ ३, २-७, १ ८६; शा ५-१(च) नद्यादिविषयका—मेघ १-५४; रघु १ १६, १-७१ १ २८, ४ ३२ १०-८९। (छ) पर्वतादिविषयका—र १ १४,१-५८,२ २९; मे० २-८। (ज)वृक्षादिविषयका—र १-५६; शा १ २४। (झ) वृत्तिविषयका—र २-७५। (ञ) वायुविषयका—र ४-८ १०-८२। (ट) अग्निविषयका—र० ११-८१; शा ५-१ । (ठ)मासदिनादिविषयका—र ११-७ १ -८३ २ २ । (ड) वर्णादिविषयका—कु ४ १९, ५ ६१; र १ १६ ४ ६१; शा १ ९, १-२४। (ढ) रागादिविषयका—र ४-६१, १४-५८। (ण)विविधविषयका:— (क) देवविषयका:—रघु २ ३७ २ ४१। (ख) पुरुषविषयका—मेघ १ १५ १ १२, १-५१, १-५२; रघु १ १। (ग) स्त्रीविषयका—मेघ १-४६; रघु २ १ ।

७ भारवेरर्थगौरवम्

महाकविर्भारविः पद्मां सप्तम्यामीश्वरोपाख्यानस्य जनिमापेदे ६३४ ईसवीये क्रिस्तेन 'ऐहोल' शिलालेखेन निर्विवादं निर्णीयते। भारविनाम कविवरोऽयं गीर्वाणगिरो गगने मा रवेरिव चकासति। समधिगतमनेनानुपमं यशः स्वकीयेनार्थगौरवसमन्वितेन किरातार्जुनीयनामधेयेन महाकाव्येन। महाकाव्यमेतस्य गुणवत्त्वेन मापुर्वेण प्रसादेनौजस्व च परिपूर्णम्। कविवरोऽयं न केवलमालीढ् व्याकरणपारङ्गतोऽपि तु नीतिशास्त्रेऽप्यलङ्कार शास्त्रेऽपि महद् वैदग्ध्यं समाहरत्। इतीदमेव तस्याधमारमरितेति दर्शे-दर्शे विपश्चिद्भिः 'भारवेरर्थगौरवम्' इति सादरमुदीर्यते। महाकाव्यस्यैवास्य टीकाकृद् मल्लिनाथः काव्ये

मित्रलाभश्च क्रमोऽपूर्वः। तदाचष्टे—'मित्रलाभस्तु आगमलक्षणः' (११-५२)। विनयः सुधीत्वं च किमिमुपरीक्रमणीयेति प्रतिपादयन्नाह विनयनैव योगिनो मुक्तिं समधिगच्छन्ति। 'योगिनां परिणमन् विमुक्तये, कैन मास्तु विनयः सतां प्रियः' (११-४४), छोटयन्ति यतयः सुधीत्वताम् (११ ४१)। मनोविज्ञानलक्षणेन चूत्तमनिरीक्षणं कुर्वता तेनोच्यते चेतीयाच्च एव हितैषिणं रिपुं वा प्रकटयन्ति। 'विमर्शं कलयीमवाच चेतः, कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा' (१३-६)। अविज्ञातमपि प्रियमिदं वा प्रेक्ष्य जनस्य हृदयं प्रलोडयति। 'अविज्ञातेऽपि वस्तौ हि बलात् प्रह्वायते मनः' (११-८)।

मौलिकविषयाणां स्वरूपविचारे तावत् तेन प्रतिपाद्यते यद् विषयाः परिणामे दुरन्ताः। 'आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः' (११ १२)। अतएव कामानां हेयत्वं प्रतिपादयति। हेयो स्वल्पं च विद्योतते। 'अहेया विप्रलम्भाय, प्रिया विप्रियकारिका। मुहुस्वजातपक्वन्तोऽपि कामाः कष्टा हि दारुणाः' (११ १५)। भोगा मुखदुःखलक्षणाः, भोगप्रवृत्तस्य च विषयाप्तिः सुनिश्चिता। 'भोगान् भोगानिवाहेयान्, अप्यासाद्य दुर्लभान्' (११-२१)। अतो विषयान् विहाय गुणार्जने मनो निवेषम्। 'सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्' (११ ११)। गुणैरेव गौरवं प्राप्यते। 'गुरुत्वं नवन्ति हि गुणा न संहतिः' (१२ १)। गुणैरेव प्रियत्वं प्राप्यते, न तु परिचयमात्रेण। 'गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संहताः' (४-२५)। गुणैरेव सर्वं जगद् वशीकर्तुं पार्यते। 'किमिवास्ति पशु दुष्करं मनस्विभिः' (१२-६)। नीतिविषयकान्यनेकानि सुभाषितान्युपलभ्यन्ते। तान्यतिसूक्ष्म तत्रोल्लिख्यन्ते। तानि च यथायथं विवेचयामि। 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' (१ ४)। तदिदमेव मैत्रीं विरोधं च कुर्वीत मानवः। 'लघुप्रपन् मूर्तिमत्तार्वसंगमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः' (१-८)। न कदीयता युध्येत। 'अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता' (१ २१)। अवन्त्यवोप उदारलक्षणः स्यात्। 'अवन्त्यवोपस्य विहत्तुरापदो, भवन्ति भव्याः स्वयमेव देहिनः' (१ ११)। नाधिकारं कस्मिंश्चिदपि कर्मणि प्रलभेत। 'लघुना विपत्तौ न क्रियाम् (१ १)। एवं एवन्नीतिविषयका बहवोऽत्र सूत्रिताः। यथा — 'प्रकर्षतत्त्वं हि रत्न जवभीः (१ १७) परं कामयतेमनुष्यादृ' (११ १२), 'प्रार्थना उधिकरते विपत्तये' (११ ६१), न धृतिः सहिष्णुता स्वयम्' (१४-२), 'नयहीना हतमन्यते जनः' (१-४१), 'तदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं कृतेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः' (१-५) 'भवन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः (१ १०)।

८ दण्डिनः पदलालित्यम्

महाकवेर्दण्डिनो कवित्वविषये सन्ति बहवो विप्रतिपत्तयः। समासतः पक्षद्वयं मुख्यतयाऽवतार्यते। कैश्चनेयमाख्यायिका पञ्चतन्त्रस्य अन्तिमे चरणेऽस्य कविमुरीकुर्वन्सम्ये च समग्रतया उत्तरार्धे। राजशेखरेण कविरहो प्रबन्धस्य प्रत्येतेति प्रतिपाद्यते। विषयेऽस्मिन्नपि प्रचुरो विवादः। काव्यादर्शो दशकुमारचरितं चेति प्रसिद्धं च तत्रैव स्थीक्रियते दण्डिनः कृतित्वेन। अवन्तिसुन्दरीकथेति लक्ष्यते उपलभ्य इतिवृत्तीयेति मन्यते मनीषिभिः कैश्चित्।

दशकुमारचरितमाभिमत्यैवास्य भारती मदनीयतेति नात्र विप्रतिपत्तिर्विदुषाम्। गद्यकाव्यस्यैतस्य गौरवं पदलालित्यं च प्रेम्णे प्रेम्णे प्रेक्षावतां प्राप्यन्ते प्रमूतानि प्रमुखाणि पूर्वाणि पद्यानि। 'कविदण्डी कविदण्डी कविर्दण्डी न संशयः'। कैश्चन वाल्मीकेरभावस्य व्यानन्तरं दण्डिनमेव महाकवित्वेनाकलयन्ति। 'जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधा ऽभवत्। कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि' । मधुरविजयमहाकाव्यस्य रचयित्री गङ्गादेवी (११८ ई) च दण्डिनो वाचं स्तुत्वा मल्लिनाथमेव मन्यते। आचार्य दण्डिनो वाचामाचान्तामृतवल्गुताम्। विकासो वैदर्भः पन्था विलासमविदर्पणम्।

किं नाम पदलालित्यम्? कथं चैतेन काव्यस्य महत्त्वमभिव्यज्यते? श्रुतिसुखत्वं पदमिति शुक्लत्वं सिद्धत्वं वा पदमित्यभिधीयते। अस्तित्वस्य भावो व्यक्तित्वं मार्दवमिति। पद्य परेषु वाक्येषु शब्दसंपत्तायां वा मार्दवं श्रुतिसुखत्वं वा समुपलभ्यते, तत्र पद लालित्यमिति मन्यते। पदलालित्यं शब्दतौष्ठवं चारुवर्णेति तत्रैवतां चेतांसीति शुभोऽत्र गरिमानं तनुते काव्यस्य। दशकुमारचरिते दृश्यते गुणस्यैतस्य गौरवम्। तत्रेह समासतो लालित्यालित्यम्।

मृदीकारसमारभरितेव भारती दण्डिन आचार्यस्य। सुधीभिरास्वादनीयं समीक्ष्य नीयं चैतस्या मार्दवम्। राजहंसस्येव यशो राजहंसस्य सुषमां समवलोकयन्तु सन्तः। "अनवरतयागवह्निधारानिर्वापितविधिविधानसंभारमाधुरभूसुरनिकरः राजहंसो नाम पनरपेक्ष्मदपतेर्वसोदयनिरवग्रहरूपो भूपो बभूव" (पूर्वपीठिका उच्छ्वास १)। राज हंसस्य महिषी वसुमती लक्ष्मीरिवामृतमथनोद्भवलक्ष्मीमभूदाऽभूत्। 'तस्य वसुमती नाम सुमती क्रीडावती कुक्षेरलभत्' (पू उ १)। मालवेश्वरस्य प्रस्थानवर्णनं कुर्वताऽभिधीयते तेन—'मालवनाथोऽप्यनेकानेकेषूपक्षपनायो विषदः खलिवह एव साधनोऽभिमुखीभूय मूर्धा निर्जगाम' (पू उ १)। राजहंसस्य मालवराजस्य सैन्यसंचलितोऽवर्णयत्। 'राज हंसस्तु प्रसस्तदैन्यसैन्यसंघेसोत्क्रान्तया निर्गत्याविरतं दिग्व स्थाय' (पू उ १)।

विजयार्थं प्रस्थानुकामानां कुमाराणां पमकालंकारालंकृतं वचनमस्ते दण्डिनो नागेभ्यमेवाभिमांसयति। 'कुमाराः मारमिष्यमा रमापरीरम्भा इव मन्मीहरारसो लोपस्थितमौरुषा रणाभिधानेन यानेनाम्बुदयानेन राजवनमकापु।' (पू उ २)। ह्यस्मिन्दिकृतेन्द्रवज्रप्रदर्शनरूपेण दण्डिनां वचनमेतत्—'हस्तु विषमं विग्रहस्थं वस्तु.

पद्मार्चकरणा रचनाभिनीतशिवराजमन्दिरभोगा भोगिनो मयं जनयन्तो निवेशः' (पृ ७ ५)।

आत्मरूपमविद्यमानायां राजकन्यायां वर्णनमेतत् दण्डिन एवमेविधवेषत्वं वर्णन वैदग्ध्यं चाविष्करोति। 'अवगाह्य कन्यान्तःपुरं प्रथमतस्तु मणिप्रदीपेषु 'कुसुमस्तबकपुरित पर्यन्ते पर्यंकतले 'ईषद्विकृतमधुरगुल्मतयि आमुक्तभोगिभवनकम्, अतिस्निग्धवीनांशु कान्तरीयम्, अनतिविस्तृतमुत्तरोदरम् अर्धस्तनाचरकर्णपाशनिभृतकुण्डलम्, आमीलितलोचनेन्दीवरम्, अविभ्रान्तभ्रूलताकम् 'चिरविश्लेषनिर्वेदनिश्चलं सरभ्मोपरोधसङ्कथापिनीमिव सौदामिनीं राजकन्यामपश्यत्।' (उत्तर उ २)

राज्ञो वर्णवर्णनस्य दुहितरमुपवर्णयति। 'तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव भिषः प्राणा इव कुसुमकल्पनः, सौकुमार्यविधिमिश्चितनवमालिका नवमालिका नाम कन्यका।' (उ उ ५)। गिरिवरं च वर्णयन्नाह— अहो रमणीयोऽयं पर्वतनितम्बभागः, कान्त इवेयं गन्धवद्गजकुलपरिका, शिशिरमिदमिन्दीवरदलविभ्रमकरत्वविन्दु चन्द्रकोत्तर गोत्र वारि, रम्योऽयमनेकवर्णकुसुमसञ्चरीभरावनतवनाभोगः।

उत्तरपीठिकायां समग्रः वसमोच्छ्वास ओच्छ्वासरहितः। एवार्थं निवन्धनमपूर्णमद्यत्वं च विद्वाङ्केऽपि विश्वनाथ्ये। ओच्छ्वासपरिहारेऽपि न परिहीयतेऽत्र शब्द लौल्यं पदवाक्यत्वं च। यथा—'आर्य, कदम्बस्यास्य कदम्बनाम कदाचिन्निशायाति नेत्रे। 'सन्ने सेना सकलाचरिता सरभिः, यदनीयति कारणेऽल्पनीयानादरः सेदस्यते'। 'अल्पेन नास्यास्यं संस्पृश्यते'। 'चिरं चरित्वार्यो दीयां'। 'न तस्य शक्यं शक्रेरिवशासनम्'। 'दिष्ट्या दृष्टेयमिदिः। इह जगति हि न निरीहं देहिनं भिषः संजयन्ते। श्रेयांसि च सकलान्यनल्पानां इत्ते संनिहितानि। 'अभिन्दिरेया सिद्धिः, यदसभिधिरिक्षार्यायाम्। कथा खेयं निःसङ्गता या निरगर्ल शास्त्रनं स्याज्जगति। न च निषेधनीया मतीवता गिरः।' 'तच्छरीरं किल्ले निधाय नीयतिरयातिम्'। 'दरवतां शक्तिरयौं वत्सस्य मतेरजेयस्येन्द्रियाणां संस्कारेण मीरजसा नीरजस्कनिष्पन्दाभिनि सदयोक्तिनि तपसि तपस्विजनस्तनिकाशब्दमयस्याभिजातस्वर्दन्तीवस्याकारान्तरस्य सिद्धिरधीत्। बहुभुते विभुते विकचपद्मीव तदयं दृष्टं चिरेण देवो राजवाहनः'। (उत्तर उ ७)

'न मां किल्पं पश्यति, न क्षितपूर्व भाषते न रहस्यानि विवृणोति न इस्ते सृजति न स्वजनेष्वनुकम्पते, नोत्सवेष्वनुगच्छति। मृगयाव्यसनं च निर्दिशति। शाकुन्तले द्वितीयाङ्के वर्णितेन मृगयाव्यसनेन साम्यमेतद्वचसः। 'यथा मृगया लौल्यकारिकी, न तथाऽन्यत्। महोत्सवकर्पादस्थानां स्थैर्यकार्कश्यादिव्यवहादीनि धीरोदात्तवर्णनीयानि विषयासक्तत्वम् अन्यानामवश्यान्तरेषु चित्तचेष्टितज्ञानम्। (उ उ ८)।

एवं संक्षिप्ते दण्डिना कृतौ शब्दपोजनौढत्वमनुपालयमानेन वस्तुपोजनं वर्णन वैदग्ध्यमोढवर्णनपरिहारश्चिन्तं रम्यं वर्णनं युक्तिप्रयुक्तिप्रशस्तं पदे पदे पदवाक्यस्थम्। तत्र मदस्थस्य कृतौ कमनीयतामादधाति।

९ माघे सन्ति त्रयो गुणाः

महाकवेर्मानस्य कस्मिंश्चिदपेक्षति नैकमस्त्वम्। कैश्चनेस्वीकाव्यस्य उपमाप्रधानस्य उपमार्थमस्य अर्थसमवयमामनन्ति, अन्ये पाञ्चालरीत्या मध्यमायाम्। शिशुपालवधभेदे उपलभ्यते। तस्य महाकवेर्महाकाव्यं कैश्चन प्रसुख श्लोकाश्च लाघत समुपलब्धन्त। महाकाव्येनैतेन वास्य महाकवेर्महती महनीया कीर्तिः। महाकाव्यमेतदनुशीलयन्द्विरलेर्हि कोविदैः प्रमीताः प्रभूताः प्रशस्तयोऽस्य काव्यस्य। काव्यस्यैतस्य हृदयं मार्गावलिं वेदितुं इच्छा कैश्चान्यु ध्यते—'त्रयो माघे गतं वयः'। मेघभूतस्य शिशुपालवधस्य पाठ्यपने मावमायुरिति। काव्येऽस्मिन् विषयं शब्दकोपमाश्लोक्य कैश्चान्युच्यते—'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते'। नवसर्गाध्ययनेनैव तमप्रथमशब्दकोपवाप्तिमवतीति। अथ प्रसादगुण माधुर्यगुणं च तमीक्ष्य कैश्चान्युदीर्यते—'काव्येषु माघः' इति। अनपराधनाटकहृतो मुरारिः पाण्डित्य परिपूर्ण नाटकं प्रेक्ष्य कैश्चान्यभिधीयते यन्मुरारिर्निशाविद्धेन्माघे मन व्याधयम्। 'मुरारि पदचिन्ता चेतसा माघे रतिं कुरु'। मारवि तवतोम्यवेन भावावस्थाऽतिशयानं माघ प्रेक्ष्य कैश्चानपि निगद्यते—'यावद् भा भारवेर्भाति तावन्माघस्य नोदयः'। काव्यिदाक्षयौ पम्यं भारवेरपगौरवं दण्डिनश्च पदलालित्यं गुणत्रयमेकत्र प्रेक्ष्य कैश्चानपि माहिषत एतत्—'उपमा कालिदासस्य भारवेरपगौरवम्। दण्डिन पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः'।

गुणत्रयमेतदेकैकशोऽत्र विचिन्यते। प्रथम तावदुपमैव विचारचर्चामारोहति। उपलभ्यते उत्प्रेक्षानामुपमानां प्राचुर्यमत्र। गौराङ्गो नारदः कृतपीतोपवीतो विष्णुरयैतः स्पर्धे घन इव चकासे। 'इतोपवीतं दिमशुभ्रमुपवर्हणेन धनाम्ते तडिता घनैरिव' (शिशु १-७)। वर्धमानोऽतिरम्य इव द्युनदो न च आदृश्य। 'उच्चिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्य पर्याप्तिच्छता। सभौ हि शिष्टैराम्नातो वस्तव्यायामवः स च' (१ १)। न काम्यति दुर्जनः सामवादेन। सामवचनानि तस्य क्रोधदुर्दीपनदेव यथा तसे सर्पिषे वाग्निसिन्दव। 'प्रशमस्येव तदता वर्णिपस्तोयविन्दव' (२ २५)। यथा स्वर्णैरेव वर्णैप्रथितं तमसं संगीतयाख्यम्। 'वर्णैः कविरेव ग्रथितस्य तमग्रं वाक्यस्य तथैव स्वरैरेव स्वरैर्ग्रथितं तमसं संगीतयाख्यम्। 'वर्णैः कविरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव। अनम्वा वाक्यस्याहो गेयस्येव विचिन्तया' (१-७१)। यथा शब्दाः शब्द मर्म्मसुमयमादत्ते तथैव निपुणिरपि दैवं पुरुषायम्बोमयमाम्यते। 'नाक्रम्यते धैर्यिक्ता न निपीदति पौरुषे। शब्दार्थौ सत्कविरिव हर्षं विद्वानपेक्षते' (१-८६)। यथा स्वाभिमाव संचारिमावाः पोषयन्ति, तथैव विभिन्नपि हैवं पुरुषायम्बोमयमाम्यते। 'स्थापिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते मावाः संचारिणो यथा। रसरयैकस्य मूलत्वात्तथा नेतुर्महीभृतः' (२-८७)। अस्मवपत्ता वाक्ये यथा मावरम्बेति तथैव प्रातःकालिकी सन्ध्या रवनिमनुगच्छति। 'अनुपतति विरुपैः पक्षिणा व्याहरन्ती, रवनिमभिरभाता पूर्वसन्ध्या मुतेव (११-४०)। इत्थं दिवसमागाया रम्या' कस्यामिद् मवाकाशं वदनमुदयाद्रिस्थितमुषोमुखमण्डलमिव स्मरामत्र। 'वदनार्पिकन्पुरपाटिच्छदा-विवरदरस्थितविरेखमुखम्' (११ १५)। करस्थमग्रेन यथा स्वरोऽभिवर्धते तथा मुधिरिमुखहस्तवर्णया शिशुमालव वस्तुती

अलामाप्रदे। 'मन्युरमन्दपरुषाक्षरः समदोषकाल इव दैहिनं ज्वरः' (१५ २)। अस्मिन् मयाऽग्नि प्राप्य विनश्यन्ति तथैव दुर्विनो महतामभिमानमाचरन्तः स्वयं यान्ति। 'महत सारता विकल्पयन् निजदोषेण पुमीर्विनश्यति' (११ १५)। अन्यानि च प्रसङ्गानुपमा रूपकान्यत्र समासतो निर्दिश्यन्ते, तानि पठनीयं व्याख्यानानि। (शिशु १-५, २ २८, २ २९, ३ ५९, ३ ४, ४ ११, ६ ४६, ९-७९, १ १८, १५-५, १६-५१, १८ ४, १८-२ , १८ ३५, १८-४ , १८-५ , १९ १ , १९ २२ १९ ४५)।

महती संज्ञाऽऽर्ष्यौरवान्वितानां श्लोकानाम्। कतिपयेऽत्र प्रस्तूयन्ते। पूर्वं एव तमस्काण्डमपहन्तुमीशे। 'कस्ते रोषः साधयितुं क्षमेत कः क्षपाक्षमस्काण्डमखीयमं नमः' (१ १८)। यद् भवि तद् भवतु, परं मोक्षन्ति स्वमानं मानिनः। 'सदाभिमानैकधना हि मानिनः (१-१७)। स्वभावो दुरतिक्रमो जन्मान्तरेष्वप्यनुवर्तते इति क्रमम्। 'स्त्री च योषिदकृतिश्च निश्चला पुंसमन्यैति भावान्तरेष्वपि' (१-७२)। मितमाहितं महतां गुणः। 'महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः' (२ ११)। मानिनो न सहन्तेऽपमानं जातु। 'पराहतं बहुत्वान्न मूर्धानमधिरोहति। स्वस्थादेवापमानेऽपि बोधितस्तत् करं रक्षा' (२ ४६)। स्वार्थसिद्धिरेव सतेषां सम्मीहितम्। 'सतां स्वार्थः सम्मीहते' (१-६५)। सत्यवन्तस्त्व को गुणः? 'अनुज्झितार्थ-सम्बन्धः प्रकृत्यो वृत्तहारः' (२-७१)। रसविद् गुणवत्तमेव काव्ये प्रयुङ्क्ते। 'नैकमोजः प्रशंसन्ति वा रसमार्गविदः क्वचित्' (२-८१)। सामग्रीतैव हेतुनीतिः साधीयसी। 'मृदु व्यवहितं तेजो मोक्षुमर्यन् प्रकम्पते' (२-८५)। महतां साहाय्येन क्षुद्रोऽपि क्षिप्रं क्षिप्यते। 'वृहत्छायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि पश्यति' (२ १०)। किं नाम रमणीयकम्? 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः (४ १७)। सांख्यसिद्धान्तखण्डनम्—'उदासितारं निर्गुणमानसे (१ ११)। योगशास्त्रखण्डनम्—'मैत्र्यादिचित्तपरिकर्म विधो विधाय (४-५५)। अपरिक्षतप्रतिपक्षिका दुःखदा। 'परिभवोऽपरिभवो हि मुहुर्मुहुः' (६ ४५)। न खलोऽवदितर्विरंस्यते। अनुदुह्यते पयस्यनि नहि गोभ्यस्तानि कैतवैः' (१६-२५)। राजाऽत्र परिभावेव व्याप्तिनी। 'परिभावेव गरीयसी यशसा' (१६ ८)। कदूपमि मैत्रं गच्छति। 'अरक्ष्यमपि रोषघ्नं निसर्गादेव मैत्रकम्' (१९-८१)। अन्यानि चार्थगौरवसहितानि प्रसङ्गानि सूक्ष्मानि संक्षेपतो निर्दिश्यन्ते। (शिशु० १ १४, १-७१ १ १९, १ १४ २ ४४ २ ८६, १ ११ १-४१ १-७५ ४ १६, ४ १७, ११-६, ११-४१, ११-४४, १२ १६, १३-२८, १५ १, १५ १४)।

पदलालित्यं तु पदे पदे प्राप्यते मार्गे। केचन नमूना एवात्रोदाह्रियन्ते। 'भव पक्षापक्षमक्षतं पुरः स्फुरपरापरामरकक्षम्। मृदुध्वान्तक्षान्तमक्षोकवत् त सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः' (६ १)। 'वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्भ्रमरसंभ्रमसंभृतशोभया। चलितया विदधे कमनीयतां कमलकोशकलोलदृशान्यया' (६ १४)। 'मधुरया मधुशोधितमाधवी-मधुनमूर्दितमेधितमेधया। मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिधया निभृताक्षरमुत्तमे' (६-२)। पदलालित्यवन्ति पद्यान्यन्यानि। (शिशु १ १६, १-६ , १ ३३, ४ १ ४ १७ ४ २६, ५ ११ ५ १२, ५-५७, ५ ६९, ७-२६, ९ १८, १ १०, ११ १९, १५ १४, २ ५)।

तदेवं दृश्यते गुणवत्तयेऽपि महनीयता माघस्य।

१० बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

निखिलेऽपि संस्कृतवाङ्मये कविकुञ्जरः कादम्बरीतो यथा रचनावातूलेन कल्पनावैचित्र्येण च पदलालित्ये गरिष्ठो वरिष्ठश्च, तथैव गद्यकाव्यनिबन्धने कविरेको बाणो प्रतियोद्धव्यान् सर्वानप्यभिभवति। पदरचनायां केयूरविरोध पदेषूक्तिवैचित्र्येण भाव-गाम्भीर्येण कृतिकौशलेन वाऽपूर्वो रस एव संजायतेऽस्मिन्नेऽपि काव्ये। परं नैवावतैव संभाव्यते गद्यकाव्येऽपि तादृशमनुपमं कान्तिः। गद्यकाव्ये तु भूयान् श्रमोऽपेक्ष्यते। पदे पदे वाग्वैचित्र्यमर्थगाम्भीर्यं भावचैमत्कं कल्पनाकाम्यत्वं च दुर्निवारम्। अतः साधूच्यते- 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'। गद्यकाव्यरूपे दण्डी सुबन्धुरित्येते त्रयोऽपेक्षो बाणेन सर्वं रूपनामग्राहमुल्लेखितौ। पर बाणो गरिष्ठो वरिष्ठश्चेतरां भूयिष्ठया भावाभिव्यक्तया स्वाधिष्ठया शैल्या प्रदिष्टया मनोहरतया श्लेषेण साधुतया प्रेक्षया पदपरिपूत्या च। अतः लोकेन 'बाण कवीनामिह चक्रवर्ती' इत्युक्तम्। तमतादृशं तत्रभवन्तमस्य कृतौ दृश्यते। 'अचिरस्मरणपरा रसभावज्ञा अगल्भनो हरति। सा किं तरुणी? नहि नहि बाणी बाणस्य मधुरशीलस्य'। गङ्गादेव्या सरस्वतीवाग्व्यतिरेक कृतिज्ञस्य निगद्यते। 'वीणापाणि पद्ममुद्रणीयानिकामहारिणीम्। भावयामि कवं वाग्ये महाबाणस्य भारतीम्।'

महाकवेबाणस्य व्यक्तिकाव्यविषये वंशादिविषये च न कश्चन विप्रतिपत्तिः। इत्र चरितस्यादौ तेन वंशादिविवरणं महता विस्तरेणोपक्षाप्यते। अनुकोऽस्य पित्रप्यनुर्जन्मनो राजदेवो च। तस्माद्धे हर्षस्य समकालीनत्वात् व्यक्तिकाव्येऽस्येतीवरसमयताम्याः पूर्वार्धोऽद्यौक्षिप्यते। हर्षचरित कादम्बरी चेति ग्रन्थद्वयमस्य प्रधानतः कृतिरूपेणाद्यौक्षिप्यते। कृतयोऽस्या विद्यावधिषया एव विद्युयम्।

बाणस्य वस्तुविन्यासे वर्णने चापूर्वं वैशारद्यं वीक्ष्य सहृदयचमत्कमनुभवन्ति मनीषिणः। वस्तुनोऽद्भुतमामपि विवृतिं न विजहाति न किञ्चिदुच्यते परस्मै वर्णनेन सर्वं वर्णयितुम्। वर्णनानां व्याप्तित्वात् सर्वाद्यौपलाच्च सूक्ष्मतमविवरणसमन्वितत्वाच्च 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इति भूयोभूयो व्याहियते। एतदेवात्र समासतः समुपस्थाप्यते।

हर्षचरिते कवेर्वर्णनचातुरी बहुधोज्जीव्यते। तेषु मुख्यत उल्लेख्याः प्रस्तुताः सन्ति-मुनूर्योर्नृपस्य प्रभाकरस्य वर्णनम्, दैवम्बुत्सवरितायाः रतीत्सवाभवस्याः वर्णनम्, सिंहासनस्योपदेशः, दिवाकरमित्रस्य राज्यश्रीसन्धनम्। कर्वगरिमा कादम्बरीमेवाभिव्याप्तिष्ठते इत्यत्र नास्ति विप्रतिपत्तिर्विदुषाम्। यत्र तत्र साङ्गोपाङ्गं वर्णनं महता श्रमेण बाणेनोपस्थाप्यते तैत्र प्रस्तुता नाममात्रं दिग्मात्रं प्रस्तूयन्ते। तद्यथा- शुकवर्णनम्, चाण्डालकन्यावर्णनम्, विन्ध्याटवीवर्णनम्, पम्पासरोवर्णनम्, प्रभात वर्णनम्, शबरसेनापतिवर्णनम् हारीतवर्णनम्, आश्रमवर्णनम्, आश्रमिवर्णनम्, सन्ध्यावर्णनम्, उज्जयिनीवर्णनम्, तारापीडवर्णनम्, इन्द्रायुधवर्णनम्, राजभवनवर्णनम्, अन्तःपुरोद्वर्णनम्, विलासवतीवर्णनम् महाश्वेतावर्णनम्, कादम्बरीवर्णनं च। रचना भावादिरूप न संभाव्यते एतेषां विस्तरतो विवेचनम्। ते पद्यपद्य विलोक्या विवेच्याश्च।

पाञ्चाली रीतिरत्रास्ति। 'यत्रार्थस्यो गुणा गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते' इति वामनोक्ते शब्दार्थयोर्गुम्फ समन्वयः समीक्ष्यते। विरलामुक्तमेव तत्र शब्दसन्धि

निबोधयते । यथा किन्नाटवीवर्णने श्लोकत्रयमतमूपरूपम्। 'उन्मदमातङ्गकपोलस्थलगलित-मदजलसेकेनेवानवरतमेदाकर्दमेन मदगन्धिनान्धकारिता, प्रेतापिधनगणैव उदारन्धिन्ध-मूत्रमीपया मदिपाधिधिता च कालायनीव प्रवलितलुब्धीपया रक्तचन्दनार्द्रता च' । वसन्तवर्णने च मायुर्यमभिवर्तितम् । 'कोमलमलयमारुतावकाशरतीक्षणानङ्गप्रबोधकेषु, मधुकरकुलकलकलकाश्रवणकाम्येककुसुमकुड्मलेषु, मधुमासदिवसेषु' ।

तस्य वर्णनानि वनितामिव विभूषणानि विचित्रवचनरचनैरलंकारा' । उपमा रूपकोत्प्रेक्षासंदेहविरोधभ्रान्तिपरिणामैकावस्यावशेऽलंकारा पदे पदे प्राप्यन्ते वचनरचनेषु । परिसंख्या यथा शूद्रकवर्णने—'परिमथ्य रजनि क्षितिजानि पाटवति मही चिरकर्मसु वर्षत्करा, खेषु वैक्लव्या, कामेषु दहनत्वा, धातुषु क्रिया' । विरोधाभासो यथा शूद्रकवर्णने—'आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलावत्तमम्, अत्यन्तक्षुद्रस्वभावमपि कृतचरित्रम्' । श्लेषमूलोपमा यथा बाणभट्टकन्यावर्णने—'नक्षत्रमालामिव विचित्रवर्णामरणभूषिताम्, मूर्च्छामिव मनो हारिणीम्, दिव्यौषधिमिवाकुमीनाम्, निद्रामिव लोचनप्रीतिकरीम् अमूर्तामिव स्वर्ग-र्द्धिम्' । किन्नाटवीवर्णने उपमा यथा—'चन्द्रमूर्तिरिव शुक्लमृगलक्षणार्थानुगता हरिणा प्यालिता च, जनकीव प्रशस्तकुलजन्मा निशाचरपरिगृहीता च' । विरोधाभासो यथा किन्नाटवीवर्णने—'अपरिमितबहुकण्टकापि सत्पर्णोन्मोचिता, क्रूरत्वापि मुनिजन सेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा' । विरोधाभासो यथा वरसेनापतिवर्णने—'अभिनवयौवन मपि धर्मितबहुवचनम्, कृष्णमप्यहृदयम् स्वच्छन्दचारमपि हृतैकदारम् । उत्प्रेक्षा यथा सन्ध्यावर्णने—'अपरतरसन्ध्यासि पतिते दिनकरे पतनवेगोत्थितमन्धकारमिकर मिव तापसगणमपरमपचारम्' । श्लेषो यथा राजभवनवर्णने—'उच्चकुलविगतमिव विविध वर्णभेदविप्रतिपत्तिप्रयत्ननाभिनवार्थसंचयम्, नारकमिव पापकाकुद्योभितम्, पुरुषमिव विद्या गर्वदर्पितसकलजनलोभम्, व्याकरणमिव प्रथमसंज्ञोत्तमपुरुषविभक्तिक्रियानेकादेश-कारकवाक्यसंधानविशेषवचनसंचयसुस्थितम्' । श्लेषः सन्ध्यावर्णने यथा—'क्रमेण च दिनेऽनुगत इवासुरतमुपलभ्य समुत्तरीयितेरुणत्विषम्' । एकावली यथा महाश्वेता-वर्णने—'क्रमेण च वृत्ते मे वयसि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्' ।

बाणः विकटसमस्तपदीर्घवाक्यप्रयोगमतु प्रसृत्य सुपदन्यासां वाक्यावलीम्। स चमत्कृत्य दक्षो दीपवाक्यरचनायां तमेव पदुर्बभूवाक्यप्रयोगेऽपि। यत्र भावप्राधान्यौचित्यं गौरवं च तत्र सरला सुपदा वाक्यावली, इतरत्र च विकटा समस्ता दीर्घा च। यथा शूद्रकनाटोपदेहेऽर्थगौरवात् सुपदन्यासः—'मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भरश्च न प्रणमति देवताभ्यः, न पूजयति द्विजातीन्, न मानयति मान्यान्, मार्दवमपनीयान्, नाभ्युत्तिष्ठति गुरून्' । महाश्वेताविलापे, कादम्बकथारम्भे सुपदानि वाक्यानि । उज्जयिनीवर्णने, राजभवनवर्णने, शूद्रकनाटोपदेशे, पुण्डरीकाद्य कपिञ्जलोपदेशे च तत्तद्रसे वाक्यसंपूर्णा वचनचातुरी । स यथा प्रस्तावौचित्यं प्रसङ्ग वस्तु यथा विषये स्वस्य तन्त्रस्य मम्मा कांचित् कथा घटना वापेक्षते ।

११ कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

श्रीभवभूतिः कान्यकुब्जेश्वरस्य श्रीमतो यशोवर्मणः सभ्यितो महाकविरिदानीं सर्वेषां सुधियामेकमत्यम्। महाकविना वाल्मीकिना इयत्परिते महाकविगणनाप्रसङ्गे नास्माभिः यानमस्मद्यायोति महाकवेर्वाल्मीकेः पूर्वं अनिकाङ्क्षमस्य नेति निर्णीयते। एवं भवभूतेर्जनिकाल ७ ईसवीयस्य शतिमौ स्थीक्रियते। विदर्भ (बरार)-प्रदेशस्थपद्मपुरनगरवास्तव्यो ऽयं नाम्ना श्रीकण्ठोऽभवत्। पितामहोऽस्य महागोपाख्यो जनको नीलकण्ठो, जननी जातुकर्णी गुरवश्च ज्ञाननिधिनाम। नाटकत्रयमस्य समुपलभ्यते—महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् उत्तररामचरितं च। व्याकरणन्यायमीमांसाशास्त्रेषु निष्णातत्वादेव 'पद वाक्यप्रमाणज्ञ इत्युपाधिसमङ्कटाऽभूत्। वदेष्वप्येषु च शास्त्रेष्वस्याप्याहता गतिः। वाग्देवी वरयेव तमभ्यवर्ततेति तस्य स्वयमेवोद्घोष्यते तेन। 'यं ब्रह्माणमिवं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते (उत्तर १ २)।

करुणरसनिस्यन्दे नातिशेतेऽन्यो महाकविमहाकविमम्। अतः श्लाघ्यते—'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते। करुणरसोद्रेकप्रलोक्येव कवीरेतस्य इतिषु इतिभिः इत्यानि कतिपयानि प्रशस्तपद्यानि। आर्यासप्तशत्यां (१ १६) श्रीगोवर्धनाचार्यो भवभूतेर्भारतीं भूधरतुलया गोवर्धनमिमीते। तत्कृतकाव्ये प्रायशोऽपि स्वतन्त्रयेषां तु का कथा। 'भवभूते संक्रान्ताद् भूधरभूरेव भारती भाति। एतत्कृतकाव्ये किमन्यया रोदिति गाथा'। कारुण्ये कालिदासादप्यतिरिच्यते। अत उच्यते—'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।

करुणरसप्रवाहपरीक्षया परीक्ष्यते चेन्महाकवयमस्य तर्हि उत्तररामचरितमेव सर्वातिशायि। यत्र च कारुण्यरसनिस्यन्दो न तथाऽन्यत्र। किं कारुण्यम्! करुणरसस्य प्रवाह एव कारुण्यमिति। इदमत्रावधेयम्। भवभूतिः करुणरसं रसत्वेनैव नातिशेतेऽपि तु रसानां सर्वेषां मूलभूतत्वेन करुणमेवैकं रसं मनुते। रसा अन्येऽस्यैव विवर्तरूपेण परिणामरूपेण वा परिणमन्ते इति करुणरसस्य महत्त्वमातिष्ठते। आह च—'एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्, भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्। आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्, अम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समग्रम् (उत्तर ३ ४७)। उत्तररामचरिते चोदाहियते ऽत्रत्य वाक्यमन्ये रसाः करुणरसमूलका इति। एतदेवात्र विविच्यते उदाहियते च।

उत्तररामचरितस्य प्रथमेऽङ्के आदावेव पितृपितृवियोगविषण्णां जानकीमाश्वासयति दाशरथिः। एतत्प्रथमस्य विष्कम्भकस्य व्यापारः। शंकरो द्वारितामेनां प्रत्यवायपरिहस्तां (उ १ ८)। बन्धुजनवियोगस्य सन्तापकारित्वं सीतेवाभिधत्ते। 'सन्तापकारिणा बन्धुजन विप्रयोगेण भवितव्यं' (अंक १)। रामस्य संसारस्याऽनुरूपं विलपयति। 'एते हि हृदयमम भिन्दन्ति संसारमायाः' (अंक १)। विप्रयोगेण चित्रितानि वृत्तानि दृष्ट्वा समुच्छ्वसन्तो तां कारुण्यमूर्तिः। जानकी अग्निपरीक्षाभिधानं निरीक्ष्य विलपन्तीं वैदेहीमाश्वासयति—'प्रिये मनः किल अनेरनुरञ्जनीयम्' (१ १४)। जानकीविरहपरिचयं प्रेक्ष्य दिवंगतं तातं दशरथं चिन्तयतो विलपति चेतो रघूद्वहस्य। 'जीवन्तु तातपादाः ते हि नो दिवसा गताः' (१ १९)। क्षणेनेमं शृंगारमपि करुणरसमूलकं व्याचष्टे। यथा—करुणरसं पुरो कामनं चित्रतो हेतां जनस्थानमध्ये प्रणयिनि मिथो यामिनीयापनं वर्णयति— किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगाद् अविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण (१ ३७)। चित्रे

वचनहृतजानकीहरणदुःखं वीक्ष्य लिखते चेतआदचरित्रस्य रामस्य । जनस्थाने सति तिहरणे कथमवत्यत राम इति ब्रुवन्तो वर्णयति तस्य कारुण्यपूर्णां स्थितिम् । तस्य प्रवर्तं विलोक्य शबाणोऽप्यवत्, वज्रस्यापि हृदयं व्यदरत् । 'अपेदं रक्षोभिः क्वापि वा रोदिष्यति वत्सेति वज्रस्य हृदयम्' (१ २८)। सीताहरणविवरणेन विषण्णस्य रामस्य दारुणमेकस्यां वर्णयति वाग्यत्तरं च मुक्ताहारेणोपमिमीते । 'अयं शाक्त् त्रुटित इव मुक्तामणिसरो• (१ २९)। प्रियविवोगजन्मा दुःखाग्निः कथं पीडयति रामतमिति व्याहरति—'दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विष्प्यमानो दुर्मर्षत्रय इव वेदनां तनोति' (१ ३)। मारुतवशामके गिरौ स्वीयां मोहावस्थां स्मरं स्मरं सीदति स्वात्मनं मूर्छोऽपि प्रवस्य । 'विरम विरम्यतः परं न क्षमोऽस्मि प्रत्याहर्तुं स पुनरिव मे जानकीविप्रयोगं' (१ ३३)। रामवाङ्मुपवानस्तेनाभिन्न वदैव निःश्वसु स्वपिति सीता तावदेव समुपतिष्ठते जनस्थानस्थो विषमो विचारहेतुर्विप्रयोगः । 'हा हा विद्धं विषमिव तर्कतः प्रसरम्' (१ ४)। मैथिल्या वने प्रवासनं व्यभाव शकुन्तलमपत्यमिव प्रतीयते । 'दौष्यात् यद्यकुन्तिकामिव' (१ ४५)। पित्रवेम्यो वर्तिवितरणमिव चैतत्कर्म । विसम्यद् वर्तिमिव दारुणः विपाकः' (१ ४९)। सीतास्मरणेनेदानीमात्मा स्वयमनुभवति रामस्तां । 'दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमागतम्' (१ ५७)।

रामकृतप्रस्तावेन दण्डकारण्यं पञ्चवटीं च प्राप्य जानकीसहवासं स्मरं स्मरं विषयैतेमां मनो मनस्विनो रामस्य । रामोऽभिधत्ते—'विरात् वैदारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः (२ २६)। सीताप्रवासनेन पापिनमात्मानं मन्यमान पञ्चवटीदर्शनायासं सन्यते । 'वत्सा ते दिक्षास्तया सह ' (२ २८)। मुखं चित्रयति रामावस्थाम्, कथं पुरुषकम् व्यथयति रामं सीताविवासनशोकः । 'अनिर्मितो मर्मीरत्नादन्तर्गूढघनव्यथः । पुरुषाक प्रतीकाशो रामस्य कस्को रसः' (२ १)। रामस्य दुःखसमां जानकीं कथयन्त मूर्तिमेव गमयति । 'कथनस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी' (२ ४)। द्वौर्य धाक् शोषयति शरीरं सीतायाः । 'किंतत्प्रमिव मुग्धं (२-५)। रामः पञ्चवटीदर्शनेन मूर्छामपि प्रापद्यते । दुःखाग्निरुद्दीपयति तम् । 'अन्तर्दीनस्य दुःखाग्नेः• (२-९)। शोकाग्निपीडितो नाग्निशमते रामः स्वकार्यात् । 'नवकुवलयलिप्तं '(२ २२)। बाष्पस्त्री लोचनाभ्यां सीतायां उदन्तं पृच्छति रामम् । 'अयि कठोर वया किल ते प्रियम् '(२-२७)। तथाकथयति रामः लक्ष्मणस्तस्य मनस्तम् । 'अन्तैकवासनकुरङ्ग लक्ष्मणिरङ्कवतिका निपतं विलुप्ता' (२ ३८)। शोकधामे विलपनमेव चित्तनिग्रहोपायः प्रस्तूयते कविना । 'पूरामीहे तदागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया । शोकधामे च हृदयं प्रलापैरेव पार्यते' (२ ४९)। रामः स्वावस्थां वर्णयति—कथमन्तस्तापस्तापयति तनूं, न तु हरति जीवितम् । 'दहति हृदयं शोकोद्रेकात्•' (२ ५१)। अन्ये च करुणरसाकृष्टाः प्रमुखाः श्लोका दिङ्मात्रमत्र निर्दिश्यन्ते । ते यथाक्रमं विवेच्याः । न किञ्च (२ ५२) कथं स्थिरस्तीव (२ ५५), वेलोल्लोल (२ ५६) हा हा देवि (२ ५८) उपधानां (२ ५४), अवसे• (४ १), रुदतान•(४-८), पदस्थाः (४ १४), वस्त्रायास्य•(४-२१), मूर्छां लभ्य (४-२३), विना सीतादेम्या•(५ २०) चिरं ध्यात्वा (५ २८) रामस्य•(५ ४) अनुभव• (५-४१), जनकजा• (५ ४२), विसम्मर (७-२), सीतारिरं (७-४), रक्षमाणेव (७-७)।

१२ नैषधं विद्वदौषधम्

श्रीहर्षमहाकवे: कृतिर्नैषधचरितं कस्य न हृतिनो मानसमावर्जयति। हरत्य-
त्यामन्यतमेया कृतिः। मारवेः किरातार्जुनीयं माघस्य शिशुपालवधं श्रीहर्षस्य नैषधचरितं
चेति त्रयमेतद् हरत्यर्था गण्यते। उत्तरयोरुत्तरमेवामुत्कर्षापकर्षौ रीक्रियते। एतद्भावात्मकमेवै
तदुद्गीर्यते—'तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः। उदिते नैषधे काव्ये क्व
माघः क्व च भारविः॥

महाकवेरेतस्य जनकः श्रीहीरो जननी मामल्लदेवी च (नैषध १ १४९)। काव्य-
कुञ्जेश्वरस्य जयन्तस्यावतमाधिश्रियत् कविरयम्, तदादरमिच्छद्भ च। 'ताम्बूल-
द्वयमासनं च लभते यः काव्यकुञ्जेश्वरात्' (नै २२ १५१)। अतोऽस्य अनिकाशो
दारद्वयताम्या उत्तरपीठीक्रियते। श्रीहर्षो महाकविर्महायोगी च। उभयत्रापि चरमोत्कर्षं
क्षेमे। 'या साधारकुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदाप्लवम्। वाक्काव्यं मधुवर्षि' (नै २१
१५१)। सगमन्तस्थैरेषु प्रत्याहरन्त्यान्यस्य नामग्राहं ग्रथते तेन। तत्र चादैतवेदान्त
प्रतिपादकः लण्डनखण्डखाद्यमेवैको ग्रन्थः सागमतुलकम्यतेऽन्ये च तुल्यभाषा एव।
खाद्यमेवत् तस्य महाकाव्यं ग्रन्थपरत्वात् विन्यस्तास्तेन महता श्रमेण। अतः श्रमदाप्य
एव महाकाव्यस्यैतस्याधिगमोऽपि। 'ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्ना
न्मया। श्रोतुमन्यमना इदेन पठितौ माऽस्मिन् खलः खेष्टु। अन्याराद्यु स्वल्पोहवद
दग्रन्थि समासादवलेवत्काव्यरसार्मिमज्जनमुत्तमाखजनं सज्जनः'। (नै १२ १५१)।
रमणीव्यक्ष्यं हरति कैतः सचेतसो यून एव न तु किशोरयाम्। तथैव श्रीहर्षोः
सुधीभिरेवास्वादनीया न तु प्राकृतमर्त्यै। 'यथा यूनस्तदत् परमरमणीयापि रमणी,
कुमारीणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते। मधुस्निग्धेदन्तमदयति सुधीमूष सुधियः किमरसा
नाम स्यादरतपुरुषान्नादरभरे। (नै १२ १५)।

श्रीहर्षो महाकविमहाराजनिको महावैयाकरणस्यैरादिविद्विद्वत्स्वगुणगणतम
त्यादतिशेते सर्वानन्यान् महाकवीन् पाण्डित्यप्रदर्शने वाग्वैभवे हरिरचनाया माधामि
श्रतौ शाब्दगम्भीरकल्पने विद्यावैशारद्ये वक्रोक्तिव्यवहारे च। अनुपमवैदुष्यवैभवाविर्भावात्
पाण्डित्यपुटपरिपाकप्रतीकाय प्रतीयते प्रकरणोऽत्र। नैष्कर्म्यात्मनिष्णातरसानुभवता गति
रेति 'नैषधं विद्वदौषधम्' इति साहादमुद्घाष्यते यशोऽत्र सुधीभिः। प्रतिपदं पदस्य
स्थितावेसगात् 'नैषधे पदलालित्यम्' इत्यप्यभिधीयते। एतत्रैव समासतोऽत्र प्रस्तूयते।
विद्वत्तिस्च विद्वद्भि स्वयमेवास्मूया।

पदस्थित्यवस्थाः कैश्चन श्लोका अत्र दिङ्मात्रमुदाहियन्ते। अपारि पद्येषु तदद्
भिषा पुना (नैषध १ १), मनोरथेन स्वरतोऽत्र नक्र (नै १ १९) अहो अहोभि-
महिमा हिमागमे (नै १ ४१) अलं नलं एवमुमी दिनागमन् (नै १ ५४)
चक्रन्मतोऽत्र मरारव इव (नै १-६६) दिने दिने स्व तनुरेषि दैवधिक (नै १),
मदेकपुत्रा जननी जरातुर (नै १ ११५) मुहूर्तमात्रं मनसिन्यसा दृशा (नै
१ ११६) नलिनं मलिनविमुन्मती (२-२१) कथाभि वैरभि गुणेश्वरे (१ ११६)
तदस्या कदया दिश दृशा (४-७२) ओदैयदैयन्तिकानपि वरवधार (११ १५)
कुमरमुखरुदेवतीममोदा (११ १४६), शृङ्गारसङ्गारमुपाकरोत्र (२१-५७)।

विविधविद्यापारङ्गत्वा गौरवं । विविधदर्शनसिद्धान्तानां व्याकरणादिशास्त्र शब्दान्तानां चास्त्रेत्वात् सम्भवते नैषधचरिते महत् काठिन्यम् । अतो विद्वदौषधमेतत् काव्यमुच्यते । एतदेवात्रातिसंक्षेपतो निरूप्यते विविधेषु च । (१) श्लेषप्रयोगः—चेतो नर्म कामयते मदीयम् (१ ६७) श्लेषमूलकमर्थान्तरमेतत्य । त्रयोदशसर्गे पञ्चनदी वर्णने (११ १–१४) सर्वेऽपि श्लोका द्व्यर्थकाश्लेषमया वा । 'देव पतिर्विद्युपि नैषध राजगत्वा ' (११–१४) पञ्चार्थकश्लेषत्वम्। अन्ये च कैचन श्लेषमूलाः श्लोकाः—१–१२, १–७७, १–८१ १–१११, १–११५, स्यादस्वा नर्मदं विना न दत्ते तापस्य कोऽपि क्षम (४–११६)। (२) व्याकरणसिद्धान्तवर्णनम्—क्रियेत चेत्साधुविमर्शि चिन्ता (१–२१) इत्यत्र 'अपदं न प्रयुञ्जीत' इत्यस्य वर्णनम्। किं स्थानिकावमवत्व (१०–११६) इत्यत्र स्थानिवदादेशो (१–१–५६) इति सूत्रस्य। अपवर्गे तृतीयेति मतः पाणिनेरपि (१७–७) इत्यत्र अपवर्गे तृतीया' (२–१–६) इति सूत्रस्य। 'ततः स्थानिनौ को (११–६) इत्यत्र तुम्प्रोस्थाव्द० (७–१–१५) इति सूत्रस्य। अथैतिशोभाचरणप्रचारयैः (१–४) इत्यनेन 'चतुर्भिः प्रकारैर्विशेषमुक्ता भवति (महाभाष्य, प्रथमाह्निक) इत्यस्य। एकशेषः (१–८१, ७–५९), आदेशः (८–१६ १०–११६), अपादानम् (१७–११८), सु-संज्ञा (१९–३१), समम् (२१–१५२), आम्रेडितम् (२१–१५६)। (३) सांख्यसिद्धान्तवर्णनम्—सत्कार्यवादः—नास्ति अन्यजनकव्यक्ति-भेदः (५–९४)। (४) योग०—सम्यग्ज्ञानसमाधि—सम्यग्ज्ञानवानितरतमः समपादि (२१–११८)। (५) न्याय-वैशेषिक०—परमाणुवादः—आद्यापि द्व्यणुकक्षरपरमाणु-पुञ्जम् (३–१२५), मनसोऽप्यणुत्वम्—मनोभिरासीदनणुप्रमाणैः (३–१७), न्यायस्य षोडशपदार्थलक्षणम्—द्विषोदितैः षोडशभिः पदार्थैः (१ –८२), प्रत्यक्षलक्षणम् (१७–१४५), न्यायाभिमतमोक्षस्य परिहासः—मुक्तये यः शिलात्वाय (१७–७५) वैशेषिकाभिमत-तमःस्वरूपपरिहासः—मोहकृन्मधुः खलु वर्णनं तत् (२२–१५)। (६) मीमांसा०—देवानामरूपित्व मन्त्ररूपित्वं च—विश्वस्य (५–१९), प्रत्यक्षत्वम् (१४–७१)। स्वतःप्रामाण्यम्—स्वत एव स्वां परार्थता (२–६१) मानस्य क्रमाधीनत्वमीश्वर धीनत्वं वा—अनादिवाक्यिस्वपरम्परया (६–१ २), श्रुतीनां प्रामाण्यम्—श्रुतिं प्रमत्व विधिताः (१७–६१)। (७) वेदान्त०—ब्रह्मणोऽद्वैतकारः—ब्रह्मैव चेतांसि प्रवस्ता नाम् (३–१), मुक्तदशा—सा मुक्तसंसारि० (८ १५) लिंगशरीरम्—न तं मनस्तच्च न कायवायवः (९– ४), अद्वैतवादस्य तात्त्विकत्वम्—अद्वैततत्त्व इव स्वतरेऽपि लोकाः (११–३६)। (८) बौद्ध०—बौद्धाभिमतः शून्यवादो विज्ञानवाद साकारवादश्च—शून्यात्मतावादमयोदरेव (१ –८८)। (९) जैन०—जैनाभिमतरत्नत्रयम्—स्यैर्शि रत्नत्रितये जिनेन (९–७१)। (१०) चार्वाकदर्शनम्—वर्णनमेतस्य श्लोकयो र्द्वयो (१७–३६–८६) विस्तरतः प्राप्यते। एकमेव वेदानां वेदाङ्गानामन्येषां च विषयाणामत्र प्रतिपदं वर्णनं प्राप्यते। विविधशास्त्रादिप्रतिपादितसिद्धान्तवर्णनादेवास्य महाकाव्यस्य प्रतिपदं विद्वद्भोग्यत्वमायाति। अतः साधूच्यते—नैषधं विद्वदौषधम्।

१३ भारतीया संस्कृतिः

भारतीयसंस्कृतेर्विशृतिविचारे बहवोऽनुयोगाः समापतन्ति चेतसि । तेषां समासतोऽत्र विवरणमुपस्थाप्यते । का नाम संस्कृतिः ? कथमियमुपकरोत्यात्मनो मनसो ह्यनस्य देहस्य संसृतेर्वा ? हेयोपादेयापेक्षया वेयं ? उपादेया चेत्सा किं स्यात् स्वरूपमस्याः साम्प्रतिक्या लोकसंस्थित्या ? कालावद् प्रातिस्विकत्वो भारतीयसंस्कृतेः ? किमिव हि साम्यं क्षेममिह लोकस्य संस्कृत्याऽऽत्मना ? कानि च सन्ति कारणानि विश्वसंस्कृताबादतेरस्याः ? इत्यादयः । संस्करणं परिष्करणं चेतस आत्मनो वा संस्कृतिरिति समभिधीयते । सा नाम संस्कृतिर्या व्यपनयति मलं मनसोऽज्ञानावरणमात्मनश्च । पापापनयपूर्वकमेव प्रसादयति स्वान्तं, दुर्भावदमनपूर्वकं संस्थापयति स्वैरं चेतसि मनःशुद्धिपुरःसरं पावयत्या त्मानमपहरति च चित्तभ्रमम् । संस्कृतिरेवैषा चेतः प्रसादयति, मनोऽमलीकुरुते दुर्भावान् दमयते दुर्गुणान् वारयति, पापात्मपाकुरुते, दुःखहन्तानि दहति, ज्ञानज्योतिर्जम्भयति, अविद्याविमोऽग्रहन्ति, भूतिं भावयति, सुखं साधयति भूतिं धारयति गुणानागमयति, तत्त्वं व्यापयति, शान्तिं समादधाति च । न केवलमेषोपकर्त्री व्यष्टेरेवापि तु समष्टेरपि जीवनभूता । उपकरोति चैषाऽऽत्मनो मनसो लोकस्य राष्ट्रस्य संसृतेश्च । अस्यसमेषोपादेया सर्वैरेव स्वसुखमभीप्सुभिः । स्वोन्नतिमभीप्सता न खल्वस्या कैनाप्येषा हातुमुपेक्षितुं वा । उपेक्षितेयमिच्छा वा परिवंस्यते स्वात्मविनाशाय लोकाहिताय च । अङ्गीकृतेऽस्या उपादेयत्वं तत्रैव स्यादस्याः स्वरूपं यत् साम्प्रतिक्या लोकसंस्थित्या नातिवर्तं अभिमतं । विविधाचारविचारवादसमाकुले विश्वेऽस्मिन् सैव संस्कृतिरुपादेयतामाप्स्यति या समेषां स्वान्तेषु स्वभावनिर्माणपुरःसरं विश्वहितं विश्वसंस्कृत्यं विश्वोपकरणं चादर्शत्वेनोरसी कुर्यात् । अतः शिष्यसदा यद् विश्वजनीना संस्कृतिरेव साम्प्रतमुपादानमर्हति, सैव च तापत्रयसन्तप्तं जगत् तापापनयनेन सुखनिधानं सम्पादयितुं प्रभवति ।

भारतीयसंस्कृते कारणेन प्रातिस्विकत्वो मुख्या विशेषता वाऽत्र प्रलूयन्ते । (१) धर्मप्राधान्यम्—मानवेषु धर्मप्राधान्यमेव तान् व्यवच्छेदयति पशुभ्यः । अत उक्तम्—'धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः' । नहि धर्मपदेन कश्चन सम्प्रदायविशेषोऽत्र विवक्षितः । जगद्धारकाणि मूलतत्त्वानि यमाश्रयन्ति व्यापकानि शास्त्रेषु धर्मपदवाच्यानि । तदेवोक्तम्—'धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः । यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः' । यमास्तु व्याख्याता योगदर्शने—'अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः (योग २ ३०) । एत एव सार्वत्रिकाः सार्वभौमा महाव्रतमित्युच्यन्ते—'जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् (योग २ ३१)। यदत्रैहिकमामुष्मिकं श्रेयसं श्रेयसाधनं वा तत् सर्वं इति व्यवस्थापितं वैशेषिकदर्शनकृता कणादेन यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः । (२) आध्यात्मिकी भावना—निरिक्ष्यमाणं संस्कृतवाङ्मयं स्पष्टं भावनवाऽत्मना । भावनैषा चेतः प्रसादयति आत्मानं मोक्षाधिगमं प्रति प्रेरयति । उपनिषत्सु गीतायां चारुणा भावनाया वर्णितं विविधं महत्त्वम् । अध्यात्मप्रधा प्रवर्तते मनसि सद्गुरवता तत्त्वानुभूतिरेवार्यादिकं च । (३) पारलौकिकी भावना—जगदिदं विनश्वरं, कीर्तिरेवैकाऽविनाशिनी । मौलिका निष्ठा इमे आपातरम्याः पदस्थरीतास्तिनिश्च । एषामाश्रयेण पतनं सुलभं, दुर्भावाश्रिः सुलभः, दुर्गं तु नितरां

दुर्लभम्। एतस्मादेव हेतोर्धीराः सुकृतिनश्च कर्त्तव्यं प्रमुखं मन्यानाः विषयसुखानि विहाय ग्रामान् तृणवदगण्यन्तः तस्मादिषु वैराग्यति देवमे। (४) सदाचारपालनम्—'आचारः परमो धर्मः' इति सिद्धान्तमाश्रित्य सदाचारः सर्वोत्तमं तप इति च पालनीयः। अत उक्तं महाभारते—'वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमेति च याति च। अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः'। अशुचयादिपालनेनेन्द्रियनिग्रहो मनसो दमश्च पालनीयः। (५) वर्णव्यवस्था—ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रभेदात्चत्वार इमे वर्णाः। यो यादृशं कर्म कुरुते तादृशं वर्णमाप्नोति। सर्वे वर्णाः स्वं स्वं कर्म चिरतीरम्। इदमिहावधेयम्—आश्रमेकदेशो वर्णव्यवस्था स्वीक्रियते, न तु जातिप्रथा। जन्मना जातिरिति कर्मणा वर्ण इति। वर्णो वृणोतेः। अनो यत्कर्म वृणोति स तस्य वर्णः। जातिप्रथा तदोप्य हेयत्वेन च, परं वर्णव्यवस्था निर्दोषोपादेया च। (६) आश्रमव्यवस्था—ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासस्वभावात्चत्वार एते आश्रमाः। स्वयोऽनुक्रममाश्रममाश्रयेत्, तदाश्रमनिर्दिष्टनियमान् पालयेच्च। (७) कर्मवादः—मनुष्येण सदाऽनासक्तिभावनया कर्म कार्यमिति। इदस्य कर्मवादस्य गीतायां सुनिरूपणम्। सत्कर्मणा पुण्यं दुष्कर्मणा पापं चाप्नोति। 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'। 'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति' (बृहदारण्यकम्)। (८) पुनर्जन्मवादः—कर्मानुरूपं सर्वस्यापि जन्तोः पुनर्जन्म भवति। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' (गीता २-२७)। आमामिसदृष्टकर्मणां केषाञ्चन फलभोगे निःशेषे सत्यपि सञ्चितानि। (९) मोक्षः—मोक्षावाप्तिः परमः पुरुषार्थः। मोक्षमधिगम्य न च पुनरावर्तन्ते। केचित् मतेन निरतिशयं निःश्रेयसमुपलभ्योपलभ्य तेऽप्यावर्तन्त इति। अनाभिज्ञा सर्वकर्मक्षयाद् मोक्षावाप्तिमन्यतीति। (१०) श्रुतीनां प्रामाण्यम्—वेदाः स्वतःप्रमाणस्वरूपाः, अन्ये तु तन्मूलकं प्रामाण्यं मन्यन्तेऽतस्ते परतःप्रमाणस्वरूपाः। मनुष्यदिशा कर्मानुष्ठानेन भेदोऽज्ञातिस्वरूपपाठश्चरणेन दुःखाधिगमश्च। (११) यज्ञस्य महत्त्वम्—सर्वैरेव जनैः पञ्च यज्ञा दैनिककर्तव्यत्वेनानुष्ठेयाः। यज्ञानुष्ठानेनात्मप्रसादनं देवप्रसादनं लोकसंग्रहश्च क्रियते। (१२) सत्यपरिपालनम्—मनसा वाचा कर्मणा सत्यमुपजीव्यानृतद्वेष्यः। सर्वथा सत्यं स्वदारेत्नाश्रयम्। सत्यमेव जयते नानृतम्। तथोक्तम्—सत्यमेव जयते नानृतम्। (१३) अहिंसापालनम्—'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यहिंसैव मेदधर्मत्वेनाङ्गीक्रियते। अहिंसयैव साध्या विरक्षणीयाः। (१४) त्यागमहत्त्वम्—अनासक्तेनात्मना जगति व्यवहरेत्। न परस्वमभीप्सेत्। पुरुषार्थोपार्जितमेवोपभुञ्जीत। तथा चोक्तं वेदे—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' (मनु ४०-१)। (१५) तपोमयं जीवनम्—तपसैव शुध्यति जीवनं मनश्च प्रसीदति। भोगवासनाभिर्विमुच्यते स्वात्मनम्। (१६) मातृपितृगुरुभक्तिः—मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव इत्येषा देवतुल्यसम्मान्यायते। शुभूषणैषा शिष्यति सकलमिह संसृतौ।

विभक्तिस्य विषयोन्नतेश्च सर्वा एव मूलभूता भावनाः संक्षेपावस्थासुपक्रम्यन्ते। एतत्सर्वभावनेन सर्वविधा समुन्नतिः सुकृतस्य राष्ट्रस्य विश्वस्य च। गुणवैशिष्ट्यमेवैतस्याः कर्मणस्तस्माद्विधते विश्वसंस्कृत्याविषम्।

१४ संस्कृतस्य रक्षार्थं प्रसाराय चोपायाः

सुविदितमेतत् सर्वेषामपि सौमुदीमतां यद् भारतीया संस्कृतिर्नाधिगन्तुं पार्यते संस्कृतज्ञानमन्तरा। संस्कृतिमन्तरेण निर्जीवं जीवनं जीवितम्। संस्कृतिर्हि स्वान्तस्य संस्कर्त्री सद्भावानां भावयित्री गुणगणस्य ग्राहयित्री धैर्यस्य धारयित्री, दमस्य दात्री, सदाचारस्य संचारयित्री दुर्गुणवर्गस्य दमयित्री अविद्या-पङ्कमग्नस्यापन्नोद्धर्त्री, आत्मा वबोधस्यावगमयित्री मुक्तस्य साधयित्री शान्तेः सम्पादी च काचिदनुत्तमा शक्तिः। सैषा संस्कृतिरक्षणं रक्षणीया पालनीया परिवर्धनीयेति भारतीयसंस्कृतेः समुद्धारणावबोधाय च संस्कृतज्ञानमनिवार्यम्। समग्रमपि पुरातनं भारतीयं वाङ्मयं संस्कृतमाश्रित्यावतिष्ठते इति सुविदितम्। न केवलं भारतीयसंस्कृतिरक्षणार्थमेवास्यावश्यकं संस्कृतमपि तु संस्कृतमेतत् विविधसंस्कृतिप्रसारसाधनम् भारतीयभाषाणामभिवृद्धिहेतुः, राष्ट्रभाषायाः समुन्नतेः साधकम्, मातृभाषाया गौरवस्य प्राणभूतम्, विश्वबन्धुत्वस्य पथप्रदर्शकम् जीवन दर्शनस्य दर्शकम्, आचारशास्त्रस्य शिक्षकम्, पुरुषार्थस्य प्रणेतृकम्, विविधविरुद्ध संस्कृतिसमाहारसाधकम्, प्रान्तीयानां प्रादेशिकानां च विकृतीनां विवादानां संघर्षाणां च प्रशमनम् राष्ट्रीयभावनायाः सद्भावनायाश्चाभिवृद्धेर्मूलम् वैदिकवाङ्मयास्वादैकस्य प्रसार हेतुः, आध्यात्मिकता मौलिक्याश्च समुन्नते साधनमिति सुतरामवधेयम्। संस्कृतस्य वाङ्मयेन च विहीनस्य देशस्य जातस्यावश्यपतनमनिवार्यम्। इत्येतदेतयोः संरक्षणेन सवर्धनेन च समेधते भीः सत्त्वस्था अपि संस्कृतेः। इत्येतदेवावधार्य संस्कृतस्य संरक्षणस्य प्रचारस्य प्रसारस्य च भूयस्यावश्यकताऽनुभूयते साम्प्रतम्। तदर्थमप्रचारप्रसारोपायाश्च समालोड्य विधिष्यन्ते समुपस्थाप्यन्ते च।

(१) संस्कृतकाठिन्यापनोदनम्—द्विधा दुरूहा दुर्बोधा चेयं गीर्वाणगीरिति लोकानां विचारः प्रथमं मेयः। सरला सुबोधा प्रसादगुणोपेता चेयं प्रयोग्या व्यवहार्या च। सरला सुबोधैव च भाषा प्रचरति प्रसरति चेत्सर्वजनसम्मम्। (२) संस्कृतव्याकरणस्य सरलीकरणम्—संस्कृतस्य प्रचारे प्रसारे च संस्कृतव्याकरणस्य काठिन्यं महद्बाधकम्। व्याकरणं सरलं कार्यम्। सूत्राणां कष्टसरलीकरणे न बलमाधेयम्। व्याकरण नियमा अनुवादद्वारा प्रयोगपरीक्षया च शिक्षणीयाः। प्रयोगपरीक्षाऽवगता नियमास्तथा बद्धमूला भवन्ति यथा नान्येनोपायेन। (३) नवशब्दानामात्मसात्करणम्—विविधासु मात्रासु प्रयुज्यमाना नवभावावबोधका नव्याः शब्दाः संस्कृतशब्दाभ्यां संस्कृतस्य रूपप्रदानद्वारा आत्मसात्करणीयाः। समुत्तो व्यवहियमाणाः सर्वा एव भुक्ता भाषाः शैलीमिमामाश्रयन्ते। प्रकारेणैतेन सर्वासां भाषाणां प्रगतिरवगतिश्चायत्तिश्च समूह्यते। समारब्धाऽऽसीत् धन्यं प्राक् संस्कृतमपि। (४) सर्वभाषापाठ्यम्—विश्वसाहित्ये

प्रयुज्यमानाः सर्वेऽपि भावाः सहर्षमभ्यर्थनीया प्रयोक्तव्याश्च । नवमनोभावद्योतनार्थं नूतना शब्दावली प्रयोक्तव्या निर्मातव्या वा । विदेशीयनवशब्दग्रहणेऽपि न संकोच प्रवृत्तिरास्थेया । (५) संस्कृतभाषाव्यवहारः—कौटिल्या आर्या च चैव भाषा या लोके व्यवहियते प्रयुज्यते च । संस्कृतभाषायाः प्रचारार्थं प्रसारार्थं चानिवार्यमेतद् यत् संस्कृतज्ञाः संस्कृतमाश्रित्यैव व्यवहरेयुः । भाषणे लेखने वादे विवादे संलापे पत्रादि व्यवहारे च संस्कृतमेव प्रयुञ्जीरन् । (६) नवग्रन्थरचना—नवीनान् विषयानाश्रित्य संस्कृते नवग्रन्थरचना स्यात् । साम्प्रतिके काले प्रचलिताः सर्वेऽपि विषयाः संस्कृत-माध्यमेन सुकराः स्युः । एतदर्थं विविधविद्यानिष्णाताः संस्कृतज्ञाः सविशेषमुत्तर दायित्वं भजन्ते । तेषां चैतत्पावन कर्म । (७) नवविषयाध्ययनम्—संस्कृतज्ञानां कृतेऽनिवार्यमेतद् यत्त संस्कृताध्ययनेन सहैव भूगोलमैतिहासं विज्ञानादिविषयान् विदेशीया भाषाश्चाधीयीरन् । विविधविद्याऽध्ययनमन्तरणाद्यं विषो विस्फुरणम् । (८) अन्वेषणकार्यम्—संस्कृतेऽन्वेषणकार्यस्य महत्त्वावश्यकता । अन्वेषणकार्यमेव गौरवाद्यपि । अन्वेषणेनैव वाङ्मयस्य महत्त्वमुत्कर्षस्तावगम्यते । एतदर्थं महान् श्रमोऽ पेक्षते । (९) संस्कृतग्रन्थानामनुवादः—संस्कृतस्य प्रचारार्थं प्रसारार्थं चावश्यकमेतद् यत् सर्वेषामपि प्रयुक्तानां संस्कृतग्रन्थानां न केवलं भारतीयासु भाषास्वेव प्रामाणिको ऽनुवादः स्यादपि तु विश्वस्य सर्वास्वेव प्रधानासु भाषासु तेषामनुवादः स्यात् । कार्यं चैतत् सत्वकार्यबलेन दक्षसहयोगेन च सम्भवति । (१०) सुलभग्रन्थमालाप्रका शनम्—सर्वेषामेव प्रयुक्तानामुपयोगिनां च संस्कृतग्रन्थानां सानुवादोऽल्पमूल्यकः संस्करणः प्रकाशितः स्यात् । महार्घाणां चाकरग्रन्थानां सारांशरूपं संस्करणं सानुवादं प्रचारार्थं प्रका शितं स्यात् । (११) वैज्ञानिकदृष्टीसमाश्रयणम्—वैज्ञानिकी दृष्टीं समाश्रित्य संस्कृतं प्रतिपद्यानां वाचानां संस्कृतप्रेमिणां च कृते सुबोधा दृष्टाश्च ग्रन्था प्रणेयाः । (१२) संस्कृतस्थानिवार्यतोद्घोषणम्—आर्य(हिन्दी)-भाषया सहैव संस्कृतमपि सर्वेषु विद्यालयेष्वनिवार्यं स्यात् । संस्कृतमूलकमेव हिन्दीभाषाज्ञानं श्रेयोवहमिति समेषां मुखिनां मतैकमत्यम् । (१३) पठनपाठनपद्धतिपरिष्कारः—संस्कृतस्य प्रचारार्थमावश्यकमेतद् यत् संस्कृतस्य पठनपाठनप्रणाली साम्प्रतिकीं वैज्ञानिकीं पद्धतिमनुसरेत् । तत्र च स्यादा वश्यकः परिष्कारः । (१४) विलुप्तग्रन्थोद्धारः—संस्कृतस्यानेके महार्घा ग्रन्था विलुप्ता विच्छिन्नप्राया जीर्णा शीर्णा वा यत्र तत्रोपलभ्यन्ते । तेषामभ्युद्धार आवश्यकः । (१५) सर्वोपकारसहयोगः—सर्वमुपरिनिर्दिष्टमभिहितं सर्वोपकारसहयोगेनैव सम्भवति । सर्वोपकारस्य कर्तव्यमेतद् यत् स संस्कृतज्ञानाभिलेत, संस्कृतोद्धारमयप्रकारे साहाय्यमाचरेत् राजकीय दृष्टिषु संस्कृतज्ञानमनिवार्यं कुर्यात्, संस्कृतविद्योद्धारे प्रयतेत च ।

१५ कस्यैकान्त सुखमुपनत दु खमेकान्ततो वा । (मिप उत्तर ४९)

निखिलं जगदिदं परिवर्तनशालि । प्रतिक्षणं प्रतिपलं खल्वेऽपि भूतग्राम स्वात्मनि परिवृत्तिमनुभवति । परिवृत्तिधर्मत्वमेवास्य सुखनस्य विलोक्य विमेकं विपश्चिन्निः 'गच्छतीति जगत्' इति निवचनमाश्रित्य जगदिति नामधेयं निहितम् । 'संसरति गच्छति चलति वेति संसार संसृतिर्वा इति व्युत्पत्तिनिमित्तकं संसारः संसृतिरिति नामद्वयं प्रवर्तितं कोविदैः। जगत्, संसारः संसृतिरित्यादयः शब्दा समुद्घोषयन्ति संसारस्य परिवर्तनशीलत्वम् । नेह किंचिद् वस्तु शाश्वत स्थिरमपरिवर्त्तनशालि वा । यदा सर्वस्य लोकस्यैतदभ्यवस्था, तदा न संभवति मानवजीवनस्यापरिवृत्तिधर्मत्वम् तत्रापि च सुखस्य दुःखस्य वा सम्भवस्थिता समवस्थानम् ।

जगति यच्चलं परिवर्तनं यथा क्षणमस्ति करोति विपुरुलमति, निशाकरस्योदयं याति प्रभाकरस्यास्तमुपगच्छति यथा रात्रेरनन्तरं दिनं दिवसानन्तरं च विभावरी, तथैव सुखानन्तरं दुःखं दुःखानन्तरं च सुखम् सम्पदनन्तरं विपद् विपदनन्तरं च सम्पदिति । सर्वमेतत् परिवर्तनस्य क्रममाश्रित्य । एतदेव तथ्यं समीक्ष्य सन्दिशति शाकुन्तले कविकुलगुरुः कालिदासः । 'मास्यकृतोऽवज्ञामिव पतिलोकपीनाम् अभिभूतो दैवमपुरःसर एकतोऽकः । तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥ (शाकु ४ २)। उत्थानं पतनम्, उत्कर्षोऽपकर्षः, जन्म मृत्युः, सम्पत्तिर्विपत्तिः सुखं दुःखमिति च परिवृत्तेरवस्थान्तरमेव नान्यत् । यथा यौवनं तदनु यौवनं तदनु बाल्यं तदनु देहान्तरं तदनु जन्मान्तरं तदनु पुनः यौवनम्, एवमेव जीवने सुखदुःखे परिवर्तेते, परिवृत्तेरवश्यं भाविनोऽनिवार्यत्वाच्च ।

संभवति परिवर्तनेऽस्मिन् कोऽपि चिरमप्यापत्तिरनिष्पत्तिर्वा । यदि विपुलं विलपते तर्हि प्रतीयते परिवृत्त सुखतमावस्थाकस्तोपयोगिता च । सुखनेऽस्मिन् नाभविष्यत् परिवर्तनं चेन्नाभविष्यत् प्रगतिरुन्नतिरभ्युदयश्च जगतां जनानाम् । कदूनां परिवृत्तिमन्तरेण नाभविष्यद् वसन्तो मधुमो वापि वा । न चदमभविष्यत् सुदृहिनामभविष्यत् सुमिश्रम् । नाभविष्यच्चेद् दुःखं नानुभूतमभविष्यत् सुखम् । दुःखस्य सत्यैव सुखमनुभावयति,सुखस्य तथा च दुःखम् । सुखमपि खलु समवस्थानमावश्यकम् । यदयं यावज्जीवं सुखं सम्पत्तिमेवानुभवन्त्यथ दुःखं विपत्तिमेव वा तर्हि न प्रसरिष्यति लोकस्थितिः । क्रमणामावश्यकतोपयोगिता प्यनुभूयते सर्वैरेव । कर्मविपाकोऽपि नियतोऽयः कर्मानुरूपं कश्चित् स्वकृतसुकृतपरिपाकक्रमेण सुखमश्नुते तर्हि परदेशे च दुःखम् । सुखदुःखं परिवर्तमानमेतत् सुखं शिक्षयति निखिलं जगत् सुकृतस्य सत्परिणामित्वं दुष्कृतस्य च दुष्परिणामित्वम् ।

परिवृत्तेरेतस्या महत्त्वमाकलयैव महाकविभिर्विविधा सूक्तयो विरचेऽस्मिन् कथिताः । यथा च—(क) कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा । नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण । (मेघ० २ ४०) । (ख) अस्त्येवं नैकान्तसुखाऽस्ति कश्चिन्नी

युक्तमाना सर्वेऽपि भावाः सहर्षमाश्रयणीयाः प्रयोक्तव्याश्च । नवमावाश्रयोक्तार्थं तृना अन्याश्रयी प्रयोज्या निर्मातव्या वा । विदेशीयनवशब्दग्रहणेऽपि न संकोचवृत्तिरास्थेया । (५) स्वसंस्कृतभाषाव्यवहारः—जीविता व्यवहारा सैव भाषा वा लोके व्यवह्रियते प्रयुज्यते च । संस्कृतभाषायाः प्रचाराय प्रसाराय चानिवार्यमेतद् यत् संस्कृतज्ञाः संस्कृतमाश्रित्यैव व्यवहरेयुः । भाषणे लेखने वादे विवादे संलापे पत्रादिव्यवहारे च संस्कृतमेव प्रयुञ्जीरन् । (६) नवग्रन्थरचना—नवीनान् विषयानाश्रित्य लिखिते नवग्रन्थरचना स्यात् । साम्प्रतिके काले प्रचलिताः सर्वेऽपि विषयाः संस्कृतगाध्यमेन सुकरा स्युः । एतदर्थं विविधविद्यानिष्णाताः संस्कृतज्ञाः सविशेषमुत्तरदायित्वं भजन्ते । तेषां चैतत्साधनं कर्म । (७) नवविषयाध्ययनम्—संस्कृतज्ञानां क्लेशनिवार्यमेतद् यत्त संस्कृताध्ययनेन सहैव भूगोलमैतिहासं विज्ञानादिविषयान् वैदेशीया भाषाश्चाधीयीरन् । विविधविद्याऽध्ययनमन्तरेणाधस्य विदो विस्फुरणम् । ८) अन्वेषणकार्यम्—संस्कृतेऽन्वेषणकार्यस्य महत्त्वावश्यकता । अन्वेषणकार्यमेव पौरस्यापि । अन्वेषणेनैव वाङ्मयस्य महत्त्वमुत्कर्षश्चावगम्यते । एतदर्थं महान् श्रमोऽपेक्ष्यते । (९) संस्कृतग्रन्थानामनुवादः—संस्कृतस्य प्रचारार्थं प्रसारार्थं चावश्यकमेतद् यत् सर्वेषामपि प्रमुखानां संस्कृतग्रन्थानां न केवलं भारतीयासु भाषास्वेव प्रामाणिको ऽनुवादः स्यादपि तु विश्वस्य सर्वास्वेव प्रधानासु भाषासु तेषामनुवादः स्यात् । कार्यं चैतत् सर्वकारप्रयत्नेन तत्सहयोगेन च संभवति । (१०) सुलभग्रन्थमालाप्रकाशनम्—सर्वेषामेव प्रमुखानामुपयोगिनां च संस्कृतग्रन्थानां सानुवादोऽल्पमूल्यकः संस्करणः प्रकाशितः स्यात् । महार्घाणां चाकरग्रन्थानां सारभूतस्य संस्करणं सानुवादं प्रचारार्थं प्रकाशितं स्यात् । (११) वैज्ञानिकशैलीसमाश्रयणम्—वैज्ञानिकीं शैलीं समाश्रित्य संस्कृते प्राचीनानां शास्त्राणां संस्कृतप्रेमिणां च कृते सुबोधा हृद्याश्च ग्रन्था प्रणेयाः । (१२) संस्कृतस्यानिवार्यशिक्षणम्—अवर्ण(हिन्दी)-भाषका सहैव संस्कृतमपि सर्वेषु विद्यार्थ्येष्वनिवार्यं स्यात् । संस्कृतमूलकमेव हिन्दीभाषाज्ञानं श्रेयोवहमिति समेषां मुखिनां मन्तव्यमस्ति । (१३) पठनपाठनपद्धतिपरिष्कारः—संस्कृतस्य प्रचारार्थमावश्यकमेतद् यत् संस्कृतस्य पठनपाठनप्रणाली साम्प्रतिकीं वैज्ञानिकीं पद्धतिमनुसरेत् । तत्र च स्यादावश्यकः परिष्कारः । (१४) विलुप्तग्रन्थोद्धारः—संस्कृतस्यानेके महार्घा ग्रन्था विलुप्ता विलुप्तप्राया जीर्णा शीर्णा वा यत्र तत्रोपलभ्यन्ते । तेषामभ्युद्धारः आवश्यकः । (१५) सर्वकारसहयोगः—सर्वमुपरिशब्दाभिहितं सर्वकारसहयोगेनैव सम्भवति । सर्वकारस्य कर्तव्यमेतद् यत् स संस्कृतज्ञानाद्रियेत, संस्कृतवाङ्मयप्रचारे साहाय्यमाचरेत्, राजकीयेषु संस्कृतज्ञानमनिवार्यं कुर्वात्, संस्कृतविद्योद्धारे प्रयतेत च ।

१५ कस्यैकान्त सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। (मेघ उत्तर० ४९)

निखिलं जगदिदं परिवर्तनशीलं। प्रतिक्षणं प्रतिनवं सर्वोऽपि भावसमूहः स्वात्मनि परिवर्तमानमुपलभ्यते। परिवर्तनमेवास्य सुखस्य विशेषेऽवसरे विपरिवर्तनं 'गच्छतीति जगत्' इति निरुक्तमन्तर्निहितं जगदिति नामधेयं विधत्ते। 'जवति गच्छति चलति इत्वर इत्युदितः' इति स्मृतिनिबन्धेषु संसारः इत्युदीरितः इति नामद्वयं प्रवर्तितं कविदेवेन जगत्, संसारः, इत्युक्तिप्रत्ययेन सन्तो मनुष्येभ्यः संसारस्य परिवर्तनशीलत्वम्। नहि किञ्चिद् वस्तु शाश्वतं स्थिरमपरिवर्तनशीलं वा। यदा खलु नैकस्मिन्नवसरे तदा न संभवति मानवजीवनस्यापरिवर्तनम् तथापि च सुखस्य दुःखस्य वा समाक्रमणं समवसानम्।

दृश्यते यत्रत्र परिवर्तनं, यदा खलु निशाकरः विधुरस्तमेति निशाकरस्तदैव याति प्रभाकरस्तत्क्षणमुपगच्छति, यदा गमनानन्तरं दिनं दिवसानन्तरं च विभावरी तदैव सुखानन्तरं दुःखं दुःखानन्तरं च सुखम् सम्पन्नान्तरं विपद् विपदन्तरं च सम्पदिति। सर्वमेतत् परिवर्तनस्य क्रममाश्रित्य। एतदेव तथ्यं स्पष्टीकर्तुमिति शूद्रकस्य कविकुलगुरोः कालिदासस्य। 'यान्येकदाऽऽसन्नधिकं परित्यक्तुं नाभिपूर्णोदरपुष्टरं एकदाऽऽसः। तेऽद्यद्वयस्य दुःखं मनसोऽवसादं, करोति नित्यं सुखमध्यशायिनः ॥ (शाकु० ४-२)। दानं वित्तम्, दमपरोपकारौ, जन्म मृत्युः, सम्पत्तिर्विपत्तिः, सुखं दुःखमिति च परिवर्तनस्यान्तरमेव नाम्नः। यदा यौवनं तदेव यौवनं तदेव कार्श्यं तदेव रसायनं तदेव कल्पान्तरं तदेव पुनः यौवनम्, एवमेव खलु सुखदुःख परिवर्तने परिवर्तनस्यैवाधिपत्यनिबन्धनत्वात्।

संसारे परिवर्तनेऽस्मिन् कोमलमार्यहृदयनिर्मायिका। यं निपुणं विधत्ते सर्वं प्रत्यूषसे परिवर्तं सुखदायकस्वकटोपयोगित्वं च। सुखवर्धिन्नं नाम्नैवास्य परिवर्तनं येनाम्नैवास्य प्रतिक्षणमनुभवस्य लक्षणम्। कस्यां परिवर्तमानत्वं नाम्नैवास्य वस्तुनो ज्ञानं वा। न वेदनैवास्य सुखदुःखनामधेयम् सुनिश्चम्। नाम्नैवास्य दुःखं नानुभूतमन्तर्निधत्ते सुखम्। दुःखस्य तदैव सुखमनुभवति, सुखस्य तथा च दुःखम्। सुखदुःखस्य समवधानमावश्यकम्। यदाऽऽ यावत्तं दुःखं सम्पत्तिमेवानुभवन्त्यस्य दुःखं विपत्तिमेव वा तदैव न प्रतीयते लोकैस्तत्तः। कल्पनामात्रस्वरूपोऽयं तावत् भूयते सर्वैरेव। कल्पनयाऽऽत्मनि निष्पन्नोऽयं कल्पतरुः कविभिः स्वहृदयसुहृत्परिजनस्य सुखदुःखाभ्यां तदुपभोगेन च दुःखेन। सुखदुःखं परिवर्तमानमेतत् सुखं विधत्ते निमित्तं कृत्वा सुखस्य सम्पत्तिमिवं दुःखस्य च दुःखस्य विपत्तिमिवम्।

परिवर्तनस्या महत्तमार्थेनैव महाकविभिर्विविधा सूक्तयो विरचयन्ति। यथा च—(क) कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण। (मेघ २।४०)। (ख) अवार्यं नैकान्तसुखोपनतं किञ्चिदि-

कान्तदुःखः पुत्रः पृथिव्याम्। (बुद्धचरितम् ११ ४१)। (ग) कालक्रमेण जगत् परिवर्तमाना, चक्रारपंक्तिरिव गच्छति मानवेषु। (स्वप्न १–४)। (घ) मानवक्रमेण हि अनानि भवन्ति यानि। (मृच्छ० १ ११)। (ङ) चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च। (हितो० १ १७१)

किं नाम सुखं, किञ्च दुःखमिति। सुखदुःखस्य बहूनि लक्षणानि वर्णयन्ते विविधेषु शास्त्रकारेषु। भगवान् मनुरत्र निर्दिशति यत् सर्वमात्मवशं सुखम्, आत्मापरवशं वा सुखमस्वमिति परावशत्वं च दुःखमिति। तदाह—'सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशे सुखम्। एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः'। कैश्चन चान्ये सुखदुःखयोर्लक्षणं निगद्यते। तु सुष्ठु सुखकरं वा स्येभ्य इन्द्रियेभ्य इति सुखम् ज्ञानेन्द्रियेभ्यः सुखकरं यत् तत्सुखमिति। एवमेव ज्ञानेन्द्रियेभ्यो दुःखकरं यत् तद् दुःखमिति। अन्यथा तु लक्षणान्तरमपि शब्दयोरनयोः सम्भवति। सुष्ठु ज्ञानि सुखानि, दुष्टानि ज्ञानि दुःखानीति। इन्द्रियाणि चेत् संयतानि तर्हि सर्वमपि विषयजातं सुखत्वमापद्यते। दुष्टानि चेदिन्द्रियाणि तर्हि सर्वोऽपि विषयग्रामो दुःखत्वेनापद्यति। इत्थं सुखदुःखशब्दाभ्यामेवेन्द्रियसंयमस्य माहात्म्यमुपदिश्यते।

सुखवद् दुःखस्यापि जीवनेऽस्ति महत्त्वम्। दुःखनिधीकिर्णी पूर्वोक्तीर्येव धीराः श्रीकौमुदीमाक्रमन्ति। अननुभूय दुःखं न सुखं साधूपभुज्यते। अतः साधूच्यते—सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते (मृच्छ १ १) यदेवोपनतं दुःखात् सुखं तद्रसवत्तरम् (विक्रमो १ २१)। सम्भवति चैतत्सत्यं यन्न सुखं सुष्ठ्वं दुःखानुभूतिमन्तरा प्रत्यवायमन्तरेण च। दुःखमनुभूय प्रभूतान् निरस्य च श्रेयः सुकरम्। अत एवाभिधीयते—भवन्ति नम्रमुखानि सुखानि विनान्तरेण (किरात ५ ४९) विनयस्थः मार्गितार्थसिद्धय (शासु अक १)।

कर्मेन्द्रियकस्य बलीयस्त्वात् समापद्यते चेद् दुःखं तर्हि किं नु विधेयं बलवद्भिः विपश्चिद्भिस्तेन। दुःखोदधौ निमज्जनेन धैर्यमेवावलम्बनीयम्। धैर्यमाश्रित्यैव धीरा विपत्पारावारं सुखयन्ति। परावारे पातमङ्गीकृत्यापि सांयात्रिको धृतिमवलम्ब्य तितीर्षत्येव। उक्तं च—स्थैर्यं न धैर्ये विधुरेऽपि काये, धैर्यात् कदाचिद् गतिमाप्नुयात् सः। आशे समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे, सांयात्रिको वाञ्छति तन्तुमेव॥ धीरे दुःखेऽपि नरे आत्मशक्तिमाश्रयते चेत्त दुःखान्यपि कर्तुं प्रभवन्ति। नहि किञ्चिदसाध्यमारभमाणस्य। आत्मशक्तिर्हि सर्वोदयस्य मूलम्। स दुःखविभावरीं स्वप्नरूपामिव सद्य संहरति। अत उच्यते—उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ धैर्यधना हि साधवः। ते सम्पदि न हृष्यन्ति न च विपदि विषीदन्ति। अतः सुखदुःखे समे कृत्वा प्रवर्तेत। सम्पदि विपदि च महतामेकरूपत्वेन वर्तते। यथा चोच्यते—उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च। सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥ अतः सम्पदि न हृष्येत्, न च विपदि विषीदेत्। विपदि धैर्यमाश्रय चलति स्वीयं कृतमतिदाहरेत्।

१६ नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
श्रद्धार्यो सत्कविरिव दूरं विद्वानपेक्षते॥ (शिशु० २-८६)

दैवस्याद्योगस्य च गुरुलाघवं बलाबलं च निश्चिन्वतां विपश्चितामस्ति मतीयसी विप्रतिपत्तिर्विषयेऽस्मिन्। केचन दिष्ट्या दैवस्य वा माहात्म्यमुद्घोषयन्ति, ते दैष्टिका इत्यभिधीयन्ते। अन्ये पौरुषस्य महत्त्वमाचक्षाणा पुरुषार्थमेव सिद्धेः सोपानत्वेनाद्रीकुर्वन्ति। इदमेव मतिविशेषं बलमाने केचन मनीषिणो दृष्टेरेव उत्कर्षं प्रेक्षत्करमाप्त इते। विचारचौरं तावदेतत् पक्षद्वयम् सपरिवार साधीयसी। मामवलम्ब्य सकले लोका मुखनेऽस्मिन् मर्म्मा मूर्ति समाश्रित्य चिरसंचितपुण्यपरिपाकसमुल्लासस्य मानवजीवनस्यास्य चरितार्थतां तस्मादवन् ऐहिकमामुष्मिकं चोभयं क्षेममधिगच्छति।

विमृश्यते तावद् दिष्ट्या एव बलाबलं प्रथम। का नाम विधिः, कथं च प्रभवत्येषा जीवलोकस्योदयास्तमयस्योरुव्यापकस्य पाताल्यातस्य वा। यदि निधारयितुं पुनर्न पार्यते तर्हि न भूयान् भेदोऽनयोः। प्राक्कृतस्य कर्मणः एव नामान्तरं दिष्टिरिति दैवमिति भाग्यमिति वा। अत्र साधूच्यते—'पूर्वजन्मकृतं कर्म तद् दैवमिति कथ्यते'। दिष्टिरेव शापकत्वेन शापकत्वेन वोपतिष्ठते निखिलेषु नित्यमाचेषु कर्मसु। अतः कर्मणां दिष्टिरदिष्टिर्वा दैवाधीनेति व्यवहियते। प्राक्कृतकर्मफलपरिपाको निश्चयोऽस्या निपतितिरिति च दैवस्य मानान्तरं भवति। न च निपतिः शास्त्रातिरिक्तैः कर्मभिरन्यथा भवितुमर्हतीति निश्चयेनिर्वोगोऽपूर्व इति गम्यते। अत्र दैष्टिका उदाहरन्ति—सूर्याचन्द्रमसौ तेजसां निधी नित्यत्वादेवास्तं समुपगच्छतः। विधा पौरुषं ज्ञानमुत्पन्नं लोको दैवानुरूपमेव फलमश्नुते। सुरासुरकृतसमुद्रमन्थने समेऽपि भागे प्राप्तवे हरिर्लक्ष्मीं क्षेमे, हरस्तु हालाहलमेव। उक्तं च— दैवं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्। समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम्॥"

प्रतिकूलतामुपगते हि दैवे न मनागपि सिध्यति साध्यम्। अतएवाह भारवि:— "प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता। अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यत करसहस्रमपि।" यावत् दैवस्य प्राबल्यं पक्षद्वयस्य चेतस्येवपते तावदेव यद् दैवमभिधीयते। अत आह श्रीहर्षः—"अवलम्बनैकफलदानधुरा यदि दिष्ट्या भवति दैवगतिः फलदा। पुरुषेण तत्किमपि तत्र तदात्मनेऽनुगम्यते जनस्य विदुषेन यथावदात्मना।" विरुद्धे हि विधौ अमसहस्रमपि विफलं स्यात्। भाग्येऽनुकूले लोका अपि गुणवत्तमायान्ति। उक्तं च— 'गुणाऽपि दोषतां यान्ति दैवीभूते विधातरि। सानुकूले पुनस्तस्मिन् दोषोऽपि न गुणायते।' दुःखानि सुखानि च भाग्यानुसारमेव संभवन्ति। उच्यते च—'भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति'। दैवानुसारमेव मनुष्यस्य बुद्धिवृत्तिरपि जायते। विधिमाघटितघटनापटुर्घटितस्य विघटने च दक्षः। 'जघटितघटितं घटयति सुघटितं घटितानि दुर्घटीकुरुते। विधिरेव तानि जनयति, यानि पुमान्नैव चिन्तयति।' विधिरतिनिष्ठुर विश्वमनुक्षमेव परिक्रामति।

अधिकमेतदुक्तं देवं पक्वति, तिदिदम् देवार्धीना । परलोकगन्तव्यमेतद् मत् पूर्वकृतकर्मपरिपाक एव दैवमिति, नान्यत् । यदि सुनिश्चितमेतदवधारितं तर्हि भाग्यमनु कूलयितु मवलिप्तपामवस्यकता सुविचारितस्य कर्मण कठिनस्य भ्रमस्य च । अथवा वितथमग्रह श्रीकृष्णो गीतायाम्—'नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मण' । शरीर यात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मण' । कर्म च कर्मप्रसक्ति विहायैव कार्यम् । तदेव सम्यक् सम्पद्यति । 'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्वकर्मणि । सरलं तपस्या अनेन सुचरितेन च कर्मम् । तदेव च परिपक्वति काले । 'भाग्यानि पूर्वतप्ता हि संचितानि काले फलन्ति पुरुषस्य यथेह कृषा ।' भाग्याद् गुरुतरं कर्म तदेव फलति तदेव चोपास्यम् । नमस्तत्कर्मणो विधिरपि न देम्य' प्रभवति ।'

अगति सर्वेणापि सत्वाना नैसर्गिकीयमिवाभ्यस्त यत् स्याद् दुःखात्पर' सुखापि गमम् । का नु वरीयसी सविधि स्वीकार्या साध्यमेतत् साधयितुम् । शान्तेन स्वान्तेन विनयते चेत्तर्हि पुरुषार्थसम्पन्न न साधनान्तरं दृष्टिपथमुपयाति । वीर वा धीर वा मनीषिणा वा, वाग्मेमलसम्पन्न वाग्मिनो वा कविताकामिनीकान्ता कविवर्य वा, लेखेऽपि पौरुषमाभिप्रेयाभीष्टं सिद्धिमधिगन्तुम् । अकर्मण्यताऽऽलस्य पौरुषहीनत्वं दैहिकता वाऽत्र प्रत्यवायस्तेषामवतिष्ठते । यदस्ति हार्दिकी सुलक्ष्या अभीप्सामाप्तिम्, विकीर्यितं परहितं काङ्क्षितं कुर्वहित, वाञ्छितं विधहित समीहितं समाजसुखं वा तर्हि आलस्यं नाम रिपुरनेकधेत्तोऽप्रहणीयाऽकर्मण्यताऽपहसयितव्यं चापौरुषत्वम् । उद्यम उद्योगोऽप्यव सायो वा मानवस्यानुपमो बन्धु । यमवद्यम यदभिवाञ्छित तदधिगम्यते । तथा चोच्यते— आलस्यं हि मनुष्याणा शरीरस्थो महान् रिपु । नास्त्युद्यमसमो बन्धु कृत्वा यं नावसी दति । योगवासिष्ठेऽप्यभिधीयते—'पौरुषाद् दृश्यते सिद्धि पौरुषाद् धीमता क्रमा' । यावज्जीवं जीव कर्मनिरतोऽवसायपरश्च स्यात् कर्मसाक्षिके च परिहेम्यनपेक्षा विधाति वेदः । यथाऽन्नेनैवामीप्सितमसिद्धं सिध्यति तद्वाम् । 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजी विषेच्छत' समाः । एवं स्थिते नान्यथेतोऽस्ति न कर्म क्रियते नो (यजु ४०-२) । या काऽपि सिद्धिरभीप्सा साऽधिकरा धारयते बन्धुमुद्यमेनैवेति चेच्चेदति क्रियते तर्हि नाहम्यं किञ्चिदस्ति जगति । अत साधुक्तम्—उद्यमन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः । 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी' । अध्यवसायिन एव साहाय्यमाचरति विधुरपि । यथा चोक्तम्—'उद्यम' साहस धैर्य बुद्धिः शक्तिः पराक्रम' । षडेते यत्र वसन्ते तत्र देव सहायकृत् ।

पक्षद्वयस्य वक्तव्यस्यविवेचनेन सिध्यसदो यत् सुविचार कृतमवधार्यते कर्म साध यति साध्यमिह जगति, तदेव च संस्कारशेषाभिधं दैवमिति भवति प्रवर्तयति च मानि कर्मबलम् । अत उभयसाधारणं स्थानम् ।

१७ सहसा विदधीत न क्रियाम् (क्रियता २१)

महाकवेर्भारवेर्महाकाव्ये किरातार्जुनीये सन्ति शतशः सूक्तिमुक्ताः। तत्रापि द्वित्राः सन्ति सूक्तयो वाङ्मयकाशति सर्वशिरसमिव। वास्तव्यन्यतमैषा सूक्तिः। सूक्तं तेन महाकविना यत् कनः कोऽपि सहसा किमपि विधेयं विदधीत यतो ह्यविवेकः परमापदां पदमस्ति। ये च विमृश्यकारिणो भवन्ति त एव श्रियः श्रयन्ते। यथोक्तं तेन—"सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पदः।'

को नाम विवेकः! कस्याविवेकः! क उपयोगो विवेकस्य! किमिह साध्यं विवेकेन! यदि नोपादीयतेऽयं कथमिव विपदां निदानत्वेन परिणमते! विवेचनमेव विवेक इति। सदसतोः पुण्यापुण्ययोः कर्तव्याकर्तव्ययोर्हेयोपादेययोश्च येन विधिवत् विवेचनं क्रियते स विवेक इत्यभिधीयते। इतरथाविवेक इत्याख्यायते। विवेकस्य महत्युपयोगिता जीवनेऽस्मिन्। विवेक एव सदसतोः पापपुण्ययोः कर्माकर्मणोश्च फलाफलं गुरुलाघवं च चिन्तयति। त एव किं ग्राह्यं किं हेयं किमुपेक्ष्यमिति सन्दिशति। विवेक एवेह जगति ज्ञानमिति बुद्धिरिति धीरिति च व्यवहियते। विवेकमन्तरेण न भूयान् भेदो मनुष्येषु पशुषु च। अस्ति मानवे विवेकशक्तिः। तया सोऽर्थमनर्थं च बहुधा विभाव्यार्थसाधकमुपादत्तेऽनर्थसाधकं चोज्झति। जीवने हि सर्वस्येहं सुखम्। सर्वो हि यतते सुखलाभाय। नहि दुर्मनोऽपि खलोऽपि मूढोऽपि हीनेन्द्रियोऽपि दुःखमिच्छतेति गण्यते। सोऽपि सुखमेव कामयते, यतते च तदवाप्तये। अङ्गीकृतायामीदृश्यामेव स्थायां को नु मार्गो यः सुखसाधकत्वेन प्रवर्तेत। विचारचक्षुषा चिन्त्यते चेद् विवेकस्य महत्त्वं स्फुटं प्रतीयते। सर्वमपि साध्यं साध्यते विवेकेनैव। विवेकपूर्वा कृतिरेव क्षेमवति क्षिप्रम्। विवेक एव सुखस्य मूलम् शान्तेर्निधानम् भूत्या निधानम्, भिषग् आमयानाम्, गुणानामागारम्, विभवस्य भूमिः, उन्नतेः साधनम् सत्कर्मणामाकरः, विनयस्य कारणम्, धीरत्वस्य सन्धायकश्च। विवेक उपादत्तचेद् न जीवनेऽवसादावसरः। अनुपादत्तश्चेदयं प्रतिपदं प्रतिपदं चोपतिष्ठन्ते विपदो दुःखानि प्रसूहाश्च।

ये हि विपश्चितो विचारशीलाश्च ते प्रतिपदं सम्यगवधार्य वस्तुस्थितिं शान्तेन स्वान्तेन कर्तव्यस्याकर्तव्यस्य च गुरुलाघवं विमृश्य पदं निक्षिपन्ति सुखकारकं तदेवोपाददते। नहि मनाग् वा द्विधा वा सहसा वा किञ्चिच्चेष्टितुमिच्छन्ति। यत्कर्म सुविचार्य क्रियते तत् सत्फलमादधाति। अत उच्यते—सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं, सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् (हितोपदेशः १ २२)। ये चाविचार्य कर्मणि प्रवर्तन्ते, तेषां प्रवृत्तिरज्ञानमूला। अज्ञानं हि सर्वेषामापदामास्पदम्। अज्ञानाच्छन्नत्वात् तेषां कर्मणां दुःखावाप्तिरेव मुख्या। तादृशा जना दिङ्मूढा इव सुखं दुःखमिति मन्यन्ते, दुःखं च सुखम् पापं सुखसाधनमिति, पुण्यं च दुःखसाधनमिति। एवं ते व्यसनशतशरव्यतामुपगच्छन्ति, प्रत्यहमवनतिं चोपगच्छन्ति। अत उक्तं भर्तृहरिणा—'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः' (नीतिः १)।

विपश्चितो हि विचार्य सर्वमपि क्रियाकलापं कर्मणि प्रवर्तन्ते। सुश्लिष्टामवनिमृत्स्नां चैष परमो गुणो यद्विमृश्य ते कर्मसु प्रवृत्तिमादधते। मूढतां मनस्यकृत्वाविचारमूलैव। कि

कार्यं कस्य तस्योपाय इति मूढा विजिन्त्य ते कर्तव्यं कर्म निषिन्वन्ति। यथाविचार्यैव निश्चीयते किञ्चित् तर्हि तत्कर्म दुःखावहमेव भवति। एवं विद्वांसोऽपि यत् किञ्चिदपि स्यात् कर्तव्यं तत्र परिणतिं प्रधानतोऽवधारयन्ति। नहि ते सहसा कृतमकृतं वा विनिश्चित्य कर्मसु प्रवर्तन्ते। सहसा विदधीत विवेकं दुष्कृतं ह्यस्मयति, चेतसि च यस्यतुल्य माचारं विधत्ते। अत एवोक्तं कैनापि—'गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ, परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन। अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्य तुल्यो विपाकः'।

एष एवाभिप्रायश्चरकसंहितायामप्युपलभ्यते—'परीक्ष्यकारिणो हि कुशला भवन्ति'। 'नापरीक्षितधर्मनिमित्तेन' 'सम्यक्प्रयोगनिमित्ता हि सर्वकर्मणां सिद्धिरिष्टा। व्यापत्तयश्चासम्यक्प्रयोगनिमित्ता'। भगवता चरकेणापि कृतस्य कर्मणः परीक्षणमनिवार्यत्वेन गण्यते। यदि सम्यग् विचार्य कृतं निर्वर्त्यते तर्हि तस्य साफल्यमपि प्रागेवानुमातुं पार्यते। अविचार्य कृते कर्मणि न केवलमसाफल्यमेव विपद् शरीरक्लेशः साध्यनाशश्च प्रत्यवायावाप्तिश्च। महाभारतेऽपि व्यासेन सुविचार्य कर्मप्रवृत्तिरुपदिष्टा। विमृश्यकारी सुखमेधते, त्रियमश्नुते, अभ्यूहानपहन्ति विपद् विचारयति साध्यं साधयति। उक्तं च महाभारते—'चिरकारक मद्रं ते, भद्रं ते चिरकारक'।

अनादोष्य शुभाशुभं जनो यत् कर्मापि प्रवर्तते, तत्र मूढमज्ञानमेव। अज्ञाना कृतचेतसो हि मिथ्याभिमानाहङ्कारगर्वनिर्भराः प्राक्कर्मन्वाः कृतमाकर्तव्यविवेचनमप्यास्मप्रज्ञा परिभवक्लेशेनाकलयन्ति, न शुभभूयस्त्वं साधूनामुपदिशन्ति क्रियाविलम्बमन्तरायान्तरमव गच्छन्ति शिष्टकारित्वं भिषजः साधनं गण्यन्ति। एवंविधयाऽऽत्मविडम्बनया विमूढात्मा स्तेऽविरमकृत्यकारित्वात् न केवलं विपत्सागरोदर एव निमज्जन्ति अपितु सर्वलोकस्योपहास्य तामवाप्य दुःखभूयस्त्वेन कालमतिवाहयन्ति। केचन इतश्चिन्तावशानन्तमात्मानमेव पीड्यमाना यदैवोपदिश्यते पौरुषीयाचार्यते वै.। न ते स्वविवेकोपयोगेन साध्यसाधु वा निर्णेतुमभ्यव स्यन्ति। परिणतिस्तु तस्य विषमुपताप एव। अतो निगद्यते काश्यपेन—'अन्तः परी-क्ष्यान्यतस्तु भजन्ते। मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।

विवेकमूलः सुविचारभेदाधीयते आत्मवत्तेन नहस्वाध्यमिह किञ्चिदस्ति। प्रस्तुतं चमीक्ष्यते सर्वस्यां सभ्यतायां देशैरनेकैः स्वराष्ट्रोद्धारायैव प्रवर्तमाना विविधा योजनाः। भारतेऽपि पञ्चवर्षीया योजनाः प्रयुक्तपराः प्रयुज्यमानाः प्रयोक्ष्यमाणाश्चावेक्ष्यन्ते। विवेकमूलत्वादेतासां साफल्यमिप्यत एव समाम्नायते च। विपश्चितोऽपि विवेकशीलित्वात् जीवनस्य कार्यक्रम विमृश्यैवाद्य यन्ति। अन्यथा स्वाभाविकेन मनस्य मुहुर्मुहुरुपतप्यमा नास्ते स्वाभीप्सितमाप्नुवन्ति।

भारतीयैतिह्यमीक्ष्यते चेत्तत्राप्यविचारकारित्वादेव विविधा विपदो वीक्ष्यन्ते। दाशरथी रामः सुवर्णमृगं प्रेक्ष्याविचार्यकारित्वादेव तमन्वधावत्। तत्कृत्यं च तस्य जानकीहरणरूपेण परिणेमे। गुरुजनवचनमविमृश्यैव राज्योऽपि वीताहरणे प्रवृत्तो निधन मवाप्तश्च तथाप्यव'। अविवेकमाभिरूप्येव दुर्योधनोऽपि सूच्यग्रमात्रभूप्रदानेऽपि कार्पण्यं भेजे। तदिदमाकलय्य महाभारतसमरे सपरिवारः सपरिजनः स्नेहजनसहितः सकलमपि निहाय विनमज्जिषत्। अतो विचार्यैव कृतिरनुज्ञेया, अतिरभसत्वं च विषम्मूढकरेण परिहरणीयम्।

१८ ज्वलितं न हिरण्मयेतरं चषमास्कन्दति मन्मनां जनः ।

(किरात २-०)

[illegible] तेजस्विताया मानितायाश्च महत्त्वम् । प्रभवन्तिमन्मिमार्थमिदं नीलकण्ठ पृष्टवान् कश्चित्, कं मन्मनां पुरुषं जनः प्रभवत्यार्थमिदम् । कोऽत्र भेदः ! [illegible] गुणसमवेतस्तेजस्वी समन्वितश्च प्रभवति दातुं निमित्तं जगतिस्थम् । दरिद्रस्तेजस्वी साधनसमृद्धः स्वान्तेऽपि कृपणश्च । न पृच्छति पृच्छति वा पूर्वमर्थान् ददाति कृपानुकम्पस्य । मन्मनानि तु निस्तेजांसि । नानुभवन्ति तानि मन्मनत्वमात्मनः । अन्यत्र वर्णने सत्यम् । एवमेव मानिनोऽपि सहर्षमनुभवन्ति, न तु स्वाभिमानयन्ति । अत्र निगदते भारविः—'ज्वलितं न हिरण्मयेतरं चषमास्कन्दति मन्मनां जनः । अनिमन्त्र्य-मभारतनुः सुखमुज्झति न त्वयं मानिव (किरात --)।

किं नाम जीवनम् ! किं नाम पुरुषत्वम् ! के गुणास्ते ये जीवनं सारवन्तं कुर्वन्ति, पुरुषे पौरुषमुत्पादयन्ति ! तेषु जीवनं धन्यं यत्र तेजः स्वाभिमानिता धैर्यं च प्रधानस्थानमधरं कुरुते । तेजस्विनः मानिनः गुणाढ्याः श्रीमन्तश्चैव गुणा सर्वानेव जीवनानि स्पृहणीयानि कुर्वन्ति, पुरुषे पौरुषमाविर्भावयन्ति च । भारविश्चकार्ति पुरुषत्वं यन्मानितामेव प्रधानं पुरुषस्य लक्षणम्, मानहीनो न नरः । 'पुरुषलक्षणेष्वस्मै मानमग्र्यं प्रचक्षते' (कि॰ ११-६०)। विभवाति चेन्मानं स तृणवदकृपो निरर्थकं च तस्य जन्म । 'जन्मिनां मानहीनस्य तृणस्य न समा गतिः' (कि ११-५९)।

मानस्तेजोमयः, कस्तदवाप्नुयात् ! भारविस्तदवाप्तिमाकाङ्क्षति तत्र इति । 'श्रिया तेजसि मानिता' (कि १५-२१)। तेजस्विताया गुणमेवावयवं मानिता प्रकटते प्रवर्धते च । यत्र तेजस्विता तत्रैव यशः श्रीर्गुणगणाश्च । तेजस्विना हि विरुद्धान्त अपि विरुद्धगणा । ते दुष्करमपि सुकरं दुर्गममपि सुगमं दुष्कृतमपि सुकृतं सम्पादयन्ति । न तेषां क्वचिद्विषादः । बाल एव गरुत्मान् स्वपुरुषत्वं विश्वतुमशक्नुवन् । अत एवाह काव्यिताः—'तेजस्वी हि न वयः समीक्षते' (रघु १२-१)। यत्र च तेजसा परीप्सते परिक्षीयते तत्र मानिता । मानपरिक्षये च सर्वे गुणा अपि तत्र क्षयमेवाभजन्ते । निर्वाणे तु दीपे ज्वालेऽपि तदाश्रयमुज्झति । तदाह—'तेजोविहीने विधृतेऽपि दर्पे, ज्वलात्मिनं दीपमिव प्रजाः' (कि १७-१६)। निस्तेजाः सर्वैरवमन्यते परिभूयते विधिक्रियते पुष्यते च । तस्य निस्तेजस्त्वमत्यन्तमवमानमावहति । अतो निगदितं मनुना—'मृदुः परिभूयते' (मनिया॰ १-१८)। उक्तं च मृच्छकटिके शूद्रकेण—'निस्तेजाः परिभूयते' (१-१४)। तेजस्वी तमसेव कलेर्यते स्वावज्ञानस्य साधीयसी साधना । तेजस्विनो न प्रत्यवपमेरन्ते न च परावाप्तमेव सहीरन्ते । ते स्वतेजसा जगद् व्याप्नुवन्ति । उच्यते—'ज्वलन् स्वतेजसा जगन्ति महानिष्पतति भूतिमन्यतः' (किरात॰ १-१८)।

महाकविना मानेनापि तेजस्विताया मानितायाश्च महत्त्वं [illegible] मानिनोऽवमन्तृन् समुज्जिघृक्षुमूर्ध्वमेव यान्ति अपयन्ते, यथा ज्वालाः

कृत्यैवोदेति। 'समूलघातमघ्नन्तः परावृत्तेषु मानिनः। प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः। (शिशु २।३३)। परावमानं यः सहते न स पुंसन्मताक्। तादृशस्य नरा धर्मस्याग्निरेव क्षेपसी। स केवलं मातृक्लेशकारी। मा क्रोधन' य' परावज्ञामुत्तरन्नोऽपि क्रोधति। (शि २।४५)। पादाहतं रजोऽप्युत्थाय मूर्धनमारोहति। नोऽप्रमानेऽपि गतमन्यः स रजसोऽपि हीनः। 'पादाहत यदुत्थाय मूधानमधिरोहति। स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वर रजः। (शि २।४३)। तिग्मता प्रतापाय क्षतिमा परिभवाय चेति स्फुटं समीक्ष्यते। राहुग्रस्तं रविं दृष्ट्वा सद्यः भानुं च चिरेण। 'दुस्थेऽपराधे' तन्नूनमिन्न स्फुटं फलम्' (शि २।४९)।

महाकविना कालिदासेनापि तेजस्विताया महिमोररीक्रियतेऽभिधीयते च। क्षमयः शान्तिसमन्विता अपि तेजोभवा। सति चाभिभवे सूर्यकान्तमणिवद् उद्गिरन्ति तेजः। न ते सहन्तेऽभिभवं साधु। 'क्षमाप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः०।' (शाकु २-७)। तस्मिन्नभिभवे प्रस्फुरति आत्मरक्षायाः सति च परिभवे तेजस्विनोऽपि स्वमुग्रं रूपं धारयन्ति। 'स्फुरति फणितेजनोऽग्निर्विप्रकृताः पन्नगाः फणा कुरुते। प्रायः स्वं महिमानं द्योतयन्ति हि सन्तः।' (शा ६।११)।

सन्तः सदैव श्रेयस्करमाचरन्ते यथा एव। विनश्वरे जगति यश एवैक स्थास्नु। यशसे एव जीवन्ति म्रियन्ते च साधवः। यश एव परमं धन मन्यते मानिनः। उच्यते च—'यशोधनानां हि यशो गरीयः' 'कीर्तिर्यस्य स जीवति'। श्रीरनुधावति तादृशान् मानिनो यशस्विनश्च। मानिनो गर्वैरेवाग्निः स्यापि यशश्चिरजीवन्ति। तथोक्तं भार विना—'अभिमानधनस्य गर्वैरग्निः स्यात्तु यशश्चिरजीवम्। अधिरत्नमिवाभासयत्यन्नु ददमीः फल्गुनानुपाश्रितम्।' (कि १।१९)। अत्रैवमिह चैतत्। ये हि मानिनो मानमेव प्रधानतो गणयन्ति न ते आत्माभिभवन्ति नियम्। अभिभवमस्य मानमाद्रियन्ते। यशस्य सम्पादनैकावधानं सुदुष्करम्। तदुच्यते भारविना—'न मानिता चालित मन्ति च त्रिया' (कि १४।११)।

तेजोऽभावमये सम्पद्यतेतरामावस्थाऽस्या गुणार्जनस्य। नास्तरेण गुणसंघं मानिता तेजस्विता वा शमयति। गुणार्जनं मूलं मानितायास्तेजस्वितायाश्च। गुणैरेवाप्यते यशो महिमा च। गुणैरेव गौरवातिशयश्चरत्वं च। उक्तं च भारविना—'गुणास्तां नयन्ति हि गुणा न सहतिः (कि १२।१)। गुणार्जनस्य महत्त्वमन्यत्रापि भूयते। गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्'। मनुभूतिरपि गुणानामेव पूज्यत्वमाचष्टे, न तु वय आदीनाम्। 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः' (उत्तर ४।११)। गुणैरेव स्थायिनी कीर्तिः सुकथा शरीरं तु गतरम्। यशोशरीरे एव विश्रमन्ति साधूनां सञ्चरितानि। तदुच्यते—'शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम्। शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः। (हितोपदेशः १।४९)।

तेजस्विन एव नामाभिनन्दन्ति त्रियोऽपि। त एव खलु पुंसन्मताभिधेयाः। 'नाम यस्याभिनन्दन्ति त्रियोऽपि स पुमान् पुमान्' (किरात १।२।३१)। क्षणमपि तेजःरहितं जीवितं श्रेयो न च चिरं क्षणमात्रम्। तेजस्विनैव तत्त्वं जीवितस्य। अतः साधूच्यते—'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।

१९ आशा बलवती राजन् श्वपचो जेष्यति पाण्डवान् । (निशी० ५ २१)

का नामाशा ? कथं चाचरतीयं विप्रियं दुष्प्रियं वा सर्वस्य लोकस्य ? अस्ति किमावश्यकता जीवने आशाया उपादानस्य परिहारस्य वा ? उपादत्ता चेत् किमिति किंचित् साध्यति साध्यमिह जगति ? निरस्ता चेत् किं सुखदा विपक्ष्य कुरुक्ष्य वा भवति ? आशाया नाममात्रेण समकालमेव समुपतिष्ठन्ते बहवोऽनुयोगाः । ते क्रमशोऽत्र निरिष्यन्ते । तेषामौचित्यमनौचित्यं वाऽवधारयिष्यते समुचितक्रमम् । प्राक् तावद् विचार्यते—का नामाशा ? आ समन्ताद् अश्नुते व्याप्नोति मानसानां चेष्टानीत्याशा । आङ्पूर्वकादशधातोरङ्प्रत्ययेनैतद् रूपं निष्पद्यते ।

वेदेषूपलभ्यते सर्वत्राशाशब्दस्य प्रयोगः । श्रुतयो मुहुर्मुहुरादिशन्ति मानव माशामवलम्ब्य समुद्यमै समुद्भवै प्रगतै च । उच्यते च—(क) ववृत्र स्वाम पतयो रयीणाम् (यजु० १ २०), (ख) अग्ने नय सुपथा राय० (यजु० ४०-१६) (ग) कृधी न ऊर्ध्वान चरथाय जीवसे (ऋ० १ १६ १४) । (घ) अदीना स्याम शरदः शतम् (यजु १६ २४) । (ङ) भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वप्नम् (यजु १०-१७) । (च) उन्मूलस्त महते सौभगाय (अथर्व १ १९ २) । (छ) मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमाम् (यजु० १२ १६) । (ज) मह नमन्तां प्रदिशश्चतस्र (ऋ १ १२८ १) । आशैव जीवने मृतिं स्फूर्तिं चापि चादधाति । तामाश्रित्यैव सर्वविधा समुन्नतिः सुकल्प ।

आशा नामेयं मानवजीवनस्वास्थ्यसंपादिका । मानवजीवने यः संचारः प्रगति-स्फूर्तिरुन्नतिर्वाऽवलोक्यते तस्य मूलकारणमाशाया संचार एव जीवनेऽवगन्तव्यः । यदि नाम न स्याद्याशा जीवने तर्हि नरस्यैकस्य न स्याज्जीवने प्रगतिर्वीक्ष्यते यत्रतत्र सर्वत्र च । आशा नाम जीवनेऽनुपमा स्फूर्तिमदायिनी काचिदपूर्वा शक्तिः । यया मुमूर्षोरपि जीवनाशा संचार्यते । यया धीरे धीरायमिमानित्वं शूरे शौर्यं विदुषि वैदुष्यं धीरे धैर्यं सदा सुखं च प्रसार्यते । यया दीने हीने खिन्ने विपन्ने विपन्नेऽपि च धैर्यमाधीयते दुःखं दुःखजनकं वाविष्क्रियते चेतसि । नैराश्यस्य घोरायां तमिस्रायामपि यया ऽविर्भाव्यते जीवनयोतिर्यं आत्मन्यात्मानं ज्योतिः । न ज्योतिरन्तरं चरणेन क्रमदूरम् । आगतवतोऽनिशं यात्रेऽपि स्यात्ते साध्यस्य । ज्योतिरेतदेव प्रेरयति मुमुक्षुं मोक्षाधिगमाय, साधकं साधनाधिष्ठानाय, शास्त्रिनं शुभाध्यवसाय, सुधिनं सुखाध्यवसाय, विपश्चितं विद्यावैभवाय, कविं काव्यकौशलाय, शूरं शौर्याय, वीरं धैर्याय च । अवसरेऽवसरेऽसौ सुनियन्ता सर्वलोकस्य ।

आशा नामेयं चिरतरमावश्यकी जीवनेऽस्मिन् । उपादेया सेयमुन्नतिमभीप्सितवि-द्भिः । अस्ति चेच्छेत्तरि धैर्यस्याऽपिधाता तर्हि मूलमियमाशेव । विपन्ने विपन्ने च मानवे धैर्यमादधातव्यमेव । यदि विपक्षावली, तदानवो प्रबुद्धः, नियन्तव्यानि रिपवः, नियन्तव्ये उपस्थे उद्गमोऽनिवार्यः, एवं विपदां सर्वोऽपि प्रबुद्धः, क्रमशः सम्पदां समुपनियन्तेति विचारं विचारं धीरैर्धैर्यं धारयति ।

उपायश्चा चेदियं साधनत्वेनाभ्यमपि साध्यं साधूनाम्। परहितनिरता हि साधवः पीड्यन्ते पापिष्ठैः पुरुषैः। अज्ञानसंसारसंक्षीणसत्त्वा इवाधवो न चिन्तयन्ति चारुचेतसां चरितानि। अपगते चाज्ञानमले त एव साधूनां सच्चरितानि चिन्तयन्ति, प्रशंसन्ति च तेषां परहितनिरतत्वम्। दृष्ट्वा आत्मपरेनैव साधवोऽसाधून् विजयन्ते। प्रोषिते हि भर्तरि वियोगदुःखविधुरा दारा न रमन्ते क्वापि शान्तिम्। व्यर्थैव यापते तासां यौवनम्। सैव साहयति गुर्वपि विरहदुःखम्। अत आह कालिदासः—गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति (शा ४ १६)। अतिमुग्धं हि मानसं भवति मनस्विनीनाम्। आशाबन्ध-मन्तरेण न शक्यं स्वामिविप्रयोगदुःखं सोढुम्। अत उच्यते—आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि। (मेघ पूर्व ९)।

आशामवलम्ब्यैव वीतरागमनसोऽपि संसारसागरोत्तरणोपदेशदक्षा ऋषयो मुनयश्च मुमुक्षवस्तीर्णं तपस्तप्यन्ते। आशामभिलषैवान्तेवासिनो महच्छ्रमसमुदायं परीक्षोत्तीर्णा यौवने साफल्यं भजन्ते। महाभारते युद्धे गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च देवभूमि गते आशा माधित्यैव शल्यं सैनापत्येऽभ्यषेचयन् कौरवाः। अत एवोच्यते—'गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते। आशा बलवती राजन्कस्मै शल्यमदापयत्'। देशान्तरगः समाजो ग्लपितआशाभवनेनैव रमयति। स्मरन्तश्चैते विविधाः पञ्चवर्षीया योजना देशान्तरवासा श्रयेण प्रकर्षन्ते। अवगम्यत एवमाशया महत्त्वम्।

इदं चाशाबन्धनम्। दृष्टं कैनापि—अति सर्वत्र वर्जयेत्। यद्यपीयेयं तृष्णारूपेण परिणमते चेत् भवत्येव विपदां निदानम्। महि साध्यति तृष्णा, तदुपकरणानि तु साध्यन्ति। साधनमेषाशा श्रेयस्करी मुक्तिसाधनस्वरूपा च यावदियं मोक्षमते स्वीयां मर्यादाम्। मर्यादातिक्रमे तु स्वमेव दुःखास्पदत्वं भजते इत्यत्र न कस्यापि विप्रतिपत्तिः। परन्त्वेतस्मिन् दृष्टेव किमत्र कोविदैराशापाशविच्छित्तिक्रिया, सन्तोषस्य च सङ्क्रिया। उच्यते च—'आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्'। न स्यादाशा यदा सर्वदा, अपि त्वाशामेव सर्वदा विदधीत। आशा चेद् वशगा तर्हि सर्वोऽपि लोको वशगो भवेत्। अत उच्यते—'आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य। आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः'। आशाबन्धनस्य न भवति मोक्षः स्थविरत्वेऽपि। अतः साधूच्यते—'अङ्ग गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्। वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्'। 'काकः क्रीडति गन्धवत्यामुत्तरपि न मुञ्चत्याशा वायुः। तरेः शिष्यत्वं वद् तृष्णालेन नाभ्येत्याशाम्। आशा वशगा विपाद तामाखिल

२० स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च ।

शिक्षा नाम खीजने शुभाशुभज्ञानदात्री पुण्यापुण्यविवेचनी हिताहितनिदर्शनी हेयोपादेयनिदेशनी समुन्नतिसाधिकाऽवनतिनाशनी सदाचारनिर्माणकर्त्री दुर्गुणविरोधात्री आत्मतत्त्वप्रतिपादनसमर्था प्रज्ञादात्री, विद्याः परिपक्वी, संयमस्य साधयित्री, दमस्य दात्री, वैराग्यस्य जननी, धीरत्वस्य धीरयित्री सदाचारस्य संचारयित्री, पुण्यप्रवृत्तेः प्रेरयित्री, दुष्प्रवृत्तेर्दमयित्री, समग्रसुखनिधाना शान्तेः सरणिः, पौरुषस्य पावनी काचिदद्भुता अद्वितीया निखिलेऽपि भुवने । तस्मात्सैवैका सुविधो विधातेदं हेयहितं समाजहितं व्यक्तिहितं च विधीर्षन्ति, लोकस्य दुःखदावाग्निं संविद्धीर्षन्ति, दीनानुपचिकीर्षन्ति, सदाचारानाधित्सन्ति दुर्गुणान् निघातयन्ति, सत्कर्म विधित्सन्ति, दुष्कर्म विद्वेषयन्ति आत्मानं मुमुक्षन्ते च । यथेयं नराणां हितसाधयित्री सुखदायिनी च, तथैव स्त्रीणामपि इतेऽनिवार्या सुखदायिनी साधिका समुन्नतिमूला च । यथा च नान्तरेण शिक्षां पुरुषैरभ्युदयादिः सुकरः सुकरश्च, तथैव स्त्रीणां इतेऽपि तमधिगन्तव्यम् । नरस्य नार्याश्च द्वयोरपि तदुपादेयत्वमुपरतस्य कर्तव्यम् । यथा चक्रेणैकेन न रथस्य गतिर्भवित्री, एवं सर्वांपेक्षापि स्त्रियमन्तरेण न गृहस्थस्य प्रगतिः सुकरा । यदि विदुषि मरे सहधर्मचारिणी चेत् सच्छिक्षापरीक्षिता, न शान्तं सुखाकरम् । द्वयोरेव गुणैर्धर्मेण ज्ञानेन विनया स्त्रीत्वेन सौजन्येन च गार्हस्थ्यं सुखमाधत्तीतरथमन्तव्यम् । यस्य नरेण जनमन्तरा समुन्नतिर्दुष्कर, तथैव स्त्रियाऽपि । एतर्हि पुरुषशिक्षावत् स्त्रीशिक्षाप्यनिवार्या ऽऽवश्यकी च ।

यदि विचारदृशा विमृश्यते परीक्ष्यते चेत् भूतलावतरणकृत्यमनुभूयते स्त्रीशिक्षायाः । स्त्रिय एवैता मातृपदेः प्रतीकभूताः । नियतिर्विधैवास्तु पतासुतरक्षायित्वं शिशोर्भरणस्य पोषणस्य च गृहस्य संचालनस्य संस्थापनस्य च, गृहस्वच्छीकरणस्य सुखस्य शान्तेश्च, परिवारपुष्टे कुटुम्बसरलस्य च, श्वशुरश्वश्वोः शुश्रूषायाः परिवहनस्य, शिशोः शैशवे शिक्षणस्य प्रशिक्षणस्य च शिशौ सत्संस्काराधानस्य सच्चरित्रनिधानस्य च, मर्तुः सद्योगस्य सदाचोन्नयनस्य च अभ्यासस्तत्परायाः लोकहितसाधनस्य च । अतोऽत्र पैदुष्यं न संभाव्यते स्त्रीभिः स्त्रीयोचरशिक्षणपरीक्षणम् । पैदुष्यस्याभाव च न केवलं विविधविषयपरीक्षीकरणमेव पर्याप्तम्, अपितु व्यावहारिकीणां विविधानां विद्यानां विज्ञानानां च परिज्ञानमपि तासां इतेऽनिवार्यम् । विविधकलाकौशलपटीयस्त्वमप्यासां पार्वते सम्यक्त्व जीवने मधुरं सुखावहमाचरणं शक्यते च सम्पादयितुम् । विशदीभवत्येतस्माद् वस्तुतश्च शिक्षणमावश्यकमपि नितरामावश्यकी । ज्ञानविज्ञानकौशलमधिगच्छति चेत् इत्यपि वस्तुतोऽर्हति न केवलं तैरेवेयं जीवनं सुखशान्तिसमन्वितं भवितुमपि तु समाजहितं व्यक्तिहितं च संभाव्यते तैः सम्पादयितुम् ।

क्रियतेऽपेत् स्त्रीशिक्षाया व्यवस्थकता तर्हि बहवोऽनुयोगाः पुरस्तोऽवतिष्ठन्ते। तद्यथा—किं स्यात् स्त्रीशिक्षायाः स्वरूपम्? कीदृशी शिक्षा तासां हितकरी भवितुमर्हति? कुमाराणां कुमारीणां च सदृशिक्षा भेदस्करी न वेति? विषयेष्वेषु नैकमत्यं मतिमताम्। कुमारीणां शिक्षा कुमाराणां शिक्षातश्चैव स्यात्। तत्र नास्तिकः कश्चन प्रतिबन्धः। जीवनसंग्रामे साम्यमूला स्यात् तासु व्यवहृतिरित्येके आतिष्ठन्ते। अन्ये तु नरनारीनैसर्गिको भेदोऽपोद्धर्तव्यः, तेषां कार्यक्षेत्रसमा, तेषां व्यवहारक्षेत्रं विपरीतम्, तेषां वृत्तिरेव इत्यास्थाय शिक्षायामपि वैविध्यं हितकरमाकल्पयन्ति। उचितं चैतत् प्रतिभाति। नार्यो हि मातृपदेः प्रतीकभूता इत्युक्तपूर्वम्। तासां हृदि चैव शिक्षा भेदो विनिवेशयितुं प्रभवति या मातृशक्तिमूलभूतान् गुणान् उन्मेषेत्। तासु शील सौकुमार्यं लज्जाया लोहं वात्सल्यं सन्तानिष्यं दृढहृदित्वमुत कर्तव्यनिष्ठतामाधिक्येन पोषयेत्। गुणानामेतेषामभावस्तासु, तर्हि तत्कृतकृत्यनिष्पादनमपि तासां निष्प्रयोजनम्। अतस्तादृशी शिक्षा हितकरी या सन्तीत्यविद्युत्प्रमाणपूर्वकं तासु पूर्वकथितोदारं कर्मनिष्ठां सद्वृत्तीपोषणवृद्धिमुत्पादयेत्। "स्त्रीशूद्रो नाधीयाताम्" इत्यत्र न ब्रह्मर्षि मुनिवचः शास्त्रम्। लोकव्यवहारज्ञानविहीनानां केषामप्युक्तिरियं तेषां मतम्।

कुमाराणां कुमारीणां च सदृशिक्षा विषये वैमत्यमधुनाऽपि लक्ष्यते विदुषाम्। दोषाय सदृशिक्षा कल्पते। न तत्र व्यावहारिकी विज्ञता। यौवनेऽपि सदृशिक्षा भेदस्करीति न वक्तुं सुकरम्। व्यवहारदृशा दृश्यते यत् समापद्यति यद् यौवने सदृशिक्षा न तथा हितसाधनी यथाऽहितसाधनी। अतो पाठ्यक्रमस्तावद् यौवने पृथक् शिक्षैव प्रशस्या।

मुनिशिक्षैव सा सद्वृत्तिनी सती सात्वी सत्कर्मसंरक्षणा संसारतिक्षारक्षमा च भवितुमर्हति। सैव सद्वृत्तादिसद्गुणगणान्विता लक्ष्यते विधातुमीशे। स्त्रिय एव मातृभूताः सद्वंशं सद्राष्ट्रं च निर्मातुं प्रभवन्ति। आह्निकक्रियाकलापविकलो मानवो न तथाऽपरेषु सत्संस्कारधाने प्रभवति, यथा मातरः। अतः मातृपदेः शास्त्रेषु महद् गौरवमनुभूयते। उक्तं च मनुना—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'। अन्यत्र चोच्यते—'मातृदेवो भव', 'सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते पितुर्दशगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते'। यद्यपि शास्त्रदेवतात्वात् सा गृहिणी, यद्यपि स्वामिनी गृहकर्मनीतिव्यवस्थापिका संभूयते। तथापि सा गृहिण्युच्यते। उच्यते च—'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते'। आयुर्वेदेऽपि 'आयुर्वेदस्तम्' गृहिण्येव गृहमिति प्रतिपाद्यते। एवं मातरः स्त्रियश्च सर्वत्रैव समादरमर्हन्ति। देशस्य समाजस्य च समुन्नत्ये स्त्रीशिक्षा नितरामावश्यकीत्यवधारणीयम्।

(९) अनुवादार्थ गद्य-संग्रह

(१) चरे चलो चरे चलो (ऐतरेय ब्राह्मण, अ ३३, खंड ३)

हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को इन्द्र ने उपदेश दिया कि—(क) हे रोहित, हमने सुना है कि कठोर परिश्रम करके बने बिना ऐश्वर्य नहीं मिलता। परावलम्बी मनुष्य पापी होता है। परमात्मा परिश्रमी का साथी होता है अतः बढ़े चलो। (ख) बैठे हुए का ऐश्वर्य बैठ जाता है उठते हुए का उठता है, सोते हुए का सोता है और चलते हुए का चलता है अतः बढ़े चलो। (ग) सोता हुआ कलियुग होता है अंगड़ाई लेता हुआ द्वापर होता है उठता हुआ त्रेता होता है और चलता हुआ सतयुग होता है अतः बढ़े चलो। (घ) चलता हुआ मधु पाता है, चलता हुआ स्वादिष्ट गूलरों को खाता है। सूर्य की श्रेष्ठता को देखो जो चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता, अतः बढ़े चलो।

(२) अभिमान से पतन (शतपथ ब्राह्मण काण्ड ५, प्र० १, ब्रा० १)

देवता और असुर दोनों प्रजापति के पुत्र हैं। दोनों में स्पर्धा हुई। तब असुरों ने हृदभिमान से सोचा कि हम किसमें हवन करें? उन्होंने स्वार्थ-बुद्धि से अपने ही मुँह में आहुति दी और अपनी ही उदरपूर्ति करते हुए विचरण करने लगे। वे हृदभिमान के कारण ही पराजित हुए। अतएव हृदभिमान न करें। हृदभिमान पतन का कारण है। देवों ने स्वार्थ-बुद्धि को छोड़कर एक दूसरे के मुँह में आहुति दी और परोपकार करते हुए विचरण करने लगे। प्रजापति ने अपने आपको उन्हें समर्पण किया। उनसे बढ़ गया। वह देवों का अन्न है।

संकेत—(१) (क) मानाभान्याम श्रीरतीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरत सखा। चरैवेति। (ख) आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः। शेते निषद्यमानस्य चराति चरतो भगः। (ग) कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः। उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्। (घ) चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्। सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। (२) देवाश्च वा असुराश्च। उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे। कस्मिन्नु वयं हुदुयामेति। स्वेष्वेवासवेषु जुहवाञ्चक्रिरे। तेऽतिमानेनैव पराबभूवुः। यदयमन्यातिमन्येत। पराभवस्य हैवमुखं यदभिमानः। अन्योन्यस्मिन्नेव जुहवाञ्चक्रिरे। तेभ्यः प्रजापतिरात्मानं प्रददौ। यद्वो हैवमाव। यद्वो हि देवानामन्नम्।

(३) याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद (बृहदारण्यक उप अ ४ ब्र ५)

याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी और कात्यायनी सामान्य स्त्री-बुद्धिवाली। याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा—मैं संन्यास लेना चाहता हूँ और तुम्हें कुछ बताना चाहता हूँ। मैत्रेयी ने कहा—यदि यह सारी पृथिवी धन से पूर्ण हो जाए तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी? याज्ञवल्क्य ने कहा—नहीं, नहीं। जैसा अन्य सांसारिक लोगों का जीवन है, वैसा ही तुम्हारा जीवन होगा। धन से अमरत्व की कोई आशा नहीं है। मैत्रेयी ने कहा—जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उसको लेकर क्या करूँगी। जिससे अमरत्व प्राप्त हो, वह बात मुझे बताइए। याज्ञवल्क्य ने कहा—पति, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, ब्राह्मण क्षत्रिय, जनता देवता, वेद और प्राणियों के हित के लिए ये प्रत्येक वस्तुएँ प्रिय नहीं होती हैं, अपितु अपनी आत्मा की भलाई के लिए ये वस्तुएँ प्रिय होती हैं। अतः आत्मा को देखो सुनो, मनन और चिन्तन करो। आत्मा के देखने सुनने मनन और जानने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

(४) सत्य को जानो और अपनाओ (छान्दोग्य उप अध्याय ७)

सत्य को जानना चाहिए। मनुष्य जब वस्तु-स्वरूप को जानता है तभी सत्य बोलता है। बिना जाने सत्य नहीं बोलता, जानते हुए ही सत्य बोलता है, अतः ज्ञान और विज्ञान को जानना चाहिए। मनुष्य जब मनन करता है तभी जानता है। बिना मनन किए नहीं जानता, मनन करने से जानता है अतः मनन करना चाहिए। मनुष्य को जब किसी वस्तु पर श्रद्धा होती है तभी मनन करता है। बिना श्रद्धा के मनन नहीं करता, श्रद्धा होने पर मनन करता है, अतः श्रद्धा को जानना चाहिए। मनुष्य में जब निष्ठा होती है तभी किसी वस्तु पर श्रद्धा करता है। बिना निष्ठा के श्रद्धा नहीं होती। मनुष्य जब कर्म करता है, तभी किसी काम में उसकी निष्ठा होती है। बिना कर्म किए निष्ठा नहीं होती। मनुष्य को जब किसी कार्य से सुख मिलता है, तभी वह उस काम को करता है। दुःख मिलने पर उस कार्य को नहीं करता। अतः जानना चाहिए कि सुख क्या है? जो महान् है वह सुख है थोड़े में सुख नहीं होता। अल्प महान् है, वह सुखरूप है उसे जानो।

संकेत—(३) प्रव्रजिष्यन् अस्मि। त्वा त्वां तेनानुशा। अमृतत्वस्य तु नाशा-स्ति वित्तेन। कामाय। आत्मनस्तु कामाय। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्। (४) सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यम्। यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति अविजानन्। यदा वै मनुतेऽथ विजानाति, अमत्वा। यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते, अश्रद्दधत्, अदधत्। यदा वै निष्ठां विन्दत्यथ श्रद्दधाति। अनिष्ठां विन्दन्। नाविन्दत्वा निष्ठां विन्दति। कुरुते वा अध्वा करोति। यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।

(५) जगत्कर्ता ब्रह्म (ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य २ १ २४)

चेतन ब्रह्म एक और अद्वितीय जगत् का कारण है, यह अपक्ष कथन ठीक नहीं है क्योंकि संसार में सर्वत्र साधन-समूह के संग्रह से कार्य की सत्ता दृष्टिगोचर होती है। घट पट आदि के बनानेवाले कुम्हार आदि मिट्टी चाक, डंडा, धागा आदि अनेक साधनों को लेकर घटादि को बनाते हैं। ब्रह्म असहाय है, अतः वह अन्य साधनों के अभाव में कैसे संसारको बना सकता है? इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म जगत् का कर्ता नहीं है। आपकी पूर्वोक्त युक्ति युक्तियुक्त नहीं है। द्रव्य के विशिष्ट स्वभाव के कारण ऐसा हो सकता है। जैसे दूध दही के रूप में परिणत होता है और जल बर्फ के रूप में। उसी प्रकार ब्रह्म जगत् के रूप में परिणत होता है। उष्णता आदि दूध से दही बनने में सहायकमात्र होते हैं। दूध से ही दही बनेगी, जल से ही बर्फ, अन्य वस्तु से नहीं। इससे ज्ञात होता है कि वस्तु-विशेष से ही वस्तु-विशेष बनती है। अन्य वस्तुएँ उसमें सहायकमात्र होती हैं। ब्रह्म सर्वसाधन-सम्पूर्ण है, अतः विविध शक्तियों के योग से एक ब्रह्म से ही विविध परिणाम-युक्त यह जगत् उत्पन्न होता है।

(६) सांख्य-दर्शन

इस दर्शन के संस्थापक कपिल मुनि माने जाते हैं। इस दर्शन के अनुसार व्यक्त (प्रकट जगत्), अव्यक्त (मूल प्रकृति) और ज्ञ (पुरुष) के ज्ञान से सांसारिक दुःखों की समाप्ति होती है। इस दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण हैं। इस संसार में प्रकृति और पुरुष ये दोनों स्वतन्त्र और अविनाशी सत्ताएँ हैं। प्रकृति में तीन गुण हैं—सत्त्व रजस् और तमस्। इनकी साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। जब इस त्रिगुण की साम्यावस्था में अन्तर पड़ता है, तब सृष्टि का प्रारम्भ होता है। प्रकृति से महत् या बुद्धि उत्पन्न होती है। महत् से अहंकार और अहंकार से ११ इन्द्रियों अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रियों, ५ कर्मेन्द्रियों और मन तथा ५ तन्मात्राएँ (शब्द स्पर्श, रूप, रस गन्ध) उत्पन्न होती हैं। ५ तन्मात्राओं से ५ स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। कार्य के विषय में इस दर्शन का मत है कि कार्य कारण में सदा अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। इस सिद्धान्त को सत्कार्यवाद कहते हैं। कारण कार्य के रूप में प्रकट होता है। कारण का कार्यरूप में वास्तविक विकार होता है। इस सिद्धान्त को परिणामवाद कहते हैं।

संस्कृत—(५) इति यदुक्तं तन्नोपपद्यते, कस्मादुपसंहारदर्शनात्। षट्कम्। साधनान्तरानुपसंग्रहे। द्रव्यस्वभावविशेषादुपपद्यते। दधिक्षीरेण परिणमते हिमस्त्रेण। योगात्। (६) व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्। सत्ताद्वयी वर्तते। सत्त्वं रजस्तम इति पंच तन्मात्राः।

(७) महाभाष्य-नवनीत (महाभाष्य, नवाह्निक भा १, २)

(क) जिसके उच्चारण करने से तत्तद्गुणादिविशिष्ट वस्तु का बोध हो, उसे शब्द कहते हैं। (ख) रक्षा ऊह (तर्क) आगम लघुत्व और असन्देह ये व्याकरण-अध्ययन के प्रयोजन हैं। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए। वेद के मन्त्रों में यथास्थान विभक्ति आदि के परिवर्तनार्थ व्याकरण पढ़ना चाहिए। यह परम्परागत आदेश भी है कि—ब्राह्मण को निःस्वार्थभाव से धर्म-स्वरूप षडङ्ग वेद पढ़ना और जानना चाहिए। व्याकरण के द्वारा ही अत्यन्त अल्प श्रम से शब्दज्ञान हो सकता है। व्याकरण के द्वारा शब्दार्थज्ञान में सन्देह नहीं रहता कि इस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है। (ग) चार प्रकार से विद्या का उपयोग होता है—विद्याभ्यासकाल के द्वारा स्वाध्याय काल के द्वारा प्रवचनकाल के द्वारा और व्यवहारकाल के द्वारा। (घ) द्रव्य नित्य है, आकृति अनित्य है। यह कैसे ज्ञात होता है? संसार में ऐसा देखा जाता है कि मिट्टी एक आकृति से युक्त होकर पिण्ड होती है। उसको बिगाड़कर घड़े आदि बनाए जाते हैं। इसी प्रकार सोने की बनी वस्तु की एक आकृति को बिगाड़कर अनेक आभूषण बनाये जाते हैं। आकृति बार-बार बदलती जाती है किन्तु द्रव्य वही रहता है। आकृति के नष्ट होने पर द्रव्य ही शेष रहता है। अथवा आकृति भी नित्य है क्योंकि वस्तु की कोई न कोई आकृति होती ही है। (ङ) चार प्रकार के शब्द होते हैं—जातिवाचक गुणवाचक क्रियावाचक और यदृच्छा शब्द।

(८) वाक्यपदीय-सुभाषित (वाक्यपदीय काण्ड १ और २)

(क) संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो शब्दज्ञान के बिना हो। सारा ज्ञान शब्द से मिश्रित होकर ही प्रकाशित होता है। (ख) शब्द और अर्थ ये दोनों एक ही आत्मा के अपृथक् रहनेवाले भेद हैं। (ग) अनेकार्थक शब्दों के अर्थों का निर्णय इन साधनों से होता है—संयोग वियोग साहचर्य विरोध प्रयोजन, करण लिङ्ग-विशेष अन्य शब्दों का सान्निध्य सामर्थ्य औचित्य देश काल लिंग-विशेष स्वर आदि।

संकेत— (७) (क) एतदागमसहस्रस्य प्रयोजनम्। आगमः खल्वपि प्राधान्येन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। (ग) चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति—व्याख्यानकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन व्यवहारकालेनेति। (घ) द्रव्यं हि नित्यम् आकृतिरनित्या। कथं ज्ञायते? पिण्डः। उपमृद्य। क्रियते। आकृतिरन्या चान्या च भवति। आकृत्युपमर्दन। अथवा नित्याऽऽकृतिः। (ङ) चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः—जातिशब्दा गुणशब्दाः क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दाः। (८) (क) न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते। (ख) एकस्यैवात्मनो मेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ। (ग) संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः। सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः। शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥

(९) पम्पासर-वर्णन (वा० रामायण, किष्किन्धा सर्ग १)

हे लक्ष्मण ! यह पम्पा पम्पे के तुल्य स्वच्छ जल से पूर्ण है। चारों ओर कमल खिले हैं और अनेकों वृक्षों से शोभित है। पम्पा का वन भी दर्शनीय है। यहाँ ऊँचे ऊँचे वृक्ष शिखरयुक्त पर्वतों के तुल्य प्रतीत होते हैं। यह कमलों से व्याप्त है और दर्शनीय है। वृक्षों की चोटियाँ फूलों के बोझ से झुकी हुई हैं और वृक्ष पुष्पित लताओं से व्याप्त हैं। वन पुष्पित वृक्षों से युक्त है और वृक्ष फूलों की वर्षा इसी प्रकार कर रहे हैं जैसे बादल जल की वर्षा करते हैं। पत्थरों पर उगे वृक्ष अनेकों वनपुष्प हवा से कम्पित होकर पृथ्वी पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। वायु गिरे हुए, गिरनेवाले और वृक्षों पर उगे हुए फूलों के साथ क्रीड़ा सी कर रही है। पर्वत की कन्दराओं से निकली हुई वायु वृक्षों को नचाती हुई सी मत्त कोकिलों की ध्वनि से गान सी कर रही है। सुपुष्पित कमल जल में तरुण सूर्य के तुल्य चमक रहे हैं। वायु एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर और एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमती हुई अनेकों रसों का आस्वादन करके आनन्दित सी घूम रही है। भौंरा फूलों का रसास्वादन कर प्रेममत्त हो फूलों में ही लीन है। भौंरों की ध्वनि से युक्त वृक्ष एक दूसरे को बुलाते हुए से प्रतीत होते हैं।

(१०) नलोपाख्यान (महाभारत, वनपर्व)

राजा नल वीरसेन का सुपुत्र था और निषध देश का राजा था। वह सुन्दर, सुशील, वीर, बड़ा वेद-शास्त्र अस्त्रविद्या-विशेषज्ञ और पाकशास्त्र-प्रवीण था। उसके राज्य के समीप ही विदर्भ का राज्य था। वहाँ राजा भीमसेन राज्य करता था। उसकी पुत्री दमयन्ती सर्वगुणों से युक्त और सर्वसुन्दरी थी। चारणों ने एक दूसरे के समक्ष दोनों की प्रशंसा की। फलस्वरूप नल और दमयन्ती एक दूसरे को बिना देखे ही प्रेम करने लगे। एक दिन उद्यान में भ्रमण करते समय नल ने एक सुन्दरी हंस देखा। उसने उस हंस को पकड़ लिया। हंस की प्रार्थना पर नल ने उसे छोड़ दिया। हंस ने निवेदन किया कि मैं आपकी एक उत्तम सेवा करूँगा। हंस उड़कर विदर्भ पहुँचा और वहाँ उसने दमयन्ती के समक्ष नलके गुणों की प्रशंसा की। दमयन्ती ने नल से विवाह का निश्चय किया। हंस ने सारी सूचना नल को दी। दमयन्ती के विवाहार्थ स्वयंवर का आयोजन हुआ। सभी राजा और राजकुमार स्वयंवर में पहुँचे। इन्द्र अग्नि वरुण और यम भी स्वयंवर में आए। दिक्पालों ने नल के द्वारा प्रयत्न किया कि दमयन्ती उनमें से एक को चुन ले। परन्तु दमयन्ती ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। स्वयंवर में उसने नल को ही पति चुना। चारों दिक्पालों ने उसकी दृढ़ता की पवित्रता देखकर उसे वर दिए।

संकेत:—(९) वेतूर्वमिमलोदका। उपपन्ना। शिखरिणि, पुष्पभारसमृद्धानि, उपपन्नानि। पुष्पवर्षाणि। उद्भूताः, पुष्पैरवकिरन्ति गाम्। पतितैः, पतनैः, पादपस्थैः। मत्तषट्पदिनः, गायतीव। सुखवत् प्रकाशन्ते। पादपाद् पादपं, गच्छन्, आस्वाद्य, वायुः। आह्वयन्त इव भान्ति। (१०) आत्मसम्भवम्। वृणुयात्।

(११) आचार शिक्षा (चरकसंहिता)

जो अपना हित चाहता है, वह सदाचार का पालन करे। इससे दो काम होते हैं—आरोग्य और जितेन्द्रियता। देवता ब्राह्मण, गुरुओं, वृद्धों और आचार्य की पूजा करे। सुन्दर वेष रक्खे बालों को ठीक सँवारे प्रसन्नमुख रहे, समय पर हितकर स्वल्प और मधुर बात कहे। इन्द्रियों को वश में रक्खे, धर्मात्मा निर्भीक आस्तिक बुद्धिमान् उत्साही और क्षमाशील हो। आलस्य न होने दे। पर धन को न ले। झगड़ा पसन्द न करे, पाप न करे। दूसरे के दोषों को न कहे। दूसरों की गुप्त बात न बतावे। अधार्मिकों के साथ न बैठे। बहुत ज़ोर से न हँसे। नाक न बोले दाँत न कड़कड़ावे भूमि न कुरेदे, तिनका न तोड़े। न अधिक जागे, न अधिक सोवे और न अधिक खावे पीए। नेत्र आदि से विरोध न करे। रात में दही न खावे। विद्वानों का अपमान न करे। देवताओं और गुरुओं की निन्दा न करे। अपनी प्रतिष्ठा को न तोड़े। अपने संयम को नष्ट न करे। अपने नियम को न तोड़े। लोभी और मूर्खों से मित्रता न करे। गुप्त बात प्रकट न करे। किसी का अपमान न करे। अभिमान न करे। संयम को हाथ से न जाने दे। शोक के वश में न हो। धैर्य और पराक्रम को न छोड़े।

(१२) कालमृत्यु और अकालमृत्यु (चरकसंहिता)

कालमृत्यु और अकालमृत्यु कैसे होती है? भगवान् आत्रेय ने अग्निवेश से कहा कि—जैसे रूप की छुरी अपनी विशेषताओं से युक्त होती है और वह उत्तम तथा सर्वगुणसम्पन्न होने पर भी चलते-चलते समयानुसार अपनी शक्ति के क्षीण हो जाने से नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार बलवान् मनुष्य के शरीर में आयु स्वभावतः धीरे-धीरे उपयोग में आने पर अपनी शक्ति के क्षीण होने पर नष्ट हो जाती है। जैसे वही छुरी बहुत बोझ लादने से ऊँचे नीचे मार्ग पर चलने से पहिए के टूटने से, ठीक निशाने पर न लगने से बीच में ही टूट जाती है उसी प्रकार शक्ति से अधिक काम करने से उचित रूपसे भोजन न करने से हानिकारक भोजन खाने से, इन्द्रियों के असंयम से, दुर्घटना से विषादि के खाने से और अनशन आदि से बीच में ही आयु समाप्त हो जाती है। इसको अकालमृत्यु कहते हैं। इसी प्रकार रोगों की ठीक चिकित्सा न होने से भी अकालमृत्यु होती है।

संकेत—(११) व्यायामरतिं चिकीर्षता सद्वृत्तमनुष्ठेयम्। प्रज्ञाधितिक्षाभ्यां स्यात्। काले परिमितमपुनर्गयचारी स्यात्। न वेगान् रोधयेत्। नाम्यरहस्यमागमयेत्। कुक्षीयात् विषहयेत्, विश्रियेत्, क्षिप्यात्। न विकत्थेत। न क्षिपमवजानीत। न परिवदेत्, न गुह्यं विवृणुयात्। न कालकालमतिपातयेत्। क्षमात्। (१२) अक्षा, यथाकालम्, स्वधर्मोपघातात्। अतिभाराधिष्ठितत्वात्, विषमपथात्, चक्रभङ्गात्, कीलमोक्षात्, हेत्वा घातात् अन्तरा स्वतन्त्रमापद्यते। अपचाबलमारम्भात्। मिथ्योपचारात्।

(१३) सन्ध्यावर्णन (सुबन्धुकृत वासवदत्ता)

इसके बाद सूर्य अस्ताभिमुख हुआ। वह अस्ताचलरूपी कल्पवृक्ष के पुष्प के गुच्छे के समान सुन्दर प्रतीत हो रहा था। वह सिन्दूर-पंक्ति से शोभित ऐरावत के गण्ड स्थल की शोभा धारण किए हुए था। वह आकाशरूपी लक्ष्मी के विकसित पुष्पस्तबक के तुल्य, आकाशरूपी अशोक वृक्ष के गुच्छदल के तुल्य और पश्चिम दिशारूपी अंगना के स्वर्ण-दर्पण के तुल्य प्रतीत होता था। इस प्रकार विद्रुमलता-तुल्य आकृति-युक्त भगवान् सूर्य पश्चिम समुद्र के जल में मग्न हो गए। वृक्षों की चोटियों पर चिड़ियाँ शब्द करने लगीं और वे अपने घोंसलों की ओर जाने लगे। वासगृहों में अगर की धूप बत्तियाँ जलने लगीं। दासियाँ लोरियाँ गाकर और थपथपाकर बच्चों को सुलाने लगीं, ब्राह्मण सन्ध्या-वन्दन करने लगे। कपि-वृन्द उद्यान-वृक्षों पर आश्रय लेने लगे। जीर्ण वृक्षों के कोटरों से उल्लू निकलने लगे। अन्धकार को भगाने के लिए दीपशिखाएँ चमकने लगीं। उस समय पश्चिम समुद्र की विद्रुम-लता के तुल्य, आकाशरूपी सरोवर की रक्त-कमलिनी के तुल्य, कामदेव के रथ की स्वर्णपताका के तुल्य, आकाशरूपी महल की लाल पताका के तुल्य, पीले वर्ण से युक्त सन्ध्या दिखाई पड़ी।

(१४) वर्षावर्णन (सुबन्धुकृत वासवदत्ता)

कुछ समय बाद वर्षा ऋतु आई, उस समय आकाशरूपी सरोवर में कामदेव की स्वर्ण और रत्न-जटित मीना की तरह आकाशरूपी महल के मुख्यद्वार की रत्न-माला के तुल्य आकाशरूपी कल्पवृक्ष की सुन्दर लता के तुल्य कामदेव की रत्न-जटित मेखलामणि के तुल्य इन्द्रधनुषरूपी लता शोभित हुई। प्यारीरूपी बालों में उलझते हुए पीले हरे मेंढकरूपी मोहरों से मानों वर्षा ऋतु बिजली के साथ शतरंज खेल रही थी। बादलरूपी कलशों पर बिजलीरूपी रस्से के चलने से गिरते हुए मुक्ताहार के तुल्य धारें शोभित हो रही थीं। दिग्वधुओं के टूटे हुए हार के मोतियों के तुल्य ओले शोभित हो रहे थे।

संकेत—(१३) अस्तगिरिमन्दारस्तबकसुन्दरः, विभाति, नभोभित्तिः, गगनाशोकतरोः पुष्पगुच्छ इव, दिनमणिरपराकूपारपतति मग्नः, कलधिधुकुटकल्पवाचाशिखरेषु शिखरिषु, प्रासादेषु, अगुरुधूपपरिमलोद्गारेषु, आलोकिकामिसिकपुकरणाद्दनैः शिखिविषमाणे शिशुजने, निर्विशमिति, स्फुरन्तीषु, गगनहर्म्यस्य, कपिलतारका। (१४) कनकरत्ननीडेव नभोऽशोकोरुरत्नमालिकेव कन्दलेव, रतिमयी, इन्द्रधनुर्लता देवा रिकाकोडिकासु समुत्पतन्ति पीतहरितैर्वर्णैर्मत्कुणैरिव चित्रीकृत विपुला सभं घनकालः। अब्दवाहमणि तडित्सूत्राकरपतत्यारिते, मुक्तनिकरा इव, जलधाराः। विच्छिन्नहारमुक्तानिकरा इव करकाः।

(१५) धर्म त्रिवर्ग का सार (दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, उ० २)

धर्म के बिना अर्थ और काम की उत्पत्ति ही नहीं हो पाती। इसलिए कहा जा सकता है कि धर्म काम और अर्थ की अपेक्षा नहीं करता। यह धर्म ही मोक्ष-सुख की उत्पत्ति का मूल कारण है और चित्त की एकाग्रतामात्र से यह सिद्ध हो जाता है। धर्म अर्थ और काम की तरह बाह्य साधनों के अधीन नहीं रहता। तत्त्वज्ञान से उत्कर्ष को प्राप्त धर्म किसी भी प्रकार से अनुचित अर्थ और काम से कलंकित नहीं होता। यदि अर्थ और काम से बाधित भी हो जाए तो कोई से प्रयत्न से ठीक होकर उस दोष को नष्ट करके महान् कल्याण का साधन बन जाता है। धर्म से पवित्र मन में रजोगुण का समावेश उसी प्रकार नहीं होता जैसे आकाश में धूल नहीं रुकती। अतः मेरा विश्वास है कि अर्थ और काम धर्म की सौवीं कला को भी नहीं पहुँच सकते।

(१६) राजनीति के मूल-तत्त्व (दशकुमार० उत्तर उच्छ्वास ८)

राज्य तीन शक्तियों के अधीन होता है। वे तीन शक्तियाँ हैं—मन्त्र, प्रभाव और उत्साह। ये तीनों परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध होकर अर्थ-साधन करती हैं। मन्त्र से कर्तव्य-कर्म का ज्ञान होता है। प्रभाव अर्थात् प्रभुशक्ति से अर्थ में प्रवृत्ति होती है और उत्साह-शक्ति से कार्यसिद्धि होती है। उपाय साधन, उपाय, देश-काल का विभाग और विपत्ति का प्रतीकार ये पाँच अंग कहे जाते हैं। ये ही पाँच अंग नीतिरूपी वृक्ष के मूल हैं। कोष और दण्ड का प्रभाव उक्त वृक्ष का स्कन्ध है। कर्तव्य अर्थ के लिए स्थिर प्रयास को उत्साह कहते हैं। साम, दान, दण्ड और भेद ये चारों गुण उसकी शाखाएँ हैं। स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और गुप्तचारी, इन आठ राज्य के अंगों के भेद और प्रभेद से नीति-वृक्ष के ७२ पत्ते होते हैं। सन्धि, विग्रह, यान आसन, द्वैध और समाश्रय ये ही नीतिवृक्ष के किसलय हैं। मन्त्र, प्रभाव, उत्साह और इनकी शक्तियाँ इसके पुष्प और फल हैं। यह नीतिरूपी वृक्ष राजा का बराबर उपकार करता रहता है। इसकी रक्षा के लिए अनेकों सहायकों की आवश्यकता होती है, अतः सहायकों से हीन के द्वारा इसकी रक्षा नहीं हो सकती।

सकलना—(१५) निवृत्तिमुख्यप्रवृत्तिरेषः, अप्रमत्तसाधनमात्रसाध्यः। तत्त्वदर्शनोपबृंहितः, न बाध्यते। अस्मदपाश्रयितमादिशतः, केवलेऽनुत्साहे कस्मिंते। मन्त्र, प्रभाव मीमपि कर्म न सहते। (१६) राज्यं नाम शक्तित्रयायत्तम्। एते परस्परानुग्रहीताः कृत्येषु क्रमन्ते। मन्त्रेण विनिश्चयोऽर्थानाम्। असहायेन दुष्करोमः।

(१७) जाबालेराश्रम-वर्णन (कादम्बरी, पूर्वभाग)

मैंने जाबालि का पवित्र आश्रम देखा। वहाँ पर निरन्तर यज्ञ हो रहा है छात्र-वृन्द अध्ययन में लगे हुए हैं अनेकों तोते और मैना वेद का पाठ कर रहे हैं देवों और पितरों की पूजा की जा रही है अतिथियों की सेवा हो रही है, पशु-विद्या की व्याख्या हो रही है धर्मशास्त्रों की आलोचना हो रही है, अनेकों धार्मिक पुस्तकें बाँची जा रही हैं, समस्त शास्त्रों के अर्थों पर विचार हो रहा है, यति-लोग ध्यान लगा रहे हैं मन्त्रों की साधना कर रहे हैं योग का अभ्यास कर रहे हैं। वहाँ न कलिकाल है, न असत्य है, न काम विकार है। यह त्रिलोक से वन्दित है, गायों से अधिष्ठित है, नदी स्रोत और प्रपातों से युक्त है पवित्र है, उपद्रव-रहित है, घने वृक्षों से अन्धकारित है ब्रह्मलोक के तुल्य अति रमणीय है। यहाँ मलिनता हवि धूम में है चरित्र में नहीं। मुख की कालिमा तोतों में है क्रोध में नहीं। तीक्ष्णता कुशाग्रों में है स्वभाव में नहीं। चंचलता कदली-दलों में है, मनों में नहीं। अग्नि प्रदक्षिणा में भ्रमण (भ्रान्ति) है, शास्त्रों के विषय में भ्रान्ति नहीं। मुख-विकार दुराचरण के कारण है जल के अभिघात से नहीं।

(१८) सन्ध्या-वर्णन (कादम्बरी, पूर्वभाग)

इस समय दिन ढलने लगा। स्नान करके निकले हुए मुनियों ने पूजा करते हुए जो अरुण चन्दन का अंगराग पृथ्वी पर दिया मानों सूर्य ने वस्तुतः उसे धारण कर लिया। धूप का पान करनेवाले ऋषियों ने मानों सूर्य की उष्णता पी ली, अतएव सूर्य निस्तेज हो गया। सूर्य की किरणें और पक्षि-गण पृथ्वी और कमलवनों को छोड़कर अब पर्वतशिखरों और वृक्षशिखरों पर पहुँच गए। सूर्य के अस्त होने पर मृगों की छटा के तुल्य काली सन्ध्या दिखाई पड़ी। दिनभर कहीं घूमकर मानों अब दिनान्त के समय काले तारों से युक्त सन्ध्या को लेकर आई है। अब कमलिनी सूर्यरूपी पति से मिलन के लिए मानों व्रत कर रही है। पश्चिम समुद्र के जल में सूर्य के वेग से गिरने से जो बूँदें ऊपर उठे हैं, वही मानों तारागण के रूप में आकाश में शोभित हो रहे हैं। सिद्ध कन्याओं के द्वारा पूजार्थ डाले हुए पुष्पों के तुल्य तारों से युक्त आकाश दिखाई पड़ने लगा। क्रमशः चन्द्रमा उदित हुआ। चन्द्रमा के अन्दर विद्यमान कलंक ऐसा ही प्रतीत हुआ मानों चन्द्रमारूपी तालाब में चाँदनीरूपी जल के पास के क्षोभ से व्याप्त हुआ और अमृतरूपी कीचड़ में फँस जाने से निश्चल मृग हो।

संकेत—(१७) अनवरतप्रवृत्तयज्ञम्, अध्ययनमुखरशुकम्, अनेक शुक-सारिकोद्गीयमानसुप्रभातम्, पूज्यमान उपचर्यमाण, व्याख्यायमान आचक्ष्यमान ध्यानम्। यत्र मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु। मुखरागः शुकेषु न कोपेषु। अरया न जनाभिमानेन। (१८) परिणतो दिवसः उदवहत्, ऊष्मणः, स्थगितमकुरुत। विद्रुमलतेव पाटला। विहगाः। ज्योतिस्तारका। परावर्तिष्ट। दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्। अम्भः-शीकरनिकरम्। अवस्पत। दिनकरस्पर्श चन्द्रिकाकल्पनक्षोभादवतीर्ण, अम

(१९) उज्जयिनी-वर्णन (कादम्बरी, पूर्वभाग)

राजा तारापीड की उज्जैन नामक राजधानी थी। वह समस्त त्रिभुवन की तिलकश्री थी। वह गहरी खाई से घिरी हुई थी सफेदी पुते हुए परकोटे से परिवेष्टित थी, बड़ी-बड़ी बाजार की सड़कों से शोभित थी चौराहों पर बने हुए देव मन्दिरों से अलंकृत थी, वेद-ध्वनियों से निष्पाप थी अतएव ताम्रवर्ण से युक्त थी। वहाँ पर लोग वीर, विनयी सत्यवादी, सुन्दर, धर्मतत्पर, महापराक्रमी, समस्त ज्ञान विज्ञान-वेत्ता, दानी, चतुर, मधुरभाषी प्रसन्नमुख, स्वच्छवेषधारी, सभी भाषाओं के ज्ञाता, सभी शिल्पियों के वेत्ता शान्त और सरल हृदय थे। उस नगरी में सन्निहितों में ही अनिर्वाण था चकवा-चकवी के जोड़े में ही विरोग होता था सोते की ही वर्ण परीक्षा होती थी, व्यालों में ही अस्थिरता थी कुसुमों में ही मिश्रद्वेष (सूईभेद) था, अन्यत्र नहीं।

(२०) शुकनासोपदेश (कादम्बरी पूर्वभाग)

जन्मतिथि प्रमुख नव यौवन अनुपम सौन्दर्य और असाधारण शक्ति, ये चारों महान् अनर्थ के कारण हैं। इनमें से एक-एक भी सभी अविनयों के कारण हैं, सभी एकत्र हों तो कहना ही क्या। यौवन के आरम्भ में प्रायः शास्त्ररूपी अन्न से पोषे से निर्मल भी बुद्धि कलुषित हो जाती है। विषय-भोगरूपी मृगतृष्णा इन्द्रियरूपी हरिणों को हरनेवाली है और सर्वथा दुष्परिणामवाली है। निर्मल मन में उपदेश की बातें उसी प्रकार सरलता से प्रविष्ट हो जाती हैं, जैसे स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें। गुरुजनों का उपदेश मनुष्यों के समस्त मलों को धोने में समर्थ जिना अन्य का स्नान है, आँखों की सफेदी आदि विकलता को न करनेवाला कुहरा है चर्बी आदि को न बढ़ानेवाला गोरस है, असाधारण तेजवाला प्रकाश है। अग्नि को ही देखो। यह सिकने पर भी बड़े कष्ट से सुरक्षित होती है। गुरुरूपी पात्रों के सम्बन्ध से विशेष बढ़ाने पर भी नष्ट हो जाती है। यह न परिश्रम को मानती है न कुलीनता को देखती है, न सौन्दर्य को देखती है न कुलपरम्परा का मानती है न शील को देखती है, न चतुरता को कुछ गिनती है, न त्याग का आदर करती है न विशेषज्ञता का विचार करती है, न सत्य को कुछ समझती है और न व्यवहार का ही पालन करती है। इतको पाकर लोग सभी अविनयों के स्थान हो जाते हैं। ये न देवताओं को प्रणाम करते हैं, न माननीयों का मान करते हैं न गुरुओं का सत्कार करते हैं।

संकेत—(१९) अकालभूता, गम्भीरेण परिखाजलेन परिवृता, सुधाधौतेन प्राकारमण्डलेन, महाविपणिपथैः, शृङ्गाटकेषु, निष्कम्पा। अनिर्वृतिसन्निहितानाम्, इन्द्रवियोगः, कनकानाम्, कुसुमानां मित्रद्वेषः। (२०) किमुत समवायः। इन्द्रियहरिण हारिणी अतिदुरन्ता। उपदेशगुणाः, मलं विधुन्वन्ति। अखिलमलप्रक्षालनक्षमम्, अजस्रम्, अनुपप्लवचन्द्रिकादिवैकल्यम् अनारोपितमेधोदयम्, अतीतसन्ध्याविरोकम्। अम्बापि, गुरुपात्रकल्पाननिषण्णीकृताऽपि। गणयति, आदियते, अनुसरति।

(२१) मरणासन्न पिता के समीप हर्ष (हर्षचरित)

एक बार हर्ष ने रात्रि के चौथे पहर स्वप्न में देखा कि एक महासिंह मयंकर दावाग्नि में जल रहा है और सिंहिनी भी अपने बच्चों को छोड़कर अग्नि में कूद रही है। यह देखकर उसके मन में आया कि संसार में कोई से भी एक प्रेम का बन्धन होता है जिसके कारण पशु-पक्षी भी ऐसा करते हैं। अगले ही दिन उसने कुरङ्गक नामक दूत से पिता की रुग्णता का समाचार सुना। समाचार पाते ही वह घुड़सवारों के साथ दौड़ पड़ा और अगले दिन राजद्वार पर पहुँचा। वहाँ उसने निस्तब्ध, किवाड़ों के खुलने और बन्द होने की खटखट से रहित खिड़कियाँ बन्द होने से हवा के झोंके से रहित कुछ प्रेमी जनों से युक्त, तीव्र ज्वर से मलमीत वर्णों से युक्त, खिन्न मन्त्रियों से अधिष्ठित महल में विद्यमान काल की जिह्वा के क्रम मार्ग पर वर्तमान, क्षीण वार्तालाप वाले चंचल चित्त शारीरिक व्याकुलता से युक्त, दीर्घ साँस लेते हुए और पास में बैठी हुई निरन्तर रोती हुई माता यशोमती के द्वारा बार-बार सिर और छाती पर हाथ फेरे जाते हुए पिता को देखा।

(२२) मानवचरित-समीक्षा (प्रबन्धमंजरी उदितजयरिपुः)

कविपति अमरत्वदेव मानवचरित-समीक्षा करते हुए अपने बन्धु वर्ग से कहते हैं कि—मनुष्यों की हिंसावृत्ति की सीमा नहीं है। पशुहिंसा उनके लिए खेल है। वे क्षिप्र मन के विनोद के लिए महावन में आकर इच्छानुसार और निर्दयतापूर्वक पशुवध करते हैं। जिस प्रकार ऐहिक सुख की इच्छा से मनुष्य उत्साहपूर्वक जीवहिंसा करके अपने हृदय की अतिनिष्ठुर क्रूरता को प्रकट करते हैं उसी प्रकार पारलौकिक सुख की आशा से वे महोत्सवपूर्वक निरपराध पशुओं को इष्टदेवता के आगे बलि देकर अपनी मूर्खता का परिचय देते हैं। वस्तुतः इनके पशुवलि के कार्य को देखकर हम बड़ों का भी हृदय विदीर्ण हो जाता है। ये निरन्तर अपनी उन्नति को चाहते हुए प्रतिक्षण सर्वथा स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयत्न करते हैं। ये न धर्म को मानते हैं, न सत्य का अनुष्ठान करते हैं, अपितु तृणवत् स्नेह की उपेक्षा करते हैं स्वच्छता को छोड़ देते हैं, विश्वासघात करते हैं पापाचरण से धोखा भी नहीं करते, झूठ बोलने में नहीं लज्जित होते सर्वथा अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं।

संकेत—(२१) तृतीये यामे, आत्मानं पातयति। आसीच्चास्य चेष्टति। अहो हि जीवेष्वतिकठिनस्तव स्नेहमया बन्धनपाशः यदाकृष्टस्तिर्यञ्चोऽप्येवमाचरन्ति। तमधिगम्यैवोदन्तम्। [परिहृतकपाटपट्टिते, परिहृतगवाक्षस्थितमरुति, मिलति, दुर्मनायमानमन्त्रिणि भवनप्रदेशे स्थितम् विरलं वाचि चलितं चेष्टायि, [विहतं वपुषि, सन्तप्तं शयिते वक्षसि च क्षुप्यमानम्। (२२) निरवधिः। आत्मीयनम्। प्रकटयन्ति। विदीर्यते। उपेक्षन्ते, विम्पति, अवजन्ते, विश्वासघियन्ति।

(२३) आर्यावर्त-वर्णनम् (नवपद्यम्)

यह आर्यावर्त देवों के द्वारा भी सेव्य है धन-धान्य से सम्पन्न है, नदी-नदियों से पुष्ट है, सब विषयों में संसार का अग्रणी है समस्त संसार का सार है, पुण्यात्माओं को शरण देता है, धर्म का धाम है, सम्पत्तियों का सदन है, पृथ्वी का आधार है, रत्नाकरस्थी रत्नों की खान है, आर्यमर्यादाओं का निकेतन है। यहाँ प्रजा संसार के सभी सुखों से सम्पन्न है, सभी पूर्ण आयु तक जीते हैं सभी धर्म-कर्म में मग्न हैं, अतः आधि-व्याधियों से मुक्त हैं। सभी ग्राम गाय घोड़े आदि पशुओं से पुष्ट हैं, सभी नगर गगनचुम्बी महलों से सुशोभित हैं, सभी लोग सदाचारी हैं और धन का दान और उपभोग करते हैं धन सुन्दर और फलदायी वृक्षों से पुष्ट हैं, बालिकाएँ मनोहर रूप-भूषा से पुष्ट हैं, कुशीन स्त्रियाँ सूर्य के तुल्य तेजपुञ्ज और प्रतिष्ठा हैं। यह स्वर्ग से भी बढ़कर है। घर घर में सुन्दर स्त्रियाँ हैं सारी प्रजा समृद्ध है, सभी धनी मानी और मानी हैं।

(२४) कवित्व और राजत्व (शिवराजविजय)

भूषण कवि बादशाह औरंगजेब का दरबार छोड़कर महाराज शिवाजी का आश्रय प्राप्त करने के लिए उनकी नगरी में पहुँचे। शिवाजी से मिलने से पूर्व वे एक शिवमन्दिर में रुके और वहाँ के पुजारी से बातचीत की। मन्दिर की खिड़की से शिवाजी ने भूषण की यह बात सुनी—मैं चिरकाल तक दिल्लीश्वर की छत्र-छाया में रहा हूँ। किन्तु हम कविलोग किसी के राजत्व, वीरता, तेजस्विता और धनाढ्यता की परवाह नहीं करते हैं। हम लोग किसी के साभिमान भ्रूभंग को और कोपपुञ्ज गर्व की उग्रता को नहीं सहन करते हैं। उसका पृथ्वी पर ऐसा राज्य नहीं है, जैसा कि हमारा साहित्य-जगत् पर। उसके आगे हुए गुलाम भी उसकी इच्छा होते ही हाथ जोड़कर उसके सामने खड़े नहीं हो जाते, जैसे कि हमारे सामने इच्छा होते ही पद वाक्य छन्द अलंकार रीतियाँ गुण और रस उपस्थित हो जाते हैं। वह अकबर भी दूसरों का उतना सन्तुष्ट नहीं कर सकता जितना कि हम केवल कविता से सन्तुष्ट कर सकते हैं। हमारी वीररस की कविता को सुनकर मरता हुआ भी युद्ध में खड़ा हो जाता है। जिसके भाग्य में चिरस्थायिनी कीर्ति होती है, वही हमारा आदर करता है। यह सुनकर कवि का परिचय प्राप्त करने के लिए शिवाजी ने मन्दिर में प्रवेश किया।

संकेत—(२३) धरण्या आधारः, पुण्यापुञ्जीभिस्थः, अभ्रंलिहैः प्रासादैः, विभिद्यते। (२४) सम्राजः, छात्रम्, शिवराजस्य। अभ्यन्तिष्ठत्, मन्दिराभ्यन्तरे यः, गवाक्षात्, नाऽवेक्षामहे, अभिमानभ्रूभङ्गम्, कोपाधिक्यगर्वखरतां न सहामहे, तादृशम्, अस्मत्तस्तस्मै, भीतत्रासम् अपि, तदीयसमकालमेव, नाऽवतिष्ठते, एवमपि, दीनतामापन्नैरपि, न तथा तोषयितुम्शक्यम्, म्रियमाणोऽपि।

(२५) वैदिक साहित्य

वेद चार हैं—ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद में मन्त्र हैं, जिनको ऋचा कहते हैं। ये पद्य में हैं। ऋग्वेद की पाँच शाखाओं में से केवल शाकल शाखा ही प्राप्य है। यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं—शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद की दो संहिताएँ प्राप्त होती हैं—काण्व और माध्यन्दिन। कृष्ण यजुर्वेद की चार संहिताएँ प्राप्य हैं—काठक कापिष्ठल मैत्रायणी और तैत्तिरीय। सामवेद गानात्मक वेद है। यह दो भागों में विभक्त है—आर्चिक, उत्तरार्चिक। अथर्ववेद को दो संहिताएँ प्राप्त होती हैं—शौनक और पैप्पलाद। प्रत्येक वेद चार भागों में विभक्त है—संहिता ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद्। प्रत्येक वेद के ब्राह्मण आदि हैं। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण ग्रन्थ हैं—ऐतरेय ब्राह्मण, कौषीतकि ब्राह्मण। शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण है और कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण। सामवेद के ब्राह्मण हैं—ताण्ड्य ब्राह्मण षड्विंश ब्राह्मण। अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है। ऋग्वेद के दो आरण्यक हैं—ऐतरेयारण्यक कौषीतकारण्यक। कृष्ण आरण्यक ब्राह्मणग्रन्थों के साथ ही सम्बद्ध हैं। आजकल १२ उपनिषद् उपलब्ध हैं। इनमें से निम्नलिखित ११ ही मुख्य और प्रामाणिक मानी जाती हैं—इश केन कठ, प्रश्न मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय तैत्तिरीय छान्दोग्य, बृहदारण्यक श्वेताश्वतर।

(२६) वेदाङ्ग

वेदाङ्ग ६ हैं—१ शिक्षा (ध्वनिविज्ञान) २ व्याकरण ३ छन्द ४ निरुक्त (वेदों की निर्वचनात्मक व्याख्या), ५ ज्योतिष, ६ कल्प (कर्मकाण्ड की विधि)। इनके द्वारा वेदों के अर्थों का ज्ञान होता है और मन्त्रों का यज्ञादि में विनियोग भी ज्ञात होता है। शिक्षा और ध्वनिविज्ञान का वर्णन प्रातिशाख्यों और शिक्षा-ग्रन्थों में है। इनमें मुख्य ये हैं—ऋक्प्रातिशाख्य, शुक्लयजुःप्रातिशाख्य तैत्तिरीयप्रातिशाख्य, सामप्रातिशाख्य पुष्पसूत्र अथर्वप्रातिशाख्य। मयूराङ्क, व्यास याज्ञवल्क्य और पाणिनि आदि के शिक्षा-ग्रन्थ हैं। व्याकरण में पाणिनि की अष्टाध्यायी सबसे मुख्य है। इस पर कात्यायन ने वार्तिक और पतञ्जलि ने महाभाष्य लिखा है। इसके आधार पर काशिका, सिद्धान्तकौमुदी आदि व्याकरण-ग्रन्थ लिखे गए हैं। छन्द विषय पर पिङ्गल का छन्दःसूत्र प्राचीन ग्रन्थ है। निरुक्त में यास्क का निरुक्त ही प्राप्य है। ज्योतिष विषय पर ज्योतिष-वेदाङ्ग नामक एक प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। कल्पसूत्र चार भागों में विभक्त हैं—(क) श्रौतसूत्र—इनमें विशेष यज्ञों की विधियाँ वर्णित हैं। इनमें मुख्य आश्वलायनश्रौतसूत्र कात्यायनश्रौतसूत्र, बोधायनश्रौतसूत्र आदि हैं। (ख) गृह्यसूत्र—इनमें १६ संस्कारों का वर्णन है। गृह्यसूत्र अनेक हैं। ये बोधायन आपस्तम्ब गोभिल आदि के हैं। (ग) धर्मसूत्र—इनमें नीति धर्म, दण्ड आदि का वर्णन है। ये भी अनेक हैं। (घ) शुल्बसूत्र—इनमें यज्ञवेदी के निर्माण और नाप आदि का वर्णन है।

(२७) भाषा और भाषण (भाषाविज्ञान, श्यामसुन्दरदास)

मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं। भाषा विचारों को व्यक्त करती है, पर विचारों से अधिक सम्बन्ध उसके वक्ता के भाव, इच्छा प्रयत्न आदि मनोभावों से रहता है। भाषा सदा किसी न किसी वस्तु के विषय में कुछ कहती है वह वस्तु चाहे बाह्य भौतिक जगत् की हो अथवा सर्वथा आध्यात्मिक और मानसिक। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। भाषा का शरीर प्रधानतः उन व्यक्त ध्वनियों से बना है, जिन्हें वर्ण कहते हैं। इसके अतिरिक्त संकेत, मुख-विकृति और स्वर-विकार भी भाषा के अङ्ग माने जाते हैं। स्वर, बल-प्रयोग और उच्चारण का ढंग या प्रकार भी भाषा के विशेष अङ्ग हैं। 'बोली' से अभिप्राय स्थानीय और घरेलू बोली से है, जो तनिक भी साहित्यिक नहीं होती और बोलनेवालों के मुख में ही रहती है। 'विभाषा' का क्षेत्र बोली से विस्तृत होता है। एक प्रान्त अथवा उपप्रान्त की बोलचाल तथा साहित्यिक रचना की भाषा 'विभाषा' कहलाती है। इसे प्रान्तीय भाषा भी कहते हैं। कई विभाषाओं में व्यवहृत होने वाली एक शिष्ट-परिगृहीत विभाषा ही 'भाषा' कहलाती है। विभाषा ही भाषा बनती है और वह धार्मिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कारणों से प्रोत्साहन पाकर अपना क्षेत्र अधिक से अधिक व्यापक और विस्तृत बनाती है।

(२८) अर्थ-विकास (अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन)

यास्क ने निरुक्त में सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया है कि किस प्रकार वस्तुओं के नाम पड़ते हैं और आगे चलकर किस प्रकार उनके अर्थों में विस्तार या संकोच होता है। पतञ्जलि ने महाभाष्य में और भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में इस पर विस्तृत विचार किया है। अर्थविकास की तीन धाराएँ हैं—अर्थसंकोच अर्थविस्तार और अर्थादेश। शब्द अपने यौगिक या निर्वचनात्मक अर्थ के आधार पर नानार्थक और व्यापक होना चाहिए था परन्तु उसके अर्थों में संकोच हो जाने से उसका व्यापक रूप से प्रयोग नहीं हो सकता है। जैसे—यो अश्व, परिव्राजक, जीवन आदि में अर्थसंकोच होने से इनका निर्वचनात्मक अर्थ में प्रयोग नहीं हो सकता है। जहाँ शब्द का मूल अर्थ विस्तृत होकर अन्य अर्थों का भी बोध कराता है वहाँ अर्थ विस्तार होता है। जैसे—प्रदीप, कुशल, तैल, गोदोहन आदि शब्दों के अर्थों में विस्तार हो गया है। जहाँ पर शब्द अपने मूल अर्थ को छोड़ कर नए अर्थ को अपना लेता है वहाँ अर्थादेश होता है। जैसे—गत्यर्थ धातु वेद में ज्ञानार्थ में है पर अब उसका अर्थ सहसा हो गया है।

संकेत—(२७) परिवारेतूपपुष्यमानया गिरा, नाममात्रमपि। (२८) अर्थात् स्वरूपस्यागमपति। अभिनवमर्थमारभतात् करोति। अनार्थे वर्तते, अर्थान्तरे वर्त्तिष्यते।

(२९) (क) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा (दशरूपक और साहित्यदर्पण)

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं, जिनके आधार पर उनका विभाजन होता है—वस्तु, नेता और रस। वस्तु को कथावस्तु भी कहते हैं। वस्तु को दो भागों में विभक्त किया है—(१) आधिकारिक—यह कथावस्तु है जो मुख्य कथा होती है। (२) प्रासंगिक—यह कथा है जो गौणरूप से हो और मुख्य कथा का अंग हो। सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) प्रख्यात—जो इतिहास पर अवलम्बित हो। (२) उत्पाद्य—कवि-कल्पित हो। (३) मिश्र—कुछ अंश ऐतिहासिक हो और कुछ कवि-कल्पित। नाटक में पाँच अर्थप्रकृतियाँ, पाँच अवस्थाएँ और पाँच सन्धियाँ होती हैं। अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथा-वस्तु के पाँच तत्त्व हैं। ये प्रयोजन की सिद्धि में कारण होते हैं। (१) बीज—यह तत्त्व है जो प्रारम्भ में संक्षेप में निर्दिष्ट हो और आगे उसका ही विस्तार हो। (२) बिन्दु—यह अवान्तर कथा से मूल कथा के टूटने पर उसे जोड़ता और आगे बढ़ाता है। (३) पताका—यह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है। (४) प्रकरी—यह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर चलती है। (५) कार्य—जो साध्य या फल होता है उसे अर्थ कहते हैं।

(३०) (ख) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

नाटकीय कार्य की प्रगति के विभिन्न विभागों को अवस्थाएँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) आरम्भ—मुख्य फल की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे आरम्भ कहते हैं। (२) यत्न—फल की प्राप्ति के लिए नायक जो बड़े वेग से प्रयत्न करता है उसे यत्न कहते हैं। (३) प्राप्त्याशा—अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों के द्वारा फल-प्राप्ति की कभी सम्भावना और कभी असम्भावना, इस संदिग्ध अवस्था को प्राप्त्याशा कहते हैं। (४) नियताप्ति—इतने विघ्नों के हट जाने से फलप्राप्ति निश्चित बन पड़ती है। (५) फलागम—जब फल की प्राप्ति हो जाती है। पाँचों अर्थ प्रकृतियों को क्रमशः पाँचों अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती हैं उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) मुख—बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख-सन्धि होती है। (२) प्रतिमुख-सन्धि—बिन्दु और यत्न को मिलाकर। (३) गर्भसन्धि—पताका और प्राप्त्याशा को मिलाकर। (४) विमर्श सन्धि—प्रकरी और नियताप्ति को मिलाकर। (५) उपसंहृति या निर्वहण-सन्धि—कार्य और फलागम को मिलाकर। नाटक में अभिनय चार प्रकार का होता है :—(१) आंगिक—शरीर के अंगों के द्वारा। (२) वाचिक—वाणी के द्वारा। (३) आहार्य—वेशभूषा के द्वारा। (४) सात्त्विक—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच आदि के द्वारा।

संकेत :—(२९) अवलम्बार्थं समुद्दिश्य बहुधा यद् विसर्पति। अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरुच्छेदकारणम्। स्यादि प्रासंगिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते। प्रासंगिकं प्रवेशस्थं चरितं प्रकरी मता। समापनं तु यत्सिद्धये तत्कार्यमिति संमतम्।

(३१) (ग) नाटककी संक्षिप्त रूप-रेखा

रंगमंच पर प्रदर्शित करने की दृष्टि से कथा-वस्तु के दो विभाग किए गए हैं—(१) सूच्य—नीरस या अनुचित वस्तुएँ, जिनकी केवल सूचना दे दी जाती है। (२) दृश्य अथ—दर्शनीय और श्रवणीय वस्तुएँ, जिनका प्रदर्शन किया जाता है। सूच्य वस्तुओं को भिन्न उपायों से सूचित किया जाता है, उन्हें अर्थोपक्षेपक कहते हैं। वे पाँच हैं—(१) विष्कम्भक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। एक या दो मध्यम कोटि के पात्र हों तो 'शुद्ध विष्कम्भक', नीच और मध्यम दोनों कोटि के पात्र हों तो उसे 'मिश्र विष्कम्भक' कहते हैं। इनकी भाषा संस्कृत या शौरसेनी प्राकृत होती है। (२) प्रवेशक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना निम्न श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा केवल प्राकृत ही होती है। (३) चूलिका—पर्दे के पीछे से वस्तु या घटनाओं की सूचना देना। जैसे—नेपथ्य से कथन। (४) अंकास्य—अंक की समाप्ति के समय आते हुए पात्रों के द्वारा अगले अंक की घटना की सूचना देना। (५) अंकावतार—अंक की समाप्ति के पहले ही अगले अंक की कथावस्तु का प्रारम्भ करना।

(३२) (घ) नाटककी संक्षिप्त रूप-रेखा

सुनाने या न सुनाने की दृष्टि से कथावस्तु के तीन विभाग किए गए हैं—(१) सर्वश्राव्य या प्रकाश—जो बात सबको सुनाने के योग्य है। (२) अश्राव्य या स्वगत—जो बात सुनाने के योग्य न हो और मन-ही-मन कही जाए। (३) नियत श्राव्य—जो बात कुछ लोगों को ही सुनानी होती है। इसके दो विभाग हैं—(क) अपवारित—हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना कि अन्य पात्र उसे न सुन पावें। (ख) जनान्तिक—मुँह फेरकर किसी दूसरे पात्रको गुप्त बात कहना। एक और भेद आकाशभाषित है ऊपर मुँह करके स्वयं ही अकेले बात करना। नाटक में चार वृत्तियाँ या शैलियाँ होती हैं—(१) कैशिकी वृत्ति—यह शृंगारप्रधान नाटकों के उपयुक्त है। इसमें मनोहर वेषभूषा स्त्रियों की अधिकता नृत्य गीत का बाहुल्य और शृङ्गाररस की मुख्यता होती है। (२) सात्वती वृत्ति—यह वीररस-प्रधान नाटकों के योग्य है। इसमें सत्य शौच त्याग दया सरलता आदि गुणों का बाहुल्य होता है, शोक का अभाव और हर्ष का विस्तार होता है। (३) आरभटी वृत्ति—यह रौद्र और वीभत्स रसों के योग्य है। इसमें माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, वध, बन्धन आदि काम मुख्य होते हैं। (४) भारती वृत्ति—इसका सभी रसों में उपयोग होता है। इसमें संस्कृत का प्रयोग अधिक होता है, स्त्रियाँ नहीं होती हैं, वाचिक काम अधिक होता है।

संकेत :—(३१) अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य सूचिका। (३२) (१) सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। (२) अश्राव्यं त्वनु यद्वाच्यं तदिह स्वगतं मतम्। (क) नियताश्राव्यं कथान्तानपवार्यान्तरा कथाम्। अन्योन्यामन्त्रणं वस्तात् तज्जनान्ते जनान्तिकम्। आकाशभाषितम्। रहस्यं तु वदन्यस्य परावृत्य प्रकाशतः।

(३३) भाव या मनोविकार (रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि)

नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखने वाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के वे भिन्न-भिन्न योग संघटित होते हैं, जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सुख और दुःख की मूल अनुभूति ही विषय-भेद के अनुसार प्रेम हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारों का अटिल रूप धारण करती है। मनोविकारों या भावों की अनुभूतियाँ परस्पर तथा सुख या दुःख की मूल अनुभूति से वैसी ही भिन्न होती हैं, जैसे रासायनिक मिश्रण परस्पर तथा अपने संयोजक द्रव्यों से भिन्न होते हैं। समस्त मानव-जीवन के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं। मनुष्य की प्रवृत्तियों की तह में अनेक प्रकार के भाव ही प्रेरक के रूपमें पाये जाते हैं। शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के संघटन में ही समझना चाहिए। लोक-रक्षा और लोक रंजन की सारी व्यवस्था का ढाँचा इन्हीं पर ठहराया गया है।

(३४) श्रद्धा-भक्ति (चिन्तामणि)

किसी मनुष्य में जन-साधारण से विशेष गुण या शक्ति का विकास देख उसके सम्बन्ध में जो एक स्थायी आनन्द-पद्धति रूप में स्थापित हो जाती है, उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा महत्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य-बुद्धि का संचार है। प्रेम और श्रद्धा में अन्तर यह है कि प्रेम प्रिय के स्वाधीन कार्यों पर ही निर्भर नहीं। कभी-कभी किसी का रूप मात्र, जिसमें उसका कुछ भी हाथ नहीं, उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने का कारण होता है। पर श्रद्धा ऐसी नहीं है। प्रेम के लिए इतना ही बस है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे, पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कि कोई मनुष्य किसी बात में बड़ा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो। श्रद्धा का व्यापार रूपक विलुप्त है प्रेम का एकान्त। प्रेम में धनात्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार। प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण। प्रेम में केवल दो पक्ष होते हैं श्रद्धा में तीन। प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं पर श्रद्धा में मध्यस्थ अपेक्षित है। प्रेम का कारण बहुत कुछ अनिर्दिष्ट और अज्ञात होता है पर श्रद्धा का कारण निर्दिष्ट और ज्ञात होता है। प्रेम एकमात्र अपने ही अनुभव पर निर्भर रहता है, पर श्रद्धा दूसरों के अनुभव पर भी जमती है।

संकेत—(३३) मूले प्रेरकत्वेनोपलभ्यन्ते अवगन्तव्यम् आधारः, उपरक्ष्यते। (३४) पदार्थमेतादृशं रोचते कमपि विषयमवलम्ब्य तन्मूलतया एकान्तम्, उच्यतेऽयम्।

(२५) कविता क्या है ? (चिन्तामणि)

जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं। कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है वा हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा लोक सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।

(२६) काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था (चिन्तामणि)

सत् चित् और आनन्द—ब्रह्म के इन तीन स्वरूपों में से काव्य और भक्ति मार्ग 'आनन्द' स्वरूप को लेकर चले। विचार करने पर लोक में इस आनन्द की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएँ पाई जाएँगी—साधनावस्था और सिद्धावस्था। आनन्द की साधनावस्था प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलती है और सिद्धावस्था उपभोग-पक्ष को लेकर। साधनावस्था को लेकर चलने वाले काव्य हैं—रामायण महाभारत, रघुवंश शिशुपालवध किरातार्जुनीय आदि। सिद्धावस्था को लेकर चलने वाले काव्य हैं—आर्यासप्तशती, अमरुशतक गीतगोविन्द आदि। लोक में कैसी कुरूप की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनन्दकला जो सौन्दर्यमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता कटुता में भी अपूर्व मधुरता प्रचण्डता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है। भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुता का सामंजस्य ही लोकधर्म का सौन्दर्य है। धर्म और मंगल की यह ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा को फाड़ती हुई फूटती है। काव्य में सारे भाव सारे रूप और सारे व्यापार आनन्द-कला के विकास में ही योग देते हैं।

संकेत—(२५) समकक्षत्वेन मन्यामहे। व्याप्तिम्। भूमिमेतामाकलस्य मनुजस्य, आत्मावबोधोऽपि न जायते। विलयमेति। (२६) आश्रित्य प्रवृत्तौ। अनुभावेनैव अवस्थाद्वयमुपलक्ष्यते। अवलम्ब्य प्रवर्तते। प्रवृत्तानि। प्रसृताम्, अपहर्तुम्, गभीरा। संपृक्तते (सम्+पृच् आमनेपदी)। ज्योतिरिदम्, विचारवत् प्रसूयते। साहाय्यमाचरति।

(१७) साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद (चिन्तामणि)

जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह साधारणता सबके उसी भाव का आलम्बन हो सके तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ 'साधारणीकरण' कहलाता है। कल्पना करिए वही है, जिसे लोक-हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक-हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है। भाव और बिम्बग्रह दोनों पक्षों के सामंजस्य के बिना पूरी और सच्ची रसानुभूति हो नहीं सकती। काव्य का विषय सदा 'विशेष' होता है, 'सामान्य' नहीं वह 'व्यक्ति' सामने लाता है 'जाति' नहीं। काव्य का काम है कल्पना में बिम्ब या मूर्त भावना उपस्थित करना बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं। 'बिम्ब' सदा होगा एक विशेष या व्यक्ति का ही होगा सामान्य या जाति का नहीं।

(१८) रसात्मक-बोध के विविध स्वरूप (चिन्तामणि)

संसार-सागर की रूप-तरंगों से ही मनुष्य की कल्पना का निर्माण और इसी की रूप-गति से उसके भीतर विविध भावों या मनोविकारों का विधान हुआ है। सौन्दर्य, माधुर्य विचित्रता भीषणता क्रूरता आदि की भावनाएँ बाहरी वस्तुओं और व्यापारों से ही विकसित हुई हैं। हमारे प्रेम भय आश्चर्य, क्रोध, करुणा आदि भावों को प्रतिष्ठित करने वाले मूल आलम्बन बाहर ही के हैं। रूप-विधान तीन प्रकार के है—(१) प्रत्यक्ष रूप-विधान (२) स्मृत रूप-विधान (३) कल्पित रूप-विधान। (१) प्रत्यक्ष रूप-विधान मानुषता की प्रतिष्ठा करने वाले मूल आधार या उपादान हैं। इन प्रत्यक्ष रूपों की मार्मिक अनुभूति जिनमें जितनी ही अधिक होती है वे उतने ही रसानुभूति के उपयुक्त होते हैं।(२)स्मृति दो प्रकार की होती है—(क) विशुद्ध स्मृति—यह स्मृति जो हमारी मनोवृत्ति को शुद्ध मुक्त भावभूमि में ले आती है। जैसे—प्रिय-समागम बाल्यकाल या यौवनकाल के अतीत जीवन का स्मरण। (ख) प्रत्यभिज्ञान—यह प्रत्यक्ष-निमित्त स्मरण है। प्रत्यभिज्ञान में थोड़ा-सा अंश प्रत्यक्ष होता है और बहुत-सा अंश उसी के सम्बन्ध में स्मरण द्वारा उपस्थित होता है। जैसे—'यह वही है' के द्वारा व्यक्ति को देखकर यह वही अपराधी व्यक्ति है, जो उस दिन झगड़ा कर रहा था, यह स्मरण करना। (३) कल्पना—काव्य-वस्तु का सारा रूप-विधान इसी क्रिया से होता है। कवियों द्वारा भाव भावना के क्षेत्र में अबाधता को पूरी स्वतन्त्रता रहती है।

संकेत—(१७) नैवमूपं प्राप्यते, भवेत्, न भवति। एवंरूपां प्राप्यमेव। हृदयं परिचिनोति। रूपस्य। वास्तविकी। उपस्थापयति। उपस्थापनम्, आहरणम्। (१८) बाह्यरूपेभ्य., निष्पन्नाः। प्रतिष्ठापकानि। बाह्यान्येव। भवति। स्रोतोभ्यः, भूयानंशः। कवहमित्रः। विवरणमनोऽभवत्। कल्पना पूर्वस्मादुत्तमामनुभवति।

(३९) विराग या अनुराग (चित्रलेखा)

विराग मनुष्य के लिए असम्भव है, क्योंकि विराग नकारात्मक है। विराग का आधार शून्य है—कुछ नहीं है। ऐसी अवस्था में जब कोई कहता है कि वह विरागी है गलत कहता है, क्योंकि उस समय वह यह कहना चाहता है कि उसका संसार के प्रति विराग है। पर सच ही किसी के प्रति उसका अनुराग अवश्य है, और उसके अनुराग का केन्द्र है ब्रह्म। जीवन का कार्यक्रम है रचनात्मक, विनाशात्मक नहीं। मनुष्य का कर्तव्य है अनुराग, विराग नहीं। 'ब्रह्म से अनुराग' के अर्थ होते हैं—ब्रह्म से पृथक् वस्तु की उपेक्षा, अथवा उसके प्रति विराग। पर वास्तव में देखा जाए तो विरागी कहलानेवाला व्यक्ति वास्तव में विरागी नहीं अपितु ईश्वरानुरागी होता है। क्या संसार से विराग और ब्रह्म से अनुराग—ये दोनों एक चीज हैं?

(४०) पाप और पुण्य (चित्रलेखा)

संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मनःप्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मनः प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है—यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है, विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा?

मनुष्य में समत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। परन्तु व्यक्तियों के सुख के केन्द्र भिन्न होते हैं। कुछ सुख को धन में देखते हैं, कुछ सुख को मदिरा में देखते हैं, कुछ सुख को सत्कर्म में देखते हैं और कुछ दुष्कर्म में, कुछ सुख को त्याग में देखते हैं और कुछ संग्रह में, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। कोई भी व्यक्ति संसार में अपने इच्छानुसार ऐसा काम नहीं करेगा जिससे दुःख मिले। यही मनुष्य की मनःप्रवृत्ति है और उसके दृष्टिकोण की विषमता है। संसार में इसीलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम वही करते हैं जो हमें करना पड़ता है।

संकेत—(३९) अतद्रूपा सः, विरक्त इति मूलाभिधानं तत् वस्तुतोऽनुरक्तः, विरक्त इति, ईश्वरानुरक्तः विषयमनसेत् पलायनेन गच्छतीयम्। (४०) मनोविज्ञो आकर्तव्यति, स्वयं प्रभुः, साधनमात्रं सः, न भूता न भविष्यति, यद् विवशतेन क्रियेत मनुष्यः।

(१०) सुभाषित-मुक्तावली

सूचना—(१) सुभाषित विषयानुसार अकारादि-क्रम से दिए गए हैं। (२) सुभाषितों के आगे ग्रन्थ-नाम संक्षेप में दिया गया है जिस ग्रन्थ से वह सुभाषित संकलित किया गया है। (३) जिन सुभाषितों का विवरण अज्ञात या सन्दिग्ध है उनके आगे ग्रन्थ-नाम नहीं दिया गया है। (४) सुभाषित वर्गों और उपवर्गों में विषय के आधार पर विभाजित किए गए हैं। (५) संकेत के लिए निम्नलिखित संकेत ग्रन्थों के लिए दिए गए हैं।

संकेत-सूची

अ = अनर्घराघव	च = चरकसंहिता	मृ = मृच्छकटिक
उ = उत्तररामचरित	चा = चाणक्यनीति	मे = मेघदूत
ऋ = ऋग्वेद	चौ = चौरपञ्चाशिका	यजु = यजुर्वेद
क० = कथासरित्सागर	द = दशकुमारचरित	यो = योगवासिष्ठ
का = कादम्बरी	द्र = द्रव्यदृष्टान्तशतक	र = रघुवंश
का नी = कामन्दकीयनीति	नै = नैषधीयचरित	रा = रामायण(वाल्मीकीय)
काव्या = काव्यादर्श	प = पञ्चतन्त्र	वि = विक्रमोर्वशीय
कि = किरातार्जुनीय	प्र० = प्रसन्नराघव	शा = अभिज्ञानशाकुन्तल (शाकुन्तल)
कु = कुमारसम्भव	भ = भर्तृहरिशतकत्रय	शा०प = शार्ङ्गधरपद्धति
कुव = कुवलयानन्द	भा = भागवतपुराण	शि = शिशुपालवध
गी = भगवद्गीता	म = मनुस्मृति	ह = हर्षचरित
गु० = गुणरत्न	महा = महाभारत	हि = हितोपदेश
घ = घटकर्परकाव्य	मा = मालतीमाधव	

(१) भारत-प्रशंसा

(क) भारत-प्रशंसा

१ दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम्।

(ख) भूमि प्रशंसा

१ बहुरत्ना वसुन्धरा। २ बहवो ह्यर्था हि मेदिनी (क)।

(ग) जन्मभूमि-प्रशंसा

१ जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।२ प्राणिनां हि निजादपि जन्म भूमिः परा प्रिया (क)।

(२) अध्यात्म

(क) अध्यात्म

१ अमृतायते हि सुतप सुकर्मणाम् (कि)। २ इति स्वाम्ये मते मनो मुक्तमुच्चिष्ठते अनः (कि०)। ३ उदिते परमानन्दे नाई न त्वं न वै जगत्। ४ एकाग्रो हि बहिर्वृत्तिनिवृत्तस्वयमीक्षते। ५. किमिवास्ति यत्र तपसामदुष्करम् (कि)। ६ अया न मुह्यति मनोपहप्रसादे, शुद्धे तु दर्पणतले सुलभप्रकाश (श्र०)। ७ अपतो नास्ति पातकम्। ८ आनमार्गे अहंकार परित्ये दुरतिक्रमः (क)। ९ उपशमो मुक्तिः। १० तपोधीनानि भेषजानि ह्युपायोऽन्यो न विद्यते (क०)। ११ तपोधीना हि संपदः (क)। १२ दग्धपञ्चस्य न पुनः कामगुणेन वध्यते (क)। १३ धन्यास्ते मुनि ये निवृत्तमनसो विदुःक्षिप्तान् कामिनः। १४ न मुक्तेः परमा गतिः (बो०)। १५ न वैराग्यात् परं सौख्यम्। १६ न शान्तेः परमं सुखम्। १७ नहि महतां सुकरः सम्बन्धिमङ्गः (कि०)। १८ निरस्तसुकानामभियोगमाजो समुत्सुकेवाङ्गुपैति सिद्धिः (कि०)। १९ निवृत्तपापकर्माणः सन्तो यान्ति हि निर्वृतिम् (क)। २० निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् (हि)। २१ निस्पृहस्य तृण जगत्। २२ बोधे बोधे सन्दिदानन्दमग्नः। २३ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो (गी०)। २४ ब्रह्मविद्यारसास्वादः को हि रसान्तरे (क०)। २५ मोक्षराज्यं परमपदवी। २६ विरक्तस्य तृण जगत्। २७ विरक्तस्य तृणं भार्या। २८ शीलवन्ति वयस सुशीलत्वम् (कि०)। २९ शान्ता कृतकर्माण अवयो बभूवुः (निरुक्त)। ३ शान्तात्कृतकर्मणो महर्षयः (उ)। ३१ शास्त्रे हि नियमेऽन्यजनानां योगिनां तु तपसा प्रसिद्धयसिद्धि (नै०)। ३२ सुखमास्ते निस्पृहः पुरुषः। ३३ स्वाधीनकुशला सिद्धिमन्तः (श्र०)।

(ख) कर्मफल

१ अपि खलु विधिना पुरुषकृतानां, भवति हि लभ्युषु कर्मसु विपाकः। २. आत्मकृतानां हि दोषाणां निरस्तमनुभवितव्यं पुरुषमात्मनैव (का०)। ३ कर्म कः स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते (नै)। ४ कर्मदोषाद् दरिद्रता। ५ कर्मानुगो गच्छति जन्तु एकः (मृ)। ६ कर्मापत्ति फल पुंसाम्। ७ गहना कर्मणो गतिः (गौ०)। ८ विधा गतिः कर्मणाम्। ९ जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि (का)। १० प्राचीनकर्म बलवन्मुनयो वदन्ति (महा०)। ११ महदृत् प्राप्नुयाद् महदमद्र अल्पमल्पकृत् (क०)। १२ महदमद्र वा कृतमात्मनि लभ्यते (क०)। १३ स्वकर्म-फलभुजो हि लोक ।

(ग) दर्शन

१ अविज्ञातेऽपि वस्तौ हि वस्तुतः प्रह्वादते मनः (कि०)। २ भस्मीभूतस्य जीवस्य पुनरागमनं कुतः (नै)। ३ भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत। ४ मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु)। ५ मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् (र०)। ६ वस्त्वामेव देवायां चित्तवृत्तिः, सैव देवेषु सर्वकार्येषु (का)। ७ यत्ति जन्मान्तरप्रीतिं मनः स्निग्धप्रकाशकम् (क०)। ८ विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः (कि०)। ९ चित्तिजा खलु वासनाः। १० विमर्शं कलयतीमवस्थं चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा (कि०)। ११ सर्वा हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः (मा०)। १२ सदा स्यादोऽज्ञ यच्चित्तलक्ष्यमपत्यमुपैति सः (क०)। १३ सर्वस्वित्तप्रसादेन सदृशं वाऽभिवाञ्छति (क०)। १४ सिद्धिं वा यदि वाऽसिद्धिं चित्तोत्साहो निवेदयेत् (प)।

(घ) देव-कृपा

१ अमोघो देवतानां च प्रसादः किं न साधयेत् (क०)। २ देवा हि नाम्यद् वितरन्ति किन्तु प्रणय ते साधुचित्तं वरन्ते (नै)। ३ दोषोऽपि गुणतां याति, प्रभोर्भवति चेन्कृपा। ४ न देवा वहिमादाय खादन्ति पशुवाक्यवत्। यं तु रक्षितुमिच्छन्ति हुङ्कृत्या तंनोऽग्नि तम् (महा)। ५ प्रसन्ने हि किमप्राप्यमस्तीह परमेश्वरे (क)। ६ विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया (र)। ७ सानुकूले जगन्नाथे विप्रियः सुप्रियो भवेत्।

(ङ) दैव-स्वरूप (दैवप्रशंसा दैवनिन्दा, भाग्य, भाग्यहीन)

१ अनतिक्रमणीया हि नियतिः (का)। २ अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः किं करोति गतायुषि। ३ अन्धं मूकं वा विधिर्विधित्सुमुन्मूलयति क्षः। ४ अस्तंयास्या अपि दृशां भवन्तीह समागमाः (क०)। ५ अलक्ष्यं साधयत्यर्थं हेलयाऽभिमुखो विधिः (क०)। ६ अहह कष्टमशिष्टता विधेः (म)। ७ अहो दैवाभिशप्तानां प्रायोऽप्यर्थाः पलायते (क)। ८ अहो नवनवास्वप्ननिर्माणे रसिका विधिः (क०)। ९ अहो विधेरचिन्त्यैव गतिरद्भुतकर्मणाम् (क)। १० अहो विधौ विपर्यस्ते न विपर्यस्यतीह किम् (क)। ११ ईदृशी भवितव्यता (कि०)। १२. कस्तदुद्धाऽप्यमभ्यानां प्रायो याति पदास्पदम् (क)। १३ कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं, दुःखमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे)। १४ किं हि न भवेदीश्वरेच्छया (क)। १५ को जानाति जनो जनार्दनमनोवृत्तिः कदा कीदृशी। १६ को नाम पाकाभिमुखस्य कर्मणः प्रत्यूहमीहेत दैवस्य पित्सयुमीहे (ट)। १७ को हि स्वाभिनतस्थायां विधेर्भोक्तव्यमेष्यति (क)। १८ कुले विधौ भवति मिथ्यमिथ्यभावम्। १९. देवो दुरतिक्रमः। २० दैवमेव हि साहाय्यं कुरुते सत्त्वशालिनाम् (क)। २१ दैवी विचित्रा गतिः। २२. दैवे दुर्बलता

यत्ते तृणमपि प्रायेण नजायते। २३ दैवे निरन्यति निरन्यनतां वहन्ति हन्त प्रयास-पक्षापि न पौरुषाणि (नै०)। २४ दैवेनैव हि साध्यन्ते सदमाः सुमकर्मणाम् (क०)। २५ न च दैवात् परं बलम्। २६ ननु दैवमेव शरणं विगृह्यिनृथा पौरुषम्। २७ न भविष्यति हन्त साधनं किमिदानीम् महरिष्यतो विधेः (र०)। २८ न शक्यमतिनिपुणोऽपि पुरुषो निवर्तयितुमीश्वरेच्छामतिक्रमितुम् (र)। २९ नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः। ३ नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे)। ३१ नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलम् (भ)। ३२ नैवान्यथा भवति यत्किल तत्र धाता। ३३ प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता (कि०)। ३४ प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति (कि०)। ३५ प्रायो गच्छति यत्र भग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः (भ०)। ३६ फलं भाग्यानुसारतः (महा)। ३७ बलवति सति दैवे वस्तुभिः किं विधेयम्। ३८ बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा (महा)। ३९ भवितव्यता बलवती (हा)। ४० भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशी गतिः (महा)। ४१ भवितव्यस्य नाशोऽस्ति दत्तस्य वत दत्तताम् (क)। ४२ भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (हा)। ४३ यत्पूर्वं विहितं कर्मतदविलिखितं तस्मार्जितुं कः क्षमः(हि)। ४४ यद्भावि न तद्भावि, भावि चेन्न तदन्यथा (हि)। ४५ लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः। ४६ यत्ने विधौ सति कथं व्यवसायसिद्धिः। ४७ वामे विधौ नहि फलन्त्यभिवाञ्छितानि। ४८ विधिरहो बलवानिति मे मतिः (भ)। ४९ विधिरवध्यभुजस्य नृपस्य। ५० विधिर्हि पटयत्यन्धविम्बानपि संमुखः (क)। ५१ विधिविलिखितं दुर्विरनुसर्पति। ५२ विपर्ययेणापि विधेरीप्सितानि। ५३ विधेर्विडम्बनस्यैष तरङ्गान् को हि शक्नुयात् (क)। ५४ शक्या हि कैश्चिन्निधेतुं पुरतो निपतेद्गतिः (क)। ५५ शिरसि लिखितं रक्षति कः। ५६ साध्यासाध्यविचारं हि नेच्छते भवितव्यता (क)।

(ख) धर्म-चर्या

१ अविनयो बत दैवेनाप्यापदः सुखदुःखयोः (क०)। २ अक्षमाधिरूढस्य फलते स्वयं किं फलम् (क)। ३ अनयापि निरर्हणं हिंसा, न तिथिशास्त्रमस्ति साधनम् (कि०)। ४ अल्पमतिष्ठं वदते हि पुंस्त्वमन्यवशाचरत्वमेव कर्म (कु)। ५ को धर्मं कृपया विना। ६ क्षमया किं न सिध्यति। ७ क्षान्तिसुखं तपो मतिः। ८ चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च मुखानि च (मो)। ९ जैवेऽवसरे दीपको धर्मः। १० क्षमा कीर्तिर्दया सिरम् (महा)। ११ धर्मे तत्परेण भवितव्यं। १२ धर्मं स मो कथं न वलमन्वेति। १३ धर्मतरुजायैव प्रसविभुवि सार्द्धिद्धि (र)। १४ धर्मस्य फलं निहितं गुहायाम् (महा)। १५ धर्मस्य त्वरिता गतिः (प०)। १६ धर्मेण

परां तत्त्वे नास्पनम्मुदम् कश्चित् (क)। १७ धर्मेण हीना पशुभिः समानाः (हि)। १८. धर्मो मित्रं मृतस्य च। १९ धर्मो हि साग्निर्भ्यं कुरुते तथाम् (क)। २० न च धर्मो दयापरः। २१ न दयासदृशं ज्ञानम्। २२ न धर्मद्वेषु वयः समीक्ष्यते (कु)। २३ न धर्मसदृशं मित्रम्। २४ न धर्मात् परमं मित्रम्। २५ नाधर्मोऽस्तमुद्वये (क)। २६ नानृतात् पातकं परम्। २७ नास्ति सत्यसमो धर्मः (महा)। २८ निस्सारविरोधिनी येयं पथ्यपापकयोरिव धर्मद्वेष्योरेकत्र स्थितिः (ह०)। २९ पथ्य भुवेर्दर्शयितार ईश्वरा मनीषमाणमादत्ते न पशुवृत्तिम् (र)। ३ प्रमाणं परमं श्रुतिः (महा)। ३१ मनसैव हि मन्त्राणि धर्मदिव यथादयात् (क)। ३२ मोक्षस्यमनाराध्य न सन्तीप्सित क्रियाः (क)। ३३ यतः सत्यं ततो धर्मः। ३४ यतो धर्मस्ततो जय । ३५ योगिनां परिणमन् विमुक्तये, कैन नाऽऽस्तु विनयः सतां प्रियः (कि०)। ३६ यथोमूषा सत्यम्। ३७ विद्येन रक्ष्यते धर्मो, विद्या योगेन रक्ष्यते (चा)। ३८ व्यतिक्रमाणाति महतां माहात्म्यमनुकम्पया (कि)। ३९ मत्स्यपुटस्थं हरिरूपा। ४ श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति (महा)। ४१ श्रेयसि कैन तुष्यते (वि०)। ४२ सत्यं सम्यक् हृतोऽप्योऽपि, धर्मो भूरिफलो भवेत् (क)। ४३ सत्यं कण्ठस्य भूषणम्। ४४ सत्यं न तद् यच्छलमभ्युपैति। ४५ सत्यमेव जयते नानृतम्। ४६ सत्येन धार्यते पृथ्वी। ४७ स धार्मिको यः परमम न स्पृशेत्। ४८ सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् (चा)। ४९ स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः (गी)।

(३) अर्थ (धन)

(क) धन-निन्दा

१ अकाण्डपातोत्पतिता न कं श्रद्धामीर्विमोहयेत् (क)। २ अकाण्डमेघवद् वित्त मकस्मादेति याति च (क)। ३ आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः (प०)। ४ कष्टेनाभिगम्यानिकारिणी। ५ कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितः (प)। ६ कस्तुद्वुद्वत्समाना विराजमाना सरत् तडित्स्थेव सहसैवाहेति, नश्यति च (द)। ७ धनोष्मणा मन्यवस्पर्श अत्रेव मनस्विता (ह०)। ८ मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु (शा)। ९. यत्रास्ति श्रद्धामीर्विनयो न तत्र। १ शरदभ्रचञ्चलमवेन्द्रियैरसुरक्षा हि वसुपञ्चलाः श्रियः (कि०)। ११ सम्पत्कण्टिकामपि प्राप्य पुंसेव वसुप्रकृतिरुन्नतिमाधाति (द)। १२ सापुरुषानपि पुंस्त्व विडिपन्नवेव सम्पदः (कि)।

(ख) धन प्रशंसा

१ अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः। २ अर्थेन बलवान् सखः (प)। ३ को न युध्यति विभवे। ४ चाण्डालोऽपि नरः पृथ्वी यस्यास्ति विपुलं धनम्। ५ द्रव्येण सर्वे वशाः। ६ धनं तत्प्रयोजनम्। ७ निर्गतिस्तानुगर्मे शरद्धनं नार्दति चातकोऽपि (र०)।

गते तृणमपि प्रायेण वज्रायते। २३ दैवे निरुन्धति निरुन्धनतां वहन्ति हन्त प्रताप-पत्त्यापि न पौरुष्यापि (ने)। २४ दैवेनैव हि साध्यन्ते सदर्थाः शुभकर्मणाम् (क)। २५ न च दैवात् परं बलम्। २६ अनु दैवमेव खरच विगृह्णिन्नुषा पौरुषम्। २७ न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः (र)। २८ न शक्यमतिनिपुणोऽपि पुरुषो नियतिलिखितान् लेखामतिक्रमितुम् (द)। २९ नामाग्रं भवतीह कर्मवशतो भाग्यस्य नाशाः पुनः। ३ नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे)। ३१ नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलम् (भ)। ३२ नैवान्यथा भवति भाविनि यत्रिलिखितं विधात्रा। ३३ प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता (धि)। ३४ प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति (हि)। ३५ प्रायो गच्छति यत्र भव्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः (भ)। ३६ फलं भाग्यानुसारतः (महा)। ३७ वक्ष्यति सति दैवे बन्धुभिः किं विवेचनम्। ३८ बलीयसी दैवलभीश्वरेच्छा (महा)। ३९ भवितव्यता बलवती (शा)। ४ भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशी गतिः (महा)। ४१ भवितव्यस्य नाशाभ्यं दृश्यते यत्र दृश्यताम् (क)। ४२ भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (शा)। ४३ यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः(हि)। ४४ यदभावि न तदभावि, भावि चेन्न तदन्यथा (हि)। ४५ लिखितमपि ललाटे प्रोञ्छितुं कः समर्थः। ४६ यदि विधौ बत कष्टं व्यवसायिनि। ४७ वामे विधौ नहि फलन्त्यमिताभियोगानि। ४८ विधिरहो बलवानिति मे मतिः (मा)। ४९ विधिरन्धकूपे नृपम्। ५ विधिर्हि पञ्चत्वमनिच्छतामपि संयुनक्ति (क)। ५१ विधिलिखितं दुर्विरतुमुत्सहते। ५२ विधेर्विचित्राण्यपि विहितानि। ५३ विधेर्विजृम्भितमनल्पमेव खरशान् को हि तर्कयेत् (क)। ५४ शक्या हि कैश्चन निरोद्धुं दुर्घटना नियतेर्गतिः (क)। ५५ लिखति लिखितं जडधीरिति कः। ५६ साध्यासाध्यविचारं हि नेच्छते भवितव्यता (क)।

(ब) धर्म-चर्चा

१ अस्थिरो बत दैवेनाप्यापात सुखदुःखयोः (क)। २ अधर्मनिरतस्यास्य पश्यतो लोकु किं फलम् (क)। ३ अनघापि निरागैर्यं द्विषां न तिरश्चामसमर्थिता साधनम् (कि)। ४ अप्यप्रसिद्धं भवते हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म (कु)। ५ को धर्मः कृपया विना। ६ क्षमया किं न सिध्यति। ७ क्षान्तिसुखं तपो नास्ति। ८ चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च (मो)। ९ त्रैलोक्ये दीपको धर्मः। १ धर्मः कीर्तिर्द्वयं स्थिरम् (महा)। ११ धर्मे तत्परेन वर्तते। १२ धर्मो न नो यत्र न सत्यमस्ति। १३ धर्मैकरक्षार्थमेव प्रवृत्तिमुषि खार्द्धिज (र)। १४ धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् (महा)। १५ धर्मस्य त्वरिता गतिः (प)। १६ धर्मेण

(१०) आचार

(क) कर्तव्य-बोधन

१ अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्। २. आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया (र)। ३ आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि (प)। ४ उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् (गी)। ५ उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्। ६ कर्तव्यं हि सतां वचः (क)। ७ कर्तव्यो महदाश्रयः (प)। ८ कस्यचित् किमपि नो हरणीयं मर्मवाक्यमपि नोच्चारणीयम्। ९. गन्तव्यं राजकुलं। १ न स्पृहेत् स्वयं हर्तव्यमात्मनो भूतिमिच्छता (क)। ११ स्वाध्यायान्मा प्रमदः कर्तव्यः (तै)। १२ परमार्थमेव विज्ञाय न भेतव्यं कदाचन्नृभिः (क)। १३ यदेन्न यस्य पत्कर्म, स तत् कुर्वन् विनश्यति (क)। १४ मनःपूतं समाचरेत् (का नी)। १५ मौनं विधेयं सततं सुयोगिभिः। १६. मौनं सर्वार्थसाधकम्। १७ मौनं स्वीकृतिलक्षणम्। १८. यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्। १९. वचने का दरिद्रता। २ वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् (का नी)। २१ विचार्यं स्त्रीषु वर्तेत। २२ गुरोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। २३ वस्त्रपूतां वदेद् वाणीम्। २४ सर्वथा स्ववधस्त्याज्यः कृत्या ह्यवधनीयता (उ)। २५ सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् (कि)। २६ सहसा हि कृतं पापं कर्तृ मा भूद् विपत्तये (क)। २७ सुकरो हि क्रियां मोहो, दुर्गम्या सत्त्ववाप्यता (कि)।

(ख) १ कुसंगति-निन्दा

१ असतां सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्। २ असत्युपगता हि स्युरात्मापत्तिनिमित्ततां प्रमादिनीनां विपदां पदानि (कि)। ३ कामं व्यसनवृक्षस्य मूलं दुर्जनसंगतिः (क)। ४ दशाननोऽहरत् सीतां बन्धं प्राप्तो महोदधिः। ५. नीचाश्रयो हि महतामपमानपदं नृणाम्। ६ पवनः पद्मगन्धाढ्यो रेणूनासु वहन् रजस्वलो भवति। ७ मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली। ८ मूर्खैर्हि संगं कस्यापि शमगे (क)। ९ हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्। समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् (हि)।

(ख) २. सत्संगति-प्रशंसा

१ अनुद्योगः सतां श्लाघ्यः पत् स्वल्पमपि तद् बहु। २. कस्य नाभ्युदये हेतुर्महतां साधुसंगमः (क)। ३ कस्य समृद्धा न भवेत्सुहृदः (क)। ४ कामं न श्रेयसे कस्य संगमः पुण्यकर्मणि (क)। ५. किं वाऽभिधेयवस्तुप्रमाणं विभेत्ता, यं श्लोकसहस्रकरणी पुरि नाकरिष्यत् (धा)। ६ गुणमहतां महते गुणाय योगः (कि)। ७ चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसंगतिः। ८ ध्रुवं फलाय महते महतां खलु संगमः (क)। ९. पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्। १ पुण्यैरेव हि लभ्यते सुहृत्प्रतिमिः सत्संगतिर्दुर्लभा। ११ प्रायः सज्जनसंगतौ हि लभ्यते दैवानुकूलं फलम्। १२. प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः

१ हृदयस्थापः कामान्तं शादोषानपि गच्छति (वि)।
(कि)। १५ संगत्या दोषगुणा भवन्ति।

८. पात्रत्वाद् धनमाप्नोति । ९ पुनर्जन्मान्तरः पुनरेव मोक्षी । १० पूर्वं कार्यं समुद्धरत्व । ११ भोगो भूषणवत् धनम् । १२ मातरमिव तव प्रसादवशगो होता अपि सुखुंपाः । १३ स्वदौर्जन्य एवे स एव मनसि यावा जयद्वन्द्वताम् । १४ क्लेश वा मार्गमिवा न वा भिषं भिवा दुरप कर्मणीप्सितो भवेत् (शा०) । १५ स्व अस्मीरपदुःखे वया परत्वम् (कि) ।

(ग) निर्धनता (निर्धन)

१ अवज्ञाक्षेदय दारिद्र्यम् (द०) । २ उत्पन्ने विद्वेषन्ते दरिद्राणां मनोरथा । ३ कई निर्धनिकस्व जीवितमहो दारैरपि त्यज्यते । ४ दुःखे कलानिधि सौहृदम् (प) । ५ क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति (प) । ६ दरिद्रता धीरवया विराजते । ७ दारिद्र्यदोषेण करोति पापम् । ८. दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी (प०) । ९. दारिद्र्यं परमाञ्जनम् (मा०) । १० न दरिद्रस्य दुःखी स्वजनोऽपि बन्धु । ११ निर्धनता सर्वापदामास्पदम् (मृ) । १२ निर्धनस्य कुतः सुखम् । १३ पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी । १४ पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा । १५ बुभुक्षितः किं न करोति पापम् (प) । १६ बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् । १७ बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते । १८ रिक्त सर्वं भवति हि क्षणुः पूर्णता गौरवाय (मे०) । १९ भिषं योग्यो दरिद्रस्य । २० दुःखं दीपस्य त्यजन्ति विद्वांसः । २१ सर्वं दुःख दरिद्रस्य (प०) । २२ सर्वदुःखा दरिद्रता ।

(४) काम (भोगनिन्दा)

१ अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः (र०) । २ अहो अतीव मोमाक्ष के नाम न विडम्बयेत् (कु) । ३ आहुः कामसुखेभ्यात्मसुखं को न पश्यति (कु) । ४ आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (कि) । ५ कामभोगौ हि विषयौ मोक्षद्वारार्गलायुधौ (कु) । ६ कामातुराणां न भयं न लज्जा (प०) । ७. कामस्य हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु (मे) । ८ कुतः सत्यं च कामिनाम् । ९ कोऽवकाशो विवेकस्य हृदि कामान्धचेतसः (कु) । १ को हि स्वार्थसमर्थे वा व्यसनार्णवे निरीक्षते (कि०) । ११ क्षेत्रामित्रियनिग्रहो यदि भवेद् विम्पस्तरेत् सागरम् । १२ क्षुधया हि विवशा विद्वांसोऽपि (ने) । १३ न कामसदृशो रिपुः (वे) । १४ नास्ति कामसमो व्याधिः । १५ भोगान् भोगनिवाहेवान् अभ्यासात्पश्य दुष्यसि (कि०) । १६ भोगेऽपि दोषा भ्रमयन्ति रागिणम् (प) । १७ विषयाकृष्यमाणा हि तिष्ठन्ति मुग्धे कथम् (कु०) । १८ विषयिणः कस्यापदोऽस्तं गताः । १९ अदेया विदुषाम्बारः कामाः कस्य हि शाश्वताः (कि ११ १५) । २ संगात् संजायते कामः (गी०) ।

(५) जगत्-स्वरूप

(क) जगत्-स्वरूप

१ असारेऽस्मिन् भवे सारा भावा पञ्चनमस्कृतिः (क)। २ न अने संसारः कममृतमयः किं विषमयः। ३ परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते। ४ मयूरपि तृप्तिमायाः सुदृशो हा विचापलम् (प्र)।

(ख) नश्वरता

१ अतिदुस्तरादिनी चानित्यतानदी (इ)। २. अस्थिरं जीवितं लोके (हि)। ३ अस्थिरा पुत्रदारास्च (हि)। ४ अस्थिरे धनयौवने (हि)। ५ सर्वविप्रतिनाशायां का चिन्ता मरणे रणे। ६ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च (भी)। ७ विगिमां देहभृतामसारताम् (र)। ८ न वस्तु दैवस्वरसाद् विनश्वरं तिरश्चरोऽपि प्रतिकर्तुमीश्वरः (नै)। ९. मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः (र)। १ सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः (महा)।

(ग) लोक-स्वभाव

१ अतिकष्टास्वप्यवस्थासु जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति सर्वप्राणिनां मृदवः (का)। २ अहो विचित्रं लोकव्यवहारस्य (मृ)। ३ आत्मवर्गाहितमिच्छति सर्वः (कि)। ४ गतयो हि भिन्नपथ्या हि देहिनाम्। ५ गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः। ६ अन्यस्य दुःखप्रवदस्य चेतसः किमप्यमर्षोऽनुनये प्रशाम्यति (कि०)। ७ अज्ञानने कः करमर्पयिष्यति (नै)। ८ मुखमभिमते को वा पूर्णे मुखा न हि मानवति (कु)। ९ नवा वाणी मुखे मुखे। १ न खलेव ते येषां स्तवापि स्तवा न विघन्ते मैत्रीवाक्षीनशत्रवः (इ)। ११ नहि सर्वविदः सर्वे। १२ नहि सर्वेऽपि कुर्वन्ति सम्यग् वृत्तिविवेचनम्। १३ पद्म स्वाऽनुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यति। उपकार्योपकर्तारौ मित्रोदासीनशत्रवः (महा)। १४ भिन्ने भिन्ने मतिर्भिन्ना मुण्डे मुण्डे सरस्वती। १५ इयं खलु मोहमयी प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्। १६ प्रमादमोहितः प्रायो न विचारक्षमो जनः (क)। १७ भिन्नरुचिर्हि लोकः। १८ सर्वः स्वार्थं समीहते (शि)।

(घ) स्वभावो दुरतिक्रमः

१ आकण्ठजलमग्नोऽपि रसा जिह्वस्य भिद्यते। २ उत्तमप्रियाः खलु मनुष्याः (घ)। ३ उच्चत्वमग्न्मातपतप्तमतोगाच्चौर्यं हि पत्ता प्रकृतिर्बलस्य (र)। ४ या यस्य प्रकृतिः स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते। ५ स्तो हि साधुरुत्तात् स्वभावो न निवर्तते। ६ मुक्तामपि पानीयं शङ्खस्येव पावकम् (प)। ७ स्नापितोऽपि बहुशो नदीजलैर्गर्दभः किमु हयो भवेत् क्वचित्। ८ स्वभावो दुरतिक्रमः (प)। ९ स्वभावो यादृशो यस्य न जहाति कदाचन (चा)।

हि विनोदरतिर्मनः (कि)। ७ शब्दं हि राज्ञः पक्षपातमाहुः (र०) ८ को नाम राज्ञां प्रियः (प)। ९ क्षितिपतिः को नाम नीतिं विना। १ यजन्ति न राजानमेकपत्नीव्रतं नराः (कु)। ११ धारयन्त्यनन्ति राजानः। १२ नवकर्मण्याः प्रभवन्ति हि प्रियः (कि) १३ नये च क्षीणे च क्षन्ति सम्पदः। १४ भयेन पापक्रियते नरो न्यग्रता। १५ नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके, जनपदहितकर्ता दिप्यते पार्थिवेन्द्रैः (प)। १६ नहीश्वरप्राङ्मुखताः कदाचित् पुष्यन्ति लोके विपरीतमर्थम् (कु०)। १७ नृपतिजनपदानां दुर्लभं कार्यकर्ता (प)। १८ नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्न एव धर्मः (र)। १९. परमं धर्ममरातिमङ्गमाहुः (कि०)। २० निधनमनं खलु विग्रहे क्षितीशाः। २१ पृथिवीभृतं राजा। २२ प्रजानामपि दीनानां राजैव सदयं पिता। २३ प्रजुषितमेव हि जनोऽनुवर्तते (कि०)। २४ प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य (कु)। २५ प्रभूणां हि विभूतन्या व्यवसन्ति विषयं मतिः (क०)। २६ प्रलोभनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चकं गौरवमाश्रितेषु (कु)। २७ प्रायेण भूमिरक्षणा प्रभवा अन्याश्च यः पार्थिवो भवति तं परिवेष्टयन्ति (प)। २८. भवन्ति वैतसीं वृत्तिं राजन् काष्ठेदिनः (क)। २९ मनीषिणः सन्ति न ते हितैषिणः (प)। १ महीपतीनां विनयो हि भूषणम्। ३१ राज्ञः सहायवान् शूरः सोत्साहो जयति द्विषः (क)। ३१ वसुमत्या हि नृपा वसुमिताः (र)। ३४ वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा (प०)। ३५. व्रजन्ति राजानमनुव्रतास्तथा, यथेन सिद्धिं मुनयो न सूनृतः (कि)। ३६ शुचिरेव नरेन्द्रो राजा। ३७ सर्वः प्रार्थितमर्थमधियम्य सुखी संपद्यते जन्तुः। राजा तु परित्यक्तो दुःखोत्तरेव (शा०)। ३८ स्वदोषैः पूयन्ते राज्य (भा)। ३९. हतं दैवमजानता कर्म (भा०)।

(ब) सद्भृत्य

१ अनियुक्तोऽपि च भृत्यादीक्षेत् स्वामिनो हितम् (क०)। २ कथं हि सद्भृत्यैर्हीनस्य प्रभोर्जयः (क०)। ३ कार्यप्रयुक्ता खलु कर्मसिद्धिर्विशेषना भर्तुषु विद्धिमेति (कु) ४ न किंचित्र कारणवत्तयाचारणी स्वामिमतिः (र) ५ नास्त्यहो स्वामिभक्तानां पुत्रे धारयति या स्पृहा (क)। ६ प्रायेणापि हि भक्तानां स्वामिरक्षणं व्रतम् (क)। ७ भृत्या अपि च एव ये संपत्तेर्विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते (का)। ८. संभावना ह्यधिकृतस्य तनोति तेजः (कि)। ९. सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः (भ)। १ स्वामिन्यवज्ञाभयमत्सरे मुखं कर्मसिद्धयां कुतः (क०)। ११ स्वाम्यावज्ञा सदा सेवा भक्तानामर्जिता धनैः (प)।

(१०) आचार

(क) कर्तव्य-बोधन

१ अपेक्षणीयं भावज्ञ नित्यं नास्ति ततः सुखलेशाः स्वप्नम्। २. आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया (र)। ३ आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि (प०)। ४ उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् (गी)। ५ उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्। ६ कर्तव्यं हि सतां वचः (क)। ७ कर्तव्यो महदाग्रहः (प)। ८ कस्यचित् किमपि नो हरणीयं मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम्। ९ गन्तव्यं नगरशते। १ न स्वेच्छं प्रवर्तव्यमात्मनो मूतिमिच्छता (क)। ११ स्याय्या वृत्तिः समाचरेत्। १२ परमार्थं विज्ञाय न भेतव्यं कथिन्नुभिः (क)। ११ यत्नेन यस्य यत्कर्म स तत् कुर्वन् विनश्यति (क)। १४ मनःपूतं समाचरेत् (का नी)। १५ मौनं विवेकः खलु सुधीभिः। १६ मौनं सर्वार्थसाधकम्। १७ मौनं स्वीकृतिलक्षणम्। १८ यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्। १९ यत्नेन का रक्षिता। २ वस्त्रपूतं जलं पिबेत्तम् (का० नी)। २१ विवादं त्यजेत् खलु धर्मवेत्। २२ खलोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। २३ सत्यपूतां वदेद् वाचीम्। २४ सर्वथा स्वपरहितम् कुर्वो ह्यचनीयता (उ)। २५ सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् (कि)। २६ सहसा हि कृतं पापं कर्म मा भूत् विपश्चये (क)। २७ सुकरो हि हितो मार्गो, दुर्लभं सत्यवाच्यता (कि)।

(ख) १ कुसंगति-निन्दा

१ असतां सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्। २ असाधुयोगः हि अमास्त यथाः प्रमादिनीनां विपदां पदानि (कि)। ३ कार्यं स्वप्नदृशस्य मूलं दुर्जनसंगतिः (क)। ४ दहनन्नोऽहरत् क्षीतां कर्णं प्रातो महोदधिः। ५. नीचाश्रयो हि महतामपमानहेतुः। ६ पवनः परागग्राही रुग्णासु वहन् रजस्वलासु मरुति। ७ मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली। ८ मूर्खैर्हि संगं कस्यास्ति शर्मणे (क)। ९ हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्। समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् (हि)।

(ख) २. सत्संगति-प्रशंसा

१ अनुशास्य सतां वर्त्म यत् स्वस्मिन्नपि तद् वहु। २. कस्य नाभ्युदये हेतुर्भवेत् साधुसमागमः (क)। ३ कस्य सत्सङ्गो न भवेच्छुभः (क)। ४ कामं न भेजसे कस्य संगमः पुण्यकर्मभिः (क)। ५. किं वाऽभविष्यदस्यास्तामसौ विभेत्ता तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् (मा)। ६ गुणमहतां महते गुणाय योगः (कि)। ७ चन्दनचन्दनयोर्भवे क्षीतला साधुसंगतिः। ८. प्रभुं फलाय महते महतां सह संगमः (क)। ९. पद्मपत्रस्थितं वारि यथा मुक्ताफलश्रियम्। १ पुण्यैरेव हि लभ्यते सुहृत्तिभिः सत्संगतिर्दुर्लभा। ११ प्रायः सज्जनसंगतो हि लभ्यते दैवानुकूलं फलम्। १२ प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते (म)। १३ हृत्सहायः कायान्तं साधीयानपि गच्छति (वि)। १४ विधातव्यान्यहो सतां हि योगः (कि)। १५. संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।

१६ सङ्गः खलां किमु न मङ्गलमातनोति (भा)। १७ खलां सन्निधिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति (उ)। १८ खलां हि सङ्गः सकलं प्रदूषयते (भा०)। १९ खलोपकुरुते कथं किं न करोति पुंसाम् (भ)। २ सन्निरेव सदाशीलं सन्निः कुर्वीत संगतिम्। सन्निर्विवादं मैत्री च नासन्निः किंचिदाचरेत्। २१ समुपगतं मूर्तिमन्तमवलेपमाद्, वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः (कि०)।

(ग) १ कृतघ्नता निन्दा

१ अहह महतां सुखं हि इदं किं नाम पौरुषम्। २ कृतघ्ना घनकालमन्या नोपकारेऽवधारयन्ति (क)। ३ कृतघ्नानां शिवं कुतः (क)।

(ग) २. कृतज्ञता-प्रशंसा

१ कृतज्ञे खलपीचारे प्रभौ सेवाऽऽजन्मा कुतः (क०)। २ न क्षुद्रोऽपि प्रथम सुकृतापेक्षया संभवति, प्रातर्मित्रं सवितरि विमुखः (मे०)। ३ न तथा कृतघ्नदिनां करिष्यन् प्रियवादेति यथा कृतज्ञवादः (कि)।

(घ) १ गुण-प्रशंसा

१ अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते(र)। २ अलमलघोत्कर्षणा गुणानां, न खलु यशो मलपो भवन्ति (किरातार्जु)। ३ एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः (कु)। ४ कमिवैषते रमयितुं न गुणाः (कि०)। ५ गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः (उ०)। ६ गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संख्याम् (कि०)। ७ गुणिनि गुणज्ञो रमते, नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः। ८ गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः। ९ गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्। १ गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो, न किंचिदप्यस्ति समं गुणानाम्। ११ गुणज्ञतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः (कि)। १२ नाम यस्यामिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान् (कि)। १३ परं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते (र०)। १४ परिक्षतोऽपि गुणाय वस्तुषानाम् (कि)। १५ प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना। १६ प्रायः प्रस्तवमाक्षिपे स्वगुणभूतमादरः (कु०)। १७ वस्तीरसुतरति नयगुणसमृद्धिम्। १८ भुनक्ति हि विपूयकारिणं गुणद्वेषाः स्वपमेव सन्तः (कि०)। १९ सुलभा रमणाय लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् (कि०)। २ सुजने हि हिपां मनो दुर्लभं वस्तवाप्यता (कि)। २१ स्थिरा हैषी गुणवत्सु (कुवलया०)। २२ हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्। २३ हंसा हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः (शा)।

(घ) २. गुणहीन-निन्दा

१ अतिरोपणमप्युपाददत्पय एव जयः (इ०)। २ अहीनं कस्य नाम स्यान् पक्षीकारकारणम् (क)। ३ अहीनं कस्य भूतये (क)। ४ अहीनस्य हतं कुलम्। ५ आपरोक्षमपवोऽकृतज्ञो कलमानमाचे हि दुर्मतिम् (कि)। ६ गुणैर्विहीना बहु जल्पन्ति। ७ पुरुषं वर्षं वाणा अपि गुणज्ञुताः कस्य न मताय। ८ मतयस्य कुतः कलम्। ९ यद्यपा कि न जल्पन्ति।

(ङ) तेजस्विता

१ अवश्यमुदस्तं महतां ह्यपेक्षितः (कि०)। २ अनन्यभोग्यस्य विहङ्गराजपदं, भवन्ति पतत्राः स्वयमेव वैहिनः (कि)। ३ अविभिन्न निष्पन्दतं तमः, प्रभवा नांशुमतः प्रसुप्तदीपत्वे (कि)। ४ अवनेरमृतस्य चोभयोर्वहितत्वान्मुखरस्य वोनतः (कु)। ५ इत्यनौपयिकाभ्यर्थनासिद्धिपरा नास्तीति पूर्वतम् (शि)। ६ उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः। ७ उपरीतपरस्परप्रभावधाम्नां, न हि कश्चिन्नां तपसामवद्धमस्ति (कि)। ८ कच्चे हुताशनोर्नहि मन्त्रपूतमहन्ति तेजांस्यपरापि इलम् (कु)। ९ कच्चे खे क्षालयितुं समेत कः, कषायमस्काच्छमतीमतं नभः (शि)। १ कर्षन्निन्द्रहि दिग्वानां, वीर्यं भजति मोक्षताम् (क)। ११ किमिन्द्रायतादकरमात्मवत्तम् (कि)। १२. किमिवास्ति वन्न सुकरं मनस्विभि (कि)। १३ को विहन्तुमक्षमास्तिरोदधे, वासवभिवमधीतदीधितौ (शि)। १४ जगति बहुमताः कस्य नाम्यर्चनीयाः। १५ जयन्ति महतां मनोरथमर्यं, न हि कम्पतेऽक्षरं सुखाभिलाषः (कि)। १६ जयन्ति न हिरण्यरेतसं, पवनमास्कन्दति मस्मनां जनः (कि०)। १७ तमस्तपति धर्मांशौ कथमा विर्भविष्यति (शा०)। १८ तीव्रतत्त्वस्य न चिरात् भवन्त्येव हि सिद्धयः (क)। १९ तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते (र)। २ तेजोविहीनैः किमहद्भिः दर्पः, प्रध्वान्तजिद् दीपमिव प्रकाशः (कि०)। २१ न खलु वयस्तेजस्से हेतुः (म)। २२ न दूषित शक्तिमतां स्वयंग्रह (कि)। २३ न पेपु महोजसस्तमवरुन्धन्ति महिम्नुपा इव (शि०)। २४ न मानिता खलु सन्ति मन्यवः किमः (कि)। २५. नातिरौद्रयितुं मन्त्रानिच्छन्ति हि महोजसः (कि)। २६ निवसन्नन्तर्दाहेऽपि कल्पो वह्निर्न तु ज्वलितः। २७ पौरुषनिन्दं चरितं मनस्विनां पयोऽनुधावेक्षितमेव शोभते (क)। २८ प्रहीतः खलु सा महीयसः, सहते नान्यपमुन्नतिं यया (कि)। २९. मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम् (म)। ३ महतां हि धैर्यमनिमाज्यवैभवम् (कि)। ३१ महानुभाव प्रतिहन्ति धैर्यम् (कि०)। ३२. मा जीवन् यः परपरिभवोद्गारजीर्णोऽपि जीवति (शि०)। ३३ यशिनां न निहन्ति धैर्यमनुभावगुणः (कि)। ३४ विजयितुं न खलु यशा मनस्विनो, विभिन्नत्व कलभमवैस्य विद्विप (शि०)। ३५ श्रेयान् हि मानिनो मृत्युर्नेदयास्थ्यकारणम् (क)। ३६ संकल्पैकमयता हि दिव्यानामसिद्धा क्रियाः (क)। ३७ सदामिमानैकधना हि मानिन (शि०)। ३८ सम्पत्तु हि सुलभा नामैकहेतुः स्वसेवयम् (क०)। ३९ संभवत्यभिमतानामभिमानो ह्यतन्द्रिमः (क)। ४ सहते विपत्सहस्रं मानी नैवापमानलेशमपि (मद्र)। ४१ स्थापयन्नेभवतो न संशयं, भवन्ति गोमायुवृत्तयो न दन्तिनः (कि०)। ४२. स्वामानाधिकरण्यं हि तेजस्विनिरपोः कुल (शि)। ४३ सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा (र०)। ४४ स्थिता तेजसि मानिता (कि०)। ४५. स्वतोऽनुगुणा हि मनः प्रवृत्तिः (र)। ४६ हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा (र)।

(च) मित्रता

१ आकरः सत्पदार्थानां ग्रामणीर्हि सुहृदोः सहवासः (ने)। २ आपत्काले तु लभ्यन्ते यस्मिन्नं मित्रमेव तत् (प)। ३ आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्। दिनस्य पूर्वार्धपराधभिन्ना, छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् (प०)। ४ एकं मित्रं भूपतिर्वा धनिर्वा (म०)। ५. किमु चोदितः प्रियहितार्थकृतः कृतिनो भवन्ति सुहृदः सुहृदाम् (शि०)। ६ कुशास्यान्ते च सौहृदम् (प०)। ७ कृते कस्यास्ति सौहृदम्। ८ तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः (उ)। ९. नहि विचलति मैत्री दूरतोऽपि स्थितानाम्। १ नार्तं सुखाय सुहृदो नार्तं दुःखाय बान्धवः (महा०)। ११ परोऽपि हितवान् बन्धुः (प)। १२ भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि (वा)। १३ मनोभूया मैत्री। १४ मन्यन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः (मे)। १५ मित्रक्षममनु जामतल्पजः (कि)। १६ मित्रार्थमर्थितमानो दुःखम्य हि महोदयाः (क)। १७ यत् सतां हि संगतं मनीषिभिः साधुसंगतीनमुच्यते (कु)। १८. विदेशे बन्धुजनो हि, मरुधन्वनिर्झरः (क)। १९ विप्रकृष्टोऽपि लभ्यत, सति प्रियसमागमे (कि)। २ समानशीलव्यसनेषु सख्यम् (हि)। २१ समीरणो नोदयिता प्रवेति, व्याहिंस्यते केन हुताशनस्य (कु०)। २२ स सुहृद् भवने वः स्वात् (प)। २३ सतां श्रीतिष्ठमपि स्तन्तो न मुञ्चन्ति मित्रार्थे (प)। २४ स्वयमेव हि वातोऽग्नेः, सारथ्यं प्रतिपद्यते (र)। २५ हितप्रवोक्ता मित्रम्।

(छ) धीरता (धीरता) (धीर, धीर)

१ अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः (वि)। २ अमपदां शोणितकोष्णया किं, मया स्रष्टव्यं दयति विधिना (र०)। ३ अवमत्य पदाक्रमणवता धीरपौरुषम् (उ०)। ४ अवसरेषु धीराणामवज्ञैव हि शोभते (क)। ५ अवसृते च हि कस्यार्थं, भवने यो न मुह्यति (क)। ६ अविद्वांसो निवर्तन्ते, न हि धीराः कृतोद्यमाः (क)। ७ आपत्काले च कष्टेऽपि, मौख्याद्दम्भ्यते बुधैः (क)। ८ आपत्सु धीरान् पुरुषान् स्वयमायान्ति सम्पदः (क०)। ९ आपदि स्फुरति प्रज्ञा, यस्य धीरः स एव हि (क०)। १ आपन्नापि स्वार्थं न सर्वं सम्पदेयमिः (क०)। ११ आरम्भा ह्यसमाप्तेव, किं धीरैरवसीयते क्रिया (क)। १२. आरम्भे हि सुदुष्करेऽपि महतां मध्ये विरामः कुतः (क०)। १३ उत्साहैकधने हि धीरहृदये प्राप्नोति लक्ष्मीरुच्चैः (क)। १४ उद्यतो न सहते विघ्नशिक्षाम्। १५ एकोऽप्यामयशीलोऽपि स्वर्गी प्राप्नोति सत्पदान् (क)। १६ जीवन् हि धीरोऽमिमतं किं नाम न वदाप्नुयात् (क०)। १७ त्यजन्ति महतां मनोरथमर्थे, न हि त्यक्तेऽवसरे सुखानिमिषाः (कि)। १८ न आत्मवतो मार्गे स्खलनानवसीदति (क)। १९ मनु प्रपातेऽपि निष्कम्पा गिरेः (वा)। २ न मूढा विदन्ते हि खेदनिमित्तं पराभवम्(क)। २१ म स लभते किं वस्य प्रज्ञा मापदि हीयते(क०)।

}

१२ नहि तन्नावसादेन स्वल्पाप्यापद् विलुप्यते (क)। १३ निसर्गः स हि धीराणां यदापन्नधिकं दृढम् (क)। २४ स्याद्यात् पदः प्रविचलन्ति पदं न धीराः (म)। २५ परार्द्धिमास्थिरे मनो हि मानिनाम् (थि)। २६ परामर्शोऽप्युत्सव एव मानिनाम्। २७ प्रहर्तविरियं सत्त्ववताम्। १८ प्रतिपन्नसुहृत्कार्यनिर्वाहे धीरसत्त्वता (क)। २९. प्राणेष्वोऽपि हि धीराणां, प्रिया मानमयाय धुराणां आपदे हि रणोत्सवाः (क)। १ शत्रुप्रतिक्रिया (नै)। ११ मुखे धीर्यं निवसति न वाचि (ह)। १२ भीता इव हि धीराणां यान्ति दूरे विपत्तव (क)। ११ महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिण (थि)। १४ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, धैर्यां न येषां त एव धीराः (कु)। १५ विनाधर्मैः धीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम् (हि)। १६ ध्येषु आपदे धुर। १७ धुरं हतवं दृढसौहृदं च ब्रह्मीः स्वयं याति निवासहेतोः (प)। १८. धुरस्य भरणं तृणम्। १९ धुरा हि प्रत्यतिप्रियाः (क)। ४ स धीरो यो न संमोहमापत्कालेऽपि गच्छति (क)।

(ज) शिष्टाचार (सदाचार)

१ आचार प्रथमो धर्मः (म)। २ आरमेश्वराणां नहि जातु क्रिया समाधि-मेदप्रभवो भवन्ति (कु)। १ उपयुक्ते हि तादृश्ये प्रथमः सन्निरिष्यते (क)। महाजनो येन गतः स पन्थाः (प)। ५ विनयाधाति पात्रताम्। ६ विनयो हि ह अलम्। ७ शीलं परं भूषणम्। ८ शीलं भूषयते कुलम्। ९. शीलं हि विदुषां धन (क)। १ शीलं हि सर्वस्य नरस्य भूषणम्। ११ शुभाचारस्य क कुर्वादशुभं वि सचेतनः (क)। १२ सकलं शीलेन दुर्यात् वशम्। ११ सकलगुणमूला च विनय।

(झ) १ सज्जनप्रशंसा

१ अधोमत्तैव महतां महत्त्वस्य हि साधनम् (क)। २ अगम्यं मन्यते सुगम्। ३ अक्षीहतं सुहृदिनः परिपाल्यन्ति। ४ अनुपश्यन्ति हि प्रायो देवता अपि तादृशम् (क)। ५ अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकार. (वि)। ६ अनुद्धुरकुरते पनच्यनिं न हि गोमायुस्तानि क्रेस्यौ (थि)। ७ अपशोभीरक किं न कुर्वते कृत सायवः (क)। ८ अभावपूजा परिवादगोचरं, सतां हि वाणी गुणमेव भाषते (कि)। ९ अरन्तुदतं महतां अगोचरः (कि)। १ अहह महतां निस्सीमानचरितविभूतया (म)। ११ आदानं हि विसर्गाय, सतां वारिमुचामिव (र)। १२. आपन्नार्तिप्रशमनफला सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे)। ११ आवेष्टितो महाहिर्न चन्दनः किं विषायते। १४ उत्तरोत्तरमुमो हि विभूनां, कोऽपि मन्युरुत्तमः क्षमादः (नै)। १५ उत्पद्यन्ते न हि द्रव्यमुत्तमाः सज्जनापदम् (क)। १६ उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् (हि)। १७ उदारस्य तृणं वित्तम्। १८ कच्छे शुना वसति ये खलु सज्जनानाम्।

१९. कथमपि भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः संभवन्ति (मृ)। २ कथापि खलु पुण्यानां श्लोकवास्तव्या न भवन्ति (शा०)। २१ कथ्यार्था हि सर्वस्य, सन्तोऽकारण बान्धवाः (क)। २२ क्वेयं न स्यादभिमतफला प्रार्थना सुलभेषु (मे)। २३ किंवाभिधिः खलु भवति महतां नोपकरणे (भ)। २४ कुतोऽपि मूलं शरणं प्रपन्ने, ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव (कु०)। २५ कल्पद्रुमेऽपि नैदुर्लभं, कल्याणमहतो कुतः। २६ महीयसामपान् परिचर्यया मृदुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः (कि)। २७ अनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले क्वचिद् बुधैरप्यपदेन गम्यते (ने)। २८ अनाम्बुभिर्वृक्षनिमग्नगात्रकैर्वृतं नहि प्रवृत्ति विकारमम्बुपैः (कि)। २९ क्षिते वापि क्रियायां च साधूनामेकरूपता। ३ क्षितिधान्तेषु वीराणां स्नेह एवोन्नितोऽरिषु (क)। ३१ के भूमण्डलमण्डनैकतिलकाः सन्त किंभूतो जना। ३२ क्षत्रबन्धुतमस्त्वा हि प्राणानपि न रक्षणम् (क)। ३३ क्षारवानम्बुक्षेपविपत्तिमन्वोऽरक्ष्यस्य हतु रक्षणात् प्रभुः किम् (कु)। ३४ क्षुल्लपत्रिद्विजा महतां हि वृत्तिः (कि)। ३५ क्षेत्रीकृतपर्णा हि, कामधेनुर्मता सताम् (क)। ३६ क्षेत्रपालमपीच्छन्ति सन्तो नाधिनयं पुनः (क)। ३७ क्षणिनामपि सन्तो पुनर्गुणवत्संनिधिरेव संनिधिः (कि)। ३८ न क्षयति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित्। ३९. न क्षोभान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम्। ४ न खलु पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम्। ४१ न खलु महतां हि कदापि मोघः प्रणामः। ४२. नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति। ४३ निजहृदि विकसन्ताः सन्ति सन्तः कियन्तः। ४४ निर्वाहः प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद् हि गोत्रव्रतम्। ४५ न्यायाधारा हि साधवः (कि)। ४६ परदुःखेनापि दुःखिता विपदाः। ४७ परिजनताऽपि गुणाय सज्जनानाम् (कि)। ४८ पुण्यवन्तो हि सन्तानं पश्यन्त्युच्चैः कृतान्वयम् (क)। ४९ प्रकृतिरियमिदं हि महात्मनाम् (भ)। ५ प्रणामान्ता सतां कोपः। ५१ प्रतिपन्नपरीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् (र०)। ५२ प्रतिपन्नार्थनिर्वाहं सदृशं हि सतां व्रतम् (क)। ५३ प्रसुप्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव (मे)। ५४ प्रवर्तते नाकृतपुण्य कर्मणां, प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती (कि)। ५५ प्रसन्नानां खलु फलमपरिमेयं प्रभुवरे। ५६ प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि (र)। ५७ प्रणयेष्वनिवर्त्यवचो हि सन्तः (र०)। ५८ प्रायेण साधुवृत्तानामसाधिन्यो विपत्तयः। ५९ प्रायेणाकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि (का)। ६ प्रारम्भ चोत्तमजना न परित्यजन्ति (भ)। ६१ बताभिजातानुरोधेन किं न कुर्वन्ति साधवः (क)। ६२. बुध्यते हि फलेन साधवो न तु बन्धेन निबोधयोगिताम् (ने)। ६३ भक्त्या हि तुष्यन्ति महानुभावाः। ६४ भज त्यागमरिते हि दुर्लभेऽपि न साधवः (क)। ६५. भवति महत्सु न निष्फलः प्रणामः (कि)। ६६ भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्। ६७ मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं

महात्मनाम् (हि)। ६८ महतां हि धैर्यमविषाम्बरैमम्बरम् (कि)। ६९. महतां हि सर्वं मधुरं जनाशिषम् (वि०)। ७० महतामनुकम्पा हि विपत्तेषु प्रतिक्रिया (क)। ७१ महतीमपि भिषमवाप्य विस्मयः सुजनो न विस्मरति आत्तु किंचन (वि)। ७२ महते स्वल्पमपि गुणाय महान् (कि)। ७३ महान् महत्येव करोति विक्रमम् (प)। ७४ मोक्षो हि नाम जायेत महत्युपकृतिः कृतः (क)। ७५ वक्त्रं चित्तं तथा वाचो यथा वावस्थया स्थितः। ७६ हृदयं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते (उ)। ७७ रिपुष्वपि हि मीतेषु सानुकम्पा महाशया (क)। ७८ वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि, को हि विज्ञातुमर्हति (उ)। ७९ चित्तविकारे न कस्यस्ते सम्बन्धाः सदनुष्ठिता (कु)। ८ विप्रियमन्याकर्म्म जने प्रियमेव सर्वदा सुजनः। ८१ विवेक धाराशतधौतमन्तः, सतां न कामः कलुषीकरोति (नै)। ८२ सतामिदमा हि सतामलंक्रिया (कि)। ८३ संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् (म०)। ८४ संपत्सु हि सुलभानामेकहेतुः स्वपौरुषम् (क)। ८५ सतां महत्सुत्पन्नेषि पौरुषम् (नै)। ८६ सतां हि चेतः सुधितोक्तसन्निधिः (नै०)। ८७ सतां हि विपदवस्था कृतविद्या (इ)। ८८ सतां हि साधुशीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते। ८९ सज्जनस्तवकर्तव्यं वचसा सुजनं जनाश्रयितुं क ईहते (वि)। ९० सन्तापाद्रः कथति न विश्वोपकारं महान्तु (मे)। ९१ सन्दिग्धेषु क्षीणेषु शोकं विलासिनितमक्षरम्। ९२ सन्त एव सुहृदां हि पन्थतं, कस्यचित्कलमवर्मि कांक्षितम् (र०)। ९३ सन्तः परार्थ कुर्वाणा नावेक्षन्ते प्रतिक्रियाम् (महा०)। ९४ सन्तः परोपकारान्तरङ् मज्जन्ते (मालविका०)। ९५ सुदुर्महान्तःकरणा हि साधवः (कि०)। ९६ स्वामापदं प्रोक्षत्य विपक्षिमन्द्रं, शोभन्ति सन्तो सुपकारिपक्षम् (कि)। ९७ हृदे गभीरे हृदि चावगाढे, संवन्ति कायावतरं हि सन्तः (नै)।

(ङ) ५. दुर्जन-निन्दा

१ अकृत्यं मन्यते कृत्यम् (प)। २ असत्पुरुषैर्भवति अनीपसां हि चाहसम् (वि०)। ३ असत्कृतेऽपि कर्मणे नीचः परापकारमयो भवति। ४ अस्मरमास्मम्बन्धो मौर्खः प्रायेण दुःसहो भवति। ५ अपि सुहृत्सुपकान्तो आत्मिकार्थैः स्वकीयैः, परमभिलिषु तृप्तिं यान्ति सन्त किमन्य । ६ अमत्यं मन्यते मत्यम्। ७ अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं, द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् (कु)। ८ अस्थानोपहितयत्नस्य प्रसादोऽपि मर्यकरः (म)। ९ अस्थानोपेषु स्थापयं, यो नरः कर्तुमिच्छति (प)। १० अभेदसे न वा कस्य, विश्वासो दुर्जने जने (कि०)। ११ अमृतत्वेरहोरात्रं दुर्विभावं विवेकिभिः (कि)। १२ असम्भोगी हि लोभात्, कृपणत्वमेव लेभिता (कि)। १३ अहो विश्वास्य वन्द्यन्ते, मूर्तैस्तत्रमिरीश्वराः (क०)। १४ अहो अहन्ते बत नो पतोदयम्। १५ उच्चो दहति चाहारः, नीतः कृष्णायते करम् (प)। १६ कवले पतिता तत्रो वमन्ति

नमु मक्षिकाऽभ्यवहारम्। १७ कथमपि खलु पापानामग्रसरत्वे यशः (वि)। १८ किं मर्दितोऽपि कस्तूरी लशुनो याति सौरभम्। १९ किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामकरणम् (कि)। २ कोऽन्धो दुर्जनवद् दग्धुं प्रभवति (भा०)। २१ को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण याताः पुमान् (प)। २२ क्वाम्भोऽस्ति दुरात्मनाम्। २३ खारं पिबति पयोमेघैर्यत्पय्योधरो मधुरमम्। २४ गुणाज्ञेनोपसृष्टविरुद्धगुणः, प्रकृत्यमित्रा हि खला मताधकः (कि)। २५ तदभीकरण एव नीचः, कोटिस्थं नैव विलक्षयति। २६ दुःखात्मा हि परस्यैव विघ्नेष्वेव कातरः (क)। २७. दुर्जनस्तोऽपि किं याति, वायसः कलहंसताम्। २८ दुर्जनः परिहर्तव्यो, विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन् (म)। २९ दुर्जनस्य कुतः क्षमा। ३ दुर्जनस्यार्जितं वित्तं भुज्यते राजतस्करैः। ३१ दूरतः पर्वता रम्याः। ३२ दोषग्राही गुणत्यागी पक्षपातीव हि दुर्जनः (प)। ३३ न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् (वि)। ३४ नाचरितं किंचिदाचरेत्। ३५ निसर्गतोऽन्तर्मलिना खलाधमाः। ३६ नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव। ३७ परद्रविषु बद्धमत्सराणां, किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामकरणम् (कि)। ३८. प्रकृतिरियमहिं हि दुरात्मनाम्। ३९ प्रकृत्यमित्रा हि खलाः मताधकाः (कि०)। ४ प्रासादशिखरस्थोऽपि, काकः किं गरुडायते (प)। ४१ बन्धुः को नाम दुष्टानाम्। ४२ भूयोऽपि सिक्तः पयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति। ४३ ग्रहस्य का वा गतिः। ४४ मलिना भूषिताः सर्वाः, किमत्रो न मलंकराः (म)। ४५ मन्ये दुर्जनचित्तानिहरणे धाताऽपि मन्योद्यमः। ४६ मालवं रसोपहतात्मनां हि रतयन्ति साधुष्वपि मानसानि (कि)। ४७ ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे (म)। ४८ विचित्रमाचा कितवा हृदया एव तवका (क)। ४९. विनयन्ता ह्यविनीतरूपदाः (कि०)। ५ विषयाः कुत्सितेषु कः (क)। ५१ शान्तेन् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः (कु)। ५२ सरित्पूरमपूर्वोऽपि धत्ते न मधुरायते (वो)। ५३ सपः क्रूरः खलः क्रूरः, सर्पात् क्रूरतरः खलः (भा)। ५४ साहसे नैरपेक्ष्यं च किमन्यना निसर्गजम् (क)। ५५ स्तूयन्ति न स्तवैर्यानां, हृदयं बन्धुबुद्धयः (वै)। ५६ स्तूयमानो गजो हन्ति (प०)। ५७ हिंसा बलमसाधूनाम् (महा०)। ५८ होतारमपि पुष्णन्तं, सृणी दहति पावकः (प)।

(अ) ? सत्कर्म प्रशंसा

१ अविलम्बं हि कर्तव्ये सतां सुकृतमादरः (क)। २. अहं सुकृतबीजं हि, सुखेषु महारुहम् (क०)। ३ कुलस्त्री धैर्यमालम्बा विराजते। ४ क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति (र०)। ५. यहानुद्देशं प्रथमावतीर्णस्तो, भवन्ति नापुष्पफलाः महीरुहाः (वि)। ६ यमनियमसमाधा सदा समीपचारिण्यः कस्यापसर्पन्ति मन्त्रयः (का) ७ नहि कस्यापि कुलं कविर् वृणोति तात गच्छति। ८. रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि। ९. वृत्तं यत्नेन संरक्षेत्, वित्तमेति च याति च (महा)। १ वृत्तं हि प्रथमं स्वस्य। ११ शमदमादि सौरभम् (क)। १२.स्वकर्मणस्तस्य फलस्य भावतो महता भवात् (गै)।

(ग) २. सुकर्म-निन्दा

१ अनार्यः परदारव्यवहार (या०)। २ अनार्यजुष्टम् एषा, प्रवृत्तानां विघ्न कुर्वा (क)। ३ अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् (या)। ४ अपत्यानं तु गच्छन्तं, सोदरोऽपि विमुञ्चति। ५ कष्टो ह्यविनयश्चम (क०)। ६ पापप्रभावात् नरकं प्रयाति। ७ पापे कर्मण्यकार्यतदिवाक्ये कुत्र सुखम् (क)। ८ पूर्वापवीरितं भेषो, दुःखं हि परिवर्तते (या०)। ९ प्रतिपद्यन्ति हि भेषज, पूर्वपूर्वमतिक्रम (र)। १० भवति हृदयदाही वस्तुत्सा विपाकः (म०)। ११ वरं वरेण्यं पुत्रो, न च परकलत्राभिगमनम् (म०)। १२ वरं व्रजस्यामो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि। १३ वरं भिक्षाशित्वं न मानपरिखण्डनम्। १४ वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम्।

(ट) स्वाधलक्षम

१ आत्मानमात्मनाऽनवसादयेत्तोद्धरन्ति तन्तः (द)। २ तद्दरोद्धमनात्मानं, नात्मानमवसादयेत् (गी)। ३ गुणहेतोः समतिरिक्तमहो निजमेव सत्यमुपकारि सताम् (कि)। ४ नास्ति चारमसमं बलम्। ५ अवन् ह्यात्म तेजसा जगन्न महानिष्पति मूर्तिमन्यतः (कि)। ६ विनिपातनिवर्तनक्षम, मतमात्मवनमात्मसम्पदम् (कि)।

(११) विद्या

(क) ज्ञान

१ कर्मणो ज्ञानमतिरिच्यते। २ न ज्ञानात् परमं चक्षुः। ३ न विवेकं विना ज्ञानम्। ४ नास्ति ज्ञानात् परं सुखम्। ५ प्रज्ञा नाम बलं श्रेष्ठं, निष्प्रज्ञस्य बलेन किम् (क)। ६ प्रज्ञावतं च सर्वेषु, मुख्यं कार्येषु भाषणम् (क०)। ७ बुद्धिः कर्मानुसारिणी (या)। ८ बुद्धिर्नाम च सर्वत्र, मुख्यं मित्रं च पौरुषम् (क०)। ९ बुद्धेः फलमनाग्रहः। १० मतिरेव बलाद् गरीयसी (कि)। ११ स तु निरवधिरेकः सज्ज्ञानां विवेकः। १२ सुहृदः परिशुद्धं आत्मनः, कुरुते दीप इवार्थदर्शनम् (कि०)। १३ स्वरूपे विदुषः संभवन्ति।

(ख) वाक्-प्रशंसा

१ अर्थगौरवती वाणी, भवते कामपि भियम्। २ कः पटुः प्रियवादिनाम्। ३ दीपयन्ते खलु गुणानि सत्यं वाग्भूषणं भूषणम् (म०)। ४ मुखरताऽवसरे हि विराजते (कि)। ५ सत्येनूया वृत्तिः। ६ सुहृदुक्तयः सर्वमनोरमा गिरः (कि)। ७ हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः (कि०)।

(ग) वाग्मिता

१ अल्पाक्षरमनीरं यः कथयति निर्मितं स खलु वाग्मी। २ भवन्ति ये सभ्यसभा विपश्चितां, मनोगतं वापि निवेदयन्ति ये। भवन्ति तेषामुपपन्नपौरुषा, गभीरमर्थं कतिचित् प्रकाशताम् (कि)। ३ मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता (मे)। ४ मुखरताऽवसरे हि विराजते (कि)। ५ वक्तृ दक्षसदस्येषु। ६ वक्तृ श्रोतृ च यत्रास्ति, रमन्ते तत्र सम्पदः।

(घ) विद्या

१ अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्। २ आलस्योपहता विद्या (हि०)। ३ अते ज्ञानात् मुक्तिः। ४ कथञ्चित् धनधान्यैव विद्यामर्थं च साधयेत्। ५ कामिनस्य कुतो विद्या। ६ का विद्या कपिला दिव्या। ७ किं किं न साधयति कल्पलतैव विद्या। ८ किं क्लेशितेन पुत्रस्य निरक्षरेण (म)। ९ कुतो विद्यार्थिनः सुखम्। १० खद्विन्दुनिपतनेन क्रमशः पूर्यते घटः। ११ ज्ञानमेव साक्षि। १२ ज्ञानस्यावरणं क्षमा। १३ तस्य चित्तात्मिका बुद्धिर्लोकचित्तेषु रिवाम्बुधि। १४ तस्य संकुचिता बुद्धिर्दुष्ट चित्तेषु रिवाम्बुधि। १५ दुरधीता विषं विद्या (हि०)। १६ विम्बीफलं धारयत्कपोलयोस्तिलं तस्य। १७ न च विद्यासमो बन्धुः। १८. पठतो नास्ति मूर्खत्वम्। १९. पूर्वपुण्यतया विद्या। २० माता शत्रुः पिता वैरी, येन बाल्ये न पाठितः (हि०)। २१ या लोकद्वयसाधनी तनुभृतां सा आपदी आपदी। २२ विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा। २३ विद्या ददाति विनयम् (हि)। २४ विद्यार्थनं सकलजनप्रथनम्। २५ विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्। २६ विद्या परं दैवतम्। २७ विद्या मित्रं प्रवासे च। २८ विद्या योगेन रक्षते। २९. विद्या रूपं कुरूपाणाम्। ३ विद्याविहीनाः पशुः। ३१ विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम्। ३२ विद्या सर्वस्व भूपानाम्। ३३ विद्या सत्पथस्य निष्कम्पः। ३४ वैद्यराजानस्ति पण्डिताः। ३५ शास्त्रं हि निश्चितधियां कर न खिद्यतेऽपि (शि)। ३६ शास्त्राद् रुचिर्यस्यैवसौ। ३७ श्रोत्रमन्ते विद्यया विप्राः। ३८ श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रम्। ३९ सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।

(ङ) १ विद्वत्प्रशंसा

१ अत्यावज्ञासंधायी न गर्वं याति रोहितः (प)। २ अकम्पदायपोतकल्पया कृपाणया, व वत्सु मोक्षे मनसो वसति (विक्रमांक)। ३ किमत्र चित्रं हि चीमताम् (कि०)। ४ कविति पदाधवेदिनो हि विदुः (नै)। ५ न खलु चीमतां कश्चिदविषयो नाम (शा)। ६ ननु वक्तृविशेषनिस्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः (कि०)। ७ ननु विमृश्य कृती कुरुतेऽत्रिलम्। ८ नवीक्षितवतोऽक्षतेऽक्षयीवति (कि)। ९ परीक्षितज्ञान पक्षपातो हि बुधानाम्। १ प्रतिभावन्त पश्यन्ति सर्वं प्रत्यक्षतो विदः (कि०)। ११ प्रभुत्वमविषह्यं हि कोऽभिमन्यादशास्त्रिणः (कि)। १२. बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः (शा)। १३ यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्रालसोऽपि। १४ युक्तं न वा युक्तमिति स्वयं विवेक्तुं वदेद् विशेषज्ञतयोच्चयोगात्। १५ युक्तियुक्तं प्रवदन्तीवाद् बालादपि विपश्चितः। १६ वर्तमानेन कालेन वर्तन्ते विपश्चितः। १७ विद्वान् कुलीनो न करोति गर्वम्। १८. विद्वान् सर्वत्र पूज्यते (भा०)। २ शैलूषे हि परीक्षन्ते मात्राः सूत्रस्य तन्तवः (कि)। २१ सम्भावने विद्वान्। २२ सहस्रेषु च पण्डिताः। २३ सारं गृह्णन्ति पण्डिताः। २४ स्वरसे को वा न पण्डितः (प)।

(ङ) २. मूर्ख-निन्दा

१ अगुणस्य हतं रूपम्। २ अज्ञानसदृशस्त्वेव तस्य जन्म निरर्थकम् (प)। ३ अवश्यं कस्य नाभेद, नोपहासाय जायते (क०)। ४ अज्ञानामूढचेतसामतिरम्यां कोऽर्थशिरश्चां गुरुः। ५ अन्धवत्तेमसाद्, वरं विरोधोऽपि सह महात्मभिः (कि)। ६ अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न जिनते। ७ अन्धस्य दीपो बधिरस्य गीतम्। ८ अर्थो घटो घोषमुपैति मूलम्। ९ अल्पविद्यो महागर्वी। १० अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्, विचारमूढः प्रतिभाति मे त्वम् (र)। ११ अवलुनि कृतनेपो मूर्खो वालवहास्यताम् (क)। १२ आपदेसुममबोधदूषणी, कर्तमानमपये हि दुर्मतिम् (कि)। १३ उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये (प)। १४ उमन्ते न विचारं हि, मूर्खा विषयलोलुपाः (क)। १५ कायन्ते यत्र मूढानां संघाता अपि ताडनाः (क)। १६ कानकवपुर्विपरीत्यं ब्रजापि नरं न रञ्जयति (म०)। १७ कुर्वुरा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि शोभनम्। १८ न हु प्रीतिनिधिमूर्खजनविचेष्टमाप्रवेत्। १९. निष्फलो नाधमस्यैव प्रयोरर्थप्रयासना (क०)। २ प्रातोऽप्यर्थः कथादेव हार्यते मन्दबुद्धिना (क०)। २१ बके मूर्खस्य यौनित्वम्। २२ बहुभाषणमक्षरं न कथयति विज्ञमपी जः। २३ भवति योग्यमेतु वंचनीपता। २४ मदमूढबुद्धिषु विवेकिता कुतः (वि)। २५ मूढः परात्मपनेषबुद्धिः (मालविका)। २६ मूर्खस्य हि धाक्कलहप्रसङ्गः। २७ मूर्खाणा बोधको रिपुः। २८ मूर्खोऽनुमवति कर्मेदं, न कार्यं कुरुते पुनः (क)। २९ मोहान्धमविवेकं हि श्रीरिवाय न सेवते (क०)। ३ योऽहं पशुश्च मूर्खश्च निर्विवेकमती समौ (क)। ३१ रोकोपहसिताः सन्तः सीदन्त्येव हतुद्यमाः (क)। ३२. विद्या विवादाय धनं मदाय। ३३ विद्याविहीनः पशुः। ३४ विभूषणं मौनमपण्डितानाम् (म)। ३५ सहतेति कष्टं दोषमज्ञता (कि)। ३६ सदस्यौषधमस्ति वाग्विदितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् (प)। ३७ सदापि चिरन्त्यजः स्थितां पुनोत्तरहितां कथा (ध०)। ३८ सर्वत्रे पूज्यते मूर्खः। ३९ हितोपदेशे मूर्खस्य कोपायैव न शान्तये (क)।

(१२) विचारात्मक

(क) आशा

१ आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला (म)। २ आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां, सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे स्वधैर्यम् (मे)। ३ एवमाशाग्रहग्रस्तैः क्लेश्यसे धनिनोऽर्थिभिः (हि०)। ४ गुर्वपि विरहदुःखमाशा बन्धः साहयति (ध०)। ५ जिताशस्य सर्वदोपम्। ६ नास्ति तृष्णासमा व्याधिः।

(ख) उद्यम-प्रशंसा

१ अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति। २ अविरामक्रियारम्भा, नतु अमी: फलमानुपूर्विकम् (कि)। ३ अप्राप्य नाम नेहाति धीरस्य व्यवसायिनः (क)। ४ अर्थे हि नष्टकार्यैर्नावज्ञानमाधिगम्यते (र)। ५ इह जगति हि न निरीहेणेन भिवः सम्भवन्ते (र)। ६ उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु (र)। ७ उद्यमेन विना राजन् सिध्यन्ति मनोरथाः (प)। ८ उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः (प)। ९ उद्योगः पुरुषलक्षणम्। १ उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः (प)। ११ क इच्छन्नर्थसिद्धिमनिष्टयं मनः, फलम निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् (कु)। १२ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन (गी)। १३ कृषी न (आ)। १४ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः (यजु)। १५ कृषी न ऊर्वान् वरयाम बीयसे (ऋग्)। १६ कोऽतिभारः समर्थानाम् (प)। १७ गुणवतेः समधिरिच्यमदो निजमेव सत्त्वमुपकारि तस्याम् (कि)। १८ चिन्तीकितं घोषमवर्धितस्य। १९ नहि दुष्करमस्तीह किंचिदध्यवसायिनाम् (क)। २ नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः। २१ निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः (कि)। २२ प्राप्नोतीहमविक्लवः (क)। २३ यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः (हि)। २४ यदनुद्योगता लाभ्य पुरुषार्थः सदा बुधैः (क)। २५. सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः। २६ सत्त्वाधीना हि सिद्धयः (क)। २७ सत्त्वा वस्तु क्रियावान् पुरुष स विद्वान्। २८ समर्थो वो निर्वं व वर्तयितुम् कोऽपि कथः। २९ सर्वः इच्छन्नपोऽपि वाञ्छति ऋत सत्त्वानुरूपं फलम् (म)। ३ सहसे सुखं सर्वस्य चता सर्वं प्रपद्यते (क)। ३८ समर्थो वो निर्वं व वर्तयितुम् कोऽपि ः प्रतिवर्तति (मृ)। ३१ सिध्यन्ति कुत्र मुहृत्तानि विना श्रमेण। ३२ सहस्री तुभूषैव दुःखमाप्नुते सुखम् (क)। ३३ हव दानं क्रियाहीनम्।

(ग) एकता

१ ऐकचित्ते हरोरिव किमसाध्यं भवेदिति (क)। २. पञ्चभिर्मिलितैः कि कञ्जगतीह न साध्यते (नै)। ३ महोदयानामपि संहतिश्रिया, सहायताप्या प्रविशन्ति सिद्धयः (कि)। ४ संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् (ऋग्)। ५. संघे शक्तिः कलौ युगे। ६ समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः (ऋग्)। ७ समानो मन्त्र समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् (ऋग्)।

(घ) कीर्ति

१ अनन्यगामिनी पुंसां कीर्तिरेका पतिव्रता। २ अपि स्वर्गेराव् किमुतेन्द्रियार्थाद्, यशोधनानां हि यशो गरीयः (र)। ३ आकोऽपि जीवति चिरय बलि च मुञ्चते (प)। ४ कुक्षिम्भरिमात्रपर्याप्तः कुतो यशः। ५. कृतिमप्यापयतः कुतो यशः।

किं जन्म कीर्तिं विना। ७ अहर्दं को न विमर्ति कैतवम्। ८ निर्देक्षणास्य खलु मैथिलेषु (र)। ९ प्राप्यते किं यदः शुद्धमनङ्गीहस्य साहसम् (क०)। १० माने म्लाने कुतः सुखम्। ११ यदः पुण्यैरवाप्यते (चा)। १२ यद्यस्तु रसं परतो यशोधनैः (र०)। १३ संपत्तिस्तस्य चाकीर्तिमरणादतिरिच्यते (भौ०)। १४ तर्के रत्नमुपद्रवेण सहितं निर्दोषमेकं यदः। १५ सहते निरहंकृतेः यशस्वी नाहयः पुनः (क०)।

(छ) दान

१ आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव (र)। २ उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् (प)। ३ कुपात्रदानाच्च मतेद् दरिद्रः। ४ कुप्येत् को नाम याचितः। ५ त्यागप्रकाशयति पुण्यमस्ते, पद्मप्रभाभास्करयोः। ६ स्वामी भवति वा न वा। ७ दानं भोगो नाशस्त्र तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य (प)। ८ देहे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम् (गी)। ९ श्रद्धया देयम् (तै उप)। १० श्रद्धया न विना दानम्। ११ तडागगुणसाम्यं वितरणम्। १२ सरित्पतिर्नदीः समुपैति रिक्तताम् (शि०)। १३ इतस्य भूयस्त्वं दानम्।

(ज) परोपकार

१ अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् (शा)। २ अहार्योऽपि हितं ब्रूयाद्, यस्य नेच्छेत् पराभवम्। ३ आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे)। ४ आपदार्तिप्रशमनफलः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे)। ५ इच्छादानपरोपकारकरणं पात्रमुत्तमं कस्य। ६ उपहत्य निसर्गतः परेषामुपरोधं नहि कुर्वते महान्तः (शि०)। ७ उपरोधपदः परेऽपि त्वविनाशमभिमुखेषु सज्जनः (शि)। ८ किमरेरपकुरुतेऽपकारिषु सुजनत्वम् (क)। ९ धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् (प)। १० नहि चिरं प्रकृतिस्थन्ति मृषा हितैषिणः (कि०)। ११ नास्त्यदेयं महात्मनाम्। १२ परहितनिरतानामादरो नाम कार्ये। १३ परार्थप्रस्थितस्य हि योऽन्ते स्वार्थमुद्धरः (क)। १४ परोपकारस्य पुण्यं न स्यात् कस्यचिदीदृशम्। १५ परोपकाराय सतां विभूतयः। १६ परोपकारार्थमिदं शरीरम्। १७ पर्यापतीस्य सुरैर्हिमांशोः, कलयतः कान्तिमतो हि हानिः (र)। १८ मरुत्वा कार्मुकं वहन्ति कृतिनस्ते पुष्पमाल्यादयः। १९ मिथ्या परोपकारो हि कुतः स्यात् कस्य चर्मचे (क०)। २० मुक्तानां खलु महतां परोपकारे, कथापी भवति फलत्यपि प्रवृत्तिः (कि)। २१ यत्पीतस्तज्जल तत्फलैश्च पुनरेषेन हि पुष्यते नदी (कु०)। २२ यदयमवमूषा क्षितरत्नम्। २३ यावूनां हि परोपकारकरणे नोपाध्यपेक्षं मनः। २४ स्वत एव सतां परापदा, ह्यहानां हि यथा यथापदा (शि)। २५ स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् (शा)। २६ स्वार्थापदं प्रोज्झ्य विपत्तिमग्नं, मोचन्ति सन्तो ह्युपकारिणम् (कि०)।

(छ) क्षमा

१ अपार्थी जीवलोकोऽयं श्मशानमपि सेवते (प)। २ अर्थाहरणं न गुरुर्न बन्धु। ३ क्रुद्धो हि बान्धवस्नेहं राजद्वेषेभ्योऽतिरिक्यते (क)। ४ क्षतस्य धनलोभान्वा नोपकारेऽपराधमाः (क)। ५ क्षेत्रं हि नापदां हेतुरतिलोभान्धबुद्धिता (क)। ६ कोऽयं गतो गौरवम् (प)। ७ तृष्णैका तरुणायते (प)। ८ प्राणेभ्योऽप्यर्थमात्रा हि इत्यस्य मरीमसी (क)। ९ क्षुण्णमर्थेन यद् सौख्यात् (प)। १ क्षुत्क्षानां पाचकः शत्रुः। ११ क्षेम पापस्य कारणम्। १२. क्षाममूढानि पापानि।

(ज) सन्तोष

१ अन्तो नास्ति पिपासाया सन्तोषः परमं सुखम्। २ अर्थो हि नृणाय न वारिधारा स्वादु सुगन्धि स्वदते गुणरा (नै)। ३ न तोषात् परमं सुखम्। ४ न तोषो महता मूपा (क)। ५ मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः। ६ सन्तोष एवं पुरुषस्य परं निधानम्। ७ सन्तोषतुल्यं धनमस्ति नान्यत्।

(झ) सौन्दर्य

१ किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (श)। २ केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः, किं पुनर्विद्युदापाण्डुरान्वित (र)। ३ सर्वं सत्ये बन्धवशमुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः (वि)। ४ गुणान् मूषयते रूपम्। ५ न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम् (कि)। ६ न पद्मपत्रमधिमिरेव पंकज शैवलाद्यसंगमपि प्रकाशते (कु)। ७ मागेव मुक्ता नयनाभिरामा, प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम् (र)। ८ प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कु)। ९. मनसि साम्येऽपि निविशेषेक्षां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रिया (कु)। १ यदो रूपं ततः शीलम्। ११ चित्राकृतित्वात्र गुणा वसन्ति। १२ यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुन्दरम्। १३ रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति (कि)। १४ सेयमाकृतिर्न क्यमिचरति शीलम् (र)। १५ हरति मनो मधुरा हि यौवनश्रीः (कि)।

(१३) मनोभाव

(क) करुण-रस

१ अपि माता रोदिस्यपि दयते वज्रस्य हृदयम् (उ)। २. अमित्रसमयोऽपि मादृशै, मयते दैव कथा सरोषिषु (र)। ३ दुःखमूढानि शोकानि। ४ दुःखिते मनसि सुखमसुखम् (कि)। ५ माता तर्वो मयति कस्याहतिरप्रान्तरमा (मे)। ६ प्रिय बन्धुविनाशोत्थ शोकाग्निः कं न तापयेत् (क)। ७ प्रियानाशे हसन्तं किल जगदरण्यं हि मनसि (उ)। ८ सन्तप्ते मृदुमनसि हि सद्विसोगः (कि)।

(ख) क्रोध

१ क्रोधः संसारबन्धनम्। २ क्रोधो मूलमनर्थानाम् (हि)। ३ जितक्रोधेन सर्वं हि जगदेतद् विजीयते (क)। ४ जितक्रोधो न दुष्प्रसाद्यस्त्रीमन्तेत् (क)। ५ धर्मघातकरः क्रोधः। ६ नास्ति क्रोधसमो रिपुः।

(ग) चिन्ता

१ चिन्ता दहति निर्जीवं, चिन्ता चैव सजीवकम्। २ चिन्ता करा मनुष्याणाम्। ३ चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम्।

(घ) प्रेम (प्रेम-स्वभाव)

१ अनुरागान्धमनसां विचारः सहसा कुतः (क)। २ अपये पदमर्पयन्ति हि भुवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः (र)। ३ अभावो मस्तकस्थो हि विषमप्रलयेष्वताम् (क)। ४ अविज्ञातेऽपि वन्धौ हि वलात् प्रह्लादते मनः (कि)। ५ आद्य बध्नाति हि प्रेम, प्राक्कर्मान्तरसंस्कृताः (क)। ६ आदु: खलपत्री मैत्री। ७ गुणः खलनुरागस्य कारणं न वलात्कारः (भृ)। ८ चित्तं जानाति जन्तूनां प्रेम कर्मान्तरार्जितम् (क)। ९ जनानुरागप्रभवा हि सम्पद। १० तारामैत्रक्च चक्षुरागः (उ)। ११ दयितं जनः लब्ध गुणीति मन्यते (वि)। १२ दयितास्वजनवस्थितं नृपं, न लब्ध प्रेम चलं सुहृज्जने (कु)। १३ प्रेम पश्यति सर्वाम्पदेऽपि (कि)। १४ मार्दवस्यापि जननान्तर लोहदानि (या)। १५ मोहे हि मोहेन्य कठिनतरा लब्ध स्नेहमया बन्धनपाशाः (ह)। १६ यत्नन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि (कि)। १७ स्मरतिपद्यति पदार्थान्तरः कोऽपि हेतुः (उ)। १८ सखि साहजिकं प्रेम दूरादपि विजायते। १९ सदा सेव्यं, मनीषिभिः सत्पदीनमुच्यते (कु)। २ सर्वे स्नेहात् प्रवर्तते (महा)। २१ सर्वा कान्तमात्मीयं पश्यति (या)। २२ सर्वः प्रियः लब्ध मत्सदनुरूपश्चेत् (वि)। २३ स्नेहमूलानि दुःखानि (महा)।

(ङ) रुचि

१ अनपेक्ष गुणागुणो जन., स्वरुचि निश्चयतोऽनुधावति (वि)। २ तस्य तदेव हि मधुरं, यस्य मनो यत्र संलग्नम्।

(च) शृंगार

१ दृष्टप्रणष्टनिताम्बवलजघनस्य दुःखानि मूलमतिमात्रमुदुःखानि (या)। २ प्रमदति मथयितुं वधूजनः (कि)। ३ याम एव सुरतेष्वपि कामः (कि)। ४ सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति। ५ सन्यस्ते भूषणभरतिं हि सौभाग्यः (कि)। ६ साधनेषु हि स्तेरुपयसे रम्यतां प्रियतमागम एव (कि)। ७ सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् (मे)।

(छ) स्वाभिमान

१ अभिमनो मानधनस्य सुप्तस्य च सम्य गतिः (कि)। २ न स्पृशति पक्ष्म-लाक्ष्मः पक्षगेषोऽपि कुंजरा कापि। ३ परमुखे हि कमले किमदैन्यायते रविः (क)। ४ पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते (कि)।

(१४) व्यवहार

(क) अतिथि-सत्कार

१ अतिथिर्देवो भव (तैत्ति उ)। २. अभ्यागतो वत्स न तव अस्मीः। ३ यथाशक्त्यतिथेः पूजा धर्मो हि गृहमेधिनाम् (क)।

(ख) अति सर्वत्र वर्जयेत्

१ अतिदानाद् बलिबद्धः (भा)। २ अतिपरिचयादवज्ञा अन्तवगमनादनादरो भवति। ३ अतिमुक्तिरतीवोक्तिः तथा प्राणापहारिणी। ४ अतिलोभो न कर्तव्यः यतो भ्रमति मस्तके (प)। ५ तर्वमतिमात्रं दोषाय (उ)।

(ग) अस्तेय (चोर-स्वभाव)

१ कस्यचित् किमपि नो हरणीयम्। २ चोरणामदृतं वचम्। ३ चौरे गते किमु सावधानम्। ४ तस्करस्य कुतो धर्मः। ५ तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् (यजु)।

(घ) दृष्टान्त

१ कः खरोरनिर्वापणिकां धारयति (क्षा)। २ काकः [illegible] न बलम्। ३ चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः (नै)। ४ ददाति तीव्रसत्वा नाभिप्रमीश्वर एव हि (क)। ५ वीराश्च सार्थविरहाः प्राप्नुवन्तीप्सितागमम् (क)।

(ङ) कलह-निन्दा

१ अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टम्। २ अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि)। ३ ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी (क)। ४ कलहान्तानि हर्म्याणि (प)। ५ वाग्भ्यामोत्पन्न रिपवश्चैराद् को नानुतप्यते (क)।

(च) क्षमा

१ अस्वीयं इतं क्षेत्रम्। २ नाना पक्षौ पक्षति कस्यस्तेव भूमिः (म)। ३ नास्ति क्षान्तसमं पिपम्। ४ यथा बीजं तथाङ्कुरः। ५. यथा इष्टस्तथा पक्वम्।

(छ) पराभव

१ कुतः खलु पराभवः। २ कथादपि खरतरं परुषवाक् पतन्ती च। ३ नैवाभिहेतु महतां गुणदोषशंका।

(ज) याच्ञा-निन्दा

१ अम्यर्थनाभंगभयेन साधुमाधत्स्वभिहेऽप्यवज्ञवते-चे (कु)। २ अर्थिनि स्वे स्वामं विना धीरत्व का। ३ य यं पश्यति तस्य तस्य पुरतो मा भूहि दीनं वच म)। ४ याचनास्वं हि गौरवम्। ५ याच्या मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा)। ६ वरं हि मानिनो मृत्युन दैन्यं स्वजनागत (क)।

(छ) विघ्न

१ छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति (प०)। २. रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः (क्ष०)। ३ विघ्नयन्त्राः प्रारिप्सितार्थसिद्धयः (क्ष०)। ४ श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्त्युत्तमकर्मणाम् (कि)। ५ छन्नः प्रमादो मलिम्लुचेष्वनर्था यान्ति मूरिताम् (क)। ६ सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।

(ज) स्वार्थ

१ आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् (प०)। २ कृत्वार्थं स्वामिनं द्वेष्टि (प)। ३ कृत्वा चार्थं प्रयोजकम् (महा०)। ४ परप्रेषैकतत्राणां को हि स्नेहो निजे जने (क)। ५ सर्वं कार्यवशाज्जनोऽभिरमते तत्कस्य को वल्लभः (भ)। ६ सर्वः स्वार्थं समीहते (वि)। ७ सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः।

(ट) नीति

१ अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि)। २ आर्यो हि प्रयोजनम् (प)। ३ आर्यत्वं हि कुटिलेषु न नीति (नै०)। ४ आहारो व्यवहारो च त्यक्तलज्जस्य दुःखी भवेत्। ५ इदो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः। ६ इदं च नास्ति न पुनश्च लभ्यते। ७ इदं धर्मेण योजयेत् (प)। ८ उच्चार्यं नपति बहुक्षमाऽपि भोगः (क)। ९ उपायं चिन्तयेत् प्राज्ञः (प)। १० उपायमास्थितस्यापि नवनव्यवसायः प्रमाद्यतः (वि०)। ११ उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः (प)। १२ उपकर्ता क्षिप्रं बधुः (प०)। १३ एको बालः पतन्न वा पतेन्न वा (भ)। १४ क उच्चोदकैन नवमालिकां सिञ्चति (क्षा)। १५ कण्टकेनैव कण्टकम् (प)। १६ के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः (मे)। १७ को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरितः। १८ गतं न शोचामि कृतं न मन्ये। १९ ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्। २ चलति भवान्न विगीतार्थो हि चेता (कि)। २१ चक्रवर्तिना पादेन विक्रमेणैव पण्डिताः (क्ष प०)। २२ त्यजेदेकं कुलस्यार्थे (प०)। २३ न कार्यस्य हृते जातु मुक्त्वा मुक्तामणेः क्षतिः (क)। २४ न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे (वि०)। २५ न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (र)। २६ न मर्म भाषेत परस्य जातु (कि)। २८ नहि तापयितुं शक्यं सागरं मरुदुद्धतः। २९. नाकालनेर्जलक्षयेति हिमेषु वासम् (नै)। ३ नाकस्मादेव परं स्थानं पूर्वमालम्बनं त्यजेत् (क्षा प)। ३१ नियतनीया हि सतामवस्थाः (वि)। ३२ नीचैरनीचैरतिनीचनीचैः सर्वैरुपायैः फलमेव साध्यम्। ३३ नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता (प)। ३४ पक्षच्छेदं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् (प)। ३५. पथो गतेः किं खलु हेतुरन्यः। ३६ परद्विषु यदभ्यस्यत्यधो किमिव शस्त्रिणः कुशलमनामयत्वम् (कि०)। ३७ परस्परनिविष्टं को बलवन्तं न बाधते (भ)।

१८ पापो पवत्ता दग्धे तक्के फूत्कृत्य पामरः पिबति। १९. प्रकृतज्ञा हि रणे जयश्रीः (कि)। ४० प्रकृत्या क्षमापि श्रेयान् नालंकाररभ्युपेयः (कि)। ४१ प्रच्छन्नमप्यूह्यते हि चेष्टा (कि)। ४२ प्रतीयन्ते न नीतिज्ञाः कृत्यावस्थस्य वैरिणः (कृ०)। ४३ प्रभुत्व निर्विचारस्य नीतिर्नैनं प्रसीदति (कृ०)। ४४ प्रायोऽप्रमत्तस्य कार्यस्य कालहारः प्रतिक्रिया (कृ०)। ४५ प्रार्थनाऽभिक्रमणे विपत्तय (कि)। ४६ बधिरा मन्दकर्णः श्रेयान्। ४७ बन्धुरप्यहितः परः। ४८ बहुविघ्नास्तु तत्र कृत्यावसिद्धयः (कृ)। ४९ भवन्ति क्लेशबहुला सर्वत्यापीह सिद्धय (कृ)। ५ भवन्ति बाधो ऽवसरे प्रमुक्ता मुखं प्रविस्पन्दफलादपाय (कृ)। ५१ भेदस्तत्र प्रयोक्तव्यो यतः स वशकारकः (प)। ५२ महानपि प्रसह्येन नीचं सेवितुमिच्छति। ५३ महोदयानामपि संपदुच्छिदा, सहायवध्याः प्रदिशन्ति सिद्धयः (कि)। ५४ मायाचारो मायया वर्तितव्यः, साध्याचारः साधुना प्रत्युपेयः (मह)। ५५ मुख्यमङ्गं हि मन्त्रस्य विनिपात प्रतिक्रिया (कृ०)। ५६ मुह्यत्येव हि कृच्छ्रेषु संभ्रमव्याकुलं मनः (कि)। ५७ मौनं सर्वार्थसाधकम्। ५८ मौनं स्वीकृतिलक्षणम्। ५९ मौनिनः कलहो नास्ति। ६ यथा देशस्तथा भाषा। ६१ यथा राजा तथा प्रजा। ६२ यदि वाऽप्यन्यमुद्दिश्य न करः परिसूयते (कृ)। ६३ यद्यपि ह्येतं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्। ६४ यान्ति न्याय प्रवृत्तस्य, तिर्यञ्चोऽपि सहायताम् (भ)। ६५ येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्। ६६ येनेदं तेन गन्तव्यम्। ६७ रक्ष्यमेव हि पात्रं को हि रक्षितुमर्हति (कृ)। ६८ वरयेत् कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम्। ६९ विद्वीते करिणि किमंकुशो विवादः। ७० सन्ति ये मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः (कि)। ७१ सुकृत्वने चोदयतेति वृत्तिम्। ७२ श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्त्युत्तमकर्मणाम् (कि)। ७३ सहाभ्युदयेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः (कि०)। ७४ सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः (भ)। ७५ सन्धिं कृत्वा तु दुष्टस्य संघातोऽवसरे पुनः (कृ०)। ७६ संपुटीनो हि अर्थो रक्ष्यमाणानाम् (र)। ७७ सर्वनाशे समुत्पन्नेऽर्धं त्यजति पण्डितः (प)।

(१५) पुरुषस्त्री-स्वामाद्यादि

(क) कन्या (पुंस्त्री)

१ अर्थो हि कन्या परकीय एव (शा०)। २. अयोध्या हि पितुः कन्या, सत्पुत्रप्रतिपादिता (कु)। ३ कन्या नाम महद् दुःखम्, विगदो महतामपि (कृ)। ४ कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्। ५ बालकन्दः स कन्या हि कामस्य कारणान् गुरुः (कृ)। ६ रक्षणात्तं पापानां कन्यमपनयेदेषु गुरुधाम्।

(ख) पुत्र

१ अपुत्राणां किल न सन्ति लोकाः शुभाः (का)। २ कः सत्पुत्रैर्नयं विना। ३ कुपुत्रेण कुलं नष्टम्। ४ कोऽर्थः पुत्रेण जातेन, यो न विद्वान् न धार्मिकः (हि)। ५ पुत्रैर्मम क्षेमकृत् सुतः। ६ धिक् पुत्रमविनीतं च। ७ न चापत्यसमः स्नेहः। ८ न पुत्रात् परमं क्षमम्। ९ पुत्रः शत्रुरपण्डितः (चा)। १ पुत्रहीनं गृहं शून्यम्। ११ पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि कीदृशम्। १२ पुत्रोदये माद्यति का न हर्षात्। १३ मातापितृभ्यां शास्त्रः स्वयं व्यक्तु सुतमर्हतः (क)। १४ शोकक्रन्दः क कन्या हि, कानस्थः कावधान् सुतः (क)। १५ सत्पुत्र एव कुलस्यापि कोऽपि दीपः। १६ सन्ततिः पुण्यमाख्याति। १७ सन्ततिः शुद्धवंश्या हि, परत्रेह च धर्मिणे (र)।

(ग) स्त्रीचरित्र-निन्दा

१ अधरेष्वमृतं हि योषितां हृदि हालाहलमेव केवलम्। २ अनुरागपराङ्मुखाः कुर्वते किं न योषितः (क)। ३ अन्तर्विषमया लोला बहिरेव मनोरमा (प)। ४ अविनीता रिपुर्भार्या। ५ कठिना खलु स्त्रियः (कु)। ६ कथा हि कुटिलस्वभावपरतन्त्र-बधूरिवयिता(क)। ७ किं किं करोति न निरर्गलचित्ता गता स्त्री। ८ किं न कुर्वन्ति योषितः (म)। ९ कुयोषितां प्राप्य गृहे कुतः सुखम्। १ न स्त्री चलितचारित्रा निम्नोन्नतमवेक्षते (क)। ११ नार्यः स्वभावस्थितयं हि कलङ्कयन्ति। १२ प्रसवः स्त्रीषु मुख्यासि विमर्शे पितुरपामपि (क)। १३ मद्ये मारेकसुहृदि प्रसक्ता स्त्री स्वयं कुतः (क०)। १४ वध्यन्ते हेलयैवेह कुलीनाभिः स्वकन्यकाः (क)। १५. वेश्यानां च कुतः स्नेहः। १६ सन्निहते निहतेऽपि कान्ते रम्यन्ति कुलिकाः (क)।

(घ) स्त्रीधर्म आदि

१ इहामुत्र च नारीणां परमा हि गतिः पतिः (क)। २ उपसर्गा हि वारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी (क्षा)। ३ कथं हन्त मृगीदृशां पतिपदं प्राप्तेन कारागृहम्। ४ प्रमदा पतिमार्गगा इति प्रतिपन्नं हि विबेतनैरपि (कु)। ५ प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कु)। ६ मर्तृनाथा हि नार्यः (प्रतिमा)। ७ मर्तृमार्गानुसरणं स्त्रीणां हि परमं व्रतम् (क)।

(ङ) स्त्रीशील-प्रशंसा

१ अविस्मर्यं धीमन्तुमानां चरितं कुलयोषिताम् (क)। २ असाध्यं सत्यसाध्वीनां किमस्ति हि जगत्त्रये (क)। ३ असारे खलु संसारे, सारं सारङ्गलोचना। ४ आपदपि सतीवृत्तं किं मुञ्चन्ति कुलस्त्रियः (क)। ५ का नाम कुलजा हि स्त्री मर्तुद्रोहं करिष्यति (क)। ६ किं नाम न सहन्ते हि, मर्तृभक्त्या कुलाङ्गनाः (क)। ७ कुलवधूः का स्वामिभक्तिं विना। ८ क्रियाणां खलु धर्म्याणां

सरस्वो मूलकारणम् (कु)। ९. तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत् सती। १ पिम् एवं परिपीडनम्। ११ न एवं परमित्याहुर्गृहिणी पद्मुच्यते। १२ य पतिम्यति रेकेव दुष्टीनामपत्य मतिः (क०)। १३ न भार्यायाः परं सुखम्। १४ नारीणां भूषणं पतिः। १५. नारीणां भूषणं शीलम्। १६ नास्ति मर्त्युः समो बन्धुः (वि०)। १७ नेर्ष्यो मर्त्यहितैषिण्यो गच्छन्ति हि स्त्रियः (क०)। १८. पुत्रप्रबोधना धात्र्याः। १९. पुत्रस्त्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति (उ)। २ पेयम् हि स्त्रीमनः (क०)। २१ भर्तारं हि विना नान्यः स्त्रीनामस्ति बान्धवः (क०)। २२ भक्तव्यभिचारिण्यो मर्त्यहिते पतिव्रताः (कु)। २३ भार्या मूलं गृहस्यस्य। २४ भार्यासमं नास्ति स्त्रीरत्नोपमम्। २५ भार्या हीने गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं मतम्। २६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः (म)। २७ या शीलगुणसम्पन्ना पतिव्रता सा कामिनी कामिनी। २८ शुचिनारी पतिव्रता। २९. स्त्रीधर्मो हि दुर्ज्ञेयो, चित्तं न तुहदादृशः (क)। ३० स्निग्धमुखा हि स्त्रियः (क०)। ३१ स्वकुलमभिभूयपति स्त्रियश्चैव (वि)। ३२. स्वदुखं नास्ति साध्वीनां, दाक्षं मर्दुदुखं सुखम् (क)।

(ख) स्त्री-स्वभावादि-वर्णन

१ अहो विनेन्द्रजालेन स्त्रीणां चेष्टा न विद्यते (क)। २ आदावलक्षवचनं पश्चाच्चाप हि दुर्जनः (क०)। ३ उदाहरणं स्त्रीयुते, स्वयं हि श्रीरिवाङ्गना (क)। ४ कान्ता कमवती वधूः। ५. को हि वित्तं रहस्यं वा, स्त्रीषु शक्नोति गूहितुम् (क०)। ६ क्षुभ्यन्ति प्रथममहो विनापि हेतोर्भवादृशाः किमु सति कारणे रमण्यः (वि०)। ७ कालापस्या पतिं हेतिं। ८ तदेव दुःखं स्त्रीणामिह प्रलपितव्यतनम् (क०)। ९ चित्तं कुसुमसुकुमारम्। १ मनाङ्मनागपि नव एव पत्याः। ११ न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति (मनु)। १२. न स्नेहो न च दाक्षिण्यं, स्त्रीणां चापकारिते (क)। १३ नहि मायां विनेर्ष्यवा। १४ नहि कन्या प्रभुते कुलं, यथा हि मृत्पृथिवी। १५ नितम्बस्त्रियो नारीणां, तपस्विनु हि मन्दरः (क)। १६ प्रभुसम्भवति क्षेमम् (मा)। १७ प्रायः अमूलपर्वोत्तं दृश्यते सौहृदं स्त्रीषु। १८ प्रायः स्त्रियो मन्दभाग्याः, नितम्बस्थिमाः सदा (क०)। १९. प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा इवाश्च यः पार्थिवो भवति सं परिवेष्टयन्ति (प)। २ बत स्त्रीणां भाग्यमभिसङ्कटमः (क)। २१ सुचरितस्यः खलु नाप्यते-ऽनुरूपः (कि)। २२. स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः। २३ स्त्रियो मद्या इवामर्यादाः। २४ स्त्रीचित्तमहो विचित्रमिति (क)। २५ स्त्रीणां स्त्रियालोकवशो हि वेगः (कु०)। २६ स्त्रीणां मायातुरङ्गं हि, विरक्तासदनं मनः (क)। २७ स्त्रीणामसौकुमार्यं हि, वक्त्रं को मन्यते मृषा (क)। २८ स्त्रीणामार्यं प्रथमवचनं विप्रियं हि प्रियेषु (मे)। २९. स्त्री पुंस्त्व मन्यति यदा तदि गेहं विनश्यत्।

१ स्त्रीबुद्धिः प्रलयावहा (का नी०)। ११ स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः (भ)। १२ स्त्री विनश्यति क्लेश (या प)। १३ स्त्रीषु वाक्संयमः कुतः (क)। १४ स्वाधीना वनिता सुतापि।

(१६) कवि, काव्य, कविता

१ कवयोमीमां काव्यम्। २ कवयः किं न पश्यन्ति। ३ काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् (हि)। ४ कैश्चां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय। ५ पिपासितैः काव्यरसो न पीयते। ६ पिशाचाः शास्त्रोच्चतुर विनिपकाव्यामृतरसान्। ७ सुकविता वसति यत्रेन किम्। ८ सुरुच्या न पदैरपाहृता, न च न स्वीहृतमर्थगौरवम्। वनिता सुभगापत्य गिरं न च सामर्थ्यमनोहितं क्वचित् (कि)।

(१७) विविध

(क) कवि

१ कवो वेधास्तिनो भान्ति यस्तुने वालका इव। २ परन्तु श्लोकाः कवि कौतुकानि। ३ परन्तु श्लोकाः कविश्लोकाश्च। ४ साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्रा कवौ दुर्जने।

(ख) छद्म

१ अजरयपाति हि भेषः, कार्यतम्भसिसूचकम् (क)। २ अभ्याखेदो भविष्य- स्या कार्यसिद्धे हि लक्षणम् (र)। ३ आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमयपातीनि शस्यानि निमित्तानि (का)। ४ आमुलापाति कस्यार्थं कार्यसिद्धिं हि शंसति (क)। ५ भवन्त्युदयकाले हि सत्कस्यापरम्पराः (क)।

(ग) विविध सुभाषित

१ अधिकस्यापिकं फलम्। २ अनाभवा न शोभन्ते पण्डिता वनिता लता। ३ अपवाद एव मुख्यो प्रयुज्यो दूरतः। ४ अपुत्रस्य गृहं शून्यम्। ५ अमकटीकृत- यष्टिः यष्टोऽपि वनस्तिरस्कियां लभते। ६ अग्निस्पर्श च पद्मस्य वक्रा शोभा च दुर्लभः (प)। ७ अभोगस्य इतं धनम् (प)। ८ अर्थमाश्रयभावेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः। ९ अस्यस्य कालो वहवश्च विघ्नाः। १० अक्षनेरमृतस्य नामगोत्राधिन आमुष्करश्च योनयः (क)। ११ अहो दुर्निवारता स्मरनोपनिपातानाम् (का)। १२ आत्म गुरुणां अविचारणीया (र)। १३ इन्द्रोऽपि लघुतां याति, स्वयं प्रख्यापितै- र्गुणैः (प)। १४ कस्यचित् किमपि नो हरणीयं मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम्। १५ कलेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते। १६ कुचाङ्गुलयः न खण्डितं पद्मम्। १७ क्षमाभुना राजाये हि विधिज्ञे क्वचिद् गुणैरप्यफलेन गम्यते (नै)। १८ खलुपूर्तं स्वकेत् पादम

(या)। १९ व्रतौ व्रतौ नवाचारः। २ आमाता दशमो ग्रहः। २१ जीवो जीवस्य जीवनम्। २२ ज्येष्ठभ्राता पितुः समः। २३. दया मांसाशिनः कुतः (प)। २४ दिवास्वप्नार्थं हि स्त्रीमतिक्रमः (कि)। २५ दुर्लभः स गुरुर्लोके शिष्यचित्ताप हारकः। २६ दुर्लभः स्वजनप्रियः। २७ देहस्नेहो हि दुस्त्यजः (क)। २८ नक्रः स्वस्थानमाश्रित्य गजेन्द्रमपि कर्षति (प)। २९ न नास्ति तमो नाम, कृत्वा दीपार्चिषा तया। ३ ननु हैमनियेकबिन्दुना, दह दीपार्चिरयैति मेदिनीम् (र)। ३१ न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः, शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (र)। ३२ न प्रभातरत्नं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् (ग)। ३३ न भूतो न भविष्यति। ३४ न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् (कु)। ३५ नाराचा नापितो धूर्तः (प)। ३६ न सुवर्णे ध्वनिस्तादृग्, यादृक् कांस्ये प्रजायते। ३७ नहि प्रकृत्या लघुकारमेरुणः, पृथक्त्वं कांक्षति पद्मयोनिः (र)। ३८ नहि सिंहो गजास्कन्दी भयाद् गिरिगुहाश्रयः। ३९ नाकाले म्रियते जन्तुर्विद्ध शरशतैरपि (प)। ४ नार्सीयान् बहुमुकुलं हिनस्ति दोषः (कि)। ४१ निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्। ४२ निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते (हि)। ४३ निर्वाणदीपे किमु तैलदानम्। ४४ नैकत्र सर्वो गुणसंनिपातः। ४५ पद्मो हि नमसि क्षिप्तः क्षेप्तुः पतति मूर्धनि (क)। ४६ परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति वै। ४७ परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्। ४८ प्रकृत्या क्षमाणिः भेषान् नाडंकाररत्नुतोपकः (कि)। ४९. प्रत्यादेशविषादसूदमनसा प्रायो मतिः क्षीयते। ५ फलाटेपो मर्मकरः (प)। ५१ बालानां रोदनं बलम्। ५२ भवत्यपाये परिमोहिनी मतिः (कि)। ५३ भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः (कि)। ५४ मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु)। ५५ मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना। ५६ यच्चारम्भे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। ५७ यदप्यास्तिमहिद्रिस्तदि तीर्थं प्रचक्षते (कु)। ५८ यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी मतिः। ५९. यथा तत् वा भविष्यति। ६ याचको याचकं दृष्ट्वा श्वानवद् गुर्गुरायते। ६१ यादृशाल्लभ्यते कामं तादृशो जायते पटः (क)। ६२ योगस्तडित्तो यदवोरिवास्तु। ६३ यो यद् वपति बीजं हि, लभते तादृशं फलम् (क)। ६४ रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन। ६५ रत्नाकरे पुष्पित एव रत्नम् (कु)। ६६ रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं दैवतं गुरुम्। ६७ लभ्यं परं तव मुखे खलु मरुमपातः। ६८ वाक्यं प्रधानं खलु योग्यतायाः। ६९. वाक्पेशिहीनं विजहाति लक्ष्मीः। ७ विना मद्यपमन्यत्र चन्दनं न प्रशोभते। ७१ विनाशकाले विपरीतबुद्धिः। ७२ विपत्तितं अनुकूलमनुकूलं जनयति (या)। ७३ विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् (कु)। ७४ शक्या आशा न तथा दुर्लभतरेदना मादृक्। ७५ शिष्यपापं गुरुस्तथा। ७६ शुभस्य शीघ्रम्, अशुभस्य कालहरणम्। ७७ श्वाकर्षो पुनाशाय (या)। ७८ संपत्तमम्बरं विभ्रद् विपदमनुधावतीति (का)। ७९ सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्दम्। ८ सागरं वर्धयिष्यो कुत्र वा महानद्यवतरति (या)। ८१ सुखमुपदिशते परस्य (का)। ८२ स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः (प)। ८३ स्वदेशवृत्तस्य नरस्य नूनं गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा।

(११) पारिभाषिक-शब्दकोश

सूचना—(१) संस्कृत-व्याकरण को ठीक-ठीक समझने के लिए आवश्यक एवं अत्युपयोगी सभी पारिभाषिक शब्दों का यहाँ पर संग्रह किया गया है। विद्यार्थी इन शब्दों को बहुत सावधानी से स्मरण कर लें। (२) पारिभाषिक शब्दों के साथ उनके मूल-नियम पाणिनि के सूत्र आदि के रूप में दिए गए हैं। (३) इस शब्दकोश में सभी शब्द अकारादि-क्रम से दिए गए हैं।

(१) अकर्मक—अकर्मक वे धातुएँ होती हैं जिनके साथ कर्म नहीं आता। अकर्मक की साधारणतया पहचान यह है कि जिनमें किम् (किसको क्या) का प्रश्न नहीं उठता। अकर्मक के लिए यह नियम स्मरण कर लें। इन अर्थोंवाली धातुएँ अकर्मक होती हैं। 'अस्तिभवत्तास्थितिजागरूप वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम्। शयनक्रीडा रुचिदीप्त्यर्थं धातुरर्थं वमकर्मकमाहुः'॥ फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम्। फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वमकर्मकत्वम्।

(२) अक्षर—(अक्षरं न क्षरं विद्यात् अक्षरोऽर्धा सरोऽक्षरम्) अविनाशी और व्यापक होने के कारण स्वर और व्यंजन वर्णों को अक्षर कहते हैं।

(३) अघोष—खय् प्रत्याहार अर्थात् वर्गों के प्रथम और द्वितीय अक्षर, जिह्वामूलीय ≍ क उपध्मानीय ≍ प विसर्ग और श ष स ये अघोष वर्ण हैं।

(४) अच्—स्वरों को अच् कहते हैं। वे हैं—अ से लेकर औ तक स्वर।

(५) अजन्त—(अच् + अन्त) स्वर अन्तवाले शब्द या धातु आदि।

(६) अध्याहार—(सूत्रे अभूयमाणत्वे सति अर्थप्रत्यायकत्वम्) सूत्र में जो शब्द या अर्थ नहीं है और वह शब्द या अर्थ लिया जाता है तो उस अंश को अध्याहार कहते हैं।

(७) अनिट्—(न + इट्) जिन धातुओं में साधारणतया बीच में 'इ' नहीं आता। जैसे—कृ, गम् आदि। इनका विशेष विवरण पृष्ठ २६८ पर दिया है। कृ> कर्ता कर्तुम् आदि।

(८) अनुदात्त—(नीचैरनुदात्तः, १।२।३) जिस स्वर को नीची ध्वनि से बोला जाता है या जिस पर बल नहीं दिया जाता उसे अनुदात्त कहते हैं। वेद में अक्षर के नीचे लकीर खींचकर अनुदात्त का संकेत किया जाता है। स्वरित के बाद अनुदात्त का चिह्न नहीं आता।

(९) अनुनासिक—(मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १।१।८) जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनों के मेल से होता है उन्हें अनुनासिक कहते हैं। अनुनासिक (ँ) चिह्न से युक्त सभी वर्ण तथा वर्गों के पंचमाक्षर ङ ञ ण न म अनुनासिक हैं।

(१०) अनुबन्ध—प्रत्ययों आदि के प्रारम्भ और अन्त में कुछ स्वर या व्यंजन इसलिए जुड़े होते हैं कि उस प्रत्यय के होने पर गुण वृद्धि संप्रसारण, कोई विशेष स्वर उदात्तादि, या अन्य कोई विशेष काम हो। ऐसे सहेतुक वर्णों को अनुबन्ध कहते हैं। ये इत् होते हैं अर्थात् इनका लोप हो जाता है। जैसे—तुदादु में उ् और उ। धातु में ण् और ऋ। अतः तुदादु को कित् करेंगे, धातु को णित्।

(११) अनुवृत्ति—पाणिनि के सूत्रों में पहले के सूत्रों से कुछ या पूरा अंश अगले सूत्रों में आता है, इसे अनुवृत्ति कहते हैं। पूर्व सूत्र के इस अंश को लेने पर ही अगले सूत्र का अर्थ पूरा होता है। कुछ अधिकार-सूत्र होते हैं, उनकी पूरे प्रकरण में अनुवृत्ति होती है। जैसे—प्राग्दीव्यतोऽण् (४।१।८३), तस्यापत्यम् (४।१।९२)।

(१२) अन्तरङ्ग—मुख्य कार्य। धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग अर्थात् मुख्य होता है। (१३) अन्तस्थ—(परस्वा अन्तस्थाः) य र ल व को अन्तस्थ कहते हैं।

(१४) अन्वादेश—(किंचित्कार्ये विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः) पूर्वोक्त व्यक्ति आदि के पुनः किसी काम के लिए उल्लेख करने को अन्वादेश कहते हैं। जैसे—अनेन व्याकरणमधीतम् एनं छन्दोऽध्यापय।

(१५) अपवाद—विशेष नियम। यह उत्सर्ग (सामान्य) नियम का बाधक होता है।

(१६) अपृक्त—(अपृक्त एकाल्प्रत्ययः, १।२।४१) एक अल् (स्वर या व्यंजन) मात्र शेष प्रत्यय को अपृक्त कहते हैं। जैसे—सु का स्, सि का स् सि का स्।

(१७) अभ्यास—(पूर्वोऽभ्यासः, ६।१।४) द्वित्व होने पर पहले आये भाग को अभ्यास कहते हैं। जैसे—चकार में च एवं च में द।

(१८) असञ्ज्—विभक्ति आदि का लोप न होना। अनेकपदमात्र में बीच की विभक्तियों का लोप नहीं होता है। जैसे—आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्, सर्वादिकम्।

(१९) अस्पप्राण—(वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यरञ्वाश्चास्पप्राणाः) वर्गों के प्रथम, तृतीय और पञ्चम अक्षर तथा य र ल व अल्पप्राण कहे जाते हैं। जैसे—कवर्ग में क ग ङ।

(२०) अपग्रह—(सूत्रेण विधीयमानकार्यस्य बोधकं चिह्नम्) सूत्र से किये गए कार्य के बोधक चिह्न को अपग्रह कहते हैं। ञ्नि्य। ञ् यह संकेत य का है, इसका बोधक है।

(२१) अव्यय—(स्वरादिनिपातमव्ययम्, १।१।३७) स्वर् आदि शब्द तथा सभी निपात अव्यय होते हैं। अव्यय वे हैं जिनके रूप में कभी परिवर्तन या अन्तर नहीं होता।

(२२) अष्टाध्यायी—पाणिनि के व्याकरण-ग्रन्थ को अष्टाध्यायी कहते हैं। इसमें आठ अध्याय हैं, अतः अष्टाध्यायी नाम पड़ा। प्रत्येक अध्याय में ४ पाद हैं और प्रत्येक पाद में कुछ सूत्र। सूत्रों के आगे निर्दिष्ट संख्याओं का क्रमशः यह भाव है—(१) अध्याय की संख्या, (२) पाद की संख्या, (३) सूत्र की संख्या। यथा—१।१।१, अध्याय १ पाद १ का पहला सूत्र।

(२३) असिद्ध—(पूर्वत्रासिद्धम्, ८।२।१) किसी विशेष नियम की दृष्टि में किसी नियम या कार्य को न हुआ-सा समझना। जैसे—तथा सात अध्यायों की दृष्टि में अन्तिम तीन पाद असिद्ध हैं।

(२४) आख्यात—धातु और क्रिया का आख्यात कहते हैं। 'तिङ्ग्तिङः आख्यातम्'। (२५) आगम—शब्द या धातु के बीच में जो अक्षर या वर्ण और हुए आते हैं, उन्हें आगम कहते हैं। जैसे—पचत> पचन्ति में न् का बीच में आगम है।

(२६) आत्मनेपद—(तङानावात्मनेपदम्, १।४।१) तङ् (त, आते, अन्त आदि), शानच्, कानच्, ये आत्मनेपद होते हैं। जिन धातुओं के अन्त में ते आते अन्ते आदि लगते हैं, वे धातुएँ आत्मनेपदी कहाती हैं। जैसे—सेव् धातु। सेवते सेवेते।

(२७) आदेश—किसी वर्ण या प्रत्यय आदि के स्थान पर कुछ नए प्रत्यय आदि के होने को आदेश कहते हैं। जैसे—आदाय में क्त्वा को स्यप् आदेश। रमेशः में आ+ई को ए गुण। (२८) आमन्त्रित—(आमन्त्रितम् २।३।४८) संबोधन को आमन्त्रित कहते हैं। हे अग्ने!

(२९) आम्रेडित—(तस्य परमाम्रेडितम्, ८।१।२) द्विरुक्तवाले स्थानों पर उत्तरपद को आम्रेडित कहते हैं। जैसे—कान्+कान्=कांस्कान्, में बाद वाला कान्।

(३०) आर्धधातुक—(आर्धधातुकं शेषः, ३।४।११४) तिङ् (ति त अन्ति आदि और से एते अन्ते आदि) और शित् (शप् आदि) से अतिरिक्त धातुओं से जुड़ने वाले प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं। (स्सिच्च ३।४ ११५) स्सिच् के स्थान पर होनेवाले सिच् भी आर्धधातुक होते हैं।

(३१) इट्—(आर्धधातुकस्येड्वलादेः ७।२।३५) इट् का इ शेष रहता है। यह धातु और प्रत्यय के बीच में होता है। वलादि आर्धधातुक को इट् (इ) होता है। जैसे—पठिष्यति, पठितुम्। इस इट् (इ) के आधार पर ही धातुएँ सेट् या अनिट् कही जाती हैं। जिन धातुओं में साधारणतया इट् (इ) होता है, उन्हें सेट् (स+इट्) अर्थात् 'इ' वाली धातुएँ कहते हैं। जिनमें इट् (इ) नहीं होता उन्हें अनिट्(न+इट्) कहते हैं।

(३२) इत्—(तस्य लोपः, १।३।९) जिसको इत् कहेंगे, उसका लोप हो जाएगा। अनुबन्धों को इत् कहते हैं। गुण आदि के लिए प्रत्ययों के आदि या अन्त में ये लगे होते हैं। बाद में ये हट जाते हैं। जैसे—धातु में ङ् और ञ्। धातु में ङ् हटा है अतः इसे ङित् कहेंगे। जो अक्षर इत् होगा, उसके आधार पर प्रत्यय ङित् (ङ्+इत्) पित् (प्+इत्) आदि कहे जाते हैं। इत् होने वाले अक्षर ये हैं—(१) हलन्त्यम् (१।३।३) अन्तिम व्यंजन इत् होता है। (२) उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१।३।२) उपदेश में अनुनासिक-संकेत वाला स्वर। (३) चुटू (१।३।७) प्रत्यय के आदि के चवर्ग और टवर्ग। (४) लशकतद्धिते (१।३।८) तद्धित-प्रकरण को छोड़कर प्रत्यय के आदि के ल श और कवर्ग। (५) षः प्रत्ययस्य (१।३।९) प्रत्यय के आदि का ष। इत्यादि।

(३३) उणादि—(उणादयो बहुलम्, ३।३।१) धातुओं से उण् आदि प्रत्यय होते हैं। इस उण् प्रत्यय के आधार पर व्याकरण में इस प्रकरण को उणादि-प्रकरण कहते हैं।

(३४) उत्सर्ग—सामान्य नियमों को उत्सर्ग कहते हैं। विशेष को अपवाद।

(३५) उदात्त—(उच्चैरुदात्तः १।२।२९) जिस स्वर को उच्च ध्वनि से बोला जाता है या जिस स्वर पर बल दिया जाता है, उसे उदात्त कहते हैं।

(३६) (क) उपपद विभक्ति—किसी पद (शब्द) को मानकर जो विभक्ति होती है उसे उपपद-विभक्ति कहते हैं। जैसे—गुरवे नमः में नमः पद के कारण चतुर्थी है। (ख) कारक-विभक्ति—क्रिया को मानकर जो विभक्ति होती है उसे कारक विभक्ति कहते हैं। जैसे—पाठं पठति में पठति क्रिया के आधार पर द्वितीया विभक्ति है।

(३७) उपधा—(अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा, १।१।६५) अन्तिम अच् (स्वर या व्यंजन) से पहले आने वाले वर्ण को उपधा कहते हैं। जैसे—टिप् धातु में उपधा में इ है।

(३८) उपध्मानीय—(कुप्वोः ×क×पौ च, ८।३।३७) प फ से पहले× अघोषसंज्ञा के तुल्य ध्वनि को उपध्मानीय कहते हैं। जैसे—न×पाहि। यह विसर्ग के स्थान पर होता है।

(३९) उपसर्ग—(उपसर्गाः क्रियायोगे, १।४।५९) धातु या क्रिया से पहले लगने वाले प्र परा आदि को उपसर्ग कहते हैं। वे २२ हैं—प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप।

(४०) उभयपद—परस्मैपद (ति, तः आदि), और आत्मनेपद (ते, एते, आदि) इन दोनों पदों के चिह्नों का कथना। जिन धातुओं में ये चिह्न लगाते हैं, उन्हें उभयपदी कहते हैं। (४१) ऊष्म—(शषसहा ऊष्माणः) श ष स ह को ऊष्म वर्ण कहते हैं।

(४२) ओष्ठ्य—(उपूपध्मानीयानामोष्ठौ) उ ऊ, पवर्ग और उपध्मानीय इनका उच्चारण स्थान ओष्ठ है, अतः ये ओष्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

(४३) कण्ठ्य—(अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) अ आ कवर्ग ह और विसर्ग (ः) इनका उच्चारण-स्थान कण्ठ है, अतः ये कण्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

(४४) कर्मप्रवचनीय—(कर्मप्रवचनीयाः, १।४।८१) अनु, उप प्रति परि आदि उपसर्ग कुछ अर्थों में कर्मप्रवचनीय होते हैं। इनके साथ द्वितीया आदि होती हैं।

(४५) कारक—प्रथमा, द्वितीया आदि को कारक या विभक्ति कहते हैं।

(४६) कृत्—(कर्तरि कृत्, ३।४।६७) धातु से होने वाले क वतु क्वसु शानच् आदि को कृत् प्रत्यय कहते हैं। क और क्वसु को छोड़कर शेष कृत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में होते हैं।

(४७) कृत्य—(तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः, ३।४।७०) धातु से होने वाले तव्य, अनीय य आदि को कृत्य प्रत्यय कहते हैं। ये भाव और कर्म वाच्य में होते हैं।

(४८) कृदन्त—जिन शब्दों के अन्त में कृत् प्रत्यय लगे होते हैं, उन्हें कृदन्त कहते हैं। (४९) क्रिया—धातुरूपों को क्रिया कहते हैं। जैसे—पचनम्, पठनम्।

(५०) गण—धातुओं को १० भागों में बाँटा गया है, उन्हें गण कहते हैं। भ्वादिगण आदि।

(५१) गणपाठ—कतिपय शब्दों से एक ही प्रत्यय लगता है। ऐसे शब्दों को एक गण (समूह) में रक्खा गया है। ऐसे शब्द-संग्रह को गणपाठ कहते हैं। जैसे—नडादिभ्यो फक् (४।१।९९)।

(५२) गति—(गतिश्च, १।४।६०) उपसर्गों को गति कहते हैं। कुछ अन्य शब्द भी गति हैं।

(५३) गुण—(अदेङ् गुणः, १।१।२) अ ए, ओ को गुण कहते हैं। गुण करने पर इ ई को ए, उ, ऊ को ओ हो जाता है।

(५४) गुरु—(संयोगे गुरु १।४।११; दीर्घं च १।४।१२) संयुक्त वर्ण बाद में हो या इस वर्ण गुरु होता है। सभी दीर्घ अक्षर गुरु होते हैं।

(५५) घ—(तरप्तमपौ घः, १।१।२२) तरप और तमप् प्रत्ययों का घ कहते हैं।

(५६) घि—(वेरो व्यञ्जनि, १।४।७) ह्रस्व इ और उ अन्त वाले शब्द घि कहलाते हैं, स्त्रीलिंग शब्दों और अति शब्द को छोड़कर।

(५७) घु—(शेषो घ्यसखि, १।१।२) ना और धा धातु को घु कहते हैं, दाप् को नहीं। (५८) घोष—हश् प्रत्याहार अर्थात् वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण और ह य व र ल घोष हैं।

(५९) जिह्वामूलीय—(कुपो ≍ क ≍ पै च, ८।३।३७) क ख से पहले ≍अर्ध विसर्ग के तुल्य ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। क ≍ करोति। यह विसर्ग के स्थान पर होता है। (६०) टि—(अचोऽन्त्यादि टि, १।१।६४) शब्द के अन्तिम अच् से जहाँ स्वर मिले, वह स्वर और आगे व्यञ्जन यदि हो तो वह टि कहलाता है। जैसे—मनस् में अस्, धनुष् में उष् टि है।

(६१) तपर—(तपरस्तत्कालस्य, १।१।७०) किसी स्वर के बाद त् लगा देने से उसी स्वर का ग्रहण होगा, अन्य दीर्घ आदि का नहीं। जैसे—अत् का अर्थ है ह्रस्व अ। आत् दीर्घ आ। (६२) तद्धित—शब्दों से पुत्र आदि अर्थों में होने वाले प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं। (६३) तालव्य—(इचुयशानां तालु) इ ई, चवर्ग, य श का उच्चारण-स्थान तालु है, अतः इन्हें तालव्य वर्ण कहते हैं।

(६४) तिङ्—धातु के बाद लगने वाले ति त आदि और से एते आदि को तिङ् कहते हैं। (६५) तिङन्त—ति त आदि से युक्त पठति आदि धातुरूपों को तिङन्त पद कहते हैं।

(६६) दन्त्य—(लृतुल्यानां दन्ताः) ऌ, तवर्ग ल, स का उच्चारण-स्थान दन्त है अतः इन्हें दन्त्य वर्ण कहते हैं।

(६७) दीर्घ—आ ई ऊ ॠ ॡ को दीर्घ स्वर कहते हैं। दीर्घ कहने पर ह्रस्व के स्थान पर ये होते हैं। (६८) द्वित्व—किसी वर्ण या अवयवसमूह को दो बार पढ़ने को द्वित्व कहते हैं। पाठ में पठ् को द्वित्व है।

(६९) द्विरुक्ति—किसी शब्दरूप या धातुरूप को दो बार पढ़ना। स्मारं स्मारं स्मृत्वा स्मृत्वा। (७०) धातु—भू पठ् कृ आदि क्रियावाचक शब्दों को धातु कहते हैं।

(७१) धातुपाठ—भू आदि धातुओं को १० गणों के अनुसार संग्रह किया गया है। इस धातु-संग्रह को धातुपाठ कहा जाता है। इसमें धातुओं के साथ उनके अर्थ आदि भी दिए गए हैं।

(७२) नदी—(१) (यू स्त्याख्यौ नदी, १।४।३) ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द नदी कहलाते हैं। (२) (हृस्वनद्यापो, १।४।६) इकारान्त उकारान्त स्त्रीलिंग शब्द भी नदी कहलाते हैं, किन्तु विभक्तियों में।

(७३) नपुंसकलिंग—यह तीन लिंगों में से एक लिंग है। फल, वारि, मधु आदि नपुं० शब्द हैं। (७४) नाम्—हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण, ह य व र ल) नाम् वर्ण हैं। (७५) नाम—संज्ञा शब्दों को नाम कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च' निरुक्त।

(७६) निपात—(चादयोऽसत्त्वे, १।४।५७) च वा ह आदि को निपात कहते हैं। (स्वरादिनिपातमव्ययम्) सभी निपात अव्यय होते हैं, अतः ये सदा एकरूप रहते हैं।

(७७) विभक्ति—(सुपस्तिङश्च १।२।२१) सु और तिङ् प्रत्ययों को विभक्ति कहते हैं।

(१०७) लघु—(ह्रस्वं लघु, १।४।१०) ह्रस्व अ इ उ ऋ ऌ को लघु कहते हैं।

(१०८) लिंग—संस्कृत में तीन लिंग हैं—पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग।

(१०९) लुक्—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुप् १।१।६१) प्रत्यय के लोप का ही दूसरा नाम लुक् है। (११०) लुप् (श्लु)—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुप्) प्रत्यय के लोप को लुप् और श्लु भी कहते हैं। (१११) लोप—(अदर्शनं लोपः, १।१।६०) प्रत्यय आदि के हट जाने को लोप कहते हैं।

(११२) वचन—संस्कृत में तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन, बहुवचन। एक के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन, तीन या अधिक के लिए बहुवचन।

(११३) वर्ग—व्यञ्जनों के कुछ विभागों को वर्ग कहते हैं। जैसे—कवर्ग—क से ङ तक, चवर्ग—च से ञ तक, टवर्ग—ट से ण, तवर्ग—त से न, पवर्ग—प से म तक।

(११४) वर्ण—अक्षरों को वर्ण भी कहते हैं। स्वर और व्यञ्जन ये सभी वर्ण हैं।

(११५) वाक्य—सार्थक पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

(११६) वाच्य—संस्कृत में ३ वाच्य (अर्थ) होते हैं—१ कर्तृवाच्य, २ कर्मवाच्य, ३ भाववाच्य। सकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में रूप चलते हैं तथा अकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और भाववाच्य में। कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, कर्मवाच्य में कर्म और भाववाच्य में क्रिया।

(११७) वार्तिक—कात्यायन और पतञ्जलि के द्वारा बनाए गए नियमों को वार्तिक कहते हैं। (११८) विकल्प—ऐच्छिक नियम को विकल्प कहते हैं।

(११९) विभक्ति—(विभक्तिश्च १।४।१ ४) सु आदि कारक-चिह्नों को विभक्ति या कारक कहते हैं। संबोधन-सहित ८ विभक्तियाँ हैं—प्रथमा, द्वितीया आदि।

(१२०) विभाषा—(न वेति विभाषा १।१।४४) किसी नियम को ऐच्छिक या विकल्प से लगने को विभाषा कहते हैं। इसी अर्थ में वा अन्यतरस्याम्, शब्द आते हैं।

(१२१) वियार—वर्गों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख च छ, ट ठ, त थ, प फ), विसर्ग ः ष स, ये विवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२२) विवृत—(विवृतमूष्मणां स्वराणां च) स्वरों और ऊष्मों (श ष स ह) का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२३) विशेषण—विशेष्य (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताने वाले गुणबोधक शब्दों को विशेषण कहते हैं। विशेषण को भेदक भी कहते हैं।

(१२४) विशेष्य—जिस (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताई जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं। विशेष्य को भेद्य भी कहते हैं।

(१२५) वीप्सा—द्विरुक्ति अर्थात् दो बार पढ़ने को वीप्सा कहते हैं। जैसे—स्मृत्वा, स्मृत्वा, स्मारं स्मारम्।

(१२६) वृत्ति—(१) सूत्रों की व्याख्या को वृत्ति कहते हैं। (२)(प्रत्ययोऽभिधानं वृत्तिः) कृत्, तद्धित समास, एकशेष सनाद्यन्त आदि से युक्त धातुरूपों को वृत्ति कहते हैं।

(१२७) वृद्धि—(वृद्धिरादैच्, १।१।१) आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं। वृद्धि करने पर इ ई को ऐ होगा, उ ऊ को औ, ऋ ॠ को आर्, ऌ को ऐ और आ को भी।

(५६) घि—(शेषो घ्यसखि, १।४।७) ह्रस्व इ और उ अन्त वाले शब्द घि कहलाते हैं, स्त्रीलिंग शब्दों और सखि शब्द को छोड़कर।

(५७) घु—(वामा घ्यदाप् १।१।२) दा और धा धातु को घु कहते हैं, दाप को नहीं। (५८) घोष—हश् प्रत्याहार अर्थात् वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण और ह य व र ल घोष हैं।

(५९) जिह्वामूलीय—(कुपो ≍ क ≍ पौ च ८।३।३७) क ख से पहले ≍ अर्ध विसर्ग के तुल्य ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। क ≍ करोति। यह विसर्ग के स्थान पर होता है। (६०) टि—(अचोऽन्त्यादि टि, १।१।६४) शब्द के अन्तिम अच् से जहाँ स्वर मिले वह स्वर और आगे व्यंजन यदि हो तो वह टि कहलाता है। जैसे—मनस् में अस्, धनुष् में उष् टि है।

(६१) तपर—(तपरस्तत्कालस्य, १।१।७) किसी स्वर के बाद त् लगा देने से उसी स्वर का ग्रहण होगा, अन्य दीर्घ आदि का नहीं। जैसे—अत् का अर्थ है ह्रस्व अ। आत् दीर्घ आ। (६२) तद्धित—शब्दों से पुत्र आदि अर्थों में होने वाले प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं। (६३) तालव्य—(इचुयशानां तालु) इ ई, यवर्ग, श, ष का उच्चारण-स्थान तालु है, अतः इन्हें तालव्य वर्ण कहते हैं।

(६४) तिङ्—धातु के बाद लगने वाले ति त आदि और ते एते आदि को तिङ् कहते हैं। (६५) तिङन्त—ति त आदि से युक्त पठति आदि धातुरूपों को तिङन्त पद कहते हैं।

(६६) दन्त्य—(लृतुल्सानां दन्ताः) ल, तवर्ग त, स का उच्चारण-स्थान दन्त है, अतः इन्हें दन्त्य वर्ण कहते हैं।

(६७) दीर्घ—आ ई ऊ ॠ ॡ को दीर्घ स्वर कहते हैं। दीर्घ कहने पर ह्रस्व के स्थान पर ये होते हैं। (६८) द्वित्व—किसी वर्ण या वर्णसमूह को दो बार पढ़ने को द्वित्व कहते हैं। पाठ में पठ् को द्वित्व है।

(६९) द्विरुक्ति—किसी शब्दरूप या धातुरूप को दो बार पढ़ना। स्मारं स्मारं, स्मृत्वा स्मृत्वा। (७०) धातु—भू पठ् कृ आदि क्रियावाचक शब्दों को धातु कहते हैं।

(७१) धातुपाठ—भू आदि धातुओं को १ गणों के अनुसार संग्रह किया गया है। इस धातु-संग्रह को धातुपाठ कहा जाता है। इसमें धातुओं के साथ उनके अर्थ आदि भी दिए गए हैं।

(७२) नदी—(१) (यू स्त्र्याख्यौ नदी १।४।३) दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द नदी कहलाते हैं। (१) (हृदि ह्रस्वम, १।४।६) इकारान्त उकारान्त स्त्रीलिंग शब्द भी नदी कहलाते हैं, किन्तु विभक्तियों में।

(७३) नपुंसकलिंग—यह तीन लिंगों में से एक लिंग है। फल, वारि मधु आदि नपुं० शब्द हैं। (७४) नाद—हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण ह य व र ल) नाद वर्ण हैं। (७५) नाम—संज्ञा शब्दों को नाम कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च' निरुक्त।

(७६) निपात—(चादयोऽसत्त्वे, १।४।५७) च वा ह आदि को निपात कहते हैं। (स्वरादिनिपातमव्ययम्) सभी निपात अव्यय होते हैं, अतः ये सदा एकरूप रहते हैं।

(७७) निष्ठा—(क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२६) क्त और क्तवतु प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं।

(७८) पद—(१) (सुप्तिङन्तं पदम्, १।४।१४) सुप् (७ वीं वि
तक शब्दों और तिङ् (ति तः अन्ति आदि) से युक्त धातुरूपों को पद कहते हैं
रामः, पठति। (२) स्वादिष्वसर्वनामस्थाने, १।४।१७) सु (स्) आदि प्रत्य
हों तो शब्द को पद कहते हैं, ये प्रत्यय बाद में होंगे तो नहीं—सु आदि प्र
सुप् मकारादि और स्वर आदि वाले प्रत्यय।

(७९) पदान्त—नियम ७८ में उक्त पद के अन्तिम अक्षर को पदान्त क

(८०) परंरूप—(एङि पररूपम्, ६।१।९४) सन्धि-नियमों में दो स्वरों को
पर अगले स्वर के तुल्य रूप हो जाने को परंरूप कहते हैं। जैसे—प्र+एजते = प्रे

(८१) परस्मैपद—(तः परस्मैपदम्, १।४।९९) तकारों के स्थान पर
वाले तिप्, तस्, अन्ति आदि प्रत्ययों को परस्मैपद कहते हैं। ये जिनके अन्त में लगा
उन्हें परस्मैपदी धातु कहते हैं। से एत अन्ते आदि को आत्मनेपद कहते हैं।
प्रत्यय परस्मैपद में होता है।

(८२) परिभाषा—व्याकरण-सम्बन्धी कुछ विशेष नियमों को परिभाषा कहत

(८३) पुंल्लिंग—यह तीन लिंगों में से एक है। जैसे—रामः, हरिः।

(८४) पूर्वरूप—(एङः पदान्तादति, ६।१।१०९) सन्धि-नियमों में दो स्वरों
मिलाने पर पहले स्वर के तुल्य रूप हो जाने को पूर्वरूप कहते हैं। जैसे—हरे+अवन्दे=ह
करते हैं। इसका दूसरा पारिभाषिक नाम 'अंग' है। जैसे—रामः में राम प्रकृति है

(८५) (क) प्रकृति—शब्द या धातु जिससे कोई प्रत्यय होता है उसे प्रकृ
और पठति में पठ्। (ख) प्रकृति-विकृति—शब्द या धातु के मूलरूप के स्थान पर
जो नया आदेश होता है उसे प्रकृति-विकृति या विकार-भाव कहते हैं। जैसे—उवाच
में प्रकृति ब्रू धातु है उसको विकृति विकार या आदेश वच् हुआ है। यह पूरे शब्द या
धातु को भी होता है और कहीं पर उसके एक अंश को।

(८६) प्रकृतिभाव—(प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५) प्रकृतिभाव का अर्थ है
कि वहाँ पर कोई सन्धि नहीं होती। प्लुत और प्रगृह्य वाले स्थानों पर प्रकृतिभाव होता है।

(८७) प्रगृह्य—(१) (ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११) प्रगृह्य वाले स्थान
पर कोई सन्धि नहीं होती। ई ऊ, ए ओ अन्त वाले द्विवचनान्त रूप प्रगृह्य होते हैं, अतः
सन्धि नहीं होगी। जैसे—हरी एतौ। (२) (अदसो मात्, १।१।१२) अदस् के म् के
बाद ई, ऊ होंगे तो कोई सन्धि नहीं होगी। जैसे—अमी ईशाः। अमू आसाते।

(८८) प्रत्यय—(प्रत्ययः, ३।१।१) शब्दों और धातुओं के बाद लगने वाले
सुप्, तिङ् कृत् तद्धित आदि को प्रत्यय कहते हैं। कुछ प्रत्यय पहले (वसुप् आदि)
और बीच में (अकच् आदि) भी लगते हैं। वसुपञ्चः। उच्चकैः। प्रत्ययों में विशेष
काम के लिए अनुबन्ध भी लगे होते हैं।

(८९) प्रत्याहार—(आदिरन्त्येन सहेता, १।१।७१) प्रत्याहार का अर्थ है
संक्षेप में कथन। अच्, हल् सुप् तिङ् आदि प्रत्याहार हैं। अच् हल् आदि के
लिए पहला अक्षर अइउण् आदि १४ सूत्रों में हैं और अन्तिम अक्षर उन सूत्रों के
अन्तिम अक्षर में। जैसे—अच्= अइउण् के अ से लेकर ऐओच् के च् तक, पूरे स्वर।
सुप्= सु से सुप् के प् तक। तिङ्= तिप् से महिङ् तक।

(९०) प्रयत्न—वर्णों के उच्चारण में जो प्रयास किया जाता है, उसे प्रयत्न कहते हैं। यह दो प्रकार का है—आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर चार प्रकार का है—स्पृष्ट, ईषत्-स्पृष्ट आदि। बाह्य ११ प्रकार का है—विवार, संवार आदि। (देखो सिद्धान्तकौमुदी संज्ञाप्रकरण)

(९१) प्रातिपदिक—(१) (अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५) सार्थक शब्द को प्रातिपदिक कहते हैं। वही विभक्ति (सु आदि) लगने पर पद बनता है। (२) (कृत्तद्धितसमासाश्च, १।२।४६) कृत् और तद्धित प्रत्ययान्त तथा समास-युक्त शब्द भी प्रातिपदिक होते हैं।

(९२) प्रेरणार्थक—दूसरे से काम कराना। जैसे—लिखना से लिखवाना। इस अर्थ में णिच् होता है। (९३) प्लुत—इस स्वर से तिगुनी मात्रा। अक्षर के आगे ३ लिखकर इसका संकेत करते हैं। ३।२।१०७।

(९४) बहिरङ्ग—गौण नियम। धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग होता है, शेष बहिरङ्ग। (९५) बहुलम्—विकल्प या वैच्छिक नियम को बहुलम् कहते हैं।

(९६) भ—(यचि भम्, १।४।१८) यकारादि और स्वर-आदि वाला प्रत्यय बाद में हो तो उससे पहले के शब्द को भ कहते हैं, सु सौ आदि प्रथम पाँच सुप् बाद में हों तो नहीं। (९७) भाष्य—पतञ्जलि-रचित महाभाष्य को संक्षेप में भाष्य कहते हैं।

(९८) मत्वर्थक प्रत्यय—मतुप् प्रत्यय 'वाला या युक्त' अर्थ में होता है। इस अर्थ में होनेवाले सभी प्रत्ययों को मत्वर्थक प्रत्यय कहते हैं। जैसे—धनवान्, धनी।

(९९) महाप्राण—(द्वितीयचतुर्थौ वर्गौ महाप्राणाः) वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ अक्षर तथा श ष स ह महाप्राण वर्ण कहलाते हैं। जैसे—ख घ, छ झ, ठ ढ।

(१००) मात्रा—स्वरों के परिमाण को मात्रा कहते हैं। ह्रस्व या लघु अक्षर की एक मात्रा मानी जाती है दीर्घ या गुरु की दो प्लुत की तीन।

(१०१) मुनित्रय—(पश्चोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्) पाणिनि कात्यायन, पतञ्जलि इन तीनों को मुनित्रय कहते हैं। मतभेद होने पर बाद वाले मुनि का कथन प्रामाणिक माना जाता है।

(१०२) मूर्धन्य—(ऋटुरषाणां मूर्धा) ऋ ॠ, ट वर्ग, र, ष का उच्चारण-स्थान मूर्धा है, अतः इन्हें मूर्धन्य कहते हैं।

(१०३) योगरूढ—योगरूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें यौगिक अर्थात् प्रकृति-प्रत्यय का अर्थ निकलता है, परन्तु वे किसी विशेष अर्थ में रूढ हो गए हैं। जैसे—पङ्कज का अर्थ है—कीचड़ में होने वाला। पर यह कमल अर्थ में रूढ है।

(१०४) योगविभाग—पाणिनि के सूत्रों को कात्यायन आदि ने अर्थ स्पष्टतानुसार विभक्त करके एक एक (योग) के दो या तीन सूत्र बनाए हैं, इस सूत्र विभाजन को योगविभाग कहते हैं।

(१०५) यौगिक—यौगिक उन शब्दों को कहते हैं जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ निकलता है। जैसे—पाचक—पच्+अक, पकाने वाला।

(१०६) रूढ—रूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ नहीं निकलता है। जैसे—अश्व, नूपुर आदि।

(१०७) लघु—(ह्रस्वं लघु १।४।१०) ह्रस्व अ इ उ ऋ ऌ को लघु कहते हैं।

(१०८) लिंग—संस्कृत में तीन लिंग हैं—पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग।

(१०९) लुक्—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुप्, १।१।६१) प्रत्यय के लोप का ही पर्याय नाम लुक् है। (११०) लुप् (श्लु)—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुप्) प्रत्यय के लोप को लुप् और श्लु भी कहते हैं। (१११) लोप—(अदर्शनं लोपः, १।१।६०) प्रत्यय आदि के हट जाने को लोप कहते हैं।

(११२) वचन—संस्कृत में तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन बहु वचन। एक के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन, तीन या अधिक के लिए बहुवचन।

(११३) वर्ग—व्यंजनों के कुछ विभागों को वर्ग कहते हैं। जैसे—कवर्ग—क से ङ तक, चवर्ग—च से ञ तक टवर्ग—ट से ण, तवर्ग—त से न, पवर्ग—प से म तक।

(११४) वर्ण—अक्षरों को वर्ण भी कहते हैं। स्वर और व्यंजन ये सभी वर्ण हैं।

(११५) वाक्य—सार्थक पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

(११६) वाक्यार्थ—संस्कृत में ३ वाक्यार्थ (अर्थ) होते हैं—१ कर्तृवाक्यार्थ, २ कर्मवाक्यार्थ ३ भाववाक्यार्थ। सकर्मक धातुओं के कर्तृवाक्यार्थ और कर्मवाक्यार्थ में रूप चलते हैं तथा अकर्मक धातुओं के कर्तृवाक्यार्थ और भाववाक्यार्थ में। कर्तृवाक्यार्थ में कर्ता मुख्य होता है, कर्मवाक्यार्थ में कर्म और भाववाक्यार्थ में क्रिया।

(११७) वार्तिक—कात्यायन और पतंजलि के द्वारा बनाए गए नियमों को वार्तिक कहते हैं। (११८) विकल्प—ऐच्छिक नियम को विकल्प कहते हैं।

(११९) विभक्ति—(विभक्तिश्च, १।४।१ ४) सु औ आदि कारक-चिह्नों को विभक्ति या कारक कहते हैं। संबोधन-सहित ८ विभक्तियाँ हैं—प्रथमा, द्वितीया आदि।

(१२०) विभाषा—(न वेति विभाषा १।१।४४) किसी नियम को ऐच्छिक या विकल्प से लगने को विभाषा कहते हैं। इसी अर्थ में वा अन्यतरस्याम् शब्द आते हैं।

(१२१) विसर्ग—वर्गों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख च छ, ट ठ, त थ, प फ) विसर्ग, श ष स, ये विसर्ग वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२२) विवृत—(विवृतमूष्मणां स्वराणां च) स्वरों और ऊष्मों (श ष स ह) का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२३) विशेषण—विशेष्य (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताने वाले गुणबोधक शब्दों को विशेषण कहते हैं। विशेषण को भेदक भी कहते हैं।

(१२४) विशेष्य—जिस (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताई जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं। विशेष्य को भेद्य भी कहते हैं।

(१२५) वीप्सा—द्विरुक्ति अर्थात् दो बार पढ़ने को वीप्सा कहते हैं। जैसे—स्मृत्वा, स्मृत्वा, स्मारं स्मारम्।

(१२६) वृत्ति—(१) सूत्रों की व्याख्या को वृत्ति कहते हैं। (२)(परस्यामिधानं वृत्तिः) कृत्, तद्धित, समास एकशेष, सन् आदि से युक्त धातुरूपों को वृत्ति कहते हैं।

(१२७) वृद्धि—(वृद्धिरादैच्, १।१।१) आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं। वृद्धि करने पर इ ई को ऐ होगा, उ ऊ को औ, ऋ ॠ को आर्, ऌ को ऐल् और ओ को औ।

(१२८) व्यंजन—क से लेकर ह तक के वर्णों को व्यंजन या हल् कहते हैं।

(१२९) व्यधिकरण—एक से अधिक आधार या शब्दादि में होने वाले कार्य को व्यधिकरण कहते हैं। वि = विभिन्न, अधिकरण = आधार। एक आधार वाला समानाधिकरण होता है।

(१३०) शब्द—सार्थक वर्ण या वर्णसमूह को शब्द या प्रातिपदिक कहते हैं।

(१३१) शिक्षा—वर्णों के उच्चारण आदि की शिक्षा देने वाले ग्रन्थों को शिक्षा कहते हैं। जैसे—पाणिनीयशिक्षा आदि ग्रन्थ। वैदिक शिक्षा और व्याकरण-ग्रन्थों को प्रातिशाख्य कहते हैं। (१३२) श्लु—प्रत्यय के लोप का ही एक नाम श्लु है। इदोत्यादि में श्लु होने पर गुण होता है।

(१३३) श्वास—वर्गों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख च छ, ट ठ, त थ प फ), तथा श ष स ये श्वास वर्ण हैं। इनके उच्चारण में श्वास बिना रगड़ खाए बाहर आता है। (१३४) षट्—(आद्यन्तौ षट् १।१।२४) ष् और ट् अन्त वाली संज्ञाओं को षट् कहते हैं।

(१३५) संज्ञा—व्यक्ति या वस्तु आदि के नाम को संज्ञा शब्द कहते हैं।

(१३६) संयोग—(हलोऽनन्तराः संयोगः, १।१।७) व्यञ्जनों के बीच में स्वर वर्ण न हों तो उन्हें संयुक्त अक्षर कहते हैं। जैसे—सम्बन्ध में म् और ब, द् और ध।

(१३७) संवार—घ् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण, ह ब ग र ज) संवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार कुछ संकुचित (सिकुड़ा) रहता है।

(१३८) संवृत—ह्रस्व अ बोलचाल में संवृत (मुख-द्वार संकुचित) होता है।

(१३९) संहिता—(परः सन्निकर्षः संहिता १।४।१ १) वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं। संहिता की अवस्था में सभी सन्धि-नियम लगते हैं। एक पद में, धातु और उपसर्ग में, समासयुक्त पद में संहिता अवश्य होगी। वाक्य में संहिता ऐच्छिक है।

(१४०) सकर्मक—जिन धातुओं के साथ कर्म आता है, उन्हें सकर्मक धातु कहते हैं। (१४१) सत्—(तौ सत् १।२।१०७) शतृ और शानच् प्रत्ययों को सत् कहते हैं। (१४२) सन्—(धातोः कर्मणः १।३।७) इच्छा अर्थ में धातु से सन् प्रत्यय होता है। इ० चिकीर्षति।

(१४३) सन्धि—स्वरों व्यञ्जनों या वर्णों के परस्पर मिलाने को सन्धि कहते हैं। (१४४) समानाधिकरण—एक आधार को समानाधिकरण कहते हैं।

(१४५) समास—समास का अर्थ है संक्षेप। दो या अधिक शब्दों को मिलाने या जोड़ने को समास कहते हैं। समास होने पर शब्दों के बीच की विभक्ति हट जाती है। समासयुक्त शब्द को समस्त पद कहते हैं। समस्त शब्द एक शब्द होता है। समास के ६ भेद हैं—१ अव्ययीभाव, २. तत्पुरुष ३ कर्मधारय ४ द्विगु, ५ बहुव्रीहि ६ द्वन्द्व।

(१४६) समासान्त—समासयुक्त शब्द के अन्त में होने वाले कार्यों को समासान्त कहते हैं। (१४७) समाहार—समाहार का अर्थ है समूह। समाहार द्वन्द्व में प्रायः नपुं एकवचन होता है। कभी स्त्रीलिंग भी होता है।

(१४८) सम्प्रसारण—(इग्यणः सम्प्रसारणम्, १।१।४५) य को इ, व् को उ, र् को ऋ, ल् को ऌ हो जाने को सम्प्रसारण कहते हैं। सम्प्रसारण कहने पर ये कार्य होंगे।

(१४९) सर्वनाम—(सर्वादीनि सर्वनामानि, १।१।२७) सर्व, पत्, उत्, किम्, युष्मद् अस्मद् आदि शब्दों को सर्वनाम कहते हैं। इनका सम्बोधन नहीं होता।

(१५०) सर्वनामस्थान—(सुडनपुंसकस्य, १।१।४१) प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के पहले पाँच सुप् (कारकपिंड, सु औ जस्, अम् औ) को सर्वनामस्थान कहते हैं, नपुं० में नहीं।

(१५१) सवर्ण—(तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्, १।१।९) जिन वर्णों का स्थान और प्रयत्न मिलता है,उन्हें सवर्ण कहते हैं। जैसे—इ चवर्ग य श तालव्य हैं अतः सवर्ण हैं।

(१५२) सार्वधातुक—(तिङ् शित्सार्वधातुकम् ३।४।११३) धातु के बाद लगने वाले तिङ् (ति तः आदि) और शित् प्रत्यय (शप् आदि) सार्वधातुक कहलाते हैं। शेष आर्धधातुक होते हैं।

(१५३) सुप्—(स्वौजस० सुप्, ४।१।२) शब्दों के अन्त में आने वाले प्रथमा से सप्तमी तक के कारक-पिंड (सु औ जस् आदि) सुप् कहलाते हैं।

(१५४) सुबन्त—सुप् (सु औ आदि) जिन शब्दों के अन्त में होते हैं, उन्हें सुबन्त कहते हैं।

(१५५) सूत्र—पाणिनि-रचित नियमों को सूत्र कहते हैं। इनके बाद निर्दिष्ट संज्ञाओं का क्रमशः भाव यह है—१ अध्याय-संज्ञा २ पाद-संज्ञा ३ सूत्र-संज्ञा।

(१५६) सेट्—जिन धातुओं में बीच में प्रत्यय से पहले इ लगता है उन्हें सेट् (इट् वाली) कहते हैं। जैसे—पठ् सिच् । (१५७) स्त्रीप्रत्यय—स्त्रीलिंग के बोधक टाप् (आ) ङीप् (ई) आदि स्त्रीप्रत्यय कहलाते हैं। (१५८) स्त्रीलिंग—यह तीन लिंगों में से एक लिंग है। स्त्रीत्व का बोध कराता है। जैसे—स्त्री, नदी।

(१५९) स्थान—(अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) अकुहविसर्जनीयानां कण्ठ तालु आदि का उचित नाम स्थान है। जैसे—अ कवर्ग ह और विसर्ग का स्थान कण्ठ है।

(१६०) स्पर्श—(कादयो मावसानाः स्पर्शाः) क से लेकर म तक (कवर्ग से पवर्ग तक) के वर्णों को स्पर्श वर्ण कहते हैं। इनके उच्चारण में जीभ कण्ठ तालु आदि का स्पर्श करती है।

(१६१) स्वर—(अचः स्वराः) वर्णों (अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ, ए ऐ, ओ औ) को स्वर कहते हैं।

(१६२) स्वरित—(उच्चैरुदात्तः स्वरितः, १।२।३१) उदात्त और अनुदात्त के मध्यमत स्वर को स्वरित कहते हैं। यह मध्यम ध्वनि से बोला जाता है। (उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः, ८।४।६६)। वेद में उदात्त स्वर के बाद आने अनुदात्त स्वरित हो जाता है। सामान्य नियम यह है कि उदात्त से पहले अनुदात्त अवश्य रहेगा, अन्यथा उदात्त के बाद अनुदात्त स्वरित होगा।

(१६३) हल्—क से ह तक के वर्णों को हल् कहते हैं। इन्हें व्यञ्जन भी कहते हैं। (१६४) हलन्त—हल् अर्थात् व्यञ्जन जिनके अन्त में होते हैं, ऐसे शब्दों या धातुओं आदि को हलन्त कहते हैं।

(१६५) ह्रस्व—(ह्रस्वो ङ्यु, १।४।१०) अ इ उ ऋ ऌ को ह्रस्व स्वर कहते हैं।

(१२) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष

आवश्यक-निर्देश

(१) इस पुस्तक में प्रयुक्त शब्दों का ही इस शब्दकोष में संग्रह है।

(२) जो शब्द राम, रमा, फल् के तुल्य हैं, उनके रूप राम आदि के तुल्य चलायें। : से पुं०, आ से स्त्री० अम् से नपुं समझें। शेष शब्दों के आगे पुं आदि का निर्देश किया गया है। उनके रूप 'शब्दरूप-संग्रह' में दिए तत्तदन्त शब्दों के तुल्य चलायें। संक्षेप के लिए ये संकेत अपनाए गए हैं :—पुं० = पुंलिंग, स्त्री = स्त्रीलिंग, न० = नपुंसक लिंग।

(३) धातुओं के आगे संकेत किया गया है कि वे किस गण की हैं और उनका किस पद में प्रयोग होता है। धातुओं के रूप चलाने के लिए 'धातुरूप-संग्रह' में दी गई प्रत्येक गण की विशेषताओं को देखें तथा उस गण की विशिष्ट धातु को देखें। तदनुसार रूप चलायें। 'धातुरूप-कोष' में सभी धातुओं के १० लकारों के रूप दिए हैं। धातुएँ अकारादिक्रम से दी गई हैं। उसी प्रकार रूप चलायें। संक्षेप के लिए ये संकेत अपनाए गए हैं:—१ = भ्वादिगण। २ = अदादिगण। ३ = जुहोत्यादिगण। ४ = दिवादिगण। ५ = स्वादिगण। ६ = तुदादिगण। ७ = रुधादिगण। ८ = तनादिगण। ९ = क्र्यादिगण। १० = चुरादिगण। प = परस्मैपद, आ = आत्मनेपद उ = उभयपद।

(४) अव्ययों के रूप नहीं चलते हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। अ० = अव्यय।

(५) विशेषणों के रूप तीनों लिंगों में चलते हैं। जो विशेष्य का लिंग होगा वही विशेषण का लिंग होगा। वि० = विशेषण।

(६) जहाँ एक शब्द के लिए एक से अधिक शब्द दिए हैं, वहाँ कोई-सा एक शब्द चुन लें।

अ

अंगीठी—हसन्ती (स्त्री०)
अंगूठी—अंगुलीयकम्
अंगूठी आकारांकित—मुद्रिका
अंगूर—द्राक्षा, मृद्वीका
अंजीर—अंजीरम्
अखरोट—अक्षोटम्
अग्नि—कृशानुः (पुं०) जातवेदस् (पुं०)
अचार—शुक्तिम्
अच्छा छगना—रुच् (१ आ०), स्वद् (१ आ)
अच्छा है"न कि—वरं न (अ०)
अटारी—अट्टः
अध्वर-वीयर (आसिया)—सर्जीरकम्
अतिथि—अभ्यागतः, अतिथिः, अभ्यागता
अतिथि-सत्कर्ता—मातिथेयः
अदरक—आर्द्रकम्
अदल-बदल—विनिमयः
अधिकार होना—प्र + भू (१ प०)
अधीन—आयत्तः (वि०)
अध्यापक—अध्यापकः, उपाध्यायः
अनर्थ—अनर्थम्

अनार—दाडिमम्
अनुमत्र करना—अनु + मू (१ प)
अनुसन्धान करना—अनुसं + धा (१ उ)
अन्दर—अन्तः (अ०), अन्तरे (अ)
अन्न—अन्नम्
अन्न खेत में—धान्यम्
अपनाना—स्वी + कृ (८ उ)
अपमान करना—अव + ज्ञा (९ उ)
अप्राप्ति—अनुपलब्धिः (स्त्री)
अफवाह—लोकापवादः, वार्ता
अभिनय करना—अभि + नी (१ उ०)
अभ्रक—अभ्रकम्
अमचूर—आम्रचूर्णम्
अमरूद—आम्रफलम्, उदुम्बरफलम्
अमावट—आम्रातकम्
अमावस्या—दर्शः, अमावस्या
अमृत—पीयूषम्, सुधा
अरहर—आढकी (स्त्री)
अर्गला—अर्गलम्
अलग होना—वि + युज् (४ आ)
अलमारी—काष्ठमञ्जूषा
अवश्य—नूनम्, ध्रुवम्, न 'न (अ०)
असमर्थ—अक्षम (वि)
असेम्बली हाल—आस्थानम्

आ

आँख—अक्षि (न), नेत्रम्
आँगन—अजिरम्
आँत—अन्त्रम्
आँधी—प्रभञ्जनः
आँवड़ा—आम्रातकम्
आँवला—आमलकी (स्त्री)
आँसू—अश्रु (न)
आक—अर्कः

आकाश—व्योमन् (न), विषत् (न)
आग—हुतवहः, हव्यवाहः (पुं०)
आगन्तुक—आगन्तुः (पुं)
आगे—अग्रे (अ), पुरः (अ)
आग्रह—निर्बन्धः
आजकल—अधुना (अ०)
आज्ञा—शासनम्, नियोगः
आज्ञा देना—अनु + शा (९ उ०)
आठा—पूर्णम्
आड़े का हस्तक्षेप—पराग्रः (स्त्री०)
आद्र—आर्द्रकः (पुं०)
आदर—अभिकरणम्
आदरी—अभिकर्ता (पुं)
आदर पाना—आ + दृ (१ आ०)
आधी रात—निशीथः
आना—आगम् (१ प), अभ्यागम् (१ प), आ + या (२ प)
आ पड़ना—आ + पत् (१ प०)
आपत्तिग्रस्त—आपन्नः (वि०)
आबनूस—तमालः
आभूषण—आभरणम्
आम का बूरा—रसालः, सहकारः, आम्रः
आम का फल—आम्रम्
आम, कलमी—राजाम्रम्
आमदनी—आयमध्ये (तत्सप्तमी)
आम रास्ता—जनमार्गः
आयरन (लोहा)—अयस् (न)
आयात पर चुंगी—आयातशुल्कम्
आयु—आयुष् (न०), वयस् (न)
आराम कुर्सी—सुखासन्दिका
आरी—करपत्रम्
आलस्य करना—तन्द्रय (णिच्)
आलू—आलुः (पुं)
आलू की तिकिया—पत्राङ्गः (पुं)
आलूबुखारा—आलुकम्

आशंका करना—आ + शंक् (१ आ)
आशा करना—आ + शंस् (१ आ)

इ

इकट्ठा करना—सं + चि (५ उ), अव् (१ उ)
इक्षुक—सूक्ष्मदर्शी (वि)
इत्र—गन्धसैन्धम्
इंक पेन्सिल—मसिलेखिका
इन्कम टैक्स—आयकरः
इन्द्र—शतक्रतुः (पुं) मघवन् (पुं), इन्द्रः (पुं)
इन्द्रधनुष—इन्द्रायुधम्
इन्द्राणी—शैलेयी (स्त्री)
इन्धन—इन्धनम्
इन्फ्लुएन्ज़ा 'फ्लू—शीतज्वरः
इमरती—अमृती (स्त्री)
इमली—तिन्तिडीकम्
इम्पोर्ट—आयातः
इलायची—एला
इसलिए—अतः अतएव, ततः (अ)

ई

ईंट—इष्टका
ईंट, पकी—पक्वेष्टका

उ

उगलना—उद् + गृ (६ प)
उगला हुआ—उद्गतम् (वि)
उग्र—तीक्ष्णम्
उचित-अनुचित—उदकम् (न)
उचित है—स्थाने (अ)
उठना—उत्था (१ प) उद्गम् (१ प)
उद् + नम् (१ प)
उठाना—उद्धृ (उद् + नी, १ उ)
उड़द—माषः
उड़ना—उत्पत् (१ प) उड्डी (१ प)
उतरना—अव + तृ (१ प)
उतार—अवरोहः
उत्कंठित—उत्कः
उत्तर, दिशा—उदीची (स्त्री)
उत्तर की ओर—उदक् (उद् + अञ्च्) (पुं)
उत्तरायण—उत्तरायणम्
उत्तीर्ण होना—उत्तृ (उद् + तृ १ प)
उत्थान-पतन—पातोत्पातः
उत्पन्न होना—सं + भू (१ प)
उदार—वदान्यः (त्रयीषा)
उधार—ऋणलेख (तृतीया)
उधार खाते—नाम्नि (नामन् स)
उपजाऊ—उर्वरा
उपभोग करना—उप + भुज् (७ आ)
उपयोग—विनियोगः
उपवास करना—उप + वस् (१ प)
उपेक्षा करना—उपेक्ष् (उप + ईक्ष् १ आ)
उबटन—उद्वर्तनम्
उबालना—स्वद् (१ प)
उल्लंघन करना—उल्लङ्घ् (१ आ), क्रम् (१ उ) अति + इ (१ अ०)
उल्लू—कौशिकः, उलूकः
उस्तरा—क्षुरम्

ऊ

ऊँचा—प्रांशुः (वि)
ऊँट—क्रमेलकः
ऊबड़-खाबड़—उत्खलम्
ऊमी—शाद्वलम्
ऊपर फेंकना—उद्+क्षिप् (६ उ)
ऊसर—ऊषरः

ए

एक एक करके—एकैकशः (अ)
एक ओर से—एकतः (अ)
एक प्रकार से—एकधा (अ)

एक बात—एकवाक्यम्
एक राय वाले—एकमतिः (स्त्री)
एक वेष—एकपरिधानम्
एकान्त में—रहसि (रहस् न)
एक्सपोर्ट—निर्यातः
एजुकेशन सेक्रेटरी—शिक्षासचिवः
एजेन्ट—अभिकर्ता (-र्त्तृ, पुं)
एजेन्सी—अभिकरणम्
एटम बम—परमाण्वस्त्रम्
एडिशनल डाइरेक्टर—अतिरिक्त-निदेशकः

ओ

ओढ़नी—प्रच्छदपटः
ओवरकोट—वरुत्रिका
ओम्—उद्गीथः
ओले—करकाः

क

कंगन—कंकणम्
कंघी—प्रसाधनी (स्त्री)
कंठा—कण्ठाभरणम्
कंडाल—वासिनिः (पुं)
कंधा—स्कन्धः
कंधे की हड्डी—अंसः (न)
ककड़ी—कर्कटिका कर्कटी (स्त्री)
कला का साथी—कलीर्यः
कच्चा—पक्वान्नः (पुं)
काँड़ी—पिष्टिका
कछुआ—कच्छपः
कटहल का पेड़—पनसः
कटहल का फल—पनसम्
कटा हुआ—कृत्तम् (वि)

कटोरा—कटोरम्
कटोरी—कटोरा
कठफोड़ा—कार्ष्णपत्रः
कड़ा, सोने का—करकः
कड़ाह—कटाहः
कड़ाही—खोदनी (स्त्री)
कदम्ब—नीपः
कद्दू—कूष्माण्डः
कपूर—कर्पूरः
कमेर—कर्णिकारः
कप—चषकः
कपाली—भोगाधिप् (पुं)
कबूतर—पारावतः, कपोतः
कब्ज—मलावर्तः
कमर—श्रोणिः (स्त्री०)
कमरख—कर्मरङ्गम्
कमरा—कक्षः
कमल, नीला—इन्दीवरम्, कुवलयम्
कमल लाल—कोकनदम्
कमल श्वेत—कुमुदम्, पुण्डरीकम्, कह्लारम्
कमीज—वुरुक्म्
कमीज पजेन्ट—वुरुकाजीवः
कमरख—कमरङ्गः
करघा—मेखला
करना—वि+धा (१ उ) कर (१प) कृ+य (१ प)
करौंस—करीरः
करेला—कारवेल्लः
करौंदा—करमर्दकः
कर्जा—ऋणम्
कर्जा देने वाला—उत्तमर्णः
कर्जा लेने वाला—अधमर्णः
कलई पुताई की—सुधा
कसरत करना—मल्ल+इ (८ उ)

कसम—कसमः
कलमी आम—एलाम्रम्
कलश—कलशः
कलाई—मणिबन्ध
कलाई से कनी अंगुली तक—करभ
कलाकन्द—कलाकन्द
कली—कलिका
कल्याण का इच्छुक—कल्याणाभिनिवेशिन् (वि)
कवच—वर्मन् (न)
कष्ट करना—आयासः
कसकूट—कांस्यकूट
कस्बा—नगरी (स्त्री)
कहना—अभि+धा (१ उ) मापू (१ आ) उद्+गृ (६ प) उद्+ईर् (१ उ)
कहाँ—क्व, कुत्र (अ)
काँच—काच
काँच का गिलास—काचकंस
काँपना—कम् (१ आ) वेप् (१ आ)
काँसा—कांस्यम्
कागज—कागदः
कागज की रीम—कागदरीमकः
काजल—कज्जलम्
काजू—काजवम्
काटना—कृत् (६ प), छिद् (७ उ) वृ (९ उ)
काम—क्षेत्रम्
काम की याची—कुरुक्षम्
कानखजूरा—कनकजोका
कापी—पत्रिका
काफल—क्षीरपर्णिका
कॉफी—कफ्फी (स्त्री)
काम—कर्मन् (न)
काम आना—उप+युज् (४ आ)
कामदेव—पुष्पधन्वन् (पुं)
कार्टून—उपहासचित्रम्
कार्तिकेय—सेनानीः (पुं)
कार्पोरेशन—निगमः
कालेज—महाविद्यालयः
कितने—कति (वि)
किनारा—वेला
किरण—मयूखः, गभस्तिः (पुं) दीधिति (स्त्री)
किवाड़—कपाटम्
किवाड़ के पीछे का डंडा—अर्गल
किशमिश—शुष्कद्राक्षा
किसान—कृषीवलः कीनाशः
कीचड़—पङ्क, कर्दम
कील—कीलः
कुँदरू—कुन्दरु (पुं)
कुटिया—कुटी (स्त्री)
कुतिया—सरमा धनी (स्त्री)
कुत्ता—श्वन् (पुं), कौलेयकः शारमेयः
कुदाल—खनित्रम्
कुम्भ—कुम्भम्
कुप्पी—कुप्यः (स्त्री)
कुबड़ा—कुब्जः
कुबेर—कुबेरः मनुष्यधर्मन् (पुं)
कुसुम की लता—कुसुमिनी (स्त्री)
कुम्हार—कुलालः, कुम्भकारः
कुर्ता—कंचुकः
कुर्सी—आसन्दिका
कुलपरम्परा—कुलक्रमम्
कुल्फी—कुल्फी (स्त्री)
कुश्ती—मारवाड़
कुस्तीम—अभिक्रन्द
कूटना—अवहननम्

कूड़ा—अवकरः
कूदना—प्लु (१ आ)
कृपाण—कौक्षेयकः
केवड़ा—कुबेरः
केतकी—कन्दु (पु स्त्री)
केबिनेट—मन्त्रिपरिषद् (स्त्री)
केसर—किञ्जल्कः (पु)
केला—कदलीफलम्
केवड़ा—केतकी (स्त्री०)
कैंची—कर्तरी (स्त्री)
कै—वमथुः (पु)
कोंपल—किसलयम्
कोट—प्राकार
कोठरी—क्युकः
कोतवाल—कोट्टपालः
कोतवाली—कोट्टपालिका
कोमल स्वर—मन्द्रस्वरः
कोयल—परभृतः, कोकिलः
कोरड़ू—रक्तपलम्
काहमी—कपोतिः (स्त्री)
कौआ—घ्राङ्क्षः, वायसः, काकः
क्या—किम्, किन्नु, नन्नु (अ)
क्या काम—किम्, को अर्थः, किं प्रयोजनम्
क्योंकि—यतो हि यस्मात् (अ)
क्रीड़ा करना—क्रीड् (१ प), रम् (१ आ)
क्रीम—घृतः
क्रोध करना—कुध् (४ प), कुप् (४ प)
क्रोधी—अमर्षणः
क्षत्रिय—क्षत्रियः, द्विजातिः द्विजन्मन् (पु)
क्षमा करना—मृष् (१ उ), क्षम् (१ आ, ४ प)

ख

खंजन—खञ्जनः
खजूर—खर्जूरम्
खड्ग—खड्गः, निस्त्रिंशः
खपड़ा—खर्परः
खपड़ैल का—खर्परहरम् (वि)
खम्भा—स्तम्भः
खरबूजा—खर्बुजम्
खरीद—क्रयः
खरीदना—क्री (१ आ) क्रीञ् (९ उ)
खर्च करना—विनियोगः
खलिहान—खलम्
खस्ता पूरी—खाकुली (स्त्री०)
खाँसी—कासः
खाजा—मधुशीर्षः
खाट—खट्वा
खाद—क्षारम्
खान—खनिः (स्त्री)
खाना—भक्ष् (१ उ) खाद् (१ प), भुज् (७ आ)
खाया हुआ—जग्धम्
खिचड़ी—कृसरः
खिड़की—गवाक्षः, वातायनम्
खिन्न होना—खिद् (१ प)
खिरनी—क्षीरिका
खींचना—कृष् (१ प)
खीर—पायसम्
खील—लाजाः (बहु०, बहु०)
खुमानी—खुमानी (स्त्री)
खूँटी—नागदन्तकः
खून—रुधिरम्, असृज् (न)
खेत—क्षेत्रम्
खेती—कृषिः (स्त्री)

खेती के औजार—कृषियन्त्रम्
खेल का मैदान—क्रीडाक्षेत्रम्
खैर—खदिरः
खोजना—गवेष् (१ उ)
खोदना—टंक् (१ उ), खन् (१ उ)
खोवा—क्लिन्नः

ग

गंडासा—दात्रः
गगरा—गर्गरः
गगरी—गर्गरी (स्त्री)
गजक—गजकः
गजा—खस्वादः
गडरिया—अजाजीवः
गदा—गदा
गद्दा—मृदुस्तरः
गधा—खरः
गन्धक—गन्धकः
गम बूटा—अनुपदीना
गरजना—स्तनितम्
गर्जन—भीषा
गर्मी (सूजाक)—उपदंशः
गला—कण्ठः
गली—वीथिका
गवेषणा करना—गवेष् (१ उ)
गाँव—ग्रामः
गाजर—गृञ्जनम्
गाय—गो (स्त्री), धेनुः (स्त्री)
गाल—कपोलः
गाहक—ग्राहकः
गिद्ध—गृध्रः
गिनना—गण् (१ उ)
गिना हुआ—संख्यातम् (वि)
गिरना—पत् (१ प) निपत् (१ प), भ्रंश् (१ आ)
गिरहकट—ग्रन्थिभेदकः
गिलास—कंसः
गिलोय—अमृतवल्ली (स्त्री)
गीदड़—गोमायुः (पुं)
गुड़िया—पंथाकः
गुणगान करना—कुप् (१ उ)
गुप्त—निभृतम् (वि)
गुप्ती (कटारी)—करवालिका
गुफा—गह्वरम्
गुब्बारा—स्रवकः
गुलाब—सुरूपम्
गुस्सा करना—कुप् (४ प) कुप्
गूगड़—गुग्गुलः
गूलर—उदुम्बरम्
गेंद्—कन्दुकः
गेंदा—गन्धपुष्पम्
गेंडुरी—वीथिका
गेहूँ—गोधूमः
गोबर—गोमयम्
गोमी—गोधिका
गोली—गोलिका गुलिका
गोह—गोधा
ग्रीष्म ऋतु—निदाघः, ग्रीष्मर्तुः (पुं)
ग्लेशियर—हिमतरित् (स्त्री)

घ

घंटा (समय)—होरा
घटना (होना)—पद् (१ आ)
घटना (कम होना)—अपचि (५ उ)
घटिया—अनु (अ), उप (अ)
घड़ा—घटः, कुम्भः
घड़ी—घटिका
घर—सदनम्, गृहम्, भवनम्
घरेलू फर्नीचर—गृहोपस्करः
घाटी—अधित्यका (स्त्री)

घायल—आहतः (वि)
घी—आज्यम्, सर्पिष् (न०)
घुँघरू—किङ्किणी (स्त्री)
घुघनी (भाड़ मटर)—कुलमाषः
घुटना—जानु (पुं न)
घुड़सवार—वाहिन् (पुं) अथवा
योधिन् (पुं)
घूँघट काढ़ना—अवगुण्ठय (णिच्)
घूमना—भ्रम् (४ प) चर् (१ प),
संचर् (१ प)
घेरा—वृत्तिः (स्त्री)
घेवर (मिठाई)—मृदुपूपः
घोंसला—कुलायः
घोड़ा—अश्वः वाजिन् (पुं), रथ्य
वाजिन् (पुं), हय
घोषणा करना—घुष् (१ उ)

च

चकवा—चक्रवाकः
चकोतरा (फल)—मधुकर्कटी (स्त्री)
मधुजम्बीरम्
चक्कर खाना—परि+भ्रम् (१ आ)
चचेरा भाई—पितृव्यपुत्रः
चटकनी—कीलः
चटनी—अवलेहः
चट्टान—शिला
चढ़ाव—आरोहः
चतुःशाला—चतुःशालम्
चतुर—विदग्धः (वि)
चना—चणकः
चन्द्रमा—सुधांशुः (पुं), विधुः (पुं),
सोमः
चपत—चपेटः
चपरासी—सेवाहारकः, प्रेष्यः
चप्पल—पादुका पादुः (स्त्री)
चबूतरा—रथ्यन्दिकम्, चत्वरम्
चबूतरा घर से बाहर का—अलिन्दः
चमकना—भास् (१ आ०), द्युत् (१
आ), दिव् (४ प)
चमचम (मिठाई)—चमत्कारम्
चमड़ा—चर्म (स्त्री)
चमार—चर्मकारः
चमेली—मालती (स्त्री)
चम्पा—चम्पकः
चमास—चमसः
चरना—चर् (१ प)
चर्बी—वसा
चर्बी हड्डी को—मज्जा
चलना—चल् (१ प) प्र+वृत् (१ आ),
प्र+स्था (१ आ)
चलाना—संचालय (णिच्)
चाँदनी—कौमुदी (स्त्री), ज्योत्स्ना
चाँक, खिसने की—कठिनी (स्त्री)
चाचा—पितृव्यः
चाची—पितृव्या
चाट—अवदंशः
चातक—चातकः
चादर—प्रच्छद
चाम्पेय—कुब्जपतिः (पुं)
चापलूसी—स्नेहमर्पितम्
चाबुक—तोत्त्रम्
चाय—चायम्
चारों ओर मुड़ने वाली कुर्सी—पर्यः
चारों वर्ण—चातुर्वर्ण्यम्
चाषक—शीर्दिः (पुं)
चावल भूसी-रहित—तण्डुलः
चाहना—ईह् (१ आ), वाञ्छ्
(१ प), कांक्ष् (१ प)
चिड़िया—पक्षिन् (पुं), खगः
चित्त—चेतस् (न), चित्तम्
चिन्हकार—चिह्नकारः

चिमटा—संदंशः
चिरचिटा (ओषधि)—अपामार्गः
चिरौंजी—प्रियालम्
चिटमची—हस्तप्रावनी (स्त्री)
पतद्ग्रहा
चिह्न—लक्ष्म लक्ष्मन् (न)
चीड़ (वृक्ष)—सरलदारुः (पुं)
चीनी—सिता
चीफ मिनिस्टर—मुख्यमन्त्रिन् (पुं)
चीरना—छिद् (७ उ)
चीख—चिल्लः
चुंगी—शुल्कः, शुल्कशाला
चुंगी का अध्यक्ष—शौल्किकः
चुगना—चि (५ उ)
चुगलखोर—शिखिडः
चुनना—चि (५ उ), अव + चि (५ उ)
चुन्नी (ओढ़नी)—प्रच्छदपटः
चुन्नी (रत्न)—मणिक्यम्
चुप (चुप्पी)—मौनम् (अ)
चुराना—मुष् (९ प) हृ (१ उ)
चूँकि—यतु (अ) यतोहि (अ)
चूड़ी—काचवलयम्
चूल्हा—चुल्लिः (स्त्री) चुल्ली (स्त्री)
चेचक—शीतला
चेष्टा करना—चेष्ट् (१ आ)
चोंच—चञ्चुः (स्त्री) चंचूः (स्त्री)
चोट—क्षतम्
चोट मारना—हन् (२ उ)
चोटी—शिखा वालुः (पुं, न) गृहम्
चोर—तस्करः चौरः स्तेनः, पारदारः
चौक—चतुष्पथः, शृंगाटकम्
चौकन्ना—प्रत्युत्पन्नमतिः (वि)
चौमंजिला—चतुर्भूमिकः
चौराहा—चतुष्पथः, शृंगाटकम्

छ

छज्जा—वलभिः (स्त्री) पक्ष्मी (स्त्री)
छत—छदिः (स्त्री)
छाता (छत्र)—आतपत्रम्
छाती—वक्षस् (न) उरस् (न)
छात्र—छात्रः, अध्येतृ (पुं) विद्यार्थिन् (पुं)
छात्रा—अध्येत्री (स्त्री) छात्रा
छापना—मुद्रय् (चिप्)
छिपकली—गृहगोधिका
छिप जाना—तिरो + भू (१ प)
छिपना—ली (४ आ) नि + ली (४ आ) अन्तर् + धा (१ उ)
छीटना—क्षो (४ प) लष् (१ प)
छीटा हुआ—लष्टम् (वि)
छुही—खटिः (स्त्री) अवकाशः
छुहारा—सुपारम्
छेद करना—छिद् (१ उ)
छेनी—टङ्कनः
छोटा भाई—अनुजः
छोड़ना—सृज् (१ प) मुच् (६ उ) हा (१ प) अस् (४ प) अप + मस् (४ प), उत्सृज् (६ प)
छोड़ा हुआ—प्रत्याख्यातः, परित्यक्तः (वि)

ज

जंगली चावल—स्यामाकः (सौवा)
जंघा—ऊरुः (पुं)
जंजीर—शृंखला
जंवाई—जामातृ (पुं)
जड़—मूलम्
जड़ से—मूलतः
जन्म लेना—प्रादुर् + भू (१ प)
जबतक तबतक—यावत् तावत् (अ)
जरा—किञ्चित् (अ)
जर्मन सिल्वर—नागकाँस्यम्

जल—तोयम्, अम्बु (न), वारि (न०), नीरम्
जलकण—शीकरः
जलतरंग (बाजा)—जलतरङ्गः
जलना—जल् (१ प०), इन्ध् (७ आ०)
जलपान—जलपानम्
जल-सेनापति—नौसेनाध्यक्षः
जलाना—दह् (१ प)
जलूस—जलयात्रा
जलेबी—कुण्डली (स्त्री)
जवाकुसुम (फूल)—जवाकुसुमम्, जवापुष्पम्
जस्त—यशदम्
जहाज, पानी का—पोतः
जहाज(विमान)—व्योमयानम्, विमानम्
जागना—जाग् (२ प)
जादूगर—मायाकारः, ऐन्द्रजालिकः, मायाविन् (पुं)
जानना—ज्ञा (९ उ), अव+गम् (१ प), अधि+गम् (१ प)
जानेवाला—अभिज्ञः
आना—गम् (१ प), इ (२ प), या (२ प)
जामुन—जम्बुः (स्त्री), जम्बूः (स्त्री०)
जार, काँच का—काचपटी (स्त्री)
जाल—वागुरा, जालम्
जिगर—यकृत्
जितेन्द्रिय—दान्तः
जिद्द—निर्बन्धः
जिन्द—प्रावरणम्
जीजा (बहनोई)—भगिनीपतिः, भगिनीपतिः (पुं)
जीतना—जि (१ प), वि+जि (१ आ)
जीभ—रसना, जिह्वा
जीव—जीवः

जीविका—वृत्तिः (स्त्री), जीविका
जुकाम—प्रतिश्यायः
जुती हुई भूमि—सीता
जुलाहा—तन्तुवायः
जुआरी—द्यूतकारः
जूड़े की जाली—वेणीजालम्
जूता (बूट)—उपानद् (स्त्री)
जूता सीने की सूई—चर्मभेदिका
जूही (फूल)—यूथिका
जोड़ काटना—ग्रन्थि+भिद् (७ उ०)
जेल—कारा, कारागारम्, बन्धिगृहम्
जैसा वैसा—यथा तथा (अ०)
जोड़ना—सं+योजय (णिच्)
जोतना—कृष् (१ प , ६ उ)
जौ—यवः
ज्ञात—अवगतम्
ज्योंही त्योंही—यावत् तावत्(अ)
ज्योति—ज्योतिस् (न), ज्योचिस् (न)
ज्वार—यवनालः

झ

झगड़ा—कलहः
झगड़ालू—कलहप्रियः, कलहकामः
झरना—प्रपातः
झाड़ी—कुञ्जः, निकुञ्जः
झाड़ू—मार्जनी (स्त्री)
झील—तरली (स्त्री)
झील, बड़ी—ह्रदः
झुकना—नम् (१ प), अवनम्, प्रणम्
झुकाना—अवनमय (णिच्)
झोंपड़ी—उटजः, पर्णशाला

ट

टकसाल—टङ्कणालः
टकसाल का अध्यक्ष—टङ्कणालाध्यक्षः
टखना (पैरकी हड्डी)—गुल्फः
टमाटर—रक्तफलः

टब (पानी का)—द्रोणिः (स्त्री०), द्रोणी (स्त्री०)
टाइप करना—टङ्क् (१ उ०)
टाइप-राइटर—टङ्कनयन्त्रम्
टाइपराइड—वनिपातज्वरः
टाइम-टेबुल—समय-सारणी (स्त्री०)
टोंपी—गुल्फ
टिण्डा—डिण्डिशः
टिकुली (बेंदी)—ललाटाभरणम्
टिड्डी—शलभः
टीयर गैस—धूमास्रम्, अश्रुधूमः
टी (चाय)—चायम्
टी० बी०(तपैदिक)—राजयक्ष्मन् (पुं), राजयक्ष्मः
टीका (मंगलार्थ)—तिलकिका
टीन—त्रपु (न)
टीन की चद्दर—त्रपुफलकम्
टी पॉट—चायपात्रम्
टी पार्टी (चाय-पार्टी)—चापीति (स्त्री)
टूटा हुआ—भग्नम् (वि)
टूथ पाउडर—दन्तचूर्णम्
टूथ पेस्ट—दन्तपिष्टकम्
टेमिस का खेल—प्रक्षिप्तकन्दुकक्रीडा
टेलर (दर्जी)—सैविकः
टेलर-बॉक—सैविकपर्टिका
टैक्स (शुल्क)—करः
टैक्स—करः
टोस्ट—मद्यपूपः
ट्रैक्टर—स्वनित्रम्

ठ

ठगना—वञ्च् (१ भा०), वञ्चित्वा (१ उ०)
ठीक (सत्य)—परमार्थतः, परमार्थेन, तथ्यतः (अ)
ठीक घटना—उप+पद् (४ आ)
ठुकराना—वि+नद् (१ प)
ठोकना (कील आदि)—कील (१ प)

ड

डंठल—वृन्तम्
डँसना—दंश् (१ प०)
डंडी मारना—कूटमान+हृ (८ उ)
डबल रोटी—सम्पूपः
डस्टर—मार्जकः
डाँटना—भर्त्स् (१ आ०)
डाइनिंग टेबुल—भोजनफलकम्
डाइनिंग रूम—भोजनगृहम्
डाइरेक्टर(प्रबन्धक)—शिक्षासंचालकः
डाक्टर—भिषग्वरः
डालना—नि+क्षिप् (६ उ०) पातय(प्रेर)
डिनर पार्टी—सहभोजः, सभिक्षा (स्त्री)
डिप्टी डाइरेक्टर(शिक्षा)—उपशिक्षा संचालकः
डूबना—मस्ज् (६ प)
डेस्क—लेखनपीठम्
ड्राईंग रूम—उपवेशगृहम्
ड्राईक्लीनर—निर्मेजकः

ढ

ढकना—छद् (५ उ)
ढका हुआ—प्रच्छन्न (वि०)
ढाक—पलाशः
ढिंढोरा—डिण्डिमः
ढीठ—धृष्टः
ढूँढना—अन्विष् (अनु+इष् ४ प), मृग्य् (१ उ)
ढेला—लोष्टम्
ढाल—फलकः
ढोलक—डोलकः

त

ार (उबलेवी आदि पकाने की)—पिठ-पचनम्

ारिया—उपधानम्, उपधा

ाट—तटः, कूलम्

ातिया (मिरङ्ग)—तरल

ात्रूर (रोटी पकाने का)—कन्दु (स्त्री)

ापाना—तप् (१ प)

ापैदिक—राजयक्ष्मः, राजयक्ष्मन् (पुं)

ावतफ—तावत् (अ)

ावला—मुरजः

ारंग—वीचिः (स्त्री), ऊर्मिः (स्त्री), तरङ्ग

ारबूज—काश्मिन्दम्, तनुजम्

ारीफ—उपलक्षा

रावजू—तुम्ब

रवा—अलीपम्

रसला—चिपणा (स्त्री)

रहमद (लुंगी)—प्रावृतम्

रहतरी—तरणक

ाँवा—ताम्रकम्

ाँबे के पतन बनाने वाला—ताम्रिकः

ाड़—ताडः

ानपूरा (बाजा)—तानपूरः

ारा—तारः, ज्योतिष् (न)

ालाब—तटाक (न)

ाहरी (पुआल)—पुआलः

तिजोरी—लौहसम्पुटः

तिपाई—त्रिपादिका

तिमंजिला (मकान)—त्रिभूमिकः

तिरस्कार—अवज्ञा

तिरस्कार होना—तिरस्+कृ (कर्म)

तिरस्कृत—विप्रकृतः, तिरस्कृतः

तिरस्कृत करना—परि+भू (१ प), तिरस्+कृ (८ उ)

तिल—तिलः

तिलक—तिलकम्

तिल्ली—प्लीहा

तीव्र—तीक्ष्णम् (वि)

तीव्र स्वर—तार

तीसरा पहर—अपराह्णः

तुच्छता—अकिंचित्करत्वम्

तुरही (बाजा)—दुन्दुभिः

तूणीर—तूणीर

तूतिया—ताम्रांजनम्

तृप्त करना—तर्पय (णिच्)

तृप्त होना—तृप् (४ प, १ उ)

तेंदुआ—तरक्षुः (पुं)

तेज—तीव्रम्, घातम् (तीक्ष्ण)

तेज (ओज)—तेजस् (न)

तेज (तीक्ष्ण) करना—तिज् (१ आ०)

तेढ़ी—वैकारः

तैरना—तॄ (१ प), सं+तॄ (१ प)

तैयार—निष्पन्नम्, संपन्नम्, सज्जः

तैयार होना—सं+पद् (४ आ), सं+नह् (४ उ०)

तो—तु, तावत्, ततः (अ)

तोड़ना—त्रुट् (१ आ), भिद् (७ उ), भञ्ज् (७ प), खण्ड् (१ उ)

तोता—शुकः, कीरः

तोप—शतघ्नी (स्त्री)

तोरई—कोशिनी (स्त्री)

तोल—तोलः

तोलना—तोलनम्

तोलना—तुल् (१ उ)

त्यक्त—उज्झितम्, त्यक्तम्, उत्सृष्टम्

त्यचा—त्वच् (स्त्री)

त

त (अलेची आदि पकाने की)—पिष्ट-पचनम्
तिया—उपधानम् उपधा
ा—तट:, तूलम्
ंपा (सिरड़)—वरटा
टूर (रोटी पकाने का)—कन्दु: (स्त्री)
ना—तप् (१ प०)
तपाने का—तापनम्, तापनस्थम् (पु)
तबतफ—व्याकुल (अ०)
तबला—मुरज:
तरंग—वीचि: (स्त्री) ऊर्मि: (स्त्री), तरङ्ग
तरबूज—काण्डीरम्, वतुलम्
तराई—उपत्यका
तरामू—तुम्ब
तवा—कन्दीपम्
तसल्ली—विपणा (स्त्री)
तहमद (लुंगी)—पट्टसम्
तश्तरी—तापव
ताँबा—ताम्रकम्
ताँबे के पतन बनाने वाला—ताम्रिक:
ताड़—ताल:
तामपूरा (बाजा)—तानपूर:
तारा—तारा, ज्योतिष् (न)
ताल्लाब—तल (न)
ताहरी (पुलाव)—पुलाक:
तिजोरी—लौहसम्पुट
तिपाई—त्रिपदिका
तिमंजिला (मकान)—त्रिभूमिक:
तिरस्कार—अवज्ञा
तिरस्कार करना—तिरस्+कृ (कर्म)
तिरस्कृत—विमानित, तिरस्कृत

तिरस्कृत करना—परि+भू (१ उ०), तिरस्+कृ (८ उ)
तिल—तिल:
तिलक—तिलकम्
तिल्ली—प्लीहा
तीक्ष्ण—तीक्ष्णम् (वि)
तीव्र स्वर—तार:
तीसरा पहर—भग्नाह्न:
तुच्छता—अकिंचित्करत्वम्
तुरही (बाजा)—तूर्यम्
तूणीर—तूणीर:
तृतिया—तृतीयांशम्
तृप्त करना—तर्पय (णिच्)
तृप्त होना—तृप् (४ प १० उ)
तेंदुआ—तरक्षु: (पु)
तेज—तीव्रम्, घातम् (तीक्ष्ण)
तेज (भाव)—तेजस् (न०)
तेज (तीक्ष्ण) करना—तिज् (१ भ्वा)
तेली—तैलिकार:
तैरना—तॄ (१ प) प्लु (१ प)
तैयार—निष्पन्नम् उपपन्नम्, सज्जम्
तैयार होना—सं+पद् (४ आ), सं+नह् (४ उ)
तो—तु, यदि तर्हि (अ)
तोड़ना—त्रुट् (१ आ) भिद् (७ उ०), भञ्ज् (७ प), खण्ड् (१० उ)
तोता—शुक:, कीर:
तोप—शतघ्नी (स्त्री)
तोरई—कोशिनी (स्त्री०)
तोल—तोल:
तौलना—तोलनम्
तौलना—तुल् (१ उ)
त्यक्त—उज्झितम् त्यक्तम्, उत्सृष्टम्
त्वचा—त्वच् (स्त्री)

नाविन—नप्त्री (स्त्री०)
नाती—नप्तृ (पु)
नाना—मातामहः
नानी—मातामही (स्त्री)
नापना—मा (२ प , १ आ०)
नारंगी—नारंगम्
नारियल—नारिकेलः(पुंस), नारिकेलम्(पक्ष)
नाला—निर्झरः
नाली—प्रणालिका नाली (स्त्री),
नालिः (स्त्री)
नाव—नौः (स्त्री०), नौका
नाविक—कर्णधारः, नाविकः
नासपाती—अमृतफलम्
नास्ता—कल्यवर्तः प्रातरशः
निःसंकोच—निस्त्रपम्, निर्भम्भम्
निःशङ्कम्
निकलना—निः+सृ (१ प), प्र+भू
(१ प) उद्+भू (१ प), निर्+
गम् (१ प), उद्+गम् (१ प)
निकालना—निःसारय (णिच्)
निगलना—नि+गृ (६ प)
निचोड़ना—मृ (५ उ)
निन्दा करना—निन्द् (१ प), अभि+
क्षिप् (६ उ०)
निन्दित—अवगीतः, विगीतः, निन्दितः
निब—लेखनीमुखम्
निमोनिया—प्रलपकज्वरः
नियम—नियमः
निरन्तर—अभीक्ष्णम्,अजस्रम्, अनवरतम्
निरपराध—अनागस् (पु) निरपराधः
निर्णय करना—निर्+धी (१ उ)
निर्णय—निर्णयम्, न्यायशुद्धिः
निर्यात (एक्सपोर्ट)—निर्यातः
निर्यात पर शुल्क—निर्यातशुल्कम्
निवाड़—निवारः

निशान लगाना—चिह्न् (१ उ)
निश्चय करना—निधि(निस्+धि ५ उ)
निश्चय से—मूलम् खलु, वै नाम (अ)
नीच—निकृष्टः अधम अपकृष्ट, अपसदः
नीड़—जर्भरम्
नीबू, छोटा—जम्बीरकम्
नीबू, बिजौरा—मातुलुङ्गः
नीम—निम्बः
नीड—नीडी (स्त्री)
नीलकण्ठ (पक्षी)—चाषः
नीलम (मणि)—इन्द्रनीलः
नील लगाना—नीली + इ (८ उ)
नट (जाल)—जालम्
नेम—लोचनम्, नेत्रम्, चक्षुष् (न)
नेल कटर—नखनिकृन्तनम्
नेल पालिश—नखरञ्जनम्
नेवारी (फूल)—नवमालिका
नोट—नामकम्
नौकर—कर्मकरः, भृत्यः, किङ्करः
नौका, छोटी—डुपः
नौ रस—नव रसाः
न्योता देना—नि+मन्त्र् (१ आ)

प

पकवान—पक्वान्नम्
पकाना—पच् (१ उ)
पका हुआ—पक्वम्
पकौड़ी—पक्वटिका
परवल (साग)—पटोलः
पटरा (खेत बराबर करने का)—
लोष्टभेदनः
पट्टी—पट्टिका
पठार—अधित्यका
पढ़ना—पठ् (१ प), नि+पठ् (१ प)
पढ़ाना—पाठय(णिच्) अध्यापय(णिच्)
पतंगा—शलभः

देवरानी—यातृ (स्त्री)
देहली (द्वार की)—देहली (स्त्री)
दो-तीन—द्वित्राः (वि)
दोनों प्रकार से—उभयथा (अ०)
दोपहर—मध्याह्न
दोपहर के बाद का समय (p. m.)—अपराह्णः
दोपहर से पहले का समय (a. m.)—पूर्वाह्णः
दो प्रकार से—द्विधा (अ)
दोष छुड़ाना—क्षम् (१ आ०)
द्रोह करना—द्रुह् (४ प)
द्वार—द्वारम्, प्रतीहारः
द्वारपाल—प्रतीहारः प्रतीहारी (स्त्री)

ध

धड़—कबन्धः
धतूरा—धत्तूरः
धन—धनम् वित्तम्, द्रविणम्, संपद् (स्त्री)
धनिया—धान्यकम्
धर्मार्थ यज्ञादि—क्रियापूर्तम्
धनुर्धर—धन्विन् (पुं), धनुर्धरः
धनुष—कार्मुकम्, इक्ष्वाकः, कोदण्डम्, चापः
धमकाना—तर्ज् (१० आ)
धागा—सूत्रम्, तन्तुः (पुं०)
धान (भूसीसहित)—व्रीहयः
धार रखने वाला—क्षुरमार्जकः
धारण करना—भृ (१ उ०, १ उ)
धार रखना—तीक्ष्णय (णिच्), धान् (१ उ)
घुमाना (फंकड़ आदि फूटने का)—कोटिय-
धूप—आतपः
धूल—रजस् (न), पांसुः (पुं), धूलिः (स्त्री), रेणुः (पुं०)
धोखा—वञ्चनम्
धोना—क्षालय् (१ उ), प्र+क्षल् (१ उ), निज् (३ उ०)
धोबिन—रजकी (स्त्री०)
धोबी—रजकः, निर्णेजकः
धौंकनी—भस्त्रा
ध्यान देना—अव+धा (३ उ०)
ध्यान रखना—अपेक्ष् (अप+ईक्ष् १ आ०)
ध्यान से देखना—निरीक्ष् (१ आ)

न

नक्षत्र—नक्षत्रम्
नगद—मूल्येन (मूल्यात्)
नगर—पत्तनम्
नगाड़ा—दुन्दुभिः (पुं , स्त्री)
नदी—आपगा, सरित् (स्त्री०), निम्नगा, तरङ्गिणी
नमेद—नवनीत (स्त्री०)
नपुंसक—क्लीबम्, नपुंसकम् (—क)
नफीरी (बीन बाजा)—वीणावादनम्
नमक—लवणम्
नमक, सौंभर—रोमकम्, रौमकम्
नमक सेंधा—सैन्धवम्, सैन्धवः
नमकीन (अन्न)—लवणान्नम्
नमकीन खेत—ऊषरः
नम्र—विनीतः, नम्रः (वि)
नलाई (खेत की सफाई)—क्षेत्रपरिष्कारः
नवग्रह—नव ग्रहाः
नष्ट होना—नश् (४ प), भ्रंश् (१ आ०), उद्+वस् (१ प०)
नस—शिरा
नाखून दूसा—नखक्षतम्
नाखूनों का (घाव)—नखक्षतजम्
नाद—नादित
नाक—नासा, नासिका, नास
नाक का फूल—नासापुटम्
नाचना—नृत् (४ प)
नाड़ी—नाडिः (स्त्री), नाडी (स्त्री)

नातिन—नप्त्री (स्त्री०)
नाती—नप्तृ (पुं)
नाना—मातामह
नानी—मातामही (स्त्री)
नापना—मा (२ प १ आ)
नारंगी—नारङ्गम्
नारियल—नारिकेल (वृक्ष), नारिकेलम् (फल)
नाला—निझरः
नाली—प्रणालिका नाली (स्त्री), नालिः (स्त्री)
नाव—नौ (स्त्री) नौका
नाविक—कर्णधारः, नाविकः
नाशपाती—अमृतफलम्
नाश्ता—कल्यवर्तः, प्रातराश
निःसंकोच—विसम्भम् विश्रम्भम् निःशङ्कम्
निकलना—निः+सृ (१ प) प्र+भू (१ प), उद्+भू (१ प) निर्+गम् (१ प), उद्+गम् (१ प)
निकालना—निःसारय (णिच्)
निगलना—नि+गृ (६ प)
निचोड़ना—सु (५ उ)
निन्दा करना—निन्द् (१ प), अप+क्षिप् (६ उ)
निन्दित—अवगीतः, विगीतः, निन्दितः
निब—लेखनीमुखम्
निमोनिया—प्रलपकज्वरः
नियम—नियमः
निरन्तर—अभीक्ष्णम्, अजस्रम्, अनवरतम्
निरपराध—अनागस् (पुं), निरपराधः
निर्णय करना—निर्+क्षी (१ उ)
निर्मय—निर्भयम्, नश्चयद्धुः
नियात (एक्सपोर्ट)—निर्यातः
नियात पर शुल्क—निर्यातशुल्कम्
नियाड़—निवारः

निशान लगाना—चिह्न् (१ उ)
निश्चय करना—निश्चि (निस्+चि ५ उ)
निश्चय से—नूनम् खलु, वै नाम (अ)
नीच—निकृष्टः, अधम अपकृष्ट अपसदः
नीबू—जम्बीरम्
नीबू कागजी—जम्बीरकम्
नीबू बिजौरा—बीजपूरः
नीम—निम्बः
नीला—नीली (स्त्री)
नीलकण्ठ (पक्षी)—चाषः
नीलम (मणि)—इन्द्रनीलः
नील लगाना—नीली+इ (८ उ)
नेट (जाल)—जालम्
नेत्र—लोचनम्, नेत्रम् चक्षुष् (न)
नेल कटर—नखनिकृन्तनम्
नेल पालिश—नखरञ्जनम्
नेवारी (फूल)—नवमालिका
नोट—लेखकम्
नौकर—कर्मकरः, भृत्यः, किङ्करः
नौका छोटी—उडुपः
नौ रस—नव रसाः
न्योता देना—नि+मन्त्र् (१ आ प)

पकवान—पक्वान्नम्
पकाना—पच् (१ उ)
पक्का घुमा—पक्कम्
पकौड़ी—पक्वटिका
परवल (साग)—पटोलः
पठरा (खेत बराबर करने का)—लोष्टभेदनः
पट्टी—पट्टिका
पटार—अक्षिस्फोटः
पढ़ना—पठ् (१ प), नि+पठ् (१ प)
पढ़ाना—पाठय (णिच्), अध्यापय (णिच्)
पतंगा—शलभः

पतला—अपचिता तनुः (वि), कृश
पताका—वैजयन्ती (स्त्री०), पताका
पतीली—स्थाली (स्त्री)
पत्ता—पर्णम् , पत्रम्
पत्थर—पाषाण(पुं) अश्मन्(पुं) उपलः
पद्मसेला (सज्जाना)—पद्मसेला
पद्मसमूह—नलिनी (स्त्री)
पनडुब्बी—जलान्तरिक्षपोत
पनघारी (पानवाला)—ताम्बूलिक
पन्ना (रत्न)—मरकतम्
पपड़ी (मिठाई)—पर्पटी (स्त्री)
परकोटा—प्राकारः
परवाह करना—ईह् (१ आ), प्र+ईह् (१ आ)
परौंठा—पूपिका
परागः—मकरन्दः, परागः
परास (फूँस)—पलाशः
परीक्षा करना—परीक्ष्(परि+ईक्ष् १ आ)
परोसना—परि + वेषय (णिच्)
पर्वत—अद्रिः(पुं),गिरिः(पुं),भूधरः(पुं)
पलङ्ग—पल्यङ्कः
पलक—पक्ष्मन् (न)
पवित्र—पूतम् पवित्रम् पावनम् (वि)
पश्चिम—प्रतीची (स्त्री)
पश्चिम की ओर—प्रत्यक् (अ)
पहनना—परि + धा (१ उ)
पहलवान—मल्लः
पहुँचना—आ+गम् (१ प), प्र+आप् (५ प०)
पहुँचाना—प्रापय (णिच्)
पहुँची (गहना)—कटकः
पाँच ठः—पञ्चपः
पाउडर—चूर्णकम्
पाकड़ (वृक्ष)—प्लक्षः
पाखण्डी—पाषण्डिन् (पु०)
पाजेब (गहना)—नूपुरम्
पाठशाला—पाठशाला
पाठ्यपुस्तक—पाठ्यपुस्तकम्
पान—ताम्बूलम्
पानदान—ताम्बूलकरङ्कः
पाना—आप् (५ प), प्र+आप् (५ प) प्रति+पद् (४ आ) विद् (६ उ) सम्पद्+गम् (१ प)
पानी का जहाज—पोतः
पापड़—पर्पटः
पायजामा—पादवासः
पार करना—तॄ (१ प), उत्+तॄ, निस्+तॄ (१ प)
पारा—पारदः
पार्क—पुरोद्यानम् , पुरोपवनम्
पार्वती—शैलजा (स्त्री), गौरी, भवानी (स्त्री)
पालक (साग)—पालङ्की (स्त्री)
पालन करना—भुज् (७ प), रक्ष् (१ आ)
पालिश—पादुरञ्जनम् , पादुरञ्जकः
पास आना—उप + गम् (१ प), उप+सद् (१ प)
पासा (जूए का)—अक्षः (पु)
पाहुन (अतिथि)—प्राघुणः, अभ्यागतः
पिघलना—द्रावय (णिच्)
पिघला हुआ—द्रुतम् गलितम् , द्रवीभूतम्
पिलाना—पायय (पा + णिच्)
पिपानी (बाजा)—तन्त्रीकवाद्यम्
पिस्ता—श्रीफलम्
पिस्तौल—क्षुद्रनलिकाः (स्त्री), गुलिकास्त्रम्
पीछा करना—अनु + सृ (१ प)
पीछे चलना—अनु+चर् (१ प), अनु+इ (१ आ)

पीछे जाना—अनु + गम् (१ प)
पीछे पीछे—अनुपदम् (अ)
पीठ—पृष्ठम्
पीतल—पीतलम्
पीपल—अश्वत्थः
पीपर (ओषधि)—पिप्पली (स्त्री)
पीलिया (रोग)—पाण्डु (पुं)
पीसना—पिष् (७ प)
पुखराज (रत्न)—पुष्परागः, पुष्पराजः
पुताई वाला—कैवड़ः
पुत्र—आत्मजः सूनुः (पुं), तनयः, अपत्यम्
पुत्रवधू—स्नुषा
पुत्राव—पुत्रकः
पुष्ट करना—पुष् (१ प)
पुष्पमाला—स्रज् (स्त्री)
पूँजी—मूलधनम्
पूजा—सपर्या अर्चा अर्हणा अर्चनिधिः (स्त्री)
पूजा करना—अर्च् (१ प) पूज् (१ उ)
पूज्य—प्रतीक्ष्य, पूज्य
पूरा करना—पृ (३ प १ उ)
पूरी—पूलिका
पूर्णिमा—पक्षः, पूर्णिमा
पूर्व—प्राची (स्त्री)
पूर्व की ओर—प्राक् (अ)
पृथिवी—वसुधा, अवनिः (स्त्री), भूः (स्त्री)
पेचिश—प्रवाहिका आमातिसारः
पेट—कुक्षिः (पुं), उदरम्, जठरः
पेटीकोट—अन्तरीयम्
पेटू—औदरिकः, कुक्षिम्भरिः (पुं)
पेठ की मिठाई—कौष्माण्डम्
पेड़ा (मिठाई)—पिण्डः
पेन्टर—चित्रकारः
पेन्सिल—वर्तिका

पेस्टरी—पिष्टान्नम्
पैदल चलने वाला—पत्तिः (पुं)
पैदल सेना—पत्तिः (पुं)
पैदा होना—उद् + भू (१ प) उद् + पद् (४ आ)
पैन्ट—आमस्त्रीनम्
पैर—पादः
पैरेलिसिस (लकवा०)—पक्षाघातः
पोंछना—मार्जय (णिच्)
पोतना—लिप् (६ उ)
पोता—पौत्रः
पोती—पौत्री (स्त्री)
पोर्टिको (बरामदा)—प्रकोष्ठः
पोस्ता—पौष्टिकम्
प्याऊ—प्रपा
प्याज—पलाण्डुः (पुं, न)
प्याऊ (फल)—प्रियालम्
प्याला—चषकः
प्रकट होना—आविर् + भू (१ प)
प्रचार होना—प्र + चर् (१ प)
प्रणाम करना—प्र + नम् (१ प), वन्द् (१ आ)
प्रतिज्ञा करना—प्रति + ज्ञा (९ आ)
प्रतीत होना—आ + पद् (४ प)
प्रतीक्षा करना—प्रतीक्ष् (१ आ), अपेक्ष् (१ आ)
प्रमेह—प्रमेहः
प्रसन्न चित्त—प्रसन्नः, हृष्टमानसः
प्रसन्न होना—प्र + सद् (१ प) मृद् (१ आ)
प्रसिद्ध—प्रथितः, प्रथितः, विश्रुतः
प्रस्तुत करना—प्र + स्तु (२ उ)
प्रस्थान करना—प्र + स्था (१ आ)
प्राइम मिनिस्टर—प्रधानमन्त्रिन् (पुं)
प्राण—प्राणाः असवः (अनु, बहु)
प्राता—प्राता (अ), प्रसूपः

प्राप्त किया—आप्तवान्, प्राप्तम्, लब्धम्
प्राप्त करना—आप्(५ प०), लभ्(१ आ)
प्रारम्भ करना—आ + रभ् (१ आ०)
प्रार्थना करना—प्र + अर्थ् (१० आ)
प्रिन्सिपल—आचार्यः, आचार्या (स्त्री)
प्रेम करना—स्निह् (४ प०)
प्रेरणा देना—प्र + ईर् (१ उ)
प्रेरित—ईरितम्, प्रेरितम्
प्रोफेसर—प्राध्यापकः
प्राड—प्रौढः, प्रौढम् (वि)
प्लास्टर—प्रलेपः
प्लेट—थरवः

फ

फड़कना—स्पन्द् (१ आ०), स्फुर् (६ प)
फर्नीचर—उपस्करः
फल—कुट्मलम्
फल मिलना—वि + पच् (१ उ)
फहराना—उत् + तुद् (१० उ)
फाख्ता—पत्रपक्षिणी (स्त्री)
फाउण्टेन पेन—धाराक्षेत्री (स्त्री)
फालसा (फल)—पुनागम्
फावड़ा—खनित्रम्
फासफोरस—भास्वरम्
फिटकिरी—स्फटिका
फीस—शुल्कः
फुंसी—पिटिका
फुटपाथ—पदकन्दुकः, —कम्
फुफेरा भाई—पैतृष्वसीयः
फुलका (रोटी)—पूपलम्
फूंकना—ध्मा (१ प)
फूंस—तृणम्
फूआ—पितृष्वसृ (स्त्री)
फूल (धातु)—कांस्यम्
फूल—प्रसूनम्, कुसुमम्, पुष्पम्, सुमनस् (स्त्री)
फेंकना—अस् (४ प०), क्षिप् (६ उ)
फेफड़ा—पुप्फुसम्
फेरना—आवर्ति (णिच्)
फैक्टरी—शिल्पशाला
फैलना—प्रथ् (१ आ)
फैलाना—कृ (६ प०), तन् (८ उ०)
फोड़ा—पिटक
फौजी आदमी—सैनिकः
'फ्लु (हम्सुरंजा)—शीतज्वरः

ब

बैंटबरा (बाट)—तुलामानम्
बकरा—अजः
बकवाद करना—प्र + जल्प् (१ प)
बगुला—बकः
बच्चों का पार्क—बालोद्यानम्
बछड़ा—वत्सः
बजे—वादनम्
बड़ (वृक्ष)—न्यग्रोधः
बड़हल (फल)—लकुचम्
बड़ा भाई—अग्रजः
बड़ा—अपृ (पुं)
बड़ेकर—अति (अ)
पढ़ना—पठ्(१ आ),उप+यि (५ उ०)
बतक—वर्तकः
बताशा—बाताशः
बथुआ (साग)—वास्तुकम्, वास्तूकम्
बदमाश—खलः, पापः, शैवः
बदलना—परि + नम् (१ उ)
बधाई देना—क्रिया शुभ् (१ आ)
बना ठना—स्वलंकृतः, सुभूषितः
बनाना—सृज् (६ प), रच् (१ उ

हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष

बनावटी—कृत्रिमम् कृत्वकम् (वि)
बन्द करना—अपि (पि) + धा (३ उ)
बन्दर—शाखामृग, कपिः (पुं)
बन्दूक—भुशुण्डि (स्त्री) मुशुण्डी(स्त्री)
बबूल (वृक्ष)—करीरः
बम—आग्नेयास्त्रम्
बम फेंकना—आग्नेयास्त्रम् + क्षिप् (६ उ)
बराबर करना—सम्+कृ (८ उ)
बरायरी करना—प्र + मृ (१ प)
बरामदा—बरण्डः
बर्छी—शल्यम्
बर्ताव करना—वृत् (१ आ)
बर्रा—डिम्बभेषः
बर्फ—अवस्यायः, हिमम् तुषारः
बर्फी (मिठाई)—वैमी (स्त्री)
बर्रा (बौछार)—प्राविषः
बवासीर—अर्शस् (न)
बस—अलम् (अ) कृतम् (अ), खलु (अ)
बछिया—वत्सी (स्त्री)
बस्ता—वेष्टनम् प्रसेवः
बस्ती—आवासस्थानम्
बहना—वह् (१ उ) स्यन्द् (१ आ)
बहाना—अपदेशः, व्यपदेशः
बहाना करना—अप + दिश् (६ उ)
बहिन—स्वसृ (स्त्री) भगिनी (स्त्री)
बही—वणिक्पत्रिका
बहुमूल्य—मधुमेहः
बहेड़ा (ओषधि)—विभीतकः
बहेलिया—शाकुनिकः व्याधः
बाँझ (वृक्ष)—क्लिन्नूटः
बाँधना—बन्ध् (९ प) पश् (१ उ)
बाँसुरी—मुरली (स्त्री), वंशी (स्त्री)
बाँह—बाहुः (पुं), भुजः
बाज (पक्षी)—श्येनः
बाजरा (अन्न)—पिंगुः (पुं)
बाजार—विपणिः (स्त्री), विपणी(स्त्री)
बाजूबन्द (गहना)—केयूरम्
बाट (तोलने के)—तुलमानम्
बाड़—वृतिः (स्त्री)
बाण—विशिखः, शरः, मार्गणः
बाथरूम—स्नानागारम्
बाद में—पश्चात् (अ), अनु (अ)
बादाम—वाताम्बम्
बार बार—मुहुः (अ) अभीक्ष्णम्(अ)
बारी से(बारी बारीसे)—पर्यायेण (अ)
बारूद—अग्निचूर्णम्
बारे में—अन्तरेण अधिकृत्य (अ)
बाल—विशेषः, केशः
बाल (अन्न की)—कपिलः, कपिलम्
बाल काटने की मशीन—कर्तनी(स्त्री)
बाल्टी (बर्तन)—उदंचनम्
बालूशाही (मिठाई)—मधुमण्डः
बालों का काँटा—केशसूक
बासमती चावल—अणुः (पुं)
बाहर जाना (पासपोर्ट)—निर्यातः
बाहर से आना (इम्पोर्ट)—आयातः
बिकवाना—विक्रापय (णिच् , पर)
बिक्री—विक्रयः
बिगाड़ना—दुष् (४ प)
बिगुल (बाजा)—तंत्रायंसः
बिच्छू—वृश्चिकः
बिजली—विद्युत् (स्त्री),सौदामिनी(स्त्री)
बिजली घर—विद्युद्गृहम्
बिताना—नी (१उ),यापय (णिच् उ)
बिदाई देना—आ+मन्त्र् (१ आ), अप + सृज् (६ प)
बिना—अन्तरेण (अ) विना (अ), ऋते (अ)

बिन्दी—बिन्दुः (पु०)
बिल्ली—मार्जारी (स्त्री)
बिसकुट—पिष्टकः
बिस्तर—शय्या
बींधना—व्यध् (४ प०)
बीच में—अन्तरा, अन्तरे (अ०)
बीड़ी—तमाखुवीटिका
बीतना (समय)—यम् (१ प), अति + इ (१ आ)
बीन बाजा—वीणावाद्यम्
बुकरैक—पुस्तकाधानम्
बुखार—ज्वरः
बुनना—वे (१ उ)
बुरका—विचोलः
बुर्जी (अटारी)—अट्टः
बुलाक (गहना)—नासाभरणम्
बुलाना—आ + मन्त्र् (१ आ), आ + ह्वे (१ उ)
बूरा (चीनी)—शर्करा, सिता
बेंत—नलः
बेचना—वि + क्री (९ आ)
बेचने वाला—विक्रेतृ (पु)
बेंदी (गहना)—मूर्धाभरणम्
बेग—वाहनम्
बेर—बदरीफलम्, कर्कन्धुः (स्त्री)
बेल (फल)—विल्वम्, श्रीफलम्
बेला (फूल)—मल्लिका
बेसन—चणकचूर्णम्
बैंकिंग—कुसीदवृत्तिः (स्त्री)
बैंड—वादित्रसंघः
बैंगन—भण्टाकी (स्त्री०)
बैठना—सद् (१ प०), नि + सद् (१ प), आस् (२ आ०)
बैडमिन्टन—पक्षिक्रीडा
बोना (पौधा)—वपनम्

बैठक—उपवेशनम् (पु), अनड्वह्-गो (पु)
बोना—वप् (१ उ०)
बौर—वल्लरी (स्त्री०)
ब्रह्म—उद्गीथः, ब्रह्मन् (पु, न)
ब्रह्मा—वेधस् (पु), ब्रह्मन् (पु०)
ब्राह्मण—द्विजः द्विजातिः (पु), ब्रह्मन् (पु)
ब्रुश—वर्तिका, रोममार्जनी (स्त्री)
ब्रश, बौंतका—दन्तधावनम्
ब्रेसलेट (बाजूबन्द)—केयूरम्
ब्लड प्रेसर (रोग)—रक्तचापः
ब्लाउज—कंचुलिका
ब्लाटिंग पेपर—मसीशोषः
ब्लेड (पाल बनाने का)—क्षुरकम्
ब्लैक बोर्ड—स्यामपट्टकम्

भ

भगो—तंमाखुकः
भँवर—आवर्तः
भड़भूजा—भटकारः, भ्राष्ट्रिमिषः
भतीजा—भ्रातीयः, भ्रातृव्यः, भ्रातृपुत्रः
भरना—पूर् (१ उ०)
भले ही—कामम् (अ)
भाँड़ा—भण्डकी (स्त्री)
भाग्यवान्—सुकृतिन् (पु)
भाग्य से—दिष्ट्या (अ)
भाड़—भाड़म्
भान्जा (भानजा)—स्वसीयः, भगिनेयः
भाप—वाष्पम्
भाभी (भाई की स्त्री)—भ्रातृजायाः
भारी—गुरुः (वि)
भाला—प्रासः
भालू—भल्लूकः

भाव (बाजार भाव)—अर्घ
भाव गिरना—अर्घापचितिः (स्त्री०)
भाव बढ़ना—अर्घोपचितिः (स्त्री)
भाषर (तराई)—उपत्यका
भिण्डी (साग)—भिण्डकः
भुस—तुषम्
भूख—बुभुक्षा अशनापा
भूखा—बुभुक्षितः, अशनायितः (वि)
भूनना—भ्रस्ज् (६ उ)
भूलना—वि+स्मृ (१ प)
भूसी—तुषः
भू-सेनापति—भूसेनाध्यक्षः
भेजना—प्रेषय (णिच् उ०), प्र+हि (५ प)
भेड़—मेषः
भेड़िया—वृकः
भैंस—महिषी (स्त्री)
भैंसा—महिषः
भोली भाली—मुग्धा
भौं—भ्रूः (स्त्री)
भौंरा—षट्पदः, भ्रमरः, द्विरेफः अलिः (पुं)

म

मँगाना—आनायय (आनी+णिच्)
मंजन—दन्तचूर्णम्
मँजीरा—मंजीरम्
मंडप—मण्डपः
मंडी—महाहट्टः
मकड़ी—ऊर्णनाभः, लूता, ऊर्णनाभः
मकान—भवनम्, सौधः प्रासादः, निलयः
मकाय (फल)—स्वयम्भोगी (स्त्री)
मक्खन—नवनीतम्, हैयंगवीनम्
मगर—मकरः, नक्रः
मछली—मीनः, मत्स्यः, झषः
मजदूर—भृतिकः
मटर—कलायः
मट्ठा—तक्रम्
मथना—मन्थ् (१ उ)
मधुमक्खी—सारघः, मधुमक्षिका
मध्यम स्वर—मध्यः, मध्यस्वरः
मन—स्वान्तम्, हृद् (न), मनस् (न), मानसम्
मन लगाना—रम् (१ आ)
मनाना—अनु+नी (१ उ)
मनुष्य—नरः द्विपाद् (पुं), मर्त्यः
मनोहर—मनोज्ञम् मंजुलम् हृद्यम् अभीक्ष्णम्
मन्त्रणा करना—मन्त्र् (१ आ)
मन्त्री—अमात्यः, सचिवः, मन्त्रिन् (पुं०)
मन्त्री (माल की)—मन्त्रापनम्
मरना—मृ (६ आ) उप+रम् (१ आ)
मरम्मत करना—वं+धा (३ उ)
मर्म—मर्मन् (न)
मलाई—सन्तानिका
मलेरिया—विषमज्वरः
मशीन—यन्त्रम्
मसाला—व्यंजनम् उपस्कर
मसाला डालना—उपस्कृ (८ उ)
मसालेदार वस्तु—व्यंजनम्
मसूर—मसूरः
महँगा—महार्घम्
महल—प्रासादः, सौधः, हर्म्यम्
महावर—अलक्तकः
महुआ (वृक्ष)—मधूकः
माँजना—मृज् (२ प १ उ)
मांस—आमिषम्, मांसम्
माथा—ललाटम्
मानना—मन् (४ आ ८ आ), श्रद्धा+स्पृ (१ आ)
मानसून—ऋतुवातः

मामा—मातुलः
मामी—मातुलानी (स्त्री)
मारना—हन् (२ प), वध् (१ उ), सा (४ प)
मार्ग—वर्त्मन् (न), पथिन् (पुं), मार्गः, सरणिः (स्त्री)
मालपूआ—अपूपः
माली—मालाकारः
मिजराब (सितार बजाने का)—कोणः
मिट्टी—मृत्तिका, मृद् (स्त्री) मृत्स्ना
मिठाई—मिष्टान्नम्
मित्रता—सख्यम् सौहृदम् सौहार्दम्, संगतम्
मिमट—कक्षा
मिर्च—मरीचम्
मिल (फैक्टरी)—मिलः
मिलना—मिल् (६ उ), सं+गम् (१ आ)
मिलाना—पाठ्य (युज्+णिच्), सं+मिश्र (णिच्)
मिस्त्री (कारीगर)—यान्त्रिकः
मिस्सा आटा—मिश्रचूर्णम्
मीठा—मधुरम् (वि)
मीठी गोली (टॉफी)—गुडः
मुँह—आननम् वदनम् मुखम् आस्यम्
मुकरना—अप+ह्नु (१ आ)
मुकुट—मुकुटम्
मुख्य द्वार—गोपुरम्
मुख्य सड़क—राजमार्गः
मुट्ठी—मुष्टि (पुं, स्त्री), मुष्टिका
मुनि—मुनिः (पुं) वाचयमः, यतिः
मुमीम—सेवकः
मुरब्बा—मिष्टकः
मुसम्मी (फल)—मातुलुङ्गः
मुसाफिरखाना—पथिकाश्रयः
मूँग—मुद्गः
मूँगरी (मिट्टी तोड़नेकी)—लोष्टभेदनः
मूँगा (रत्न)—प्रवालम्
मूँछ—श्मश्रु (न)
मूर्ख—वैधेयः बालिशः मूढः
मूर्खता—जाड्यम्
मूली—मूलकम्
मूल्य—मूल्यम्
मूलाधार चक्र—आधारः
मृग—कुरङ्गः, हरिणः, मृगः
मृत—हतः, मृत उपरतः
मृत्यु—मृत्युः (पुं), निधनम्
मेंढक—भेकः दर्दुरः, मण्डूकः
मेंहदी—मेन्धिका
मेघ—जीमूतः, वारिदः, बलाहकः
मेज—पटकम्
मेज पढ़ाई की—लेखनपटकम्
मेयर—निगमाध्यक्षः
मेषा—गुल्फपटम्
मैदा (खेत बराबर करने का)—लोष्ट भेदनम्
मैकेनिक (कारीगर)—यान्त्रिकः
मैच—क्रीडाप्रतियोगिता
मैना—सारिका
मोटा—उपचितः पृथुः, गुरुः (वि)
मोती—मुक्ता मौक्तिकम्
मोती की माला—मुक्तावली (स्त्री)
मोतीझरा (रोग)—मन्थरज्वरः
मोर—बर्हिन् (पुं), शिखिन् (पुं०) मयूरः
मोहावली करना—परिलेखा+लेखय (णिच्)
मोहनभोग (मिठाई)—मोहनभोगः
मोक्ष—कायकाश्यम्
मोन—वाचयमः, जागम् (म)
मौलसरी (फूल)—बकुलः
मौसी—मातृष्वसृ (स्त्री)

मौसेरा भाई—मातृष्वसेय
म्युनिसिपल चेयरमेन—नगराध्यक्षः
म्युनिसिपलिटी—नगरपालिका

य

यज्ञ—अध्वरः, मखः क्रतुः (पुं)
यज्ञ-कर्ता—यजमानः (पुं)
यत्न करना—यत् (१ आ) सम्+यत् (४ प)
यम—कृतान्तः
यश—यशस् (न) कीर्तिः (स्त्री)
याद करना—स्मृ (१ प) सं+स्मृ (१ प) अभि+इ (२ प)
युद्ध—आहवः आजिः (पुं स्त्री) सम्यत्
यूनानी लिपि—यवनानी (स्त्री)
यूनिफार्म—एकपरिधानम् एकवेषः
यूनिवर्सिटी—विश्वविद्यालयः
योग्य होना—अर्ह् (१ प)
योद्धा—योधः

र

रंगना—रञ्ज् (१ उ)
रंगबिरंगे—नानावर्णानि (बहु, वि)
रंगरेज—रञ्जकः
रक्षम—राशिः धनराशिः (पुं)
रक्षा करना—रक्ष् (१ प), पाल् (१ उ) त्रै (१ आ), पा (२ प)
रखना—नि+धा (१ उ)
रज—रजस् (न)
रजाई—नीवारः
रजिस्टर—पंजिका
रजिस्ट्रार—प्रमोदः (पुं)
रणकुशल—सांयुगीन
रथ—स्यन्दनम्
रद्द—खंडः
रबड़ी (मिठाई)—पूर्णिका
रसोई—रसवती (स्त्री), पाकशाला महानसम्
रहना—स्था (१ प) वस् (१ प) अधि+वस् उप+वस् (१ प)
रंगा—नपुं (न)
रसस—मधुरः, रैसः रानकः
राज (मिस्त्री)—स्थपतिः (पुं)
राजदूत—राजदूतः
राजा—अवनिपतिः भूपतिः, भूभृत् (तीनों पु)
रात—विभावरी (स्त्री) क्षपा रात्रिः (स्त्री)
रात में—नक्तम् (अ)
रायता—रम्यकम्
रिवाज—प्रथाचलनम्, संप्रचलनम्
रीटा—रेनिकः
रीढ़ की हड्डी—पृष्ठास्थि (न)
रुकना—स्था (१ प), वि+रम् (१ प) अव+स्था (१ आ)
रूई—तूलः तूलम्
रूज़ (गालों की लाली)—कपोलरंजनम्
रेगिस्तान—मरुः (पुं), धन्वन् (पुं न)
रेट (भाव)—अर्घः
रेशीला किनारा—सैकतम्
रेफरी—निर्णायकः
रेशमी—कौशेयम्
रैकेट (खेलने का)—काष्ठपरिष्करः
रोकना—रुध् (७ उ)
रोग—रुज् (स्त्री) रोगः, आमयः
रोजनामचा (दैनंदिन-पुस्तक, रोजनामचा बही)—दैनिक-पंजिका
रोटी—रोटिका
रोना—रुद् (२ प), वि+लप् (१ प)

ल

लंच (मध्याह्न भोजन)—मध्यभोजः, सक्तिः (स्त्री)
लकवा मारना—पक्षाघातः
लकीर—रेखा

लक्ष्मी —श्रीः (स्त्री०), भीः (स्त्री), पद्मा, कमला
लक्ष्य—उद्देश्यम्, प्रयोजनम्
लगना—भू+क्त (१ भा)
लगाना—नि+युज्(१ उ), सं+पद्(१३०)
लच्छे (गहना)—पादाभरणम्
लज्जित—व्रीडः (वि०)
लज्जित होना—वप् (१ भा०), व्रीड् (१ भा०), ह्री (१ प०)
लड़ने का इच्छुक—योद्धुकामः, युद्धकामः
लड़ाई का जहाज (पानी का)—युद्धपोतः
लड़ाई का विमान—युद्धविमानम्
लड्डू—मोदकः, मोदकम्
लता—लतिः (स्त्री०) वीरुध् (स्त्री०) लता
लपसी (जौ का हलुआ)—मधाग्रू (स्त्री०)
लस्सी (दही की)—दाधिकम्
लहसुन—म्लेच्छकन्दः
लहसुनिया (रत्न)—वैदूर्यम्
लाक्षारस—अलक्तकः अलक्तः
लाभ (धातु)—लभ् (न)
लाना—आ+नी (१ उ), हृ(१ उ), आ+हृ (१ उ)
लिप—कृमी (म०)
लिपस्टिक—ओष्ठरञ्जनम्
लिफ्ट (मशीन)—उत्थापनयन्त्रम्
लिसोड़ा (वृक्ष)—श्लेष्मातकः
लीची (फल)—लीचिका
लीपना—लिप् (६ उ)
लेखा परी—नाम्यनुक्रमणिका
ले जाना—नी (१ उ), हृ (१ उ) वह् (१ उ)
लेना—ग्रह् (९ उ), आ+दा (१ भा)
लेने वाला—ग्राहकः
लोई (ऊनी)—रल्लकः
लोकसभा—लोकसभा, संसद् (स्त्री)
लोटा—करकः, कमण्डलुः (पुं)
लोमिया—वनमुद्गः
लोमी—लम्बः, एष्णुः (पुं)
लोमड़ी—लोमशा
लोहा—अयस् (न०), आयसम्, लौहम्
लोहा करना (वस्त्रों पर)—अयस्+कृ (८ उ)
लोहार—लौहकारः
लोहे का टोप—शिरस्त्रम्
लोहे की चादर—लौहफलकम्
लौंग—लवङ्गम्
लौकी—अलाबूः (स्त्री)
लौटकर आना—आ+वृत् (१ आ), प्रत्या+गम् (१ प)
लौटना—नि+वृत्(१आ),प्रत्या+गम्(१प)

व

वंचित—विप्रलब्धः
वंश—अन्वयः अन्ववायः, वंशः
वकील—मार्गविचारकः
वचन—वचस् (न०), वचनम्
वज्र—पविः (पुं) वज्रम् कुलिशम्, अशनिः (पुं)
वन—काननम्, विपिनम् वनम्, अरण्यम्
वरुण—प्रचेतस् (पुं),पाशिन् (पुं)वरुणः
वर्षा—वृष्टिः (स्त्री०), वर्षा
वर्षाकाल—प्रावृष् (स्त्री)
वस्तुतः—नूनम्,किल,खलु,वै वाक्(अ)
वहाँ से—ततः (अ)
वारुण चाम्पत्कर—उलूकपक्षिः (पुं०)
वाटर पम्प्स—उदयन्त्रम्
वाणी—भारती,वाच्(स्त्री०) वाणी(स्त्री)
वायु—मातरिश्वन् (पुं०), पवनः अनिलः
वायुसेनापति—वायुसेनाध्यक्षः
वायोलिन (बाजा)—सारंगी (स्त्री)
विचरण करना—वि+चर् (१ प)
विजयी—विष्णुः (पुं), विजयिन् (पुं०)

विद्युत्—सौदामिनी (स्त्री), विद्युत् (स्त्री०)
विद्वान्—विद्वत् (पुं०), विपश्चित् (पुं), सुधीः (पुं०), कोविदः, बुधः, मनीषिन् (पुं०), सूरिः (पुं), निष्णातः
विपत्ति—विपत्तिः (स्त्री०), विपद् (स्त्री), व्यसनम्
विमान—विमानम्
विवाह करना—परि+णी (१ उ०), उप+यम् (१ आ)
विश्राम—विश्रमः, विश्रामः
विश्वास करना—वि+वस् (२ प)
विष्णु—हरिः, अच्युतः
विस्तृत—उरुः, विततम् प्रथितम्
वीर्य—शुक्रम्
वृक्ष—विटपिन् (पुं) पादपः, अनोकहः, शाखिन् (पुं)
वृद्ध—प्रवयस् (पुं), वृद्धः
वेतन—वेतनम्
वेतन पर नियुक्त नौकर—वैतनिकः
वेदपाठी—श्रोत्रियः, वेदपाठिन् (पुं)
वेदी—वेदिका वेदी (स्त्री)
वैद्य—भिषज् (पुं) चिकित्सकः (पुं) अर्वा, वैद्यः
व्याही स्त्री—श्वश्रूकः
व्यक्त करना—वि+अञ्ज् (७ प)
व्याघ्र—द्वीपिन् (पुं) शार्दूलः
व्यर्थ ही—वृथा (अ०), मुधा (अ)
व्यवहार करना—आ+चर् (१ प०), व्यव+हृ (१ उ)
व्यापार—वाणिज्यम्, व्यापारः
व्याप्त होना—व्याप् (वि+आप् ५ प), अप् (५ आ)

श

शङ्कर—शम्भुः
शपथ खेना—शप् (१ उ)
शराबी—मद्यपः
शरीफा (फल)—सीताफलम्
शरीर—वपुष् (न), गात्रम् तनुः (स्त्री), कायः, विग्रहः
शर्त—समयः
शलगम—शेवलकन्दः
शस्त्र—प्रहरणम् अस्त्रम्
शस्त्रागार—अस्त्रागारम्, आयुधागारम्
शस्य-श्यामल—शाद्वलः
शहतूत (फल)—तूतम्
शहद—मधु (न)
शहनाई (बाजा)—तूरम्
शहर—नगरम् पुरम्
शान्त—शान्तः (वि)
शामियाना—चन्द्रातपः
शासन करना—शास् (२ प), तन्त्र् (१ आ)
शिकार खेलना—मृगया
शिकारी—मृगयुः (पुं), आखेटकः वागुरिकः
शिक्षा देना—शास् (२ प)
शिर—शिरस् (न०) मूर्धन् (पुं)
शिक्षा—शिक्षा शिक्षापत्रः
शिल्पी—कारुः (पुं), शिल्पिन (पुं)
शिल्पी-संघ—श्रेणिः (पुं , स्त्री०)
शिल्पी-संघ का अध्यक्ष—श्रेष्ठः
शिव—त्र्यम्बकः, त्रिपुरारिः (पुं०) ईशानः
शिष्य—अन्तेवासिन् (पुं), छात्रः, शिष्यः, वटुः (पुं)
शीघ्र—तूर्णम् (अ) त्वरितं (अ०), द्रुतम्, क्षिप्रम्
शीशम (वृक्ष)—सिंशपा
शीशा—दर्पणः, मुकुरः, आदर्शः
शुद्ध करना—शोधय (णिच्)
शूद्र—अन्त्यजः
शेर—केसरिन् (पुं०), सिंहः, मृगेन्द्रः, हरिः (पुं)
शोरबा—यूषारकम्
शोभित होना—भ्रम् (१ आ), भा (२ प)
श्रद्धा करना—श्रद्+धा (३ उ)

लक्ष्मी—लक्ष्मीः (स्त्री०), श्रीः (स्त्री), पद्मा, कमला
लक्ष्य—लक्ष्यम्, शरव्यम्
लगना—भू+क्त (१ आ)
लगाना—नि+युज्(१०उ), सं+धा(३उ)
लच्छे (गहना)—पत्राभरणम्
लज्जित—ह्रीणः (वि)
लज्जित होना—त्रप् (१ आ) लज्ज् (१ आ) ह्री (३ प)
लड़ने का इच्छुक—योद्धुकामः कलहकामः
लड़ाई का जहाज (पानी का)—युद्धपोतः
लड़ाई का विमान—युद्धविमानम्
लड्डू—मोदकः मोदकम्
लता—यष्टि (स्त्री) वीरुध् (स्त्री),लता
लपसी (जौ का हलुआ)—यवागू (स्त्री)
लस्सी (दही की)—दधिकम्
लहसुन—लशुनम्
लहसुनिया (रत्न)—वैदूर्यम्
लाक्षारस—अलक्तकः, अलक्तरसः
लाख (धातु)—लाक्षा (न)
लाना—आ+नी (१ उ) हृ(१ उ), आ+हृ (१ उ)
लिप—कृते (अ)
लिपस्टिक—ओष्ठरञ्जनम्
लिफ्ट (मशीन)—उत्थापनयन्त्रम्
लिसोड़ा (पेड़)—श्लेष्मातकः
लीची (फल)—लेचिका
लीपना—लिप् (६ उ)
लेखा पही—ग्रामानुक्रमणिका
ले जाना—नी (१ उ) हृ (१ उ) वह्(१ उ)
लेना—ग्रह्(९ उ), आ+दा (३ आ)
लेन वाला—ग्राहकः
लोई (ऊनी)—रल्लकः
लोकसभा—लोकसभा, संसद् (स्त्री)
लोटा—करकः कमण्डलुः (पुं)
लोमिया—वनमुद्गः
लोमी—कुष्ठी, पाण्डुः (पुं)
लोमड़ी—लोमशा
लोहा—अयस् (न), आयसम्, लौहम्
लोहा करना (वर्षा पर)—अयस्+कृ (८ उ०)
लोहार—लौहकारः
लोहे का टोप—शिरस्त्रम्
लोहे की चादर—लौहपट्टकम्
लौंग—लवङ्गम्
लौकी—अलाबूः (स्त्री)
लौटकर आना—आ+वृत् (१ आ) प्रत्या+गम् (१ प)
लौटना—नि+वृत्(१आ०),परा+गम्(१प)

व

वंचित—विप्रलब्धः
वंश—अन्ववः, अन्ववायः, पक्षः
वकील—व्यवहारिकः
वचन—वचस् (न), वचनम्
वज्र—पविः (पुं) वज्रम् कुलिशम्, अशनिः (पुं)
वन—काननम्, विपिनम् वनम्, अरण्यम्
वरुण—प्रचेतस्(पुं) पाशिन्,(पुं)वरुणः
वर्षा—वृष्टिः (स्त्री) वर्षा
वर्षाऋतु—प्रावृष् (स्त्री)
वस्तुतः—नूनम्,किल खलु,वै,ताक्(अ)
वहाँ से—ततः (अ०)
वाइस चान्सलर—उपकुलपतिः (पुं)
वाटर पर्फ्स—उदयप्रम्
वाणी—सरस्वती वाच्(स्त्री) वाणी(स्त्री)
वायु—मातरिश्वन् (पुं), पवनः अनिलः
वायुसेनापति—वायुसेनाध्यक्षः
वायोलिन (बाजा)—सारंगी (स्त्री)
विचरण करना—वि+चर् (१ प)
विजयी—जिष्णुः (पुं) विजयिन् (पुं)

विद्युत्—सौदामिनी(स्त्री), विद्युत्(स्त्री)
विद्वान्—विद्वस् (पुं), विपश्चित् (पुं), सुधीः (पुं), कोविदः, बुधः, मनीषिन् (पुं) सूरिः (पुं), निष्णातः
विपत्ति—विपत्तिः (स्त्री),विपद्(स्त्री), व्यसनम्
विमान—विमानम्
विवाह करना—परि+णी (१ उ०), उप+यम् (१ आ०)
विश्राम—विश्रमः, विश्रामः
विश्वास करना—वि+श्वस् (२ प)
विष्णु—हरिः, अच्युतः
विस्तृत—ततम्, विततम् प्रततम्
वीर्य—शुक्रम्
वृक्ष—विटपिन् (पुं), पादप , मनोकहः, शाखिन् (पुं)
वृद्ध—प्रवयस् (पुं), स्थविरः
वेतन—वेतनम्
वेतन पर नियुक्त नौकर—वैतनिकः
वेदपाठी—श्रोत्रिय:, वेदपाठिन् (पुं)
वेदी—वेदिका, वेदी (स्त्री)
वैद्य—भिषज् (पुं), दिव्यतिः (पुं) अर्कः, वैद्यः
वाली बाँह—बेल्लन्-भुजः
व्यक्त करना—वि + अञ्ज् (७ प)
व्याघ्र—द्वीपिन् (पुं) शार्दूलः
व्यर्थ ही—वृथा (अ) मुधा (अ)
व्यवहार करना—आ+चर् (१ प), व्यव + हृ (१ उ)
व्यापार—वाणिज्यम्, व्यापारः
व्याप्त होना—व्याप् (वि+आप् ५ प), अञ्ज् (५ आ)

श

शक्कर—शर्करा
शपथ खेना—शप् (१ उ)
शराबी—मद्यपः
शरीफा (फल)—शीताफलम्
शरीर—वपुष् (न०), गात्रः (स्त्री), कायः, विग्रहः
शर्त—समयः
शलगम—श्वेतकन्दः
शस्त्र—प्रहरणम्, शस्त्रम्
शस्त्रागार—अस्त्रागारम्, आयुधागारम्
शस्य-श्यामल—शाद्वलः
शहतूत (फल)—तूतम्
शहद—मधु (न)
शहनाई (बाजा)—तूर्यम्
शहर—नगरम् पुरम्
शान्त—शान्तः (वि)
शामियाना—वस्त्रातपः
शासन करना—शास् (२ प) तन् (१ आ)
शिकार खेलना—मृगया
शिकारी—मृगयुः (पुं) आखेटकः आखेटिकः
शिक्षा देना—शास् (२ प)
शिर—शिरस् (न) मूर्धन् (पुं)
शिष्ट—शिष्ट शिष्टपट्टः
शिल्पी—कारुः (पुं), शिल्पिन् (पुं)
शिल्पी-संघ—श्रेणिः (पुं स्त्री)
शिल्पी-संघ का अध्यक्ष—कुलकः
शिव—शम्भुः, त्रिपुरारिः(पुं) ईशानः
शिष्य—अन्तेवासिन् (पुं), आचार्य शिष्यः, पद्धः (पुं)
शीघ्र—सद्यः (अ) सपदि(अ), द्रुतम्, क्षीघ्रम्
शीशम (वृक्ष)—शिंशपा
शीशा—दर्पणः, मुकुरः, आदर्शः
शुद्ध करना—शोधय (णिच्)
शूद्र—अन्त्यजः
शेर—केसरिन्(पुं),सिंहः,मृगेन्द्रः हरिः(पुं)
शेरवानी—प्रावारकम्
शोभित होना—शुभ्(१आ),भा(२प)
श्रद्धा करना—श्रद्+धा (१ उ)

स

संग्रहणी (पेचिश)—प्रवाहिका
संतरा—नारङ्गम्
संवाद करना—सं+वद् (१ आ)
संशय करना—सं+शी (२ आ)
सज्जन—साधुः (पुं) सुमनस् (पुं), सज्जेतस् (पुं)
सड़क—मार्गः पथिन् (पुं) सरणिः (स्त्री)
सड़क, कच्ची—मृन्मार्गः
सड़क, चौड़ी—रथ्या
सड़क, पक्की—इष्टमार्गः
सड़क, मुख्य—राजमार्गः
सत्य रूप में—परमार्थतः, परमार्थेन, यथार्थतः (अ)
सदस्य—समासद् (पुं), सभ्यः पारिषदः
सदाचारी—सच्चरितः, सदाचारः
सदा होना—सं+वद् (१ प), अनु+इ (१ आ)
सधवा स्त्री—पुरन्ध्रिः (स्त्री)
सन्तुष्ट होना—तृप् (४ प)
सन्दूक—मञ्जूषा
संन्यासी—भिक्षुकः (पुं०), परिव्राजकः, यतिः (पुं)
सप्ताह—सप्ताहः
सफेद पान—पक्वम्
सभा—सभा समितिः (स्त्री) परिषद् (स्त्री०)
सभागृह—आस्थानम्
सभाधिप—सभाध्यक्षिणी (स्त्री)
सभापति—सभाध्यक्षिन् (पुं)
समर्थ—प्रभविष्णुः (पुं) प्रभुः (पुं) समर्थः, शक्तः
समर्थ होना—प्र+भू (१ प)
समय—वेला कालः, समयः
समाचार—वार्ता प्रवृत्तिः (स्त्री०) उदन्तः
समाप्त—अवसितः
समाप्त होना—सम्+आप् (५ प), अव+सो (४ प०)
समीक्षा करना—सम्+ईक्ष् (१ आ)
समीप—उप, अनु, अभि, आसत् (अ)
समीप आना—प्रत्या+सद् (१ प०), उप+या (२ प)
समीपता—सन्निधानम्, सामीप्यम्
समुद्र—अर्णवः अम्भिः (पुं) रत्नाकरः
समुद्री व्यापारी—सांयात्रिकः
समूह—संहतिः (स्त्री), संघः
समोसा—समोषः
सम्बन्धी—ज्ञातिः (स्त्री), बन्धुः, बान्धवः
सरकार—सर्वकारः, शासनम्
सरसों—सर्षपः
सर्प (दुष्ट)—सर्जः
सर्वथा—एकान्ततः, सर्वथा निश्चयम् (अ)
सहकार—रसालतरुः
सहाय—सखा
सहसा—सहस् (१ आ०)
सहपाठी—सतीर्थ्यः, सहाध्येतृ (पुं), सहपाठिन् (पुं)
सहभोज—सांपंक्तः (स्त्री), सहभोजः
सहाध्यायी—सतीर्थ्यः
सहारा देना—अव+लम्ब् (१ आ)
सहृदय—सहृदयः सज्जेतस् (पुं)
सांग यज्ञ—सन्नयागः
सांप—द्विजिह्वः, उरगः, भुजंगः
सांभर नमक—रौमकम्
साक्षी—साक्षिन् (पुं)
साग—शाकः, शाकम्
साड़ी—शाटिका
सात स्वर—सप्त स्वराः
साथ—सह साकम्, सार्धम्, सनिभ्यम्
साथी—सहाध्यायिन् (पुं)

साफ करना—मृज् (२ प, १ उ), प्र+क्षल् (१० उ०)
साबुन—फेनिलम्
सामग्री—हरिप् (न) संभारः, उपकरणम्
सामान—पण्यः
सारंगी (बाजा)—सारंगी (स्त्री)
सारस—सारसः
साल का पेड़—शालः
साँवा (जंगली धान)—स्यामाकः
सास पेन (डेगची)—उखा
साहूकार—कुसीदिकः कुसीदिन् (पुं)
साहूकारा—कुसीदवृत्तिः (स्त्री), कुसीदम्
सिंगारदान—शृंगारभाजनम्, शृंगारपिटकम्
सिंघाड़ा—शृंगाटकम्
सिक्का—मुद्रा
सिक्का डालना—टङ्कनम्, टङ्क् (१ उ)
सिगरेट—धूमपानवर्तिका
सितार—वीणा
सिद्ध होना—सिध् (४ प)
सिन्दूर—सिन्दूरम्
सिपाही—रक्षिन् (पुं)
सिफलिस (गर्मी, रोग)—उपदंशः
सिलाई—सूचिः (स्त्री)
सिलाई की मशीन—सूचियन्त्रम्
सिला हुआ—सूतम्
सींचना—सिच् (१ उ)
सीखना—शिक्ष् (१ आ)
सीखने वाला—शिक्षार्थिन् (पुं), अधीतिन् (पुं)
सीढ़ी—सोपानम्
सीढ़ी (छकड़ी की)—निःश्रेणी (स्त्री)
सीना—सिव् (४ प)
सीमेन्ट—आस्तरणम्
सीसा (धातु)—सीसम्
सुख—शर्मन् (न) सुखम्
सुनार—स्वर्णकारः, स्वर्णकारः
सुन्दर—रुचिरम्, मनोज्ञम्, मञ्जुलम्
सुपारी—पूगम्, पूगीफलम्
सुपरिंटेंडेंट—गोप्तृकः
सुराही—भृङ्गारः
सूअर—शूकरः, वराहः
सूई—सूचिका
सूखना—शुष् (४ प)
सूत—सूत्रम्
सूती—कार्पासम्
सूद—कुसीदम्
सूर्य—अंशुमालि (पुं), हरिदश्वः
सूर्यास्त समय—प्रदोषः, गोधूलिवेला, शयम्
सेना ममक—सैन्यवम्
सेंह (पशु)—शल्यः
सेकण्ड—विकल
सेक्रेटरी—सचिवः
सेना—चमू (स्त्री) हस्त्यश्वरथपदातिनी (स्त्री)
सेनापति—सेनापतिः (पुं) सेनानीः (पुं)
सेफ (तिजोरी)—लौहसंपुटा
सेफ्टी रेज़र—उपक्षुरम्
सेम—सिम्बा
सेमर (वृक्ष)—शाल्मलिः (पुं)
सेन्स टैक्स—विक्रयकरः
सेव (फल)—सेवम्, आपफलम्
सेवई—सूत्रिका
सेवा करना—सेव् (१ आ) उप+चर् (१ प)
सोंठ—शुण्ठी (स्त्री)
सोचना—चिन्त् (१ उ), विचारय् (विच
सोना (आठ)—उक्षः
सोना—काञ्चनम्, अवटम्, चामीकरम्
सोना—स्वप् (२ प), शी (२ आ)
सोफा—पल्यङ्कः
सोंफ—मधुरः
सौदा (सामान)—पण्यः

सौ रुपये—शतम्
स्कूल—विद्यालयः
स्कूल इन्स्पेक्टर—विद्यालयनिरीक्षकः
स्कूल—वेषः
स्टनलेस स्टील—निष्कलंकायसम्
स्टेशन—यानावतारः
स्टोव—उद्ध्मानम्
स्त्री—योषित् (स्त्री), कलत्रम् (न), दारः (पु)
स्थान—धामन् (न)
स्नातक—उद्वाहकः, स्नातकः
स्ना—हेमन्
स्पर्धा करना—स्पर्ध् (१ आ)
स्मरण करना—स्मृ(१प०),अधि+इ(२प)
स्लेट—अक्षपट्टिका
स्वच्छ होना—प्र + क्ष् (१ प)
स्वभाव—धर्मः निसर्गः, प्रकृतिः (स्त्री)
स्वभाव से सुन्दर—अभावमनोहरम्
स्वर्ग—नाकः, त्रिदिवः, त्रिविष्टपम्
स्वर्ण—कार्तस्वरम्, जातरूपम्, हिरण्यम्
स्वर्गवास जाना—प्रभुद्+गम् (१ प)
स्वामी—प्रभविष्णुः (पु),प्रभुः स्वामिन्(पु)
स्वीकार करना—अरी + कृ (८ उ), अरी + कृ (८ उ)
स्वेच्छाचारी—स्वैरः, स्वैरिन् (पु), कामचारिः (स्त्री)
स्वेटर—ऊर्णावरकम्

ह

हंस—मरालः
हंसी—परिहासः
हँसी करना—परि + हस् (१ प)
हँसुली (गहना)—ग्रैवेयकम्
हटना—अप + सृ (१ प), या (२ प), नि + वृत् (१ प)
हटाना —व्यप + नी (१ उ), [illegible]
हथौड़ी—अयोघनः
हरताल—पीतकम्
हराना—पर+भू(१प), पर+जि(१आ)
हर्रे—हरीतकी (स्त्री)
हल—अकृष्टम्, इक्षम्, सीरः
हल करना (प्रश्नादि)—साधय (चिच)
हलवाई—कान्दविकः
हलुआ—अपिकः
हलका—लघुः (वि)
हल्दी—हरिद्रा
हवन करना—हु (१ प)
हाँ—आम्, तथा, अथ किम् (अ)
हाइड्रोजन वायु—अम्बुरम्लजनम्
हाँकी का खेल—यष्टिक्रीडा
हाथ का तोड़ा (गहना)—त्रोटकम्
हाथीवान—हस्तिपकः
हार, मोती का—हारः
हार, एक लड़ का—एकावली (स्त्री)
हारना—पर+जि (१ आ)
हारमोनियम (बाजा)— मनोहारिवाद्यम्
हारसिंगार (फूल)—शेफालिका
होंठ—अधरोष्ठः
हिंसा करना—हिंस् (७प) हन् (२प)
हिम—अम्बुमापः, हिमम्
हिसाब—गणनम्
हींग—हिंगुः (पु , न)
हीरा—हीरकः
हृदय—हृदयम्, स्वान्तम्, मानसम्
हुक्का—धूम्रनालिका
हैजा—विसूचिका
होठ—ओष्ठ्य
होठ, नीचेका—अधर, अधरोष्ठ्य
होना—भू (१ प), अस् (२ प), विद् (४ आ), हन् (१ आ)
होम—आहावः

(१३) विषयानुक्रमणिका

सूचना—१ अकारादि धातुओं और निबन्धों के विवरण के लिए प्रारम्भिक विषय सूची देखिए।

२ विषयानुक्रमणिका में दी गई संख्याएँ पृष्ठ-बोधक हैं।

अनुवादार्थ गद्य-संग्रह १२५-१४४
अभ्यास १ १२१
आत्मनेपद ५८, ६०
इच्छार्थक प्रत्यय, सन् ७०
कर्तृवाच्य ५६
कर्मवाच्य ६२, ६४

कारक—प्रथमा २, द्वितीया २, ४
तृतीया ६, ८ चतुर्थी १ , ११
पंचमी १४ १६, षष्ठी १८ २
सप्तमी २२, २४

कृत् प्रत्यय—अक् ९६, अच् १ २
अनु १०४, अप् ९६, इष्णु १ ४,
क १००, क्त ७४ ७६ क्तवतु ७८,
क्तिन् १ २, क्त्वा ८६, क्विप् १ २,
क्त्वा १००, क्वसु १ ४ क्यप् ९४
ण १८ ण्वुल् ८८, णिनि १ ,
तुमुन् ८, तुमुन् ८४, तृच् ९६,
त्वा ८८, त्वातुन् १८, थक् ८ , ८९,
थाल्क् ८१, अन्य कृत् प्रत्यय १ ४,
कृत्य प्रत्यय—अनीय ९ , ण्यत् ९२,
ण्वुल् ९२, तव्य ९०, यत् ९२
णिच् प्रत्यय ९६, ९८

तद्धित प्रत्यय—अपत्यार्थक १ १
इञ् ११८, इवुञ् ११८, धातुपरिचय
१ ८ ष्ण्य ११०, तमप् ११८,
तरप् ११८, तुल्यार्थक ११८,
द्वित्व ११ , मात्रार्थक ११६
मत्वर्थक १११ विभक्तयर्थ ११४
वैषिक ११ , शस् १२ , अन्य
तद्धित प्रत्यय १२

धातुरूपकोश २२१ २५४
धातुरूपसंग्रह १४१ २२०
नामधातु प्रत्यय ७२
निबन्धमाला १८४-१२४
पत्रादि-लेखन-प्रकार २७१-२८१
पदक्रम ५१
परस्मैपद ६
पारिभाषिक शब्दकोश १७७-१८१
प्रत्यय-विचार २५५ २६८
प्रेरणार्थक णिच् ९१, ९८
भाववाच्य ६२, ६४
यक् प्रत्यय ७२
सकार—आशीर्लिङ् १६, क्सिच् २६
२८, सन् १ , १२, सिच् १४
सिच् १६

विभक्ति—देखो कारक
शब्दरूप-संग्रह १२१ १४
शब्दवर्ग—अम्बवर्ग ५२, अम्बष्ठवर्ग ११२, आभूषणवर्ग १ २, आयुधवर्ग ४४, इन्द्रियवर्ग ७२, क्रियावर्ग ११४ क्रीडाङ्गनवर्ग १८, क्षत्रियवर्ग ४२, गृहवर्ग ११ , चिह्नवर्ग १२ देव वर्ग १६, चातुर्वर्ग ११६, नाट्यवर्ग ११८, पक्षिवर्ग ९२, पशुवर्ग ९ , पात्रवर्ग ६ , पानादिवर्ग ५८, पुरवर्ग १ ६, १ ८, पुष्पवर्ग ८४ प्रसाधन-वर्ग १ ४, फलवर्ग ८६, ८८, ब्राह्मण वर्ग ४ , मत्स्यवर्ग ५४, मिष्टान्नवर्ग ५६, रोगवर्ग १२ , लेखनसामग्रीवर्ग ३०, वनवर्ग ८ , वस्त्रादिवर्ग १ , वारिवर्ग ९४, विद्यालयवर्ग २८, विशेषणवर्ग ७४, ७६, वृक्षवर्ग ८२, वैश्यवर्ग ४८, व्यापारवर्ग ५० व्योम-वर्ग १४ शरीरवर्ग ९६, ९८, शाकादिवर्ग १८, ७ शिल्पिवर्ग ३४, ५६, शूद्रवर्ग ३२, शैलवर्ग ७८, संबन्धिवर्ग ३६, सैन्यवर्ग ४६

संख्याएँ १४१ १४२
सन् प्रत्यय ७

सन्धि—स्वर (अच्) सन्धि २६, २८, व्यञ्जन (हल्) सन्धि १ , १२, विसर्ग-सन्धि १४ १६

सन्धि-विचार—२६९ २७८
स्वर-सन्धि २६९ २७१,
व्यञ्जन (हल्) सन्धि २७२ २७५,
विसर्ग (स्वादि) सन्धि २७६ २७८
समास—अलुक् समास ५ ,
अव्ययीभाव १८, एकशेष ५ ,
कर्मधारय ४२, तत्पुरुष ४ , द्वन्द्व ४८, द्विगु ४१, बहुव्रीहि ४४, ४६
समासान्तप्रत्यय ५२
सुभाषित मुक्तावली—१४५ १७६
अभ्यास १४६ १४९,
अर्थ १४९ १५ ,
आचार १५५ १६१,
आरोग्य १५१,
कवि, काव्य, कविता १७५,
काम (भोगनिन्दा) १५ ,
चातुर्वर्ण्य १५२,
जगत्स्वरूप १५१,
जीवन १५२ १५१,
पुरुष-स्त्री-स्वभावादि १७१ १७९
भारत-प्रशंसा १४५
मनोभाव १६८ १६९
राजपुरुषादि १५१ १५४,
विचारात्मक १६५ १६८,
विद्या १६१-१६५,
विविध १७५ १७६,
व्यवहार १७० १७२
स्त्रीप्रत्यय ५४
हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष १८७-२१८